सियारामशरण गुप्त के काव्य में सांस्कृतिक चेतना

बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय, झांसी में
हिन्दी विषय की पी०-एच०डी० की उपाधि हेतु

प्रस्तुत - शोध प्रबन्ध

वर्ष-2006

-: शोध निर्देशक :-
डॉ० विनोद कुमार खरे
एम०ए०, पी-एच०डी०
हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय,
झांसी (उ०प्र०)

-: शोधकर्त्री :-
श्रीमति राजकुमारी जैन
एम०ए०,(हिन्दी)एम०एड०
सहायक अध्यापिका-बी०डी०जैन कन्या इन्टर कॉलेज
आगरा, (उ०प्र०)

हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

सियारामशरण गुप्त के काव्य में सांस्कृतिक चेतना
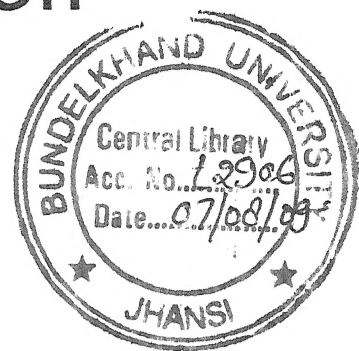
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में
हिन्दी विषय की पी-एच०डी० की
उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

वर्ष –2006

शोध निर्देशक
डॉ० विनोद कुमार खरे
एम०ए०, पी-एच०डी०
रीडर, हिन्दी विभाग,
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी (उ०प्र०)

शोधकर्त्री
श्रीमती राजकुमारी जैन
एम०ए० (हिन्दी) एम०एड०
सहा०अध्यापिका (हिन्दी)
बी०डी०जैन कन्या इण्टर कालेज, आगरा

हिन्दी विभाग

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ०प्र०)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मेरे पर्यवेक्षण में पी0-एच0डी0 के लिए शोधार्थिनी श्रीमती राजकुमारी जैन का ''**सियारामशरण गुप्त के काव्य में सांस्कृतिक चेतना**'' शीर्षक शोध-प्रबन्ध शोधार्थिनी की ही रचना है तथा उक्त शोधार्थिनी ने अपने प्रार्थना पत्र दिनांक 04.04.02 से लेकर अब तक मेरे पर्यवेक्षण में शोधकार्य किया है। साथ ही यह भी प्रमाणित किया जाता है कि उक्त शोधार्थिनी ने उक्त अवधि में 200 दिन से अधिक मेरे समक्ष रहकर शोधकार्य सम्पन्न किया है।

दिनांक : 29.12.2006

शोध-निर्देशक

(डा0 विनोद कुमार खरे)
रीडर, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय,
झाँसी

घोषणा–पत्र

मैं निष्ठापूर्वक घोषणा करती हूँ कि '' सियारामशरण गुप्त के काव्य में सांस्कृतिक चेतना'' विषयक मेरा यह '' शोध प्रबन्ध'' मौलिक कृति है, जिसे मैं ने स्वविवेक एवं परिश्रम से पूरा किया है।

शोधकर्त्री

राजकुमारी जैन

श्रीमती राजकुमारी जैन

एम0ए0(हिन्दी),एम0एड0

सहायक अध्यापिका (हिन्दी)

बी0डी0जैन कन्या इण्टर कालेज, आगरा (उ0प्र0)

पुरोवाक

पुरोवाक्
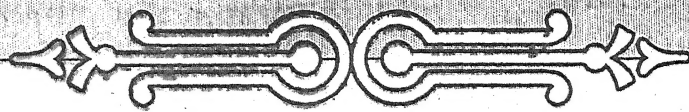
बुन्देलखण्ड की सर्वविध ऐश्वर्यमयी भूमि अतीत से ही ऐसे नर–रत्नों का प्रसव करती रही है जिन्होंने समाज संपृक्त साहित्यिक कृतियों के माध्यम से आत्मविज्ञापन करके माँ भारती का आँचल मणियों से आपूरित कर दिया। इस पावन परम्परा में तुलसी के अतिरिक्त केशव, बिहारी, पद्माकर, मोहन मिश्र,वृन्दावन लाल वर्मा,मुंशी अजमेरी,केदारनाथ अग्रवाल आदि नें जिन साहित्यिक कृतियों को आकार प्रदान किया वे बुन्देलखण्ड की शाश्वत निधियाँ तो बनी ही– दिग्–दिगन्त को भी अपनी धवलिया से उद्भासित कर सकीं। इसी परम्परा को नैरन्तर्य प्रदान करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के लघु भ्राता सियारामशरण ने अपनी विलक्षण काव्य–गद्य कृतियों से अपने विशद व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति प्रदान की। राष्ट्रकवि के विशाल वटवृक्ष से आच्छन्न होने पर भी कवि सियारामशरण कुंठित हतप्रभ या विषण्ण नहीं हुए अपितु अपने काव्य के माध्यम से ही अपने व्यक्ति को आरोग्य–लाभ कराते रहे।

जिस समय मेरी लघु भगिनी मनीषा कवि सियारामशरण पर अपना लघु शोध प्रस्तुत कर रही थी उसी समय मेरे बालमन में यह आया कि मैं भी बुन्देली भूमि के प्रति अपनी आस्था के परिणमन में इसी कवि की सांस्कृतिक चेतना पर शोध कार्य करूँ – जिसकी परिणति अब आठ अध्यायों वाले प्रस्तुत रूप में हो रही है।

यह 'संस्कृति' शब्द एक अतिव्यापक, जटिल एवं सश्लिष्ट अभिधान है। जिसकी व्युत्पत्ति एवं व्याख्या विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। भूमिका के रूप में मैनें प्रस्तुत शोध ग्रंथ के प्रथम अध्याय में इस विषय में अपेक्षित विवेचन किया है। इसी अध्याय में संस्कृति के विभिन्न अर्थो तत्त्वों एवं अवयवों पर अपेक्षित चर्चा की गयी है। संस्कृति और सभ्यता धर्म एवं नीति,दर्शन एवं विज्ञान ,कला, साहित्य आदि को स्पष्ट करते हुए भारतीय संस्कृति के वैशिष्ट्य एवं उसके विकास पर प्रकाश–निक्षेप किया गया है।

कवि–विशेष का परिवेशसह का जीवन–वृत्त उसकी अपनी संस्कृति को अभिव्यंजित एवं चरितार्थ करता है और परिवेश की विशिष्टता राजनीतिक,आर्थिक,धार्मिक,साहित्यिक परिस्थितियों के माध्यम से अवगत होती है। कविवर गुप्त को किस प्रकार ऐसे परिवेश से प्रेरणा प्राप्त हुई, इस तथ्य का प्रकाशन शोध ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में किया गया है।

शोध ग्रंथ के तृतीय अध्याय में कवि सियारामशरण के काव्य की विषय–वस्तु पर दृष्टि निक्षेप करते हुए उसमें विशिष्टतया सांस्कृतिक तथ्यों का अभिज्ञान करके उन्हें अभिव्यक्त किया गया है। इस अध्याय में शोध–दृष्टि काव्य–समीक्षा विषयक न होकर संस्कृति संबद्ध रही है।

कवि द्वारा चित्रित समाज अपने व्यापक रूप में सामाजिक व्यवस्था,पारिवारिक जीवन, उसके कर्तव्य शिष्टाचार,नारी के प्रति दृष्टिकोण, संस्कार,पर्वोत्सव,त्योहार,खानपान, वस्त्राभूषण,श्रृंगार – प्रसाधन आदि का बोधक होता है। चतुर्थ अध्याय में इन्ही पर विचार करके इनके संदर्भ में कवि का मन्तव्य स्पष्ट किया गया है।

राजनीति के माध्यम से भी, संस्कृति आकार ग्रहण करती है, अतः प्रबन्ध के पंचम अध्याय में राज्य व्यवस्था,पूँजीवादी,एवं सामन्ती प्रथा, मानवतावादी संस्कृति को स्पष्ट करते हुए कवि की राष्ट्रीय भावना एवं राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति दी गयी है।

धार्मिक एवं नैतिक प्रवृत्तियाँ किसी देश की विशिष्ट संस्कृति को रूपायित करती है अतः शोध के षष्ठ अध्याय में धर्म एवं संस्कृति से संबद्ध तत्त्वों पर विस्तृत विचार करते हुए आचार नीति प्रवृत्ति–निवृत्ति तथा कवि के भागवत धर्म पर प्रकाश–निक्षेप किया गया है।

दार्शनिक पृष्ठभूमि किसी कवि के कृतित्त्व को आधार प्रदान करती है जो कवि का अभिप्रेत तो होता ही है समाज के लिए उपकारक भी होता है। इसी संदर्भ में विचार करते हुए कविवर गुप्त पर विभिन्न दर्शनों (गीता,रवीन्द्र,गाँधी एवं विनोबा आदि) के प्रभावों को स्पष्ट किया गया है। कहना न होगा कि दर्शन चेतना में सांस्कृतिक तत्त्व समाहित रहते है। ग्रंथ के सप्तम अध्याय का कथ्य यही है।

सांस्कृतिक दृष्टि से कविवर सियारामशरण का क्या अवदान है, उनकी क्या उपलब्धियाँ हैं इन सब का मूल्यांकन अष्टम अध्याय का विषय है जो उपसंहार रूप ही है। यहाँ हिन्दी जगत के प्रतिष्ठित एवं मूर्द्धन्य आलोचकों,विद्वानों के निष्कर्षो को प्रस्तुत करते हुए कवि के सांस्कृतिक देन को परिपुष्ट किया गया है।

शोधकर्त्री

श्रीमती राजकुमारी जैन
एम0ए0(हिन्दी),एम0एड0
सहायक अध्यापिका (हिन्दी)
बी0डी0जैन कन्या इण्टर कालेज, आगरा (उ0प्र0)

आभार

शोध हेतु विषय के चयन से लेकर सम्पन्न कार्य की आनन्दात्मिका परिसमाप्ति में अनेक घटकों का योगदान समाहित होता है, अतः शोधकर्त्री के रूप में मेरा यह अवश्य करणीय है कि मैं उन सभी के प्रति उसी प्रकार आभार ज्ञापित करूँ जैसे कि प्रायः सभी मूर्द्धन्य कवि,काव्यशास्त्री जिस प्रकार अदा करते रहे हैं। सर्वप्रथम मैं अपने गुरू डॉ0 शंकर शरण तिवारी, पूर्व रीडर हिन्दी विभाग, नेहरू पी0जी0कालेज,ललितपुर के प्रति उपकृत हूँ जिन्होंने संबधित विषय के चयन में अपना योगदान किया और मुझे मानो मौन–प्रेरणा दी कि मैं अपनी पुण्य जन्मभूमि बुन्देलखण्ड में उत्पन्न कवि के उदान्त काव्य में निहित संस्कृति को हिन्दी जगत् के समक्ष प्रस्तुत करूँ।

शोध निर्देशक के महनीय दायित्व का निर्वाह करने वाले डा0 विनोद कुमार खरे, हिन्दी विभाग,बुन्देलखण्ड कालेज,झांसी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन उनकी गरिमा,महिमा,को सीमित करना ही होगा, जिनके सूक्ष्म मार्गदर्शन से इस शोध कार्य को सम्पादित कर सकी और तद्नुसार मैं उनके निर्देशों का अनुपालन करती रही हूँ।

मुझे डॉ0 रामकुमार रिछारिया (प्राध्यापक) नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर से न केवल प्रेरणा मिली अपितु उनका सक्रिय सहयोग हर पद पर प्राप्त किया है। जिसने मेरे बौद्धिक,शैक्षिक ,जीवन में अकल्पित ऊर्जा का प्रक्षेप कर दिया। अन्यथा ऐसा शोध कार्य मेरी शक्ति से परे की वस्तु था। अतः उपर्युक्त सभी का बृहद हस्त की अभिलाषा रखते हुये मौन नमन करती हूँ।

शोध कार्य में अच्छे पुस्तकालय एवं सज्जन और उदार पुस्तकालयाध्यक्ष की अनिवार्यता के समक्ष प्रश्न चिन्ह उपस्थित करने का साहस कोई भी विचारशील और सत्यनिष्ठ व्यक्ति नहीं करता। इस अभाव पूर्ति को एक तरफ तो श्री राकेश पाठक, पुस्तकालयाध्यक्ष राजकीय जिला पुस्तकालय, झांसी ने की – तो दूसरी ओर इसी पद पर आरूढ़ ललितपुर में पदस्थ श्रीमती मधुलिका खरे भी एतादृशी सह्रदयता से आपूरित् रहीं।

प्रस्तुत शोध ग्रंथ, मैं अपने परम पूज्यनीय पिता स्व0 श्री श्रीचन्द्र जैन एवं ससुर जी स्व0श्री सूरजभान जैन 'काका' की चिर ऋणी रहूँगी जिनकी प्ररेणा व प्रेम भरे आशीर्वाद ने मेरे लिए कदम–कदम पर उत्साह वर्धन कर इस मुकाम तक पहुँचाया हैं और मैं अपनी माता जी श्रीमती कमलेश जैन एवं सास श्रीमती सोनाबाई जैन की चिर ऋणी रहूँगी जिन्होंने मेरे शोध कार्य के दौरान पारिवारिक दैनिक कार्यो सम्पन्न कर ममत्व एवं दुलार के साथ स्वरूचि पूर्ण भोजन प्रदान कर शोध कार्य के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध कराया। जिसके जिए मैं जीवन पर्यन्त कृतज्ञ रहूँगी।

मैं अपने पति महोदय श्री पारसमणि जैन की ह्रदय से आभारी हूँ जिनके सक्रिय सहयोग के कारण मैं यह शोध प्रबन्ध पूर्ण कर सकी। साथ ही मैं अपनी पुत्री कु0 साक्षी जैन एवं पुत्र आर्यन जैन

की ह्रदय से ऋणी हूँ। जिनका मैने ममत्व, दुलार का समय छीनकर इस शोध कार्य को पूर्ण करने में लगाया। इसके अलावा मैं अपने अग्रज सुधीर एवं सुशील और छोटी बहिन कु0 मनीषा जैन का रचनात्मक लेखक जन्य एवं सहयोग प्रदान करने के लिए ह्रदय से आभारी रहूँगी।

मैं कम्प्यूटर केयर सेन्टर के संचालक श्री पुष्पेन्द्र कुमार जैन एवं उनके सुपुत्र स्वप्निल कुमार जैन और सौरभ कुमार जैन की भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध प्रबन्ध को दिन रात एक करके अति शीघ्र शुद्ध टाईप कर सक्रिय सहयोग प्रदान किया।

शोधकर्त्री

श्रीमती राजकुमारी जैन
एम0ए0(हिन्दी),एम0एड0
सहायक अध्यापिका (हिन्दी)
बी0डी0जैन कन्या इण्टर कालेज, आगरा (उ0प्र0)

अनुक्रमणिका

क्र0सं0 पृष्ठ सं0

अध्याय–प्रथम

संस्कृति का स्वरूप और परिवेश – 1 से 52 तक

1. शाब्दिक व्युत्पत्ति एवं अर्थ।
2. संस्कृति का स्वरूप।
3. संस्कृति विषयक अन्य व्याख्यायें –
   (i) जैविकता के आधार।
   (ii) वर्गगत व्याख्या।
   (iii) अन्य व्याख्यायें।
4. संस्कृति और सभ्यता।
5. संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर।
6. संस्कृति के तत्त्व –
   (i) संस्कृति का इतिहास।
   (ii) समाज संगठन।
   (iii) राजनीतिक एवं आर्थिक पक्ष।
   (iv) धर्म एवं नीतिकता।
   (v) दर्शन एवं विज्ञान।
   (vi) संस्कृति और कला।
   (vii) संस्कृति और साहित्य।
   (viii) भारतीय संस्कृति का स्वरूप।
   (ix) आध्यात्मिकता।
   (x) अद्वैत भावना।
   (xi) योग।
   (xii) कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त।
   (xiii) भौतिक जीवन।
7. भारतीय संस्कृति की विशेषतायें।
8. भारतीय संस्कृति का विकास।

अध्याय– द्वितीय

कवि का जीवन,समय एवं साहित्य – 53 से 89 तक

1. सियारामशरण गुप्त जी का जीवन वृत्त।
2. परिवेश–
   (i) राजनैतिक परिस्थितियाँ।
   (ii) आर्थिक परिस्थितियाँ।

2. परिवेश–

(iii) धार्मिक परिस्थितियाँ।

(iv) साहित्यिक परिस्थितियाँ।

(v) सांस्कृतिक परिस्थितियाँ।

(vi) सामाजिक परिस्थितियाँ।

अध्याय– तृतीय

कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य –

1.	मौर्य विजय	सन् – 1914
2.	अनाथ	सन् – 1923
3.	आर्द्रा	सन् – 1927
4.	विषाद	सन् – 1929
5.	दूर्वादल	सन् – 1929
6.	आत्मोत्सर्ग	सन् – 1933
7.	पाथेय	सन् – 1934
8.	मृण्मयी	सन् – 1936
9.	बापू	सन् – 1938
10.	उन्मुक्त	सन् – 1940
11.	दौनिकी	सन् – 1942
12.	नकुल	सन् – 1946
13.	नोआखाली में	सन् – 1946
14.	जय हिन्द	सन् – 1947
15.	अमृत पुत्र	सन् – 1959
16.	सुनन्दा	सन् – 1959
17.	गोपिका	सन् – 1959
18.	अचला	
19	फुटकर कवितायें	

अध्याय– चतुर्थ

सियारामशरण गुप्त के काव्य में सामाजिक चित्रण –

1. समाजिक व्यवस्था।
2. पारिवारिक जीवन का स्वरूप।
3. पारिवारिक संगठन।
4. सम्बन्ध एवं कर्त्तव्य।
5. पारिवारिक शिष्टाचार एवं अतिथि सत्कार।
6. नारी समाज एवं कवि का नारी के प्रति दृ
7. संस्कार।

ान।

222 से 245 तक

ाँ –246 से 304 तक

8. पर्वोत्सव एवं त्योहार।
9. खान–पान।
10. वस्त्र या वेशभूषा।
11. आभूषण और श्रृंगार प्रसाधन।
12. व्यवहार की सामान्य वस्तुयें।
13. आवास।
14. यातायात के साधन।
15. मुद्रा।
16. मनोविनोद।
17. कृषि– संस्कृति।
18. लोक मान्यतायें और सामान्य विश्वास, अभिशाप,वरदान।

अध्याय– पंचम

सियारामशरण गुप्त के काव्य में राजनीतिक चित्रण – 222 से 245 तक

1. राज्य व्यवस्था।
2. न्याय व्यवस्था।
3. पूँजीवादी सभ्यता एवं सामन्ती प्रथायें।
4. मानवतावादी संस्कृति।
5. राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय भावना।
6. राजनीतिक चेतना।

अध्याय– षष्ठ

कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य में धार्मिक एवं नैतिक प्रवृत्तियाँ –246 से 304 तक

1. साहित्य।
2. धर्म एवं संस्कृति।
3. भक्ति का स्वरूप।
4. भक्ति के भेद –
   (i) निर्गुण भक्ति।
   (ii) सगुण भक्ति।
5. सियारामशरण गुप्त की भक्ति–भावना।
6. धार्मिक जीवन की आस्थायें एवं विश्वास।
7. धार्मिक ग्रन्थों की मान्यता।
8. तीर्थ स्थानों में आस्था।
9. पुनर्जन्म की मान्यता।
10. दान का महत्तव।
11. अवतार सम्बन्धी मान्यता।
12. आचार–नीति

अनुक्रमणिका

क्र0सं0 पृष्ठ सं0

अध्याय–प्रथम

संस्कृति का स्वरूप और परिवेश – 1 से 52 तक

1. शाब्दिक व्युत्पत्ति एवं अर्थ।
2. संस्कृति का स्वरूप।
3. संस्कृति विषयक अन्य व्याख्यायें –
   (i) जैविकता के आधार।
   (ii) वर्गगत व्याख्या।
   (iii) अन्य व्याख्यायें।
4. संस्कृति और सभ्यता।
5. संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर।
6. संस्कृति के तत्त्व –
   (i) संस्कृति का इतिहास।
   (ii) समाज संगठन।
   (iii) राजनीतिक एव आर्थिक पक्ष।
   (iv) धर्म एवं नीतिकता।
   (v) दर्शन एवं विज्ञान।
   (vi) संस्कृति और कला।
   (vii) संस्कृति और साहित्य।
   (viii) भारतीय संस्कृति का स्वरूप।
   (ix) आध्यात्मिकता।
   (x) अद्वैत भावना।
   (xi) योग।
   (xii) कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त।
   (xiii) भौतिक जीवन।
7. भारतीय संस्कृति की विशेषतायें।
8. भारतीय संस्कृति का विकास।

अध्याय– द्वितीय

कवि का जीवन,समय एवं साहित्य – 53 से 89 तक

1. सियारामशरण गुप्त जी का जीवन वृत्त।
2. परिवेश–
   (i) राजनैतिक परिस्थितियाँ।
   (ii) आर्थिक परिस्थितियाँ।

2. परिवेश–

(iii) धार्मिक परिस्थितियाँ।

(iv) साहित्यिक परिस्थितियाँ।

(v) सांस्कृतिक परिस्थितियाँ।

(vi) सामाजिक परिस्थितियाँ।

अध्याय– तृतीय

कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य – 90से 174तक

1. मौर्य विजय सन् – 1914
2. अनाथ सन् – 1923
3. आर्द्रा सन् – 1927
4. विषाद सन् – 1929
5. दूर्वादल सन् – 1929
6. आत्मोत्सर्ग सन् – 1933
7. पाथेय सन् – 1934
8. मृण्मयी सन् – 1936
9. बापू सन् – 1938
10. उन्मुक्त सन् – 1940
11. दौनिकी सन् – 1942
12. नकुल सन् – 1946
13. नोआखाली में सन् – 1946
14. जय हिन्द सन् – 1947
15. अमृत पुत्र सन् – 1959
16. सुनन्दा सन् – 1959
17. गोपिका सन् – 1959
18. अचला
19 फुटकर कवितायें

अध्याय– चतुर्थ

सियारामशरण गुप्त के काव्य में सामाजिक चित्रण – 175 से 221 तक

1. समाजिक व्यवस्था।
2. पारिवारिक जीवन का स्वरूप।
3. पारिवारिक संगठन।
4. सम्बन्ध एवं कर्त्तव्य।
5. पारिवारिक शिष्टाचार एवं अतिथि सत्कार।
6. नारी समाज एवं कवि का नारी के प्रति दृष्टिकोण।
7. संस्कार।

8. पर्वोत्सव एवं त्योहार।
9. खान–पान।
10. वस्त्र या वेशभूषा।
11. आभूषण और श्रृंगार प्रसाधन।
12. व्यवहार की सामान्य वस्तुयें।
13. आवास।
14. यातायात के साधन।
15. मुद्रा।
16. मनोविनोद।
17. कृषि– संस्कृति।
18. लोक मान्यतायें और सामान्य विश्वास, अभिशाप,वरदान।

अध्याय– पंचम

सियारामशरण गुप्त के काव्य में राजनीतिक चित्रण – 222 से 245 तक

1. राज्य व्यवस्था।
2. न्याय व्यवस्था।
3. पूँजीवादी सभ्यता एवं सामन्ती प्रथायें।
4. मानवतावादी संस्कृति।
5. राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय भावना।
6. राजनीतिक चेतना।

अध्याय– षष्ठ

कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य में धार्मिक एवं नैतिक प्रवृत्तियाँ –246 से 304 तक

1. साहित्य।
2. धर्म एवं संस्कृति।
3. भक्ति का स्वरूप।
4. भक्ति के भेद –
   (i) निर्गुण भक्ति।
   (ii) सगुण भक्ति।
5. सियारामशरण गुप्त की भक्ति–भावना।
6. धार्मिक जीवन की आस्थायें एवं विश्वास।
7. धार्मिक ग्रन्थों की मान्यता।
8. तीर्थ स्थानों में आस्था।
9. पुनर्जन्म की मान्यता।
10. दान का महत्तव।
11. अवतार सम्बन्धी मान्यता।
12. आचार–नीति

13. सत्य।
14. अहिंसा।
15. परोपकार।
16. सत्संगति।
17. काम।
18. लोभ एवं अहंकार।
19. आदर्श और कर्त्तव्य।
20. प्रवृत्ति मार्ग।
21. निवृत्ति मार्ग।
22. कवि सियारामशरण का भागवत धर्म।

अध्याय– सप्तम

सियारामशरण गुप्त के काव्य में दार्शनिक पृष्ठभूमि – 305 से 327 तक

1. काव्य।
2. दर्शन एवं संस्कृति का सम्बन्ध।
3. गीता–दर्शन।
4. रवीन्द्र–दर्शन।
5. गाँधी दर्शन।
6. विनोबा–दर्शन।
7. अन्य–दर्शन।

अध्याय– अष्टम

उपसंहार

कवि सियारामशरण गुप्त की देन, साहित्यिक महत्त्व एवं मूल्यांकन 328 से 342 तक

---

* *संदर्भ ग्रन्थ सूची* 343 से 354 तक

अध्याय—प्रथम

संस्कृति का स्वरूप और परिवेश

1. शाब्दिक व्युत्पत्ति एवं अर्थ।
2. संस्कृति का स्वरूप।
3. संस्कृति विषयक अन्य व्याख्यायें –
   - (i) जैविकता के आधार।
   - (ii) वर्गगत व्याख्या।
   - (iii) अन्य व्याख्यायें।
4. संस्कृति और सभ्यता।
5. संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर।
6. संस्कृति के तत्व –
   - (i) संस्कृति का इतिहास।
   - (ii) समाज संगठन।
   - (iii) राजनीतिक एवं आर्थिक पक्ष।
   - (iv) धर्म एवं नीतिकता।
   - (v) दर्शन एवं विज्ञान।
   - (vi) संस्कृति और कला।
   - (vii) संस्कृति और साहित्य।
   - (viii) भारतीय संस्कृति का स्वरूप।
   - (ix) आध्यात्मिकता।
   - (x) अद्वैत भावना।
   - (xi) योग।
   - (xii) कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त।
   - (xiii) भौतिक जीवन।
7. भारतीय संस्कृति की विशेषतायें।
8. भारतीय संस्कृति का विकास।

अध्याय—प्रथम

संस्कृति का स्वरुप और परिवेश

1. शाब्दिक व्युत्पत्ति एवं अर्थ।
2. संस्कृति का स्वरूप।
3. संस्कृति विषयक अन्य व्याख्यायें –
   - (i) जैविकता के आधार।
   - (ii) वर्गगत व्याख्या।
   - (iii) अन्य व्याख्यायें।
4. संस्कृति और सभ्यता।
5. संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर।
6. संस्कृति के तत्त्व –
   - (i) संस्कृति का इतिहास।
   - (ii) समाज संगठन।
   - (iii) राजनीतिक एवं आर्थिक पक्ष।
   - (iv) धर्म एवं नीतिकता।
   - (v) दर्शन एवं विज्ञान।
   - (vi) संस्कृति और कला।
   - (vii) संस्कृति और साहित्य।
   - (viii) भारतीय संस्कृति का स्वरूप।
   - (ix) आध्यात्मिकता।
   - (x) अद्वैत भावना।
   - (xi) योग।
   - (xii) कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त।
   - (xiii) भौतिक जीवन।
7. भारतीय संस्कृति की विशेषतायें।
8. भारतीय संस्कृति का विकास।

अध्याय-प्रथम

संस्कृति का स्वरूप और परिवेश

कहते हैं, भारतवर्ष की नदियों में नर्मदा एक ऐसी नदी है जो प्रत्येक पत्थर को गढ़कर लिंङ्गम् के रूप में परिवर्तित कर देती है। संस्कृति भी बहुत कुछ इसी नदी के समान है। यह अपने निरन्तर प्रवाह में असभ्य से असभ्य मनुष्य को भी गढ़ कर सुसंस्कृत, परिष्कृत, सज्जित, तथा हर प्रकार से पूर्ण बना कर उपस्थित करती है। दूसरे शब्दों में संस्कृति वह है जो हमारे युगों से संचित विचारों एवं आदर्शों को अपने में समाहित किये हुए, नित्य उन्हें नूतनता प्रदान करते हुए, अनायास प्रत्येक अर्थात् मानव समाज की विकास–परम्परा में आये हुए, सर्वत्र अपने महत्त्व से युक्त, वे गुण विशेषतायें और धारणायें, जिनसे आने वाला मानव–समाज अपने चरित्र, अपने संस्कार, अपने विचार, अपनी आस्था और अपने दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले विभिन्न क्रियाकलापों को बाँधकर अपना भौतिक जीवन–यापन करता है, समाज जिस वस्तु से अपने सभ्य होने का प्रमाण देता है, वह उसकी संस्कृति होती है।

संस्कृति शब्द को परिभाषित करना बड़ा ही जटिल कार्य है क्योंकि संस्कृति का कोई रूप या आकार नहीं होता। * संस्कृति एक अवधारणा मात्र है। वह है एक अन्तः प्रक्रिया, जो किसी समाज में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। **

विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में भी भारतीय संस्कृति अद्वितीय स्थान रखती है। इसका सबसे प्रधान कारण भारतीय संस्कृति के शाश्वत् तत्त्व हैं। ये तत्त्व मानवता के तत्त्व हैं। अद्वैष–भाव, आत्मौपम्य दृष्टि, करूणा, मैत्री, मुदिता आदि भारतीय संस्कृति के तत्त्व हमको मानव संस्कृति की ओर ले जाते हैं।*** यही इसकी निरन्तरता का कारण भी है।

' नृ ' विज्ञान के विद्वानों का मत है कि :–

'' समस्त सीखा हुआ व्यवहार '' ही संस्कृति है। इसका आशय यह हुआ कि मनुष्य ने धर्म, आचार–विचार और रहन–सहन आदि की जिन मान्यताओं को परम्परा से अर्जित और निर्धारित किया है, वे ही उसकी संस्कृति के मूल उपादान या तत्त्व हैं। ये उपादान या तत्त्व सदाशय और सनातन है। युग–युग में स्थापित मानवीय मूल्यों, मान्यताओं और आदर्शों का समूह ही संस्कृति का अक्षय कोषागार है।

* साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति – आचार्य नरेन्द्र देव – पृ0 सं0 133

** वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 उषा भटनागर – पृ0 90

*** भारतीय संस्कृति का विकास – डॉ0 ए0के0मित्तल – पृ0 01

(1) संस्कृति व्युत्पत्ति एवं अर्थ

व्युत्पत्ति की दृष्टि से संस्कृति शब्द संस्कृत से निष्पन्न है। इसमें अंग्रेजी शब्द Culture से जाना जाता है।

संस्कृति के मूल तत्त्व हैं

सदाचार, सद्‌बुद्धि, सद्विवेक और सद्‌गुण आदि इन्हीं से संस्कृति का निर्माण हुआ है। इन तत्त्वों को हमारे यहाँ आदर्श कहा जाता है इन आदर्शों की अवतारणा संस्कृति के द्वारा होती है।

''संस्कृति'' शब्द ''सम'' उपसर्ग पूर्वक ''कृ'' से ''क्तिन्'' प्रत्यय लगाकर एवं भूषण अर्थ में सुट् का आगम करके बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है – संशोधन करना, सुधारना, उत्तम बनाना, सुन्दर या पूर्ण बनाना, सजाना, सँवारना, परिष्कृत करना, शिक्षित करना, पवित्र करना, शुद्ध करना, सुसज्जित करना, सुसम्पन्न करना, पकाना, संचित करना, सुनिर्मित करना। * इस आधार पर ''संस्कृति'' शब्द शुद्धीकरण, अलंकरण, परिष्करण, सुशिक्षण, सुसंपादन, संचयन आदि अर्थों की अभिव्यंजना करता है।

इस प्रकार '' संस्कृति'' सम् = (उत्तम + कृति + चेष्टायें) का अर्थ उत्तम कृति या सम्यक् चेष्टायें सिद्ध होता है। ये चेष्टायें देह, प्राण, मन, बुद्धि आदि किसी भी इन्द्रिय की हो सकती है। उनका क्षेत्र लौकिक भी हो सकता है और पारलौकिक भी।

''संस्कृति'' का अंग्रेजी पर्याय Culture लैटिन भाषा के Cultura से निर्मित है। इसका शाब्दिक अर्थ शुद्ध या परिष्कार (Refine or Cultivate) करना है। अर्थात् उचित रूप से विशुद्ध अथवा परिमार्जित स्थिति को ही संस्कृति कहा जाता है।

संस्कृति आचार मूलक है। जिसका सम्बन्ध विचारों से है। शुद्धाचरण शुद्ध विचारों के जनक है। साहित्य और उसकी शास्त्र, काव्य, नाटक, कथा, नाट्य, संगीत, कला आदि वाङ्मय धारायें शुद्धाचार के ही फल हैं। इस दृष्टि से समस्त ज्ञान–विज्ञान और कला–कौशल संस्कृति के ही अंग हैं।

छान्दोग्योपनिषद के अनुसार

" **सेतुर्विधृतिरेषां लोकानाम् सम्भेदाय** " **

(समाज के सम्भेदों को संघठित करने का सेतु संस्कृति होती है।)

* वामन शिवराम आप्टे – दि प्रैक्टिकल संस्कृत – इंगलिश डिक्शनरी पृ0 942

** छान्दोग्योपनिषद – पृ0 8/4/1

(2) संस्कृति का स्वरूप

संस्कृति हमारे समक्ष दो रूपों में उपस्थित होती है। एक उसका बाह्य स्थूल रूप है। दूसरा मानसिक भावनात्मक रूप, * बाह्य रूप मानवीय प्रकृति की विकास यात्रा से जुड़ा है। आभ्यन्तर पक्ष उसके धर्म, विचार, रीति–नीति और चिन्तन पक्ष से। बाह्य पक्ष पर जोर देने वाला समुदाय पाश्चात्य समुदाय है। जहाँ संस्कृति सभ्यता समानार्थी है। आन्तिरक पक्ष भारतीय विद्वानों के मत–मतान्तर से जुडा है, जहाँ वैचारिकता प्रमुख है। ये अन्तर वस्तुतः भ्रामक है, किसी भी विचार के जन्म के साथ ही उसको साकार करना ही तो प्रयत्न है। ऐसे में कला, साहित्य, यन्त्र, जीवन शैली, राजनीति, दण्डनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन, धर्म सभी तो कहीं न कहीं संस्कृति से जुड़ते हैं। भौगोलिक स्थितियाँ, जलवायु और प्राकृतिक सम्पदायें अपने प्रभाव से स्थान विशेष के मानव को उदार अथवा अनुदार, नृशंस अर्थात् कोमल, सहिष्णु अर्थात् असहिष्णु आदि बनाती हैं। यही भिन्नता सांस्कृतिक पहचान की पृष्ठभूमि होती है। इसी की क्रोड़ में ईसा–मूसा, बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण, नानक, कबीर, तुलसी, सूर और पैगम्बर मुहम्मद होते हैं। कहीं धर्म अपनी करूणा के द्वारा मानवता को मानवता से जोड़ता है तो कहीं मानव तलवार और आतंक से धर्म का विस्तार करता है। प्रकृति जितना प्यार जिस मानव समुदाय को देती है, वह उतना ही उदार होकर उसे अन्यों में बाँट देती है। आज पूर्व और पाश्चात्य की भौगौलिक सीमायें विज्ञान की प्रगति के साथ एक दूसरे में विलीन हो गई हैं। इस दृष्टि से संस्कृति का एक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप उभर रहा है। फिर भी राष्ट्रीय संस्कृति के उपादानों पर विचार करना हमारा उद्देश्य है।

<u>पं0 जवाहर लाल नेहरू ने संस्कृति को निम्न प्रकार से परिभाषित किया –</u>

'' मनुष्य के भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति से जोड़ने हुए, एक–दूसरे के साथ सद्व्यवहार और एक–दूसरे को समझने की शक्ति कहा है। '' **

संस्कृति तो उस सुन्दर सरिता के समान है, जो अपने स्वच्छन्द भाव से निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। यदि सरिता के प्रवाह को बाँध दिया जाये तो सरिता फिर सरिता नहीं रह जायेगी। इसी प्रकार संस्कृति को शब्दों की सीमा में बाँध देने पर उसकी

* वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 उषा भटनागर पृ0 11

** वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 उषा भटनागर पृ0 10

प्रवाहशीलता का निदर्शन नहीं हो सकता। आत्मा की भाँति संस्कृति का स्वरूप शब्दों द्वारा प्रकट करना कठिन है। सच तो यह है कि संस्कृति सतत् विकास की एक प्रक्रिया है, जो समूह या समाज से विच्छिन्न् होकर जीवित नहीं रह सकती। इसलिए संस्कृति को व्यक्ति तक ही सीमित नहीं किया जा

सकता। देश और काल से संस्कृति काफी हद तक प्रभावित रही है किन्तु फिर भी कुछ ऐसे शाश्वत मूल्य एवं उपदेश हैं, जो व्यापक होते हैं। संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध संस्कार से होता है।

यद्यपि हम अपने जीवन में जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी सन्तानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को व्याप्त किये हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मान्तर तक करती है। *

मानव जीवन के जो संस्कार व परिष्कार हैं, जिनसे मानवता का निर्माण हुआ है, वे ही संस्कृति के मूल उपादान हैं। उन्हीं से भारतीय संस्कृति की उदात्त एवं व्यापक परम्परा का प्रवर्त्तन हुआ। जीवन को सुसंस्कृत एवं परिष्कृत कैसे बनाया जा सकता है, इसका विश्लेषण आचार प्रधान धर्म शास्त्रीय ग्रन्थों में किया गया है। वहाँ सर्वप्रथम चरित्र को उन्नत बनाने की शिक्षा दी गई है।

चरित्र को उन्नत बनाने के लिये अच्छे आचारों, अच्छे विचारों और सुसंस्कारों की आवश्यकता है। इन सदाचारों, सदविचारों एवं संस्कारों का सम्बन्ध वैयक्तिक तो होता ही है किन्तु उससे समस्त मानव समाज भी प्रभावित होता है। भारतीय दृष्टि से व्यक्ति–व्यक्ति का चरित्र ही राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करता है। इसलिये सुधार एवं संस्कार का सम्बन्ध व्यक्ति से स्थापित किया गया है। व्यक्ति–व्यक्ति की महनीय उपलब्धियाँ जब इतनी व्यापक हो जाती हैं कि उन्हें राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाती है, तभी वे संस्कृति के अभिधान कही जाती है। **

(3) संस्कृति विषयक अन्य व्याख्यायें

संस्कृति मानव जातियों के दो विभेदक लक्ष्यों में से एक है दूसरा लक्षण है शरीर–निर्माण अथवा शारीरिक गठन। इनमें से प्रथम अपेक्षाकृत सूक्ष्म और जटिल है कई बार भाषा के किसी शब्द

* आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध — पृ0 04

** वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गैरोला — पृ0 217

के अन्तर्गत इतने अधिक अर्थों को समाहित कर लिया जाता है कि उस शब्द के किसी एक अर्थ को निश्चित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। 'संस्कृति' शब्द भी इसी प्रकार का है। आज 'संस्कृति' शब्द के अन्तर्गत हम जिन अर्थों को समाहित करते हैं उनका इतना बड़ा भण्डार है कि प्रत्येक विद्वान् उसे अपने ढंग से अपनी इच्छा के अनुरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है।

संस्कृति के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं

डॉ0 सत्यकेतु के अनुसार

" चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो यत्न करता है उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है।" *

रेडफील्ड के अनुसार

" संस्कृति कला एवं उपकरणों में व्यक्त संस्कार गत ज्ञान का वह संगठित रूप है, जो परम्परा में रक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।" **

डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार

" संस्कृति x x x .... विवेक, बुद्धि का जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम " । ***

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार

" संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांग पूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है।" ****

समाजशास्त्री बिंडने के अनुसार

" संस्कृति–कृषि, कला, समाज एवं मानसिक तत्त्वों की उत्पादक हैं।" *****

नृविज्ञानी टायलर के अनुसार

" संस्कृति वह जटिल तत्त्व है, जिसमें ज्ञान, नीति, कानून, रीति–रिवाज तथा दूसरी उन योग्यताओं और आदतों का समावेश है जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता

---

* भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास – डॉ0 सत्यकेतु – पृ0 19

** वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 उषा भटनागर – पृ0 9

*** स्वतंत्रता और संस्कृति अनु0 – विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी – पृ0 53

**** कला और संस्कृति – डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल – पृ0 11

***** वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन –डॉ0 उषा भटनागर –पृ0 10

है।" *

डॉ0 मंगलदेव शास्त्री के अनुसार

" किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन–व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले तत्तद् आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।" **

करपात्री जी के अनुसार

"लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, अभ्युदय के उपयुक्त देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारादि की भूषणभूत सम्यक चेष्ठाएँ एवं हलचलें ही संस्कृति हैं।" ***

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार

"संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।" ****

आधुनिक पाश्चात्य आलोचक टी0एस0इलियट के अनुसार

"संस्कृति विभिन्न क्रियाओं का योग मात्र है, बल्कि वह जीवन–यापन की एक पद्धति है xxx.......। जो जीवन को जीने योग्य बनाती है।" *****

सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है –

" असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम रहते हैं।" ******

श्री गुलाबराय जी के अनुसार

" जातीय संस्कार ही संस्कृति है। " *******

पं0 जवाहर लाल नेहरू जी के अनुसार

---

* वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन –डॉ0 उषा भटनागर –पृ0 10

** भारतीय संस्कृति का विकास – डॉ0 मंगलदेव शास्त्री – पृ0 4

*** कल्याण – हिन्दु संस्कृति अंक – पृ0 35

**** अशोक के फूल (निबन्ध संग्रह) – हजारी प्रसाद द्विवेदी – पृ0 64

*****नोट्स टुवर्ड्स द डेफिनिशन ऑफ कल्चर – इलियट – पृ0 29

****** संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर – पृ0 653

******* आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध – पृ0 4

''मनुष्य के भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति से जोड़ते हुये एक–दूसरे के साथ सद्व्यवहार और एक–दूसरे को समझने की शक्ति कहा है।'' *

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के अनुसार

''मानव संस्कृति मानव से बड़े किसी विचार या आदर्श की सृष्टि है।'' **

अपने–अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गयी ये परिभाषायें एकांगी हैं। वस्तुतः संस्कृति का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। कुल मिलाकर सर्वसम्मत एक बात कही जा सकती है–वह यह कि संस्कृति मन और मस्तिष्क का संस्कार परिष्कार करने वाली, मानव–जाति का श्रेय संपादन करने वाली विभूति है।

(i) जैविकता के आधार

संस्कृति की संबद्धता अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि–समालोचक टी0एस0 इलियट ने तीन अर्थों में की है। उनके अनुसार वह व्यक्तिगत, वर्गगत तथा जातिगत अथवा सभा जगत होती है।*** पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष के रूप में प्रयुक्त यह कथन परीक्षा के योग्य है। सर्वप्रथम हम व्यक्तिगत आधार पर विचार करेंगे। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की संस्कृति दूसरे से नितान्त भिन्न होती है। हिन्दी के मूर्द्धन्य कवि गोस्वामी तुलसी दास स्पष्ट शब्दों में लिखते है कि एक पिता के अनेक पुत्रों में स्वभावगत पृथकत्व देखा जाता है। **** इसी स्वभावतत्व को जीवतत्व के रूप में ग्रहण करना उचित होगा। जैव शब्द से ठक् प्रत्यय एवं टाप् प्रत्ययों की योजना करने पर जैविकता शब्द निष्पन्न होता है जो भाव वाचक और परिभाषिक है। वैयक्तिकता को व्यापक रूप देते हुए उसे जीवमात्र से संबद्ध करते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है कि जीवमात्र में संस्कृति – वैभिन्न्य देखा जाता है। इस प्रकार विपरिणामी क्रिया या

---

* वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक अध्ययन – उषा भ0(उद्धृत) –पृ0 10

** वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक अध्ययन – उषा भ0(उद्धृत) –पृ0 10

*** *The term culturre has different an ocations according to whether we have in mind the development of an indindual of a group or class or of a whole society.* : **Notes towards the definition of culture Third inpression, Page 2**

**** एक पिता के विपुल कुमारा। होहिं पृथक् गुन सील अचारा–रामचरित मानस, 7.87.01

विचार को भी संस्कृति के रूप में माना गया है इसी अवधारणा के अन्तर्गत व्यक्ति--व्यक्ति की संस्कृति में अन्तर परिलक्षित होता है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ चरक संहिता में जैव तत्व का सत्त्व के रूप में अभिधानित किया गया है जिसके परिणाम स्वरूप जीव या मनुष्य विशेष में भक्ति, शील, शौच, द्वेष, स्मृति, मोह, त्याग, मात्सर्य, शौर्य, भय, क्रोध, तन्द्रा, उत्साह, तीक्ष्णता, मार्दव, गाम्भीर्य आदि विशेषताऐं उत्पन्न होती हैं। इसी अवधारणा के अनुगमन में महाभारत का दुर्योधन अपने सत्त्व के अनुरूप या जैविकता के आधार पर वह जीवन जीने के लिए बाध्य है जो अधर्म्य है। इसी प्रकार श्री रामचरित मानस का रावण स्पष्ट घोषित करता है कि उसकी तामस देह भजन करने वाली नहीं है। उसी का विमान्त भाई विभीषण अपनी भिन्न संस्कृति के आधार पर जीवन जीने के लिए बाध्य है।* इस प्रकार सिद्ध है कि जैविकता के आधार पर भिन्न भिन्न संस्कृतियों की स्थिति देखने में आती है।

(ii) वर्गगत व्याख्या

संस्कृति व्यक्ति से और आगे बढ़कर वर्ग तक व्याप्त हो जाती है। भाव यह है कि एक विशेष वर्ग के अन्तर्गत आने वाले मनुष्यों की अपनी एक संस्कृति निर्मित हो जाती है। सर्व प्रथम तो गीतोक्त चार वर्णों को ही ले लें जिनमें से प्रत्येक वर्ण के पृथक–पृथक गुण कर्म है।**

ब्राहमणों के स्वभावज कर्म है– शम,दम,तप,पवित्रता,क्षान्ति,सरलता,ज्ञान,विज्ञान और आस्तिक्य बुद्धि। इससे भिन्न गुण कर्म क्षत्रियों के हैं यथा–भूरता, तेजस्विता, धैर्य, दक्षता युद्ध से न भागना, दान देना और प्रजा पर शासन करना। कृषि, गौरक्षा (पशु पालन) का उद्योग, और वाणिज्य वैश्य का स्वाभावजन्य कर्म है। इसी प्रकार सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

गीता में ही दो अन्य वर्गो का विवेचन किया गया है, जो दैवी सम्पद् एवं आसुरी सम्पद् के रूप में है।***

इनमें से पृथक वर्ग के व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करते हैं। तो दूसरे वर्ग वाले संसार चक्र में परिभ्रमण करते रहते हैं। ****

इन वर्गो से भिन्न वर्गों की अपनी–अपनी संस्कृतियाँ देखी जा सकती है।

---

* तेहि माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुराग – मानस (बालकाण्ड)

** चातुर्वण्यं मया सृष्टम गुणकर्म विभागशः – गीता – पृ0 4 . 13

*** गीता – पृ0 16,6

**** वही – पृ0 16,5

(iii) अन्य व्याख्यायें

साख्य दर्शन के अन्तर्गत जिन तीन गुणों सत्त्व, रजस और तमस् का विवेचन है उनके आधार पर तीन प्रकार की संस्कृतियाँ देखी जा सकती है। सत्व प्रधान संस्कृति में लघुता, प्रकाश --मयता है, अतः इसका धर्म या परिणाम सुख है, चंचल रजोगुण अपने से भिन्न गुणों (सतोगुण तथा तमोगुण) को अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्त करता है। इसका धर्म या परिणाम सुख है, चंचल रजोगुण अपने से भिन्न गुणों (सतोगुण तथा तमोगुण) को अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्त करता है। इसका धर्म दुःख है जबकि तमोगुण भारी है, आवरण (रोकना, मंदता आदि) करने वाला है। इस गुण का धर्म, मोह (दीनता, विषाद, उदासीनता) है। * इससे भिन्न संस्कृति के दो अन्य भेद – श्रमशील और अभिजात हैं। एक शारीरिक श्रम करते हैं तो अन्य मानसिक श्रम से संतुष्ट हो जाते हैं।

(4) संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति सभ्यता की जन्मदात्री है। ज्यों–ज्यों मनुष्य उन्नति करता जाता है। त्यों–त्यों वह संस्कृति का उपासक और सभ्यता का जन्मदाता कहा जाता है। संस्कृति का आधार मुख्यतः आचारों और सभ्यता का आधार मुख्यतः विचारों से है। आचारों से संस्कृति का और विचारों से सभ्यता का निर्माण हुआ है। इस दृष्टि से आचारों और विचारों का पारस्परिक जो सम्बन्ध है, संस्कृति और सभ्यता का सामान्यतः वही सम्बन्ध है।

प्रायः कुछ विद्वान संस्कृति को सभ्यता एवं सभ्यता को संस्कृति मान बैठते हैं, ** जबकि संस्कृति और सभ्यता एक–दूसरे पर आश्रित रहते हुये भी अपना विशिष्ट एवं मौलिक अर्थ रखते हैं। जिस सभ्यता का आधार संस्कृति में नहीं, वह सभ्यता, सभ्यता नहीं। संस्कृति की आत्मा के बिना सभ्यता का शरीर शव की भाँति निष्प्राण रहता है। ***

यह सत्य है कि समाज का निर्माण पहले होता है और बाद में संस्कृति का परन्तु संस्कृति ही उसे अग्रसर होने के लिये मार्ग दिखलाती है। ****

---

* सांख्यकारिका – 13 वीं कारिका

** इनमें संस्कृति और सभ्यता में पार्थक्य का प्रयत्न ही व्यर्थ है – नोट्स टूबर्ड –पृ0 13

*** श्री गुलाबराय – भारतीय संस्कृति की रूप रेखा – पृ0 02

**** मैरिल – सोसायटी एण्ड कल्चर – पृ0 116

'सभ्य' शब्द का सामान्य अर्थ होता है – 'शिष्ट' सभ्य से सभ्यता शब्द बनता है। जिसका अर्थ हुआ ''शिष्टता''। सभ्यता या शिष्टता एक सामाजिक गुण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। और सभ्यता का उदय भी समाज से ही हुआ है। इस दृष्टि से मनुष्य का सभ्यता से गहरा सम्बन्ध है। किसी व्यक्ति तथा राष्ट्र या जाति की सभ्यता का ज्ञान उसके रहन–सहन, रीति रिवाज, खान–पान तथा भाषा–साहित्य से किया जाता है। यही आचार शास्त्र है। ये आचार ही संस्कृति के मापक, परिचायक और निर्धारक है। * संस्कृति का सामान्य अर्थ होता है संस्कारित करना या परिमार्जन करना। यह संस्कार या परिमार्जन ही सभ्यता है। संस्कार हीन व्यक्ति को कोई भी सभ्य नहीं कह सकता है। संस्कृत व्यक्ति ही सभ्य कहलाने का अधिकारी है। इस रूप में भी संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा, मन तथा अन्तः करण से है। संस्कृति के द्वारा उच्च मानसिक उपलब्धि होती है। मानसिक उपलब्धि का क्षेत्र भौतिक भी हो सकता है और आध्यात्मिक भी। किसी संस्कृत व्यक्ति से तात्पर्य उसके उन गुणों से होता है, जो उसके चरित्र मन और आत्मा में निहित होते हैं। सभ्यता भी एक गुण है, जो कि व्यक्ति तथा समाज द्वारा उत्पादित होता है। मनुष्य जब अपनी संस्कृति से प्रेरित होकर समाज की उन्नति के लिये कोई कार्य करता है, तो उस कार्य से उसकी सभ्यता के दर्शन होते हैं। दूसरे शब्दों में, भौतिक उन्नति के लिये मनुष्य द्वारा किये गये प्रयास उसकी सभ्यता है, जबकि अध्यात्मिक उन्नति के लिये किये गये प्रयासों में उसकी संस्कृति झलकती है। इस प्रकार संस्कृति शब्द बौद्धिक उन्नति का पर्यायवाची है और सभ्यता शब्द भौतिक विकास का समानार्थक। इसे हम एक उदाहरण द्वारा और भी अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। कॉफी हाउस में बैठकर जो व्यक्ति वहां के प्रत्येक रिवाज का पालन करने का प्रयास करता है, वहाँ वह अपना सभ्यता का परिचय देता है, जब कि वह उसी कॉफी हाउस में बैठा हुआ अपने साथी से अपनी धर्म अथवा अध्यात्म सम्बन्धी धारणाओं को समझाने का प्रयास करता है तो वहाँ पर उसकी संस्कृति बोलने लगेगी। इसी बात को उपन्यासकार गुरुदत्त निम्न शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं, '' संस्कारों का प्रभाव मन पर होता है – अर्थात् मन की प्रेरणा से जो कार्य होगा, वह संस्कृति के क्षेत्र में आयेगा। जिस व्यवहार अथवा स्वाभाव का स्रोत मन से हो, वह संस्कृति है, जबकि सभ्यता के व्यवहार का स्रोत मन नहीं, इसका स्रोत लोक–लाज, शारीरिक सुख, ज्ञान–विज्ञान–जन्य आचरण है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में :– '' सभ्यता समाज की बाह्य अवस्थाओं का नाम है तो संस्कृति व्यक्ति के विकास का। '' **

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचिसपति गैरोला – पृ0 221

** हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड – 09 – पृ0 204

आचार्य प्रवर सभ्यता के विकास के चार सोपान बतलाते हैं – आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक संघठन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य–बोध को तीव्रतर करने की योजना। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से 'संस्कृति' बनती है। सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को सहजलभ्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत आन्तर आनन्द की अभिव्यक्ति। *

<u>आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आगे लिखते हैं :–</u> " ज्यों–ज्यों मनुष्य संघबद्ध होकर लेकर रहने का अभ्यस्त होता गया। त्यों–त्यों उसे सामाजिक संघठन के लिए नाना प्रकार के नियम–कानून बनाने पड़े। इस संघठन को दोष हीन और गतिशील बनाने के लिए उसने दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था भी की, इन बातों को एक शब्द में 'सभ्यता' कहते हैं। ** एक अन्य स्थान पर और वे लिखते हैं कि 'सभ्यता' नजदीक की ओर दृष्टि रखती है, संस्कृति दूर की ओर, सभ्यता का ध्यान व्यवस्था पर रहता है, और संस्कृति की व्यवस्था से परे किसी अन्य केन्द्र पर सभ्यता के निकट कानून मनुष्य से बड़ी चीज है, परन्तु संस्कृति की दृष्टि में मनुष्य कानून से परे है, सभ्यता बाह्य होने के कारण चंचल है और संस्कृति आन्तरिक होने के कारण स्थायी। ***

(5) संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर

" ज्ञान की दो कोटियाँ या श्रेणियाँ मानी गयी हैं। **** 1.अनुभवजन्य 2.बुद्धिजन्य अनुभवजन्य ज्ञान संस्कृति का और बुद्धिजन्य ज्ञान सभ्यता का आधार है। अनुभवजन्य ज्ञान नित्य और बुद्धिजन्य ज्ञान परिवर्तनशील होने के कारण संस्कृति नित्य और सभ्यता परिवर्तन शील होती है। इस दृष्टि से संस्कृति किसी व्यक्ति द्वारा उत्पादित नहीं हो सकती उसका सम्बन्ध जनसमुदाय से है;किन्तु सभ्यता व्यक्ति द्वारा उत्पादित होती है। संस्कृति और सभ्यता में कोई विशेष अन्तर नहीं है ऐसा कहा जाता है कि दोनों के उपादान और आधार एक है। वे उपादान है – भूमि, जल, वायु, आचार–विचार, वेश–भूषा और भाषा–साहित्य। *****

रहन–सहन की जो शिष्टता या सम्यक् चेष्टा है, उसे ही सभ्यता कहा गया है। उसी सम्यक

---

*	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली	–	भाग 9	–	पृ0 204
**	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली	–	भाग 9	–	पृ0 203
***	विचार और वितर्क	–		–	पृ0 131
****	वैदिक साहित्य और संस्कृति–वाचस्पति गैरोला			–	पृ0 222
*****	वैदिक साहित्य और संस्कृति–वाचस्पति गैरोला			–	पृ0 222

चेष्टा है उसे ही सभ्यता कहा गया है। उसी सम्यक् चेष्टा का नाम संस्कृति है। अतः दोनों सर्वथा असम्बद्ध न होते हुये भी परस्पर भिन्न है। संस्कृति का सम्बन्ध अन्तर जगत और सभ्यता का बाह्य जगत से है। रामधारी सिंह दिनकर जी ने :– संस्कृति व सभ्यता के अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया है – " संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है। जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध। *

संस्कृति एवं सभ्यता यद्यपि परम्पराश्रित हैं ; लेकिन यह आवश्यक नहीं कि जहाँ सभ्यता हो वहाँ संस्कृति भी हो। इसके विपरीत जहाँ संस्कृति है, वहाँ सभ्यता का वास होना अपरिहार्य है। " संस्कृति संस्कारों का अक्षय कोष है जो विभिन्न रूपों में परिवर्तित होकर भी नष्ट नहीं होती। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप सभ्यता का अनुसरण सरलता से किया जा सकता है। संस्कृति विचार हैं, जिसके द्वारा हम जीवन की समस्याओं के बारे में चिन्तन–मनन कर निर्णयात्मक स्थिति पर जाते हैं और सभ्यता निष्कर्ष को क्रियात्मक रूप देती है। **

वास्तव में संस्कृति मानवता की मेरुदंड है। यह स्थान विशेष के रीति–रिवाजों, उत्सवों, कलाओं, आचार विचारों आदि को प्रकट करते हुए निश्चित आदर्शों को प्रतिष्ठित करती है। संस्कृति जीवन की पवित्रता और विचारों की उदात्तता में है, वेशभूषा के मापदण्ड में नहीं। संस्कृति और सभ्यता के अन्तर को विश्लेषित करते हुए कहा जा सकता है कि एक आत्मा है तो दूसरा शरीर, संस्कृति आन्तरिक नैर्मल्य है तो सभ्यता बाह्य प्रसाधन , एक में शान्ति है तो दूसरे में चमक–दमक। एक में प्रबुद्धता है तो दूसरे में उपयोगिता। एक केन्द्र की ओर पत्यावर्तन करती है तो दूसरी परिधि की ओर प्रगति। एक में निःश्रेयस है तो दूसरी में अभ्युदय।

सभ्यता बहिर्मुखी है तो संस्कृति अर्न्तमुखी। सभ्यता नवीन अविष्कारों, उत्पादन के साधनों तथा सामाजिक संस्थाओं से अपने स्वरूप को उन्नत करती हुई जीवन यात्रा को सुगम तथा सरल बनाती है। पर संस्कृति इनसे बेखबर रहकर भी अपना जीवन–दर्शन विकसित कर सकती है। इस प्रकार सभ्यता निश्चित रूप से भौतिक है। वह बाह्य आभूषण मात्र है। संस्कृति आत्मा का श्रृंगार करती है, हृदय को उदात्त बनाती है तथा मन को विमल विचारों से सुशोभित करती है। उक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि जहाँ इन दोनों में (संस्कृति व सभ्यता) एक ओर अन्तर है वहीं दूसरी ओर परस्पर सम्बन्ध भी है।

---

* संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर – पृ0 652

** जैन संस्कृति : एक विश्लेषण – श्री मधुकर मुनि – पृ0 05

इस परस्पर सम्बन्ध को हम आत्मा एवं शरीर के उदाहरण से समझ सकते हैं – यदि हम शरीर को महत्वपूर्ण मान लेंगे तो आत्मा तक पहुँचना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा। इसी प्रकार सभ्यता को ही सर्वस्व मान लेने से हम संस्कृति से आत्म साक्षात्कार नहीं कर सकेंगे। लेकिन जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा का अवतरण सम्भव नहीं, उसी प्रकार सभ्यता को जाने बिना हम संस्कृति की पहचान नहीं कर सकेंगे। यदि सभ्यता संस्कृति को समझने में सहायक सिद्ध नहीं होती है तो उसका स्वरूप अस्थिर होगा तथा विरोध की सी स्थिति बनी रहेगी। संस्कृति और सभ्यता में साध्य–साधन का सम्बन्ध अपेक्षित है। सभ्यता की सरणियों से गुजरकर ही हम सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान एवं अनुभावना कर सकते हैं। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कृति किन्हीं शाश्वत मूल्यों के संयोजन में व्यस्त रहती है, जिनके अन्तर्गत समस्त मानव–समाज भौतिक जीवन से आगे बढ़कर मानवीय सत्यों का साक्षात्कार कर सकता है, मानवता अथवा मनुष्यता की बात कर सकता है, जबकि सभ्यता की दृष्टि मात्र वर्तमान पर, भौतिक जीवन पर केन्द्रित रहती है। इससे एक और बात जो उभर कर सामने आती है, कि व्यक्ति का संस्कृति से सम्पन्न होना अधिक आवश्यक है, संस्कृति सम्पन्न व्यक्ति अपने सभ्य होने का प्रमाण दे सकता है। * दूसरे, सभ्यता का मूल लक्ष्य वस्तुतः मानव–हित के सम्प्रेषण में है जिसे वह जीवन के भौतिक क्षेत्र में अभिव्यक्त करने का प्रयास करती है जबकि संस्कृति का भी लक्ष्य तो वही है ; किन्तु वह जीवन के भौतिक पक्ष तक ही सीमित न रहकर उसके प्रत्येक क्षेत्र में मानव कल्याण की अपेक्षा रखती है। इस दृष्टि से संस्कृति निस्संदेह सभ्यता से व्यपक है कहना चाहिये कि सभ्यता संस्कृति के कार्य क्षेत्र का एक अंग मात्र है। ध्यातव्य है कि यहाँ सभ्यता को संस्कृति से भिन्न नहीं माना जा रहा, परन्तु उसकी कल्पना उसके अन्तर्गत की जा रही है। संस्कृति सभ्यता को भी समेटती हुई चलती है और सभ्यता संस्कृति के एक पक्ष अर्थात् भौतिक क्षेत्र के विविध पक्षों पर प्रकाश डालती है। लक्ष्य दोनों का एक ही है और वह है लोक – मंगल की कामना तथा विराट् मानवता की स्थापना।

(6) संस्कृति के तत्त्व

संस्कृति का निर्माण कुछ प्रमुख तत्त्वों से मिलकर होता है। अमेरिकन विद्वान ऑगबर्न निमकॉफ एवं श्री राबर्ट बीरस्टीड के अनुसार संस्कृति के तत्त्वों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

* भारतीय संस्कृति के स्वर – – पृ0 47

1. भौतिक संस्कृति 2. अभौतिक संस्कृति

लेकिन अन्य विद्वानों ने भी संस्कृति के इन भौतिक और अभौतिक पक्षों को दूसरे नामों से उल्लेख किया है परन्तु ऑगबर्न के वर्गीकरण को अन्य वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है।

1. भौतिक संस्कृति :– श्री राबर्ट बीरस्टीड का कथन है कि संस्कृति केवल विचार और नियमों से मिलकर ही पूरी नहीं हो जाती वरन् इसके अन्तर्गत वे सभी भौतिक पदार्थ सम्मिलित होते हैं जिनका निर्माण मनुष्य ने प्रत्यक्ष रूप में किया है। आदिकाल से मानव ने प्राकृतिक वस्तुओं और शक्तियों को परिवर्तित एवं नियन्त्रित करके अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए हजारों–लाखों वस्तुओं को बनाया है। जिसका एक भौतिक आधार होता है। जिन्हें हम देख सकते हैं और इन्द्रियों द्वारा जिनका आभास प्राप्त कर सकते हैं। ये सभी भौतिक संस्कृति के अंग हैं। भौतिक संस्कृति में हम पेन, कागज, घड़ी, पंखा, मोटर, मशीन, औजार, रेल, जहाज, वायुयान, टेलीफोन आदि, अनेक वस्तुओं को गिना जा सकता है। रॉबर्ट बीरस्टीड ने भौतिक संस्कृति में मशीनों, उपकरण, वर्तन, इमारतों, सड़कों, पुलों शिल्प–वस्तुओं, कलात्मक वस्तुओं, वस्त्र, गाड़ियों, फर्नीचर, खाद्य पदार्थों एवं औषधियों आदि को सम्मिलित किया है। भौतिक संस्कृति में परिवर्तन तेज गति से होता है।

2. अभौतिक संस्कृति :– श्री रॉबर्ट बीरस्टीड ने संस्कृति के अभौतिक तत्वों को निम्नलिखित दो उपविभागों में बॉटा है।

आदर्श नियम :– व्यक्ति तथा समूहों के व्यवहारों या आचरणों को नियन्त्रित करने के लिए कुछ नियम प्रत्येक समाज में पनप जाते हैं जिन्हें आदर्श नियम कहा जाता है। श्री राबर्ट बीरस्टीड ने इन आदर्श नियमों को संस्कृति का प्रमुख तत्त्व माना है। इन आदर्श नियमों में कानून, प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, जनरीतियाँ, फैशन, सामाजिक निषेध, संस्कार, सदाचार आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

विचार :– प्रत्येक समाज में असंख्य विचारों का अस्तित्व होता है। सामान्यता उनकी सूची बनाना शायद सम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य होगा। यदि विस्तृत दृष्टिकोण से देखा जाय तो स्पष्ट होता है किये गये विचार धार्मिक राजनीतिक, आर्थिक, शारीरिक, नैतिक, काल्पनिक आदि हो सकते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य इन विचारों को अपने व्यक्तित्व में समेटता है। इस रूप में ये संस्कृति के तत्त्व कहे जा सकते हैं। चूँकि विचारों को प्रत्यक्षरूप में देखा या छुआ नहीं जा सकता, अतः ये अभौतिक तत्त्वों के अन्तर्गत आते हैं।

मैकाईवर तथा अन्य विद्वानों ने संस्कृति में केवल अभौतिक तत्त्वों को ही सम्मिलित किया है;

सोरोकिन इसे भावात्मक संस्कृति कहते हैं। अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन सभी सामाजिक तथ्यों को सम्मिलित करते हैं। जो अमूर्त हैं जिनका कोई माप–तोल आकार व रंग–रूप नहीं होता, इन्द्रियों द्वारा जिनका स्पर्श नहीं होता वरन् हम उन्हें केवल महसूस कर सकते हैं। वह हमारे विचारों एवं कार्यों में निहित हैं।

रॉबर्ट बीरस्टीड अभौतिक संस्कृति में विचारों एवं सामाजिक मानदण्डों को सम्मिलित करते हैं सामान्यतः अभौतिक संस्कृति में हम सामाजिक विरासत में प्राप्त विचार, विश्वास, मानदण्ड व्यवहार, प्रथा, रीति–रिवाज, कानून, मनोवृत्तियाँ, साहित्य, ज्ञान, कला, भाषा, नैतिकता एवं क्षमताओं आदि को गिनते हैं।

(i) संस्कृति का इतिहास

विश्व के विशालतम देशों की श्रेणी में हमारे भारत देश को भी गिना जाता है। इसका उत्तरी भाग हिमाद्रि श्रृंखलाओं एवं शेष तीनों दिशाएँ समुद्र से आवृत्त हैं। इसी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ने उसे शेष विश्व से एक अलग इकाई के रूप में चित्रित तो किया ही है साथ ही भारत के सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया है। यह ठीक है कि यहाँ के उपजाऊ भूस्थल ने यहाँ समृद्ध शीलता को जन्म दिया परन्तु विदेशी आक्रान्ताओं को भी प्रभावित किया। आर्य, यवन, शक, हूण, कुषाण, अरब, तुर्क एवं मुगल तथा ब्रिटिश आदि जातियाँ भारत में प्रविष्ट हुई, जिन्होंने समय–समय पर यहाँ की संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्पष्ट हैं कि भारतीय संस्कृति का निर्माण किसी एक समय या किसी एक जाति विशेष ने नहीं किया। यह तो दीर्घकाल एवं विभिन्न जातियों के योगदान का परिणाम है। वास्तव में संस्कृति युग–युगों का परिणाम होती है।

डॉ0 रामजी उपाध्याय के शब्दों में :– " संस्कृति का इतिहास मानवता की प्रगति का इतिहास है। " *

दर्शन समाज एवं धर्म के मूल नियमों को सूत्रकाल में लिपिबद्ध किया गया। भारतीय संस्कृति के अमूल्य ग्रन्थ श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, वादरायण का वेदान्त सूत्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी भी इसी समय के महनीय ग्रन्थ हैं।

* भारतीय संस्कृति का विकास – डॉ0ए0के0मित्तल – पृ0 3

ानव की प्रगति का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से ही भारत में दृष्टि गोचर होता है। यह ठीक है कि पूर्व पाषाण काल का मानव नितान्त असभ्य था परन्तु भारतीय संस्कृति के निर्माण में उसके योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि निग्रिटों ने धनुष वाण के प्रयोग की विधि का श्री गणेश किया, जो कि चौदहवीं शदी तक युद्ध क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रही। नौका एवं अनगढ़ डोंगियों का प्रयोग इन्हीं की देन है। कृषि, पशुपालन, अग्नि धातु का प्रयोग, पशु, भूत–प्रेत, प्राकृतिक वस्तुओं की उपासना आदि के सन्दर्भ में नव–पाषाण कालीन मानव की देन की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

परन्तु हड़प्पा सभ्यता की देन भारतीय संस्कृति के जन्म एवं विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नगरों भव्य इमारतों, वस्त्राभूषण एवं प्रशंसनीय कलाकृतियों के निर्माण शिव, तथा मातृपूजा की उपासना एवं योग दर्शन के जन्म के क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता अविस्मरणीय है।

आर्यो ने भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों एवं परम्पराओं के निर्माण में एक ऐसा अध्याय जोड़ा है जिसने कि आज तक भारतीय संस्कृति के मूल का स्थान ग्रहण किया है। वर्ण–व्यवस्था, आश्रम–व्यवस्था, उषा इन्द्र, वरूण, विष्णु, शिव एवं सूर्य आदि देवी–देवताओं की उपासना तथा याज्ञिक कर्मकाण्ड जो कि भारतीय धार्मिक जीवन का मूलभूल अंग है। पूर्व–वैदिक काल (ऋग्वेद के रचनाकाल) की ही देन है। उत्तर–वैदिक काल में जबकि आर्य सप्त सिन्धु प्रदेश से आगे बढ़कर, काशी कोशल व विदेह तक फैल गये तथा सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों की रचना हुई, याज्ञिक कर्मकाण्ड एवं वर्णाश्रम व्यवस्था का विकास हुआ, जिससे ब्राह्मण धर्म का विकास द्रुतगति से हुआ परन्तु उपनिषदों की रचना ने समाज को निवृत्ति मार्ग की ओर परिवर्तित किया एवं वर्ण–व्यवस्था व याज्ञिक कर्म–काण्ड का विरोध किया। फलस्वरूप दर्शन के क्षेत्र में वेदान्त दर्शन का जन्म हुआ।

बौद्ध एवं जैन धर्मो ने जाति पाँति एवं वैदिक कर्मकाण्डों का विरोध कर तप, त्याग, अहिंसा एवं नैतिक चारित्रिक विकास पर बल दिया। संस्कृत की अपेक्षा कर पाली एवं प्राकृत भाषा को इन दोनों धर्मो ने अपनाया। बौद्ध धर्म में तो भिक्षुओं, मठों एवं विहारों को अधिक महत्त्व दिया गया, जिससे संस्कृति की धाराओं का जन्म हुआ। बौद्ध एवं जैन दर्शन भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पहलू है। वैष्णव धर्म ने भी अहिंसा एवं भक्ति–भावना पर बल दिया। छठी शताब्दी ई0पू0 से ईसा की प्रथम सदी तक आते–आते भारत पर ईरानी एवं यूनानी आक्रमणों तथा मौर्य साम्राज्य की स्थापना ने भारत को भारतीय संस्कृति के रचनात्मक निर्माण की दृष्टि से आलोड़ित कर दिया।

मुगलों के पतन के पश्चात भारत पर ब्रिटिश–साम्राज्य वादियों का अधिपत्य स्थापित हुआ। ब्रिटिश शिक्षा ने भारतीय विद्यार्थियों के हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। इसका स्पष्ट प्रमाण 'कम्पनी चित्रकला के रूप में' देखा जा सकता है। परन्तु महर्षि दयानन्द, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी व तिलक आदि महापुरूषों ने भारतीय संस्कृति में आई कतिपय बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न करते हुए भारतीय संस्कृति के पुनरूद्धार का प्रयत्न किया।

महात्मा गांधी ने तो सत्य, अहिंसा जैसे अस्त्रों का मार्ग अपनाया तथा हिन्दू संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का जो इतिहास सामने बनकर आया, उसमें मानवता, अद्वेषभाव, करूणा मैत्री, सामंजस्य एवं समय के अनुरूप परिवर्तनशीलता। आदि शाश्वत तत्त्व निहित हैं। यूनान, मिस्र, बेबीलोन आदि प्राचीन संस्कृतियां आज विद्यमान नहीं है परन्तु भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसकी संस्कृति आज भी अमर है। इसका सबसे बड़ा कारण समय के साथ भारतीय संस्कृति के आवश्यक परिवर्तनों को स्वीकार करना है।

(ii) समाज संगठन

समाज के ढाँचे के अन्तर्गत अनेक व्यक्ति समूह तथा संस्थाएँ होती हैं। सामाजिक ढाँचे में इनमें से प्रत्येक का एक निश्चित स्थान या पद तथा कुछ निश्चित कार्य या भूमिकाएँ होती हैं। जब ये व्यक्ति, समूह और संस्थाएँ निर्धारित सीमा के अन्दर रहकर अपने–अपने कार्यों को इस प्रकार करती हैं कि दूसरों के पदों तथा कार्यों में बाधा उत्पन्न नहीं होती तो उस स्थिति को सामाजिक संगठन कहते हैं। *

सर्व श्री इलियट और मेरिल के अनुसार :– " सामाजिक संगठन वह दशा या स्थिति है जब एक समाज में विभिन्न संस्थाएँ अपने–अपने पूर्व निश्चित अथवा मान्य उद्देश्यों के अनुसार कार्य कर रही होती है"। * *

जेन्सन के अनुसार :– " सामाजिक संगठन के अन्तर्गत उन समस्त प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है जो सामूहिक जीवन का निर्माण करती है और उसे संकट एवं संघर्ष की स्थितियों का सामना करने की क्षमता प्रदान करती है"। ***

---

*	प्रारम्भिक समाजशास्त्र	–	रवीन्द्रनाथ मुखर्जी	–	पृ0 164
**	वही	–		–	पृ0 164
***	प्रारम्भिक समाजशास्त्र	–	रवीन्द्रनाथ मुखर्जी	–	पृ0 165

यह समाज संगठन अत्यन्त ही प्राचीन एवं गौरवपूर्ण है और वह अपने ज्ञानमय प्रकाश से पथ भ्रष्ट मानवता को निरन्तर राह दिखाता आया है। आज भी हमारा भारत देश इस गौरव से वंचित नहीं है, विश्व के नानादेश जब आज युद्ध, प्रतियोगिता और आपसी तनाव के बीच फँसकर त्राहि–त्राहि कर रहे हैं, तब भी भारत विश्व शान्ति और विश्व प्रेम के अभय मन्त्र का पाठ उन्हें पढ़ा रहा है और उन्हें हाथ पकड़कर सही रास्ते की ओर उन्मुख करने का कार्य कर रहा है। वास्तव में इसके लिए अनेक गुणों की आवश्यकता होती है और भारतीय सामाजिक संगठन या व्यवस्था में इन गुणों का अभाव नहीं प्रचुरता रही है। समाज संगठन की यही सबसे बड़ी विशेषता है। *

समाज एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है। यह अनेक इकाईयों के सहयोग से बनता है। दूसरे शब्दों में, समाज की कुछ संघठक इकाईयाँ होती हैं।

ये इकाईयाँ समाज में पायी जाने वाली समिति, संस्था वर्ग, जाति आदि होती हैं। इनमें से प्रत्येक इकाई का समाज में एक निश्चित स्थान और एक निश्चित कार्य होता है।

उदाहरणार्थ – जाति–प्रथा या संयुक्त परिवार का भारतीय समाज में एक निश्चित स्थान तथा कुछ निश्चित कार्य निर्धारित हैं। इन निश्चित कार्यों और निश्चित स्थान के आधार पर जाति–प्रथा और संयुक्त परिवार किसी न किसी रूप में एक–दूसरे से सम्बद्ध हैं। इसी प्रकार समाज की अन्य इकाईयाँ भी एक–दूसरे से सम्बद्ध होती हैं और इसके फलस्वरूप उनका एक संगठित व सन्तुलित रूप प्रकट होता है इसी को सामाजिक संघठन कहते हैं।

जोन्स के अनुसार :– " सामाजिक संगठन वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज की विभिन्न इकाईयाँ आपस में तथा पूरे समाज के साथ एक अर्थपूर्ण ढंग से सम्बद्ध होती हैं।" **

---

*	वही	–		–	पृ0 227
**	प्रारम्भिक समाजशास्त्र	–	रवीन्द्रनाथ मुखर्जी	–	पृ0 228

(iii) राजनीतिक एवं आर्थिक पक्ष

संस्कृति के विकास अथवा निर्माण में राजनीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजनीति जनसामान्य की संस्कृति के निर्माण, विकास अथवा ह्रास में महनीय भूमिका का निर्वाह करती है। उदाहरणार्थ हम प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थिति की ओर संकेत कर सकते हैं। जहाँ राजा *, सभा **, समिति ***, राजकृत ****, राजा का चुनाव, राजाओं का पदच्युत किया जाना व पुनः सिंहासनारूढ़ किया जाना आदि ***** के प्रमाण प्राप्त होते हैं। इन समग्र योजनाओं, व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनसामान्य का योगदान तत्कालीन समाज की प्रत्येक गतिविधि में था। राजनीतिक एतादृश जागृति से तत्कालीन सांस्कृतिक सक्रियता स्पष्ट हो जाती है। संस्कृत समाज अराजकता अथवा तानाशाही की प्रवृत्ति को सहन करने से कोसों दूर था। वेदों में यत्र तत्र ऐसा उल्लेख मिलता है कि " सभा " और " समिति " द्वारा राजा का चुनाव होता था। तत्कालीन समाज ने राजनीति शास्त्र के कतिपय आचार्यों को भी राजनीति–निष्णात के रूप में मान्यता दी थी। ऐसे आचार्यों का उल्लेख कौटिलीय अर्थशास्त्र हुआ है। ****** महाभारत के शांति पर्व मे भी इसी प्रकार के संकेत हैं। ******* " कौटिलीय अर्थशास्त्र के ऐसे आचार्यों के नाम हैं :– विशालाक्ष, इन्द्र (बहुदन्त), बृहस्पति, शुक्र, मनु, भारद्वाज, गौरशिरस, पराशर, मिथुन, कौणपदंत, वातव्याधि, घोटमुख, कात्यायन, आदि महाभारत में जिन राजनीति के महान लेखकों का उल्लेख है, वे हैं :– शिव, विशालाक्ष, इन्द्र, वृहस्पति, शुक्र, मनु, भारद्वाज, गौरशिरस् आदि।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत में राजनीति का अध्ययन पहले धर्मशास्त्र के अन्तर्गत ही किया जाता था, परिणामतः वर्णाश्रम धर्म का निरूपण करते हुए सूत्र युग से ही राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का विशद विवेचन किया गया है। स्मृति साहित्य

---

* ऋग्वेद 10/178   ** ऋग्वेद 10/71/10

*** अथर्ववेद 6/88/3   **** अथर्ववेद 3/5/6–7

***** अथर्ववेद 4/8/4

****** कौटिलीय अर्थ शास्त्र अनु0 – सामशास्त्री 5–6, 13–14

******* महाभारत, शान्ति पर्व – 57, 58

में प्रायः राजा के समक्ष प्रजा की अभ्युदय संबंधी योजनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं और साथ ही बताया गया है कि राजा किस प्रकार राष्ट्र और प्रजा की रक्षा करे। *

मनु के अनुसार राजा में 7 गुण होने चाहिए :–

01. प्रजापालन
02. न्याय
03. शिक्षा द्वारा प्रकाश का विस्तार
04. अग्नि सदृश तेजस्विता
05. चन्द्रमा के सदृश प्रजा का प्रसादन
06. शांति स्थापन
07. कुबेर के समान धन संग्रह एवं उसकी रक्षा

राजा के लिए विहित है कि वह अपने कार्य, देशकाल और शक्ति के अनुसार भिन्न–भिन्न रूपों में सत्य पर आचरण करें, प्रत्येक का कार्य निश्चित करें और ऐसे कार्य से किसी को विचलित न होने दें। **

उपर्युक्त अर्थशास्त्र के ही अन्तर्गत राजकुमारों के लिए दण्डनीति के अध्ययन का विधान दिया गया है। इस दंडनीति के द्वारा अलब्ध (अप्राप्त) का लाभ (योग) होता है और लब्ध (प्राप्त) की रक्षा होती है साथ ही रक्षित का संवर्द्धन होता है। ***

राजनीति के विभिन्न आयामों के द्वारा सांस्कृतिक निर्माण एवं रक्षण संबर्द्धन होता रहा है। तुलसी के अनुसार ये आयाम चार प्रकार के है :–

(1) साम (2) दाम (3) दण्ड (4) भेद **** साम का अर्थ है मीठी बातों से शत्रु को वश में करना; दाम का अभिप्राय है दान–धन आदि से विपक्षी को अनुकूल कर लेना; भेद के अन्तर्गत विरोधी पक्ष में फूट डाली जाती है और दण्ड के अन्तर्गत शत्रु का दमन सैन्य आदि के द्वारा किया जाता है। नारदनीति ने इन चार उपायों के अतिरिक्त तीन अन्य उपायों को जोड़ा :– (1.) मंत्र = गुप्तमंत्रणा (2.) औषध विषकन्या आदि शत्रुघातक उपाय तथा (3.) इन्द्रजाल मोहिनी शक्ति का प्रयोग। ये आयाम किस प्रकार संस्कृति के स्वरूप–विकास में उपकारक हैं , यह तथ्य सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। आधुनिक काल में कुछ अन्य नये आयाम राजनीति में जुड़े–अनशन, मुनिव्रत और सत्याग्रह, देश भक्ति, राष्ट्रीय चेतना, राजनीतिक एकता, स्वतंत्रय चेतना आदि। इन सबका उपयोग आज की राजनीति में

---

*	भारत की संस्कृति साधना	– डा0 रामजी उपाध्याय	–	पृ0 74
**	प्राचीन भारत की नीतियाँ	– दीनानाथ सिद्धांतालंकार	–	पृ0 40
***	कौटिलीय अर्थशास्त्र	–	–	1,4,6
****	दोहावली	– गीता प्रेस मानस	–	

भली–भाँति देखा और अनुभव किया जा रहा है, अतः राजनीति के तत्त्व द्वारा संस्कृति का निर्माण, विकास एवं रक्षण सिद्ध हो जाता है।

अब संस्कृति के आर्थिक पक्ष पर विचार करना अभीष्ट है। यहाँ यह प्रश्न नितान्त स्वाभाविक सा प्रतीत होता है कि संस्कृति को सर्वांगभूतत्वेन समझने के लिए आर्थिक पक्ष का जानना क्यों आवश्यक है ? इसका उत्तर यह है कि आर्थिक जीवन और संस्कृति का संबंध बहुत घनिष्ठ है। इसका कारण यह है कि हमारा जीवन आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक हिस्सों में बटाँ हुआ नहीं है। प्रत्येक हिस्सा अलग होकर काम नहीं करता। सब हिस्से मिलकर और एक– दूसरे को प्रभावित करके कोई कार्य निश्चित करते हैं। * इसी सन्दर्भ में डॉ0 राधा कृष्णन् को उद्‌घृत करना समीचीन प्रतीत होता है। वे कहते हैं– " यदि हमारी भिन्न– भिन्न इच्छाएँ , एक–दूसरे से स्वतंत्र, प्रभावहीन और अपरिवर्तनीय होती तो उनका कार्य पृथक्–पृथक् और असंबंधित होता। परिवारिक जीवन हमारे व्यावसायिक दजीवन से कोई सम्बन्ध न रखता। व्यवसायिक सम्बन्ध नीति सहित ही रहते। धार्मिक जीवन का हमारे दैनिक, लौकिक जीवन से कोई संबंध न होता, परन्तु मनुष्य के जीवन में एकला है और इसीलिए उसकी सब क्रियाओं में एकता पाई जाती है। जब जीवन में एकता है तब जीवन का एक ही महाविज्ञान है, जो जीवन के चार मुख्य आदर्शों का ज्ञान देता है अर्थात् 'धर्म' या सत्य व्यवहार, 'अर्थ' या धन, 'काम' या कलापूर्ण और सांस्कृतिक जीवन, मोक्ष या आध्यात्मिक स्वतंत्रता। ** महाभारत के अनुसार 'धर्म ' का अच्छी तरह पालन 'अर्थ' पर ही निर्भर है। अर्थ अर्थात् धन नामक साधन के अभाव में मानव अपने कर्तव्यों का पालन ठीक तरह से नहीं कर सकता। भारतीय दर्शन में भी भौतिक उन्नति को भी महत्व दिया गया है, क्योंकि उसके अभाव में तीर्थाटन, दान यज्ञ आदि कर्तव्य या धर्मों का निर्वाह संभव नहीं हो सकता। प्राचीन समय में 'अर्थ' का अर्थ क्या था, इस विषय में श्री शान्ति कुमार नानुराम व्यास का कथन है :– " अर्थ या धन का तात्पर्य सिक्के ही नहीं था, धान्य गवादि, पशु , घर–बार, खेत–खलिहान, हाथी, घोड़े, ऊनी वस्त्र, मगृचर्म आदि वे सभी वस्तुएँ धन के अन्तर्गत थी, जिनका समाज के लिए कोई आर्थिक महत्व होता था। अतः प्राचीन काल में " अर्थ " का धन से आशय था– विनिमय योग्य प्रत्येक वस्तु *** आधुनिक काल

---

* भारतीय संस्कृति की महिमा – विविध आयाम– डॉ0 कृष्ण भावुक पृ0 11

** भारतीय संस्कृति के आधार – एस0पी0कलन पृ0 95

*** रामायण कालीन समाज – शान्ति कुमार – पृ0 209

में 'अर्थ' और समाज की अन्योन्याश्रितता पर प्रकाश डालते हुए कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि किस प्रकार किसी समाज का आर्थिक ढाँचा उस समाज की 'संस्कृति' को निश्चित करता है। यदि किसी समाज की उत्पत्ति (उत्पादन) और बाँट के ढाँचे को बदल दिया जाये तो समय पड़ने पर उसकी 'संस्कृति' भी बदल जाती है। * पुरुषार्थ चतुष्ट्य में से त्रिवर्ग (धर्म,अर्थ और काम) की सिद्धि के पश्चात ही निःश्रेयस या मोक्ष सिद्ध होता है, जो भारतीय संस्कृति का चरम प्राप्तव्य है। यदि किसी देश की संस्कृति ऐसे निःश्रेयस पक्ष को प्रश्रय न देकर 'प्रेय' पक्ष को ही महत्व देती है तो निश्चित रूप में वह असीमित बलशालित्व को प्राप्त होकर वही सब करती है जो आज़ विकसित देश अमेरिका पाकिस्तान के सन्दर्भ में भारत के प्रति कर रहा है और अब भी करता रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था आज भले ही सुदृढ़ हो, पर वह 'विकासशील' स्थिति से न उबर पाने के कारण आज भी अमेरिकी उद्देश्य के आगे यंत्र–तंत्र विवश हो जाता है। आर्थिक विकास से भिन्न परावलंबन इसके अन्य कारण भी हैं, जिनका उल्लेख यहाँ समीचीन नहीं। कभी भारत " सोने की चिड़िया " था पर आज ऐसा नहीं है। यहाँ का कृषक निरवलंब होकर आत्महनन जैसा अपराध करने को विवश हो रहा है, ऐसे वर्ग की संस्कृति कैसी ?

(iv) धर्म एवं नैतिकता

धार्मिक आस्थाएँ संस्कृति की सशक्त अभिव्यंजक रहीं हैं। यद्यपि आज का औपन्यासिक परिवेश मूलतः मानवीय ऊहा–पोह और आत्म चिन्तन से परिवेष्टित है, फिर भी धर्म–दर्शन, व्यक्ति आस्थाओं और जीवन की विविध धारणाओं में हमारी वैचारिक छवि देखने को मिल जाती है। हमारी अपनी पहचान है – धार्मिक उदारता, ईश्वर और सृष्टि को एक–दूसरे का परिपूरक समझने की धारणा, कहीं आत्मा को कर्म के प्रति उत्तरदायी न मानने का प्रबल आग्रह, प्रारब्ध को भोगने और भाग्यवादी विचारधारा को स्वीकारने का आग्रह। ये सब हमें अन्य धर्मों से अलग पहचान देते हैं। भारतीय धर्म में मत और मतान्तर में वैभिन्नय रहा है पाँच वक्त की नमाज़ और चर्च में जाकर ईसू से गुनाहों की क्षमा माँगने की परिपाटी जैसा कोई आग्रह हमारे यहाँ नहीं रहा है। सभी कुछ छोड़कर तपस्या करने जाने से लेकर, जीवन के किसी एक क्षण

* भारतीय संस्कृति के आधार — एस0–पी0कलन पृ0 95

में भी उस अदृश्य सत्ता की स्वीकृति व्यक्ति को श्रेष्ठ, मानव बना देती है। वैचारिक उदारता, अज्ञात सत्ता के प्रतिनिष्ठा, निष्काम कर्म अथवा भाग्यवादी अवधारणायें, आत्मा की स्थिति में विश्वास इत्यादि वे स्थल हैं, जिनमें हमारी धार्मिक और दार्शनिक चिन्तायें व्यक्त होती रही हैं।

''नैतिकता जीवन के उदात्त गुणों का ही सामाजिक रूप है, नैतिक मूल्य सत्य, अहिंसा, परोपकार, दया, क्षमा, आततायी के प्रति आक्रोश– त्याग, प्रेम, सहानुभूति, ईमानदारी, सहयोग इत्यादि गुण नैतिकता की सीमा में आ जाते हैं– ये नैतिकता के गुण है।'' *

नैतिकता के ये गुण हर समाज में समान रूप से स्वीकार्य हैं, भारतीय समाज में भी इनका वर्चस्व रहा है परन्तु हर समाज की तरह कभी और कहीं इनका प्राधान्य रहा है और कभी कहीं–कहीं इनकी अवहेलना हुई है, स्वतन्त्रपूर्ण की कथाओं में नैतिकता जीवन से भी ऊपर रही है, स्वतंत्रता के बाद हमारे राजनीतिक पराभव ने सामाजिक नैतिक मूल्यों में गिरावट लायी है , आज व्यक्तिगत स्वार्थ मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता, वह किसी भी स्तर पर उतर कर अपने हित–साधन का प्रयत्न करता है।

(v) दर्शन एवं विज्ञान

आचारों और विचारों का समन्वय ही संस्कृति है। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति की समग्रता की खोज करने के लिए उसके विचार–साहित्य का अनुशीलन करना आवश्यक है। दर्शन इस वैचारिक साहित्य के आगार हैं। भारतीय संस्कृति की गहनता, गम्भीरता, विशालता और प्राचीनता आदि विभिन्न पहलुओं का सम्यक् विश्लेषण उसके दर्शन साहित्य में निहित है। दर्शन इस देश की मौलिक चिन्ताधारा के उत्स हैं। यहाँ की संस्कृति की नींव उन्हीं पर आधारित है। भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक साधना का जो प्रभाव लक्षित होता है, उसका आधार भी यह तत्त्व चिन्तन ही है। चार्वाक, योग, सांख्य, वैदिक, न्याय, वैशेषिक दर्शन प्रक्रिया में दूसरे से भिन्न होकर भी कभी तलवारबाजी का कारण नहीं बने, मुस्लिम और विश्व के सबसे बड़े समुदाय द्वारा स्वीकृत ईसाई दर्शन कभी इतने सहिष्णु नहीं रहे हैं। इनमें कभी चिन्तन द्वारा आत्म विश्लेषण की वृत्ति नहीं रही है। जबकि भारतीय दर्शन आत्म विश्लेषण में इष्ट के उपहास तक को सहज स्वीकार कर, अपनी आस्थाओं को और मजबूत बनाता रहा है। भारतीय विचारकों और

---

*   वृन्दावन लाल वर्मा के उपान्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 उषा भटनागर (उद्घृत) पृ0 16 ए

चिन्तकों ने जिस विशाल एवं अगाध दर्शन– साहित्य का निर्माण किया। वस्तुतः उसके मूल तत्त्व, उसके प्रेरणा–स्रोत वेदों में ही निहित थे। 'दर्शन' की दिव्य दृष्टि से ही संस्कृति का मार्ग प्रशस्त होता है इस दृष्टि से संस्कृति और दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

"आधुनिक युग विज्ञान का युग है" । * जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज विज्ञान की लहर और महत्त्व छाया हुआ है। देश की दूरी मापने वाली रेलगाड़ी, आकाश में उड़ने वाला वायुयान, समुद्र के वक्षस्थल पर तैरने वाला जलयान, शब्द–तरंग को बाँधने वाला रेडियो, टेलीविजन दूर के सम्बन्धी तथा अथवा प्रियजनों से प्यार की दो बातें कराने वाला टेलीफोन सभी कुछ विज्ञान की देन है। विज्ञान इस युग का सबसे तीव्र गति से कार्य करने वाला सेवक है।

आज जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है, विश्व का कोई कोना ऐसा नहीं है, कोई विचार ऐसा नहीं है जहाँ विज्ञान न हो इस समय तो विज्ञान के लिए बस यही कहा जाता है :–

" जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है न तेरी सी खुशबू न तेरी सी बू है। " **

विज्ञान का प्रवेश शिक्षा के संदर्भ में होता है। यह भी समाज सापेक्ष है – उसकी उन्नति और समृद्धि में ही विज्ञान कीर्ति है। *** औजारों का निर्माण और प्रयोग, पशुपालन, स्वास्थ्य के रक्षक भोजन और भेषज का सन्धान आदि सब विज्ञान के ही विषय है। उधर सूर्य, चन्द्र–नक्षत्र आदि को देख मानव के आश्चर्य ने एक ओर तो धर्म को जन्म दिया वहीं दूसरी ओर ज्योतिष जैसे विज्ञान को और जैसे–जैसे विज्ञान का विकास होता है ; वैसे–वैसे अज्ञान, दारिद्रय, रूग्णता और अपूर्णता का नाश तथा सामाजिक उत्थान होता चला जाता है। साधारणतः वैज्ञानिक उन्नति का तात्कालिक प्रभाव तो सभ्यता पर ही पड़ता है, संस्कृति पर नहीं लेकिन कालान्तर में भी वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहती।****

भारतीय दृष्टि (आध्यात्मिक) विज्ञान की बात अत्यन्त आग्रह के साथ करती है। विशिष्ट ज्ञान ही विज्ञान है, इस प्रकार– विज्ञान में स्वतः ही ज्ञान अर्न्तमुक्त है गीता में ज्ञान विज्ञान को राजविद्या, राजगुह्य आदि के नाम से कथित किया गया है। गीतोक्त धर्म पर जो विश्वास नहीं करते, उस पर श्रृद्धा नहीं रखते, वे बार– बार जन्मते मरते रहते हैं, इस तथ्य का बोध कराना ज्ञान है। इससे और आगे बढ़कर यह बोध कराना कि परम चेतन सत्ता से ही यह सम्पूर्ण संसार

---

* भाषा पियूष – डॉ0 देवराज यादव पृ0 27

** भाषा पियूष – डॉ0 देवराज यादव पृ0 27

*** It is admitted by most that the <u>Grown</u> of Science in its contribution to the enrichment and betterment of human life. Encylopaedia of Religion or Ethics. P 253 Edited by James Hastings . Vol. IX Editions 1920.

**** मैथिलीशरण गुप्त– कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता – उमाकान्त पृ0372–73

व्याप्त है, उसके भिन्न और कुछ है ही नहीं, विज्ञान है।* तुलसी के रामचरितमानस में यत्र–तत्र विज्ञान की बात आई है। कहीं राम को विज्ञान विशारद ** कहा गया है, तो कहीं बुद्धि को विज्ञान रूपिणी *** के रूप में वर्णित किया गया है विज्ञान के ये सारे सन्दर्भ यद्यपि धर्म से संबद्ध प्रतीत होते है ; पर अन्ततः इनके बोध से मनुष्य मात्र संस्कृत होता है, अतः ऐसा विज्ञान संस्कृति का तत्त्व बन सकेगा। गीता में स्पष्ट इस विज्ञान का परिणाम निर्दिष्ट है – यद्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽ शुभात् (गीता 4/6)। इसी प्रकार विज्ञान रूप भगवत तत्त्व तथा विज्ञान रूपिणी बुद्धि भी अन्ततः मानव को संस्कृत करती है, अतः असंदिग्ध रूप से विज्ञान, संस्कृति के अविच्छेद्य तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

(vi) संस्कृति और कला

संस्कृति का संबंध कला और बुद्धि के क्षेत्र से है। सभ्यता का विकास करके ही मनुष्य सांस्कृतिक उन्नति कर सकता है। संस्कृति यदि सागर है तो कलायें तरंग। संस्कृति और कला परस्पर पूर्णतः संबंधित हैं। कला संस्कृति की प्रतीक और अभिव्यक्ति होती है। जैसी कला वैसी संस्कृति, जैसी संस्कृति वैसी कला। संस्कृति की ही तरह कला का भी शाश्वत मूल्य है। कला भी प्रेरणा का स्थायी स्रोत है।

'कला' शब्द की रचना कल् + अय + टाप् धातु एवं प्रत्ययों के संयोग से हुई है। कला का शाब्दिक अर्थ है :– किसी वस्तु का छोटा अंश, चन्द्रमण्डल का षोडश अंश, राशि के, तीसवे भाग का साठवाँ अंश। '' कल् धातु स्वयं 'आवाज' 'गणना' प्रयोगात्मक कला, मात्रा छन्द आदि अर्थों की बोधक है।**** डॉ0 रामदत्त भारद्वाज 'कला' की व्युत्पत्ति किंचित् भिन्न प्रकार से करते हैं। उनके अनुसार 'कवि और लास्य' इन दोनों के प्रथमाक्षरों से 'कला' निर्मित है। '' कवि का लास्य ही कला है ''। 'लास्य' शब्द का कोशार्थ है – नृत्य अथवा उछल– कूद।

---

*	गीता–साधक संजीवनी	– रामसुखदास	पृ0 600
**	मानस–गीताप्रेस ,गोरखपुर		3.45.4
***	मानस–गीताप्रेस ,गोरखपुर		7.11.7
****	संस्कृत हिन्दी कोश	– वामन शिवराम आप्टे	पृ0 256

कवि के काव्य में कवि के अव्यक्त भावों की अभिव्यक्ति होती है। उसके अव्यक्त भाव शब्दों के माध्यम से और आनंदातिरेक के कारण नृत्य करने लगते हैं। * यहाँ यह कहना नितान्त संगत और समीचीन है कि केवल कवि ही क्यों अन्य कलाकार (वास्तुकार, मूर्तिकार, चित्रकार आदि) भी अपने अव्यक्त भावों को अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कला की तीसरी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है : क + ला = कला। क = कामदेव सौन्दर्य, प्रसन्नता, हर्ष, आनंद । ला = देना। कं व्यति ददातीति कला; अर्थात् सौन्दर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु का नाम कला है। कहना न होगा कि इसी आशय से प्रसिद्ध काव्यशास्त्री दण्डी ने कला को "गीत प्रभृतयः कला कामार्थ संश्रयाः" कहा है। **

उपर्युक्त व्युत्पत्तियों से भी सिद्ध हो जाता है कि संस्कृति और कला में घनिष्ठ संबंध है। विभिन्न कलाएँ समूहबद्ध मानव को और भी निकट सम्पर्क में लाती है। इसीलिए बाबू गुलाबराय यह निर्धारित करने के लिए विवश हो जाते हैं कि " हमारे भावों और विचारों की द्योति का होने के कारण (वे) संस्कृति की परिचायिका होती है।" *** इन कलाओं (संगीत, नृत्य, वास्तु चित्र, मूर्ति) के विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यापारों अथवा तत्वों में ये स्वरूप की दृष्टि से सर्वाधिक जातीय किन्तु प्रभाव की दृष्टि से सबसे अधिक अन्तर्जातीय होती हैं। ****

जीवन के अन्धकार की ओर अग्रसर होने वाली कला, संस्कृति के शुद्ध स्वरूप को आघात पहुँचाने में कोई कोर–कसर बाकी नहीं रखती। इसी आशय से प्रसिद्ध साहित्यकार माखन लाल चतुर्वेदी लिखते हैं – " जब जीवन और कला दोनों अंधकार के गहरे में उतरने लगते हैं तभी अस्तित्व और संस्कृति की शामत आती है ये तो खेलते ही भले लगते हैं।" *****

---

* भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त – डॉ० राजकिशोर सिंह(उद्धृत) पृ0 5

** भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त – डॉ० राजकिशोर सिंह(उद्धृत) पृ0 6

*** भारतीय संस्कृति की रूपरेखा – बाबू गुलाब राय (सन् 1958) पृ0129

**** मैथिलीशरण गुप्त – कवि और भारतीय संस्कृति की आख्याता –उमाकान्त पृ0372

***** साहित्यिक निबन्ध संग्रह – सृजनात्मक आनन्दिनी कला पृ0 25

कला की महत्ता या उपादेयता के विषय में भर्तृहरि ने लिखा है – '' साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विशाणहीना:'' * यह कथन नितान्त उचित है। अभिव्यक्ति का अन्तर्हित रहना किंचिन्मात्र भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह तो व्यक्ति–विशेष की संवेदना मात्र है। संवेदना जब कला के रूप में अभिव्यक्त होती है तब वह व्यष्टि की संकीर्ण सीमाओं को अतिक्रान्त कर देश देशान्तर तक छा जाती है। इसका छा जाना यों ही नहीं है, इसमें संस्कृति की सूक्ष्मता और व्यापकता भी अन्तर्निविष्ट है, जो सार्व भौमिकता की वस्तु है। इस तथ्य से कला एवं संस्कृति की अन्योन्याश्रयता सिद्ध हो जाती है।
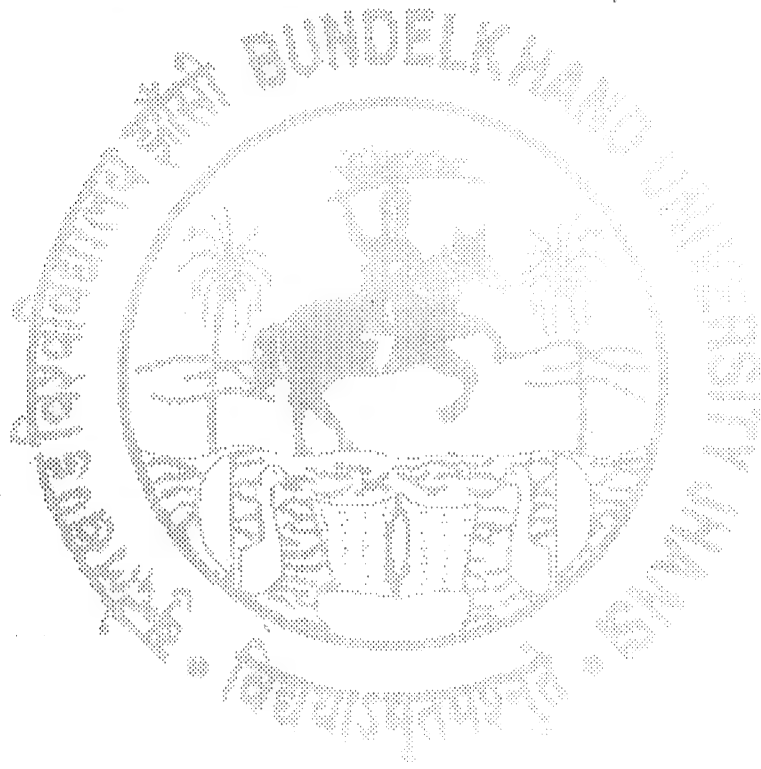
* नीतिशतकम् – भर्तृहरि

(vii) संस्कृति और साहित्य

साहित्य संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। सामाजिक विकास से सांस्कृतिक विकास जुड़ा हुआ है और सांस्कृतिक विकास से साहित्य का विकास। इसका कारण है कि साहित्यकार भी उसी समाज का अंग है, जिस समाज का संचालन संस्कृति करती है। अतः स्वभावतः समाज में रहते हुए साहित्यकार पर अपनी संस्कृति का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, जिसकी अभिव्यक्ति अनायास उसके साहित्य में हो जाती है। इतना ही नहीं, साहित्यकार सम्पूर्ण सांस्कृतिक परम्परा पर विचार करता है और उसकी उपयुक्तता और अनुपयुक्तता को प्रतिपादित करते हुए साहित्य में निकष निर्धारित करता है। उसके समक्ष सृजन का ही प्रश्न नहीं होता अपितु इस सृजन को ' बहुजनहिताय ' और ' बहुजन सुखाय ' बनाने की चिन्ता भी होती है। बल्कि यों कहना चाहिए कि सम्पूर्ण समाज को उसके वास्तविक रूप के दर्शन कराने तथा सही मार्ग दिखलाने का दायित्त्व भी साहित्यकार पर ही होता है। जो साहित्य अपने इस दायित्व के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होगा, वह साहित्य काल के किसी खण्ड – विशेष में तो प्रभावकारी दिखलायी दे सकता है, किन्तु चिरस्थायी और चिरतनता का दाबा नहीं कर सकता। जिस साहित्य में संस्कृति की अभिव्यक्ति होगी, संस्कृति के माध्यम से मनुष्य की चिन्ता होगी, वही साहित्य, काल के कठोर आघातों का सामना करने की क्षमता रखेगा।

इस प्रकार संस्कृति और साहित्य का अटूट सम्बन्ध है। समाज में रहते हुए साहित्यकार पर अपनी संस्कृति का प्रभाव न पड़े, यह असम्भव है और यह भी असम्भव है कि इस प्रभाव की प्रति छाया उसके साहित्य में दिखलायी न दे।

<u>हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में</u> :– " साहित्य का विकास मात्र मनोरंजन या वाग्विलास नहीं है। मानव की सद्वृत्तियों का विकास करते हुए उसके व्यक्तित्त्व का सर्वांगीण विकास करना साहित्य का लक्ष्य है "।*

साहित्य मानव–मन और समाज का दीपक है। साहित्य की प्रेरक शक्तियों एवं लक्ष्यों का विवेचन करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं :–

---

* आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपान्यासों में सांस्कृतिक वोध – संजीव भानावत पृ0 21

" साहित्य का लक्ष्य मानवता ही है। जिस पुस्तक से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, जिससे मनुष्य का अज्ञान, कुसंस्कार और अविवेक दूर नहीं होता, जिससे मनुष्य शोषण और अत्याचार के विरूद्ध सिर उठाकर खड़ा नहीं हो जाता, जिससे वह छीना–झपटी, स्वार्थ परता और हिंसा के दल–दल से उबर नहीं पाता,वह पुस्तक काम की नहीं है। " *

वस्तुतः साहित्य मनुष्य को उसके जीवन लक्ष्य और संस्कृति के प्रति सजग करता है तथा उसे मनुष्यता की ओर प्रेरित करता है।

<u>द्विवेदी जी लिखते हैं</u>

" साहित्य का लक्ष्य है जीवन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करके मनुष्यता के वास्तविक लक्ष्य तक ले जाने का संकल्प, मनुष्य के दुःखों को अनुभव करा सकने वाली दृष्टि की प्रतिष्ठा। और ऐसे दृढ़चेता आदर्श चरित्रों की सृष्टि जो दीर्घकाल तक मनुष्यता को मार्ग दिखाते रहे"। हमारी संस्कृति की सबसे बडी विशेषता है – " विविधता में एकता और विरोधी परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता"।

हमारा भारत वर्ष विभिन्न धर्मो, साधना, पद्धतियों, भाषाओं और जातियों का देश है इसे महामानव समुद्र भी कहा गया है केवल आर्य, द्रविड, कोल और मुण्डा तथा किराट जातियाँ ही इसमें नहीं आयी हैं। कितनी ही ऐसी जातियाँ यहाँ आयी हैं, जिन्हें निश्चित रूप से किसी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

लेकिन दुर्भाग्यवश आज ऐसे आत्मलक्षी साहित्य का सृजन अल्प मात्रा में हो रहा है आधुनिक साहित्य कुण्ठा, निराशा, अवसाद आदि का पर्याय बनता जा रहा है वर्तमान साहित्यकारों द्वारा जिन ढुलमुल चरित्रों की सृष्टि की जा रही है उससे द्विवेदी जी काफी चिन्तित रहे और उन्होंने ऐसे साहित्यकारों का विरोध किया। नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है जिसे हम संस्कृति शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं।

---

* आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपान्यासों में सांस्कृतिक वोध – संजीव भानावत पृ0 22

viii) भारतीय संस्कृति का स्वरूप

भारतीय संस्कृति के मूल में ज्ञान की पवित्रता और कर्म की श्रेष्ठता का समन्वयात्मक तत्त्व सन्निहित है। आदि युग में वैदिक ऋषियों ने व्यक्ति विकास, समाज–कल्याण, राष्ट्र– प्रगति और विश्व–बन्धुत्व की स्थापना के लिए जिस ज्ञान राशि की सृष्टि की, वह भारतीय संस्कृति की ही अदम्य प्राण–शक्ति है। इसके पोषण तत्वों से जहाँ एक ओर अन्तर्जगत के संस्कार परिपुष्ट है, वहाँ दूसरी ओर बाह्य–जगत के रीति–रिवाज, रहन–सहन व्यवहार आदि भी पूर्णतः प्रभावित है। भारतीय संस्कृति के चरम विकास के लिए दिशा निर्देश इन वाक्यों के द्वारा किया है :– "असतो मा सद्गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय,

मृत्योर्मा अमृतं गमय।" *

इन ओपनिषदिक पदों में व्यक्त अभिलाषाओं की पूर्ति भारतीय उपनिषदों को चरम उपलब्धि है। यही याज्ञवल्क्य निर्दिष्ट अमृतत्व, न्याय–प्रतिपादित, अपवर्ग सांख्यविवेचित पुरूषार्थ है। * *

हमारी भारतीय संस्कृति के वाहक वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, काव्यशास्त्र, व्याकरण, शास्त्र काव्य, नाटक आदि से आरम्भ होकर विभिन्न धर्मों, विदेशी आक्रान्ताओं और विभिन्न कालों में अप्रवाह रूप से प्रवाहित भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप सामने बनकर आया उसमें मानवता अद्वेष भाव, करूणा, मैत्री, सामंजस्य एवं समय के अनुरूप परिवर्तनशीलता आदि शाश्वत तत्त्व निहित है। भारतीय संस्कृति के निर्माण का क्रम निरन्तरता एवं प्रवाह से अभिभूत है।

मानव जीवन को सँवारना (दोषादि को दूर करना) ही संस्कृति है। हमारे पूर्वजों ने मानव – जीवन को शुद्ध करने के लिए महान प्रयत्न किये। उन्होंने हमारे जीवन के संस्कारों के लिए जिन आचारों और विचारों को दिखाया, वह सब हमारी संस्कृति है। इसे सभी मतों के मानने वालों का मिलन – स्थल कहा गया है। समय–समय पर अनेक प्रकार के विचार भारतीय संस्कृति में प्राप्त होते हैं।

---

* वृहदारण्यक उपनिषद 1/3/28

** अमृतत्ववस्य तु ना शस्ति वित्तेन – शतपथ ब्राह्मण – 14/5/4/2

दुःख ––––– तदनन्तरापायाद पवर्गः । – न्याय दर्शन – 1/22/2

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृन्तिरत्यन्त पुरूषार्थः। – सांख्य दर्शन – 1/1

संस्कृति में जो एकता तथा अनेकता देखने को मिलती है उसका भी एक आधार है। संस्कृति का सम्बन्ध समिष्टमय जीवन से है। भूमि, जल, वायु, आचार, विचार, वेश–भूषा और भाषा–साहित्य आदि उसके उपादान है। इनकी एकता से संस्कृति की एकता और अनेकता से भिन्नता का दृष्टिकोण बनता है। एक ही वातावरण में, एक ही विचारधारा के अनुयायी, एक ही प्रकार के सुख–दुःख के अनुभवी समाज की आशाएँ और आकांक्षाएँ प्रायः एक ही होती हैं। समान अनुभूतिवाले समाज का साहित्य भी प्रायः एक ही होता है।

किसी देश के साहित्य में इतनी व्यापक अनुभूति होती है कि प्रायः समस्त मानव समाज उसका अनुभव एक ही रूप में करता है। इसके बाबजूद भी देश, काल और व्यक्ति के अनुरूप उसकी अनुभूतियाँ प्रायः असमान ही हुआ करती है। संस्कृति की एकता और भिन्नता इन्हीं अनुभूतियों पर निर्भर है। किसी देश के धर्म, दर्शन, इतिहास, कला और रीति–रिवाज के आधार पर उसकी संस्कृति का निर्माण तथा निर्धारण होता है।

मनुष्य अपनी मूलावस्था में एक है और उसकी संस्कृति एकता का दृढ़ आधार है। उसी के द्वारा विश्व–समाज को एक मंच पर बैठाया जा सकता है। जातियों, राष्ट्रों और व्यक्तियों के द्वारा कल्पित सीमाओं, पन्थों एवं मतभेदों के बाबजूद भी मानवता की जो अजस्र अमिट भाव– धारा अन्तर्निहित है, वही संस्कृति है।

'संस्कृति' शब्द का आज जिस अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है, उससे उसकी वास्तविकता, महत्ता एवं व्यापकता संकुचित हो गयी है। यही कारण है कि भारतीय बाङ्मय, परम्पराओं और जीवन में संस्कृति की जो अजस्र धारा आदि काल से निरन्तर प्रवाहित होती चली आ रही है, उसको उस रूप और अर्थ में, हृदयंगम न किये जाने के कारण प्रायः कुछ आलोचकों द्वारा यह कहा गया है कि संस्कृति की दृष्टि से भारत का स्तर उन्नत नहीं है। किन्तु स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। भारतीय मनीषियों तथा चिन्तकों ने संस्कृति का आधार इतने उच्च्य पैमाने पर माना है, जिसके अन्तर्गत न केवल भारत अपितु समस्त मानव – समाज का समावेश हो जाता है। संक्षेप में कहना चाहिए कि भारतीय दृष्टि से संस्कृति को मानव–धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार " संस्कृति " का मनुष्य के जीवन से, उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से गहरा सम्बन्ध है।

महादेवी वर्मा के शब्दों में " संस्कृति शब्द में हमें जिसका बोध होता है, वह वस्तुतः ऐसी जीवन–पद्धति है जो एक विशेष प्राकृतिक परिवेश में मानव–निर्मित परिवेश सम्भव कर देती है और दोनों परिवेशों की संगति में निरन्तर स्वयं आविष्कृत होती रहती है। यह जीवन–पद्धति न केवल बाह्या,स्थूल और पार्थिव है और न मात्र आन्तरिक सूक्ष्म और अपार्थिव। वस्तुतः उसकी ऐसी दोहरी स्थिति है जिसमें मनुष्य के सूक्ष्म विचार,कल्पाना,भावना आदि का संस्कार उसकी चेष्ठा,आचरण आदि बाह्यचार की परिष्कृति उसके अन्तर्जगत पर प्रभाव डालती है। *

संस्कृति वह है जो हमारे जीवन को प्रत्येक क्षेत्र में संयमित करती है तथा जिसके संयमन से हमारी श्रेष्ठ साधनाएँ सामाजिक स्तर पर उभर कर सम्मुख आती है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में " मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है......... असंयत प्रकृति का नाम ही विकृति है। और संयत प्रकृति का नाम संस्कृति है।" **

(ix) आध्यात्मिकता

आध्यात्मिकता की रचना ' अध्यात्म' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है – आत्मा से सम्बद्ध। जो आत्मा से सम्बद्ध हो वह आध्यात्मिक और जो इस प्रकार का विचार है भाव है, उसे आध्यात्मिकता कहते हैं। व्यापक रूप से कहा जाता है कि संसार की समस्त वासनाओं से रहित होकर स्वानुभव पूर्वक अपनी आत्मा में ही रमण करने एवं निर्विकल्प रूप में रहकर अपनी आत्मा में स्थिर रहना ही आध्यात्मिकता है।

आध्यात्म की भावना भारतीय संस्कृति का प्राण है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने इस भावना को और अधिक प्रबल बनाया है। इस विश्व की सृष्टि कैसे हुई ? आत्मा और परमात्मा का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? मृत्यु क्यों आती है तथा मृत्यु के पश्चात क्या होता है ? आदि–आदि अनेक प्रष्न समय–समय पर हमारे मनीषियों एवं तत्त्वज्ञों द्वारा उपनिषदों एवं दर्शन ग्रन्थों में उल्लिखित हैं। इस प्रवृत्ति के वशीभूत हो हमारे देश में अद्वैत, द्वैतादैत, विशिष्टा द्वैत आदि वादों को निरूपित किया गया है।

* हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना – डॉ0 रविकुमार (उद्धृत) पृ0 4,5

** हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना – डॉ0 रविकुमार (उद्धृत) पृ0 5

अरविन्द घोष के शब्दों में

" आध्यात्मिकता भारतीय मस्तिष्क को समझने की कुंजी है।" * भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन कर्म प्रधान है। यहाँ की आध्यात्मिकता मन, बुद्धि,चित्त एवं अहंकार से रहित है। वह आत्म तत्व का साक्षात्कार (अनुभव के माध्यम से)करना चाहती है। आत्मदर्शन ही भारतीय दर्शन है :–

" विसृज्ज सर्वतः संगमितरान् विषयान् बहिः।

बहिः प्रवृत्ताक्षगणं शनैः प्रत्यक् प्रवाह्रय।। " **

(मनुष्य को चाहिए कि वह चारों और के संग का विर्सजन कर तथा विषयों को बाहर ही छोडकर धीरे–धीरे स्वतः को अर्न्तमुख प्रवाहित करना जाने) वर्णाश्रम व्यवस्था, शिक्षा पद्धति, कर्मवाद का सिद्धान्त, अहिंसा, पुरूषार्थ चतुष्ट्य, भारतीय संस्कृति को निराशा वादी नहीं कहला सकते। इसी कारण साम्राज्यों का निर्माण, विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार विज्ञान साहित्य एवं कला की अभूतपूर्व बृद्धि हो सकी। आत्मा का वैशिष्ट्य होने के कारण आध्यात्मिकता अन्य पूर्वपक्षीय विशेषताओं को महत्व देती हुई भी प्रधानतः ब्रहमभाव या आत्मभाव की पक्ष धरता रखती है गीता में अध्यात्म विद्या को सम्पूर्ण विद्याओं में शिरोभूत माना गया है *** भगवान् वासुदेव इस अध्यात्म विद्या को अपनी विभूति इसलिए बताते हैं क्योंकि यह सबसे सरल हैं, सबसे सुगम है और सबके प्रत्यक्ष अनुभव की बात है। इसको करने में, समझने में और पाने में कोई कठिनता है ही नहीं। इसमें करना, समझना और पाना लागू होता ही नहीं। कारण कि यह नित्यप्राप्त है और जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति आदि सम्पूर्ण अवस्थाओं में सदा ज्यों का त्यों मौजूद है। आत्मज्ञान जितना प्रत्यक्ष है, उतना प्रत्यक्ष यह संसार भी नहीं है। तात्पर्य यह कि हमारे अनुभव में आत्मज्ञान जितना स्पष्ट आता है।, उतना स्पष्ट संसार नहीं आता। हम अपने बालकपन को देखें और वर्तमान अवस्था को देखें तो शरीर वहीं का वही नहीं रहा, आदत वही नहीं रही, भाषा वही नहीं रही, व्यवहार वही नहीं रहा, स्थान वही नहीं रहा, समय वही नहीं रहा साथी वही नहीं रहे, क्रियाएँ वही नहीं रहीं, विचार वही नहीं रहे, सब कुछ बदल गया, पर सत्तारूप से हम

---

* भारतीय संस्कृति का विकास – डॉ0 ए0के0मित्तल पृ0 6

** रामायण (युद्धकाण्ड) – 6/48

*** गीता – अध्याय 10/32

स्वयं नहीं बदले। तभी तो हम कहते है, कि मैं तो वही हूँ जो बालकपन में था। तात्पर्य यह हुआ कि जो बदल गया वह अलग स्वभाव वाला था और जो नहीं बदला। अलग स्वभाव वाला है। जो नहीं बदला वह हमारा असली स्वरूप अर्थात् शरीरी है, और जो बदल गया वह शरीर है। यह आत्मज्ञान है * और इसमें दृढ़ विश्वास रखना ही आध्यात्मिकता है। गुप्त जी ने लिखा है :–

" पद पूजन का भी क्या उपाय ?
तू गौरव–गिरि, उत्तुंग काय।
तू अमल धवल है, मैं श्यामल,
ऊँचे पर है तेरे पद–तल,
यह हूँ में नीचे का तृण–दल
पहुँचूँ उन तक किस भाँतिहाय ?
तू गौरव गिरि , उत्तुंगकाय। **

(x) अद्वैत भावना

जगत्,जीव और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूपों का विवेचन तथा उनके पारस्परिक संबधों की मीमांसा करना ' दर्शन' का प्रतिपाद्य विषय है। षडदर्शनों में अद्वैत वेदान्त का विशिष्ट स्थान है। अद्वैत वेदान्त को शंकराचार्य के पर्यायार्थ कहा जाता है। शंकराचार्य ने अद्वैतवाद की एक रूपरेखा मात्र तैयार की थी परन्तु उन्हीं रूप रेखाओं में रूप–रंग भर कर उनके अनुयायियों ने उसे एक समग्र दर्शन का रूप दिया। *** इस अद्वैत दर्शन की सबसे प्रमुख विशेषता हैं। निर्गुण ब्रह्म को पारमार्थिक सत्ता मानना है, जिसमें यह विश्वास गर्भित है कि जगत् माया है, जीव (आत्मा) ब्रह्म से अभिन्न

---

* गीता – साधक संजीवनी – स्वामी रामसुख दास पृ0 705

** सियारामशरण गुप्त प्रश्नावली – प्रथम खण्ड (पाथेय) सम्पा0 ललित शुक्ल पृ0 266

*** भारतीय दर्शन का इतिहास – डॉ0 नरेन्द्र सिंह शास्त्री व डॉ0 हरीदत्त शास्त्री पृ0 382

है और मोक्ष में जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। * यह रहा अद्वैत वेदान्त का सैद्धान्तिक पक्ष– इसका व्यावहारिक पक्ष कर्म– सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है और यह मानता है कि एक–मात्र ज्ञान ही मोक्ष का उपाय है। अद्वैत की यह परम्परा शंकराचार्य को वेदान्त से प्राप्त हुई थी, जिसनें वेदों और उपनिषदों की दो प्रवृत्तियों (अन्वय–व्यतिरेक) का उपयोग किया है। पहली प्रवृत्ति है कि यह सब कुछ ब्रह्म है। इस प्रवृत्ति को अन्वय–दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि से देखने पर सभी वस्तुएँ ब्रह्ममूलक हैं। उनकी सत्ता ब्रह्म से अभिन्न है। दूसरी प्रवृत्ति कहती है कि वह ब्रह्म नहीं है, वह ब्रह्म नहीं है– 'नेति–नेति' इस प्रवृत्ति को व्यतिरेक–दृष्टि कहते है। इस दृष्टि से प्रत्येक वस्तु ब्रह्म नहीं है, क्योंकि उसका अपना पृथक–पृथक भाव है। वह किसी देश–काल में स्थित है और उसके विशेष रूप तथा कार्य हैं। शंकराचार्य ने इन दोनों ही दृष्टियों को अपना कर यह प्रतिपादित किया है वास्तव में अन्वय का अभिधान किया गया है अन्वय दृष्टि और व्यतिरेक दृष्टि दोनों से ही एक ही सत् की दृष्टि के बल पर उन्होंने ब्रह्मवाद की स्थापना की और व्यतिरेक दृष्टि के आधार पर मायावाद की।

अद्वैत दर्शन में जगत् का मिथ्यात्व प्रतिपादित है। उपनिषदों में सृष्टि का वर्णन तो किया गया है, पर उसे अर्थात् नाना विषयात्मक संसार को मिथ्या कहा गया है। यदि सृष्टि को सत्य माना जाय तो फिर नानात्व को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है ? शंकर इसे समाधानित करते हुए कहते हैं कि यदि ब्रह्म निर्गुण, निर्विकार है तो फिर वह सृष्टिकर्त्ता कैसे हो सकता है ? यदि उसका कर्तृत्त्व सत्य है। तो फिर वह निर्गुण या निर्विकारी कैसे ? ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। जगत् का नानात्व असत्य है; क्योंकि वह तिरोहित होता है; पर ब्रह्म ज्ञान के उदय होने पर केवल मिथ्या ज्ञान नष्ट होता है। जो सत् है वह नष्ट होने वाला नहीं।

अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म और ईश्वर की भी बात आती है। व्यावहारिक दृष्टि से जो ईश्वर है, वही पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म है। इसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से जो जीव है, वही पारमार्थिक दृष्टि से आत्मा या बह्म है। ईश्वर सविशेष और ब्रह्म निर्विशेष है। शंकराचार्य का कथन है कि परमार्थतः ईश्वर असंसारी है; किन्तु उपाधिवश संसारी है। परन्तु ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है, जीव सृष्टिकर्त्ता नहीं है। यही दोनों में भेद है। ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है यह कथन

* भारतीय दर्शन – वाचस्पति गैरोला पृ0 881

ो औपाधिक है। तत्त्वतः पर ब्रह्म की सृष्टि का मूल कारण है।

अद्वैत भावना की अपनी व्यावहारिक तथा पारमार्थिक उपादेयता है। इस भावना से युक्त साधक या सिद्ध के लिए न तो कहीं दुःख है, न शोक और न मोह, जैसा कि कहा गया है।

तत्र को मोहः को शोकः ऋतं अनुपश्यतः।

(xi) योग

युज् धातु से करण और भाव अर्थ में धञ प्रत्यय जोड देने पर 'योग' शब्द की निष्पत्ति होती है; जिसका अर्थ है – समाधि पंतजलि के योग सूत्र के भाष्यकार व्यास ने कहा है – "योग समाधिः"। * चित्त–वृत्ति का पुरुष (आत्मा या जीव) के साथ अनादि काल से सम्बन्ध चला आ रहा है। इन्हीं वृत्तियों के बलबूते पर वह सदा से अपनी संसार–यात्रा करता आ रहा है। इस प्रकार की क्लेशमयी यात्रा से जब पुरुष भगवान में मिलना चाहता है तब वह कामना,वासना,आसक्ति और संस्कारों का परित्याग करता है। इसलिए कहा गया है कि जीव और ब्रह्म के बीच जो स्वजातीय, विजातीय और स्वगत आदि भेद है उनका विमोचन करके एक हो जाना ही योग है। जो व्यक्ति आत्म साक्षात्कार के इच्छुक है, उनके लिए पतंजलि का योग दर्शन,(योग सूत्र) एक अमूल्य निधि है। पतंजलि योग सूत्र चार पादों में विभक्त है प्रथम पाद समाधि पाद कहलाता है। इसमें योग के स्वरूप, उद्देश्य और लक्षण, चित्तवृत्ति निरोध के उपाय तथा भिन्न–भिन्न प्रकार के योगों की विवेचना की गयी है, दूसरा पाद 'साधना पाद' है। जिसमें क्रिया योग क्लेश,कर्मफल और उसका दुःखात्मक स्वभाव दुःखादि चतुष्ट्य आदि विषयों का वर्णन है। तीसरे विभूतिपाद में योग की अन्तरंग अवस्थाओं तथा योगाभ्यासजनित सिद्धियों का वर्णन है। चौथा पाद 'कैवल्य पाद' है। जिसमें कैवल्य या मुक्ति स्वरूप की विवेचना की गयी है। योग दर्शन वस्तुतः नैतिक तत्त्वज्ञान है। मन पर विजय पाना ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। मन की एकाग्रता से दिव्य शक्ति एवं दिव्य प्रतिभा प्राप्त होती है। उसी से ईश्वर की कृपा और उसका साक्षात्कार होता है– ऐसे ईश्वर की जिसमें मानवीय आत्मा के गुण–दोष नहीं होते और जो क्लेश, कर्मविपाक तथा मलिन संस्कारों के स्पर्श से अछूता है। सांख्य में जो स्थान विवेक को दिया गया है वहीं स्थान योग में ईश्वर को दिया गया है। आत्मोन्नति के साधन रूप में योग की महत्ता

* उद्धृत– भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास – डॉ0 सिंह एवं शास्त्री पृ0 324

प्रायः सभी भारतीय दर्शनों ने स्वीकार की गयी है। यहाँ तक कि वेद,उपनिषद,स्मृति,पुराण, सभी में योगाभ्यास के उल्लेख मिलते है। * श्रीमद्भागवत गीता में दक्ष की पुत्री एवं शिव की पत्नी सती के द्वारा योगाग्नि प्रकट कर देहत्याग करने का उल्लेख है। ** इसी प्रकार रामचरितमानस में शबरी के प्रसंग के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि योगाग्नि में देहत्याग करने वालों की मुक्ति ही होती है, पुनर्जन्म नहीं। ***

पतंजलि– योगसूत्र में योग के स्वरूप और उसके भिन्न–भिन्न प्रकारों की सूक्ष्म विवेचना की गयी है। योगाभ्यास के विविध अंगों और उनसे संबद्ध अन्यान्य आवश्यक विषयों पर भी गहनता से विचार किया गया है। सांख्य दर्शन की भाँति योग का भी यही सिद्धान्त है कि विवेक–ज्ञान से ही मुक्ति पाना संभव है; परन्तु यह ज्ञान तभी हो सकता है, जब शरीर और मानसिक वृत्तियों का दमन करते हुए अर्थात् क्रमशः शरीर,इन्द्रिय,मन,बुद्धि और अहंकार पर विजय प्राप्त करते हुए शुद्ध आत्मा या पुरुष के यथार्थ स्वरूप को पहचाने। तब हमें ज्ञात हो जायगा कि शरीर, मन, इन्द्रिय,बुद्धि और सुख–दुःख को भोक्ता अंहकार– इन सबसे आत्मा पृथक है। वह देशकाल और कारण के बंधनों से परे है। यह आत्मा मुक्त और शाश्वत है पाप, दुःख, रोग, मृत्यु, इन सबसे ऊपर है। यही अनुभव आत्मज्ञान है। इसी आत्मज्ञान या विवेकज्ञान से मुक्ति अर्थात् सकल दुःखों की निवृत्ति होती है। सांख्य दर्शन में ज्ञान पर बल दिया गया है , जबकि योग मुख्यतः व्यावहारिक पहलू पर बल देता है– अर्थात् मुक्ति या आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए किन उपायों का संबल लिया जाय।

योग दर्शन का उद्देश्य है कि योग द्वारा मनुष्य पंचविध क्लेषों और नानाविध कर्मफल से विमुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करें। योगदर्शन के अनुसार यह संसार दुःखमय है, जीवात्मा के मोक्ष का एकमात्र उपाय योग है। ईश्वर नित्य,अद्वितीय और त्रिकालातीत है। ज्ञान, इच्छा, सुख–दुःख, धर्म–अधर्म आदि गुण ईश्वर के न होकर प्रकृति में ही रहते है।

योग के आठ अंगों के द्वारा चंचल चित्त को एकाग्र किया जाता है। इनके नाम है – यम, नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि। यम के पाँच अंग हैं–

---

* भारतीय दर्शन – वंद्योपाध्याय एवं दत्त — पृ0 186

** श्रीमद्भागवत – — 4/4

*** श्रीरामचरित मानस (आरण्ड काण्ड) — 2/36

अहिंसा,सत्य, अस्तेय ,ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। नियम का अर्थ है – सदाचार का पालन इसके अंग हैं– शौच,सन्तोष,तप,स्वाध्याय,ईश्वर, प्राणिधान,आसन का अर्थ है – शरीर को ऐसी स्थिति में रखना जिससे निश्चल होकर हम सुख के साथ देर तक रह सकते हैं। श्वांस का नियंत्रण प्राणायाम है। इन्द्रियों को उनके–उनके विषयों से हटाकर मन के नियंत्रण में रखना प्रत्याहार है। धारणा का अर्थ है चित्त को अभीष्ट विषय पर जमाना, ध्यान का अभिप्राय है– ध्येय विषय का निरंतर मनन समाधि में तन्मयता आ जाती है। और योगी को अपना कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

(xii) कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त

संसारी प्राणी अपने शुभाशुभ कर्मो के द्वारा कर्मो की श्रंखला बढ़ाता हुआ उसके फल को भोगने के लिए अनादि काल से बार–बार जन्म लेता है। यही कर्म एवं पुनर्जन्म है।

भारतीय दार्शनिकों के अनुसार मानव का पुनर्जन्म होता है, और दूसरे जन्म में मनुष्य प्रथम जन्म में किये गये शुभाशुभ कर्मों का फल निश्चय ही भोगता है इस संसार में रहते हुए मानव को कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है।* वस्तुत: कर्म ही समस्त कारणों का सुख–दु:ख के साधनों का मूल प्रयोजन है। बाल्मीकि रामायण में इसे (कर्म एवं पुनर्जन्म को) भारतीय दर्शन की आधार शिला के रूप में स्वीकार किया गया है। रामायण के महानायक राम का अभिमत है– " संसार शुभाशुभ कार्य करने और उनका फलाफल भोगने की एक कर्मभूमि है। अग्नि, वायु, और सोम भी अपने–अपने कर्मों के परिणाम से बच नहीं सकते।"** कर्म का अपना एक सिद्धान्त है, जो कार्य–कारण सिद्धान्त के अनुसार चला करता है, अर्थात् जैसे काम किये जाते है , उनके फल भी ठीक वैसे ही भोगे जाते हैं। मानव जैसा बोता है, ठीक वैसा ही काटता है।'***

* गीता – 2/47

** रामायण–बाल्मीकि – 6/64/7

*** रामायण–बाल्मीकि – 6/15/23

शांति कुमार का तर्कसंगत कथन है कि– " कर्म का सिद्धान्त मनुष्यों के सुख–दुःख का उनके भाग्य–वैषम्य का एक तर्क संगत स्पष्टीकरण उपस्थित करता है।" * किसी कर्म का फल कब प्राप्त होगा, इस विषय में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। कभी तो किसी उत्कृष्ट शुभ या अशुभ कर्म का फल तत्काल प्राप्त हो जाता है। तो कभी–कभी अनेक जन्मों के पश्चात् कर्म–विपाक उपस्थित होता है। वाल्मीकि रामायण में जब युद्ध में पलटते हुए पासे के विषय में रावण ने कुंभकर्ण को बतलाया, तब कुंभकर्ण ने उससे कहा कि सीताहरण जैसे पाप–कर्म का फल तुम्हें इसी जन्म में और अत्यन्त शीघ्र मिल रहा है।"** ऋषि–मुनियों के द्वारा दिये गये शाप भी उक्त कर्म–सिद्धान्त के अन्तर्गत गिने जायेंगे क्योंकि कोई जघन्य–या घोर पाप कर्म करने के सन्दर्भ में ही शाप विधान हुआ करता था। रामचरितमानस में शाप–सम्प्रदान और शाप–परिसीमन ये दोनों ही स्थितियाँ उपलब्ध है। लोमश जी विप्र को चाण्डाल पक्षी (काक) होने का शाप देते है। " तो दूसरी ओर भगवान् शंकर दंभी शूद्र को एक हजार वर्ष तक सर्प होकर जन्म लेने व मरने का शाप दे देते है। पर इन जन्मों में होने वाले दुःख से मुक्त कर देते है।" *** इन दोनों कर्मो (ऋषि–मुनि से उत्तर–प्रतिउत्तर तथा गुरू का अपमान) को जघन्य कोटि में रखते हुए उक्त प्रकार के शाप दिये गये थे। जो तत्काल प्रभावी हो गये थे। इतिहास–पुराण में ही नहीं वैदिक साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि आर्यो ने कर्म–सिद्धान्त को अच्छी तरह से समझ लिया था। कर्म–सिद्धान्त के द्वारा मृत्यु के रहस्य को भी समझने का प्रयत्न किया गया था। समाज में यह प्रचलित था कि कर्मो के अनुसार जीव विभिन्न शरीरों को धारण करते है।**** " स्वर्ग व नरक का भाव भी वैदिक काल में वर्तमान था। वहाँ यह मान्यता थी कि मृत्यु के पश्चात यम के राज्य मैं आनन्दानुभव किया जाता है।"***** यह भी उल्लेख है कि " स्वर्ग लोक में बहुत से सींगों वाली गायें रहती हैं और वहाँ पर शहद का भण्डार है।" ****** "श्री रामचरितमानस में यह सिद्धान्त उल्लिखित है कि कर्म करने वाले को कटु या मधुर फलन मिलकर अन्य को प्राप्त हो जाता है। यही सब देखकर

*	रामायण कालीन संस्कृति	–	शान्ति कुमार व्यास	पृ0 272
**	मानस	–	7/112	
***	मानस	–	7/109/16	
****	अथर्ववेद	–	19/67–68	
*****	ऋग्वेद	–	6/6/10	
******	ऋग्वेद	–	1/154/5–6	

(xiii) भौतिक जीवन

भौतिक जीवन सदा दुःखमय है, अगर अध्यात्म की ओर रूचि नहीं, तो लेकिन वहाँ राग,द्वेष, धनहीनता, दरिद्रता, धन होते हुए तृष्णा, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग आदि यदि कर्मयोग से कुछ सुख सा प्रतीत होता है लेकिन वह मात्र सुख का आभास ही है। संसार दुःख रूप ही है। भौतिक जीवन के अन्तर्गत लोंगों का रहन–सहन, खान–पान, वेष–भूषा, आचार–विचार , धर्म, भाषा आदि सभी आते हैं। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

1–रहन–सहन और वेशभूषा :– भौगोलिक स्थितियों और वातावरण के कारण हम हर देश की वेश–भूषा में एक अन्तर पाते हैं। यही अन्तर रहन–सहन में भी वैविध्य, उत्पन्न करता है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में शरीर का अधिकांश भाग वस्त्रों से ढका देखा जा सकता है। इसके विपरीत भूमध्यसागरीय भूखण्ड वस्त्रों के प्रयोग में कृपण है। हमारे भारत देश में भी भौगोलिक भिन्नता ही नहीं, धर्म, जाति, रंग, जैसी भिन्नतायें भी हैं। विवाह के बाद सार्वजनिक रूप से महिलाओं द्वारा साड़ी का व्यवहार अपनी एक अलग पहचान बनाता है। साड़ी के अतिरिक्त घांघरा,चोली,चुनरी,सलवार–कुर्ता, आज भी यहाँ की लोकप्रियता और आकर्षण के केन्द्र है। विश्व के किसी भी कोने में पहनावे की यह विविधता देखने में नहीं आती। पुरूषों में भी धोती , कमीज ,पायजामा, कुर्ता, लुंगी, आदि का प्रयोग देखा जा सकता है। पाश्चात्य प्रभाव ने महिलाओं में स्कर्ट और ब्लाउज या टॉप, मैक्सी, गाऊन जैसे वस्त्रों का प्रयोग लोकप्रिय किया है फिर भी यह प्रचलन परम्परा के रूप में आज भी स्वीकारा नहीं गया है।

इसी प्रकार रहन–सहन के दैनिक स्तर में भी हमारी अपनी पहचान रही है। चरण स्पर्श करके बडों का आशीर्वाद ग्रहण करना, छोटों को आशीर्वाद देना और बराबर वालों से गले मिलकर आह्लाद व्यक्त करना हमारा संस्कार हैं, परम्परा है। यह टूटी नहीं है। नारी के सम्मान में हम कन्या का चरण स्पर्श करते हैं , तो दुर्गा,काली,चण्डी,गौरा,पार्वती,गिरिजा जैसी शक्तियों की पूजा कर हम नारी सम्मान की प्रतिष्ठा को पुष्ट करते है। वे सारी परम्परायें हमारी अपनी हैं और रहेंगी।

2— खान—पान व उससे सम्बन्धित आचार—विचार : भोज्य सामग्री उसे पकाने का ढंग और साथ ही खाने का ढंग भी हमारे सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव डालते हैं। ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक सम्पदाओं ने भारत को भोजन सम्बन्धी विविधता दी है। रोटी, चावल, पुलाव, खिचड़ी, रायता, पूरी,कचौरी,आदि —न जाने क्या—क्या व्यंजन हमारे भोजन का अंग है। कई प्रकार के माँसाहारी व्यंजन और अब तो बेक किये हुए बिस्कुट, डबलरोटी, पेस्टी आदि नानाविध व्यंजन भी इस लिस्ट में जुड़ गये हैं। भोजन के समय जाति का ध्यान रख जाना, यहाँ तक की पंगतों में ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, और शूद्रों की अलग—अलग पातें 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक देखी जा सकती थीं। आज भी गाँवों में इसका बहुत कुछ प्रचलन बाकी है। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज में आज भी परिवार की महिलायें ही भोजन पकाने, भोजन परोसने का कार्य करती हैं। सम्भवतः उनकी यही विशेषता परिवार में सद्भाव प्रेम और एक दूसरे के प्रति जुड़े—रहने की भावना को पुष्ट करती है। भोजन करने और पकाने के पूर्व परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का स्नान कर लेना भी हमारी परम्परा है। लाख परिवर्तन और वैज्ञानिकीकारण भी हमारी इन परम्पराओं में परिवर्तन नहीं ला सके हैं।

3— भाषा हमारी संस्कृति में गाय का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है हमारी भाषा ने गौ और गाय की प्रधानता को बरकरार रखते हुए गोमेय, गौमूत्र, गोधुलि गवाक्ष, गोरस, गोपन आदि शब्दों को जन्म दिया। गाय हमारे यहाँ माता के रूप में प्रतिष्ठित है। " ॐ " जैसे शब्द की संरचना व्यक्ति की आयु सीमा को बढ़ाने का एक भाषायी प्रयास अपने आप में अनूठा चमत्कार है। इसी तरह हमारी वृत्तियाँ और धारणायें भी भाषा के माध्यम से प्रकाश में आती रही है। जब हम 'गोरस बेचन' हरी मिलन 'एक पन्थ दो काज ' की बात करते हैं तो हम अपनी अंहिसक वृत्ति का परिचय देते हैं। इसके विपरीत अंग्रेजी भाषा में ' Killing two birds with a stone' आरंल जाति की हिंसक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह से भाषा हमारे सम्वादों को ही सम्प्रेषित नहीं करती, वह हमारी विचार धाराओं ,हमारी चिन्तन प्रणालियों और परम्पराओं की पुष्टि भी करती है— वह हमारी सांस्कृतिक पहचान बनाती है। यही कारण है कि तुलसी सभी प्रकार की भाषाओं को महत्त्व देते हुए भी लोकभाषा का मंडन करते है और उसी में काव्य रचना करते है।*

* दोहावली (उत्तरकाण्ड) — पृ0 572

(7) भारतीय संस्कृति की विशेषतायें

संस्कृति जिसे अंग्रेजी में 'कल्चर' कहा जाता है अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' सर्व प्रथम कृषि–कार्य सम्बन्धी अर्थ का द्योतक था। पहले पहल इसे सुप्रसिद्ध विचारक, बेकन ने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया था और इसे मानव के नैतिक जीवन, धार्मिक जीवन तथा बौद्धिक जीवन के साथ जोड़ा था। उसके पश्चात मैथ्यू आर्नल्ड ने अपनी संस्कृति विषयक अवधारणा को इन शब्दों के माध्यम से प्रकट किया , जीवनगत परिपूर्णता के प्रति प्रेम तथा उस परिपूर्णता का अध्ययन परन्तु व्यक्ति समाज से अलग एकाकी रहकर उक्त 'परिपूर्णता' को नहीं प्राप्त कर सकता। ...... अतः यह एक सामाजिक भाव है, तथा सांस्कृतिक मनुष्य समानता के सच्चे देवदूत हैं।

रैडोलिफ ब्राउन के शब्दों में :– रैडोलिफ ब्राउन संस्कृति को एक पारम्परिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि– " संस्कृति वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी सामाजिक वर्ग या श्रेणी में विचार अनुभूति या क्रिया के सुसंस्कृत ढंग एक व्यवित से दूसरे व्यवित तक और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संक्रान्त किये जाते है।"*

दीर्घकाल के नैरन्तर्य ने संस्कृति को विशिष्ट विशेषताओं से सिंचित किया है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् संस्कृतियों में गण्य है। इसके विकास में आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों दृष्टियों का समावेश है, इसकी प्रमुख विशेषतायें निम्नवत है :–

(1.) प्राचीनता एवं चिरस्थायिता :– भारत की सभ्यता के अवशेष चार लाख से दो लाख ईसा पूर्व के मध्य माने जाने वाले प्रागैतिहासिक युग ये ही प्राप्त होते हैं। भारत की प्रथम संस्कृति सिन्धु–घाटी की संस्कृति मानी जाती है।"** भाषा, धर्म, कला, साहित्य, सामाजिक व्यवस्था आदि दिशाओं में आदर्श क्रिया–कलाप एवं रचनात्मक जीवन की गति–विधियाँ पाँच हजार वर्षो से एक ही मार्ग पर चले आ रहे हैं। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियाँ, भगवदगीता आदि भारतीय विचारों के आज तक आधार स्तम्भ है। विश्व में चीन एवं भारत की संस्कृतियाँ ही ऐसी है जो कि अबाध रूप से आवश्यक परिवर्तन के साथ आज तक स्थायी हैं।

---

* द इण्टरनेशल इनसाईक्लोपीडिया सोशल सायंसिस (भाग 3) – पृ0 536

** भारतीय संस्कृति का विकास – डॉ0 ए0के0मित्तल – पृ0 6

(2.) <u>सहिष्णुता :-</u> आध्यात्मिकता का सीधा परिणाम सहिष्णुता है अध्यात्म में विनयता एवं नम्रता ने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' की सद्भावना को जन्म दिया। इस सद्भावना ने धार्मिक सहिष्णुता की भावना को जन्म दिया। महाभारत में स्पष्ट उल्लिखित है।

"धर्मो यो बाधते धर्मं न स धर्मः कुधर्म तत् ।
अविरोधीतु यो धर्मः स धर्मः सत्य विक्रमः ।।" *

(जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचाये, वह धर्म नहीं वह तो कुधर्म है। धर्म तो वह होता है जो धर्म विरोधी नहीं होता)

भारत में बाहर से इस्लाम, यहूदी, पारसी, और ईसाई समय-समय पर आये और अबाध रूप से पुष्पित एवं पल्लवित हुए। स्वयं भारत हिन्दु, जैन, बौद्ध एवं सिक्ख धर्मो की जन्म स्थली है। हिन्दू धर्म के ही अनेकों सम्प्रदाय अलग-अलग सिद्धान्तों में एक-दूसरे से पृथक् हैं। भारतीय मनीषियों ने धर्म की परिभाषा देते हुए कहा है -

" यतो ऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः "

(अर्थात जिससे उन्नति और कल्याण की सिद्धि होती है वह धर्म है।) मनुष्य के विविध संस्कार सामाजिक कार्य शारीरिक एवं मानसिक उन्नति आदि सभी धर्म के अंग माने गये हैं। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

(3.) <u>अवतारवाद</u> ईश्वर के सगुण अस्तित्व में आस्था रखने वाले भारतीयों को यह दृढ़ विश्वास है कि संसार में धर्म की स्थापनार्थ तथा अधर्म की विनाशार्थ समय-समय पर भगवान मनुष्य रूप में इस पृथ्वी पर अवतार लिया करते है। श्रीमद्भागवत् गीता में इसी का उल्लेख हुआ है -

" यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। "
" परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे। " **

---

* महाभारत - नवपर्व - 131/11
** श्रीमद्भगवद् गीता - 4/7/8

धर्म के रक्षार्थ तथा अधर्म के विनाशार्थ ईश्वर के मत्स्य कर्म, वराह,नृसिंह, वामुन, परशुराम, राम,कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ये दस अवतार माने गये हैं इन दस अवतारों में सर्वाधिक जन–मानस् को प्रभावित करने वाले दो ही अवतार माने गये हैं – राम और कृष्ण। भारतवासी अपने आपको राम और कृष्ण का वंशज कहने में गर्व का अनुभव करते हैं।

(4.) <u>महान पुरूषों के प्रति श्रृद्धा एवं भक्ति</u> :– जिन महान पुरूषों, ऋषियों और योद्धाओं ने देश और जाति का हित सम्पादन किया है उनके प्रति प्रत्येक भारतवासी श्रृद्धा एवं भक्ति से अवनत रहता है। अपने से बड़ों के प्रति भी हमें आदर भाव रखना चाहिए ऐसी शिक्षा हमारी संस्कृति हमें प्रदान करती है। शास्त्रों में 'मातृ–देवो भव ', 'पितृ देवो भव ' और 'आचार्य देवो भव ' की भावना इसी प्रवृत्ति की द्योतक है इतना ही नहीं हमें अपने से बड़े प्रत्येक व्यक्ति का आदर सम्मान करना चाहिए, ऐसी प्रेरणा भारतीय संस्कृति देती है। बड़े की परिभाषा में आयु, विद्या, बुद्धि, यश और बल में जो हमसे बड़ा है। वह आता है।

हमारे यहाँ गौतम, कणाद, व्यास, विदुर तथा चाणक्य जैसे नीतिज्ञों तुलसी,सूर, नानक, कबीर, जैसे सन्तों, भीम अर्जुन, अभिमन्यु, अशोक विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, शिवाजी जैसे वीरों आदि को बड़ी ही श्रृद्धा एवं भक्ति के साथ स्मरण किया जाता है।

(5.) <u>वर्णाश्रम व्यवस्था</u> :– भारतीय समाज के विकास एवं संगठन के मूल में वर्ण एवं आश्रम–व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है। वर्ण–व्यवस्था में चारों वर्णो– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का स्थान नियत था। समाज के इन चारों अंगों का सामाजिक–व्यवस्था के सुचारू सम्पादन हेतु विधान किया गया। वर्ण व्यवस्था का उल्लेख ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में प्राप्त होता है। यथा –

'' ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजस्यः कृतः। '
उरू तदस्थ यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।। '' *

अर्थात् इन चारों वर्णो की उत्पत्ति विराट पुरूष के विभिन्न अंगों से हुई है। ब्राह्मण की उत्पत्ति मुख से, क्षत्रिय की उत्पत्ति बाहुओं से, वैश्य की उत्पत्ति जंघा से और शूद्र की उत्पत्ति उनके चरणों से मानी गयी है। गीता में स्वयं श्री कृष्ण भगवान ने संसार में गुण –कर्म के आधार पर चार वर्णो के विधान का उल्लेख करते हुए कहा –

* ऋग्वेद – 10 / 90 / 12

धर्म के रक्षार्थ तथा अधर्म के विनाशार्थ ईश्वर के मत्स्य कर्म, वराह,नृसिंह, वामुन, परशुराम, राम,कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ये दस अवतार माने गये हैं इन दस अवतारों में सर्वाधिक जन–मानस् को प्रभावित करने वाले दो ही अवतार माने गये हैं – राम और कृष्ण। भारतवासी अपने आपको राम और कृष्ण का वंशज कहने में गर्व का अनुभव करते हैं।

(4.) <u>महान पुरूषों के प्रति श्रृद्धा एवं भक्ति</u> :– जिन महान पुरूषों, ऋषियों और योद्धाओं ने देश और जाति का हित सम्पादन किया है उनके प्रति प्रत्येक भारतवासी श्रृद्धा एवं भक्ति से अवनत रहता है। अपने से बड़ों के प्रति भी हमें आदर भाव रखना चाहिए ऐसी शिक्षा हमारी संस्कृति हमें प्रदान करती है। शास्त्रों में 'मातृ–देवो भव ', 'पितृ देवो भव ' और 'आचार्य देवो भव ' की भावना इसी प्रवृत्ति की द्योतक है इतना ही नहीं हमें अपने से बड़े प्रत्येक व्यक्ति का आदर सम्मान करना चाहिए, ऐसी प्रेरणा भारतीय संस्कृति देती है। बड़े की परिभाषा में आयु, विद्या, बुद्धि, यश और बल में जो हमसे बड़ा है। वह आता है।

हमारे यहाँ गौतम, कणाद, व्यास, विदुर तथा चाणक्य जैसे नीतिज्ञों तुलसी,सूर, नानक, कबीर, जैसे सन्तों, भीम अर्जुन, अभिमन्यु, अशोक विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, शिवाजी जैसे वीरों आदि को बड़ी ही श्रृद्धा एवं भक्ति के साथ स्मरण किया जाता है।

(5.) <u>वर्णाश्रम व्यवस्था</u> :– भारतीय समाज के विकास एवं संगठन के मूल में वर्ण एवं आश्रम–व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है। वर्ण–व्यवस्था में चारों वर्णों– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का स्थान नियत था। समाज के इन चारों अंगों का सामाजिक–व्यवस्था के सुचारू सम्पादन हेतु विधान किया गया। वर्ण व्यवस्था का उल्लेख ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में प्राप्त होता है। यथा –

'' ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजस्यः कृतः। '
उरू तदस्थ यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।। '' *

अर्थात् इन चारों वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरूष के विभिन्न अंगों से हुई है। ब्राह्मण की उत्पत्ति मुख से, क्षत्रिय की उत्पत्ति बाहुओं से, वैश्य की उत्पत्ति जंघा से और शूद्र की उत्पत्ति उनके चरणों से मानी गयी है। गीता में स्वयं श्री कृष्ण भगवान ने संसार में गुण –कर्म के आधार पर चार वर्णो के विधान का उल्लेख करते हुए कहा –

* ऋग्वेद – 10/90/12

" चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्मविभागशः।

तस्य कर्त्तारमपि मां विदध्यकर्त्तारमत्ययम्।। " *

प्राचीन साहित्य में वर्ण व्यवस्था के मूल में जहाँ सामाजिक– व्यवस्था की भावना निहित थी। वहाँ आश्रम–व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्तिगत जीवन का था। मानव जीवन की समृद्धि हेतु चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास का विधान किया गया। मानव का जीवन औसत सौ वर्ष मानकर जीवन को 25–25 वर्षों के अन्तर से चार आश्रमों में विभक्त किया गया। जीवन के चार पुरूषार्थ धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति भी इन्हीं आश्रमों द्वारा सम्भव थी। प्राचीन काल से वर्ण तथा आश्रम– व्यवस्था की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य माना जाता है।

(6.) <u>*विश्व बन्धुत्व की भावना*</u> – भारतीय संस्कृति में व्यक्ति समाज एवं जाति से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व की भावनाओं की सराहना की गयी है। भारतीय आर्य जाति ने व्यक्तिगत सुख को त्यागकर विश्व कल्याण की परिकल्पना को अपनाया है। भतृहरि के नीतिशतक में ऐसा उल्लेख मिलता है कि श्रेष्ठ पुरुष उसी को समझा जाता है जो स्वार्थ का परित्याग करके परोपकार में प्रवृत्त रहता है।** भारतीय ऋषियों ने गृहस्थ धर्म की जिन भूतयज्ञ एवं अतिथि यज्ञों का समावेश किया है वे भी निश्चय ही परोपकार एवं विश्व कल्याण की भावना से अनुप्रमाणित है। भारतीय वैदिक धर्म से भिन्न जैन ,बौद्ध आदि ध र्मो में भी विश्व बन्धुत्व की भावना को महत्त्व दिया गया है।

(7.) <u>*यम–नियमों का पालन*</u> – भारतीय संस्कृति में यम–नियमों का पालन भी अनिवार्य माना गया है। यम पाँच कहलाते है। – सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा नियम पाँच बतलाये गये हैं :– शौच, सन्तोष , तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान। भारतीय ऋषि मुनियों ने व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक सुव्यवस्था हेतु इन यम–नियमों का पालन अनिवार्य बतलाया है।

(8.) *ग्रहणशीलता* – भारत की सांस्कृतिक विशेषता में उसकी उदारता की ग्रहणशीलता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारत में जितनी भी विदेशी जातियाँ आई उन्होनें भारत को राजनीतिक दृष्टि से तो अपने अधीन अवश्य किया। परन्तु सांस्कृतिक

---

* श्रीमद्भगवद् गीता – 18/4

** एते सत्पुरूषाः पुरार्थ घटकाः स्वार्थ परित्यज्य ये – भर्तृहरि – शतक नीति – 78

दृष्टि से वे भारत को विजय नहीं कर पायी। प्राचीन भारत में जितनी भी विदेशी जातियाँ यहाँ आई वे भारतीय रंग में रंग गई। फलस्वरूप विभिन्न भाषाओं, रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं का जन्म हुआ परन्तु भारत की सांस्कृतिक एकता यथावत् बनी रही।

(9.) विविधता में एकता भारत के प्रत्येक प्रदेश को खान–पान, रहन–सहन,वेश–भूषा, धर्म, भाषा आदि विभिन्नताओं को आधार मानकर प्रायः यह कहा जाता है कि भारतवर्ष एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र है परन्तु जलवायु, जाति, धर्म और भाषा आदि में विभिन्नता होते हुए भी भारत की मौलिक एकता को सहज स्वीकार किया जा सकता है। भारत की भौगोलिक सीमाओं ने उसे भौगोलिक इकाई का रूप प्रदान किया है। इस भौगोलिक एकता को दृष्टिगत करते हुए ही विष्णु–पुराण में कहा गया –

" उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।" *

(समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का सारा प्रदेश भारत है और वहाँ की सन्तानें भारती(भरत की सन्तान) है। भारत की आध्यात्मिकता में सांस्कृतिक एकता के चिन्ह स्पष्ट होते हैं। प्रत्येक सनातनी हिन्दू स्नान करते समय कहता है कि यथा –

' गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरू।। **

(मैं गंगा,यमुना,सरस्वती,गोदावरी, सिन्धु और कावेरी के जल में स्नान करूँ।)

अतः स्पष्ट है कि उसका दृष्टिकोण एक नदी तक नहीं, भारत की सभी नदियों तक विस्तृत है। चारों मठ भारत को एक सीमा में बाँधने का प्रयत्न है। धार्मिक विभिन्नताओं के होते हुए भी हिन्दु, मुसलमान, पारसी, एवं ईसाई कतिपय आर्थिक व राजनीतिक बन्धनों से जुड़े है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – भारतीय राष्ट्र का अस्तित्व तब तक रहेगा जब तक कि वे अपनी आध्यात्मिकता का त्याग नहीं करेंगे। *** प्राचीन भारतीय साहित्य एवं अभिलेखों में सार्वभौम सम्राट की कल्पना एवं एतिहासिक युग में अश्वमेध यज्ञ की धारणायें राजनैतिक जीवन में एकता की भावना का प्रयास था। राष्ट्रीय एकता की स्थापना

---

* संस्कृत निबंधावलिः – डॉ0 रामजी उपाध्याय – पृ0 1

** भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास – डॉ0 वी0एन0लूनिया पृ0 12

*** भारतीय संस्कृति का विकास – डॉ0 ए0के0मित्तल पृ0 7

की भावना ने –– जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी " (जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती है। जैसे उद्‌गारों को जन्म दिया।

अतः भारतवासियों ने भारत को एक भौगोलिक इकाई मानते हुए देश–प्रेम को धर्म से जोड़ दिया। भारतीय संस्कृति भारत की आत्मा है। भारतीय संस्कृति की कहानी एकता व समन्वयवाद की कहानी है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायक है। इसलिए भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करते हुए डॉ0 इकबाल ने कहा है – " कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी "

(8) भारतीय संस्कृति का विकास

भारत एशिया महाद्वीप का एक भाग है जो उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। इसकी मुख्य भूमि 8·4′ से 37·6′ उत्तरी अक्षाँश तथा 68·7′ से 97·25′ पूर्वी देशान्तर के मध्य फैली हुई है। उत्तर से दक्षिण तक इसका विस्तार 3,214 किलो मी0 तथा पूर्व से पश्चिम तक 2,933 किलोमी0 है इसका क्षेत्रफल 32,87,742 वर्ग किलोमी0 है। क्षेत्र की दृष्टि से भारत विश्व का सातवाँ देश है इनका नाम राजा भरत के पराक्रम के कारण भारत पडा और सिन्धु नदी के यहाँ बहने से स्थान से हिन्दुस्तान पड़ा। इसका उत्तरी भाग हिमाद्रि श्रृंखलाओं एंव शेष तीनों दिशायें समुद्र आवृत्त है। इसी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ने उसे शेष विश्व से एक अलग इकाई के रूप में चित्रित तो किया ही है साथ ही भारत के सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया है। यहाँ के उपजाऊ भू–स्थल ने यहाँ समृद्धशीलता को जन्म दिया साथ ही विदेशी आक्रान्ताओं को प्रभावित किया। आर्य,यवन,शक,हूण,कुषाण,अरब,तुर्क मुगल,पुर्तगाल,डच,अंग्रेज, एवं फ्रांसीसी आदि जातियाँ भारत में प्रविष्ट हुई। जिन्होनें समय–समय पर यहाँ की संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय संस्कृति का निर्माण किसी एक समय या किसी एक जाति विशेष ने नहीं किया। यह तो दीर्घकाल एवं विभिन्न जातियों के योगदान का परिणाम है। वास्तव में संस्कृति युग–युगों का परिणाम होती है। भारत में मानव की प्रगति का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से ही दृष्टिगोचर होता है। पूर्व पाषाण काल का मानव नितान्त असभ्य था, परन्तु भारतीय संस्कृति के निर्माण में उसके योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। निग्रिटों ने धनुष–वाण के प्रयोग की विधि का श्रीगणेश किया। नौका एवं अनढ़ ढडोगियों

का प्रयोग इन्हीं की देन है। नव पाषाण कालीन मानव की देन कृषि, पशुपालन, अग्नि, धातु, का प्रयोग पशु, भूत–प्रेत प्राकृतिक वस्तुओं की उपासना आदि है। भारतीय संस्कृति के जन्म एवं विकास में हड़प्पा सभ्यता की देन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। नगरों भव्य इमारतों, वस्त्राभूषण एवं प्रंशसनीय कला कृतियों के निर्माण, शिव एवं मातृपूजा एवं योग दर्शन के क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता अविस्मरणीय है। आर्यो ने भारत पर आक्रमण कर सिन्धु सभ्यता का पतन तो किया परन्तु भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों एवं परम्पराओं के निर्माण में एक ऐसा अध्याय जोड़ दिया जिसने कि आज तक भारतीय संस्कृति के मूल का स्थान ग्रहण किया है। वर्ण– व्यवस्था,आश्रम–व्यवस्था,ऊषा, इन्द्र, वरूण,विष्णु, शिव, एवं सूर्य आदि देवी–देवताओं की उपासना तथा याज्ञिक कर्मकाण्ड जो कि भारतीय धार्मिक जीवन का मूलभूत अंग है। पूर्व वैदिक–काल (ऋग्वेद के रचनाकाल) की ही देन है। उत्तर वैदिक काल में जबकि आर्य सप्त सिन्धु प्रदेश से आगे बढ़कर काशी,कौशल, व विदेह तक फैल गये तथा सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों की रचना हुई, याज्ञिक कर्मकाण्ड एवं वर्णाश्रम व्यवस्था का विकास हुआ। जिससे ब्राह्मण धर्म का विकास द्रुतगति से हुआ। परन्तु उपनिषदों की रचना ने समाज को निवृत्ति मार्ग की ओर परिवर्तित किया एवं वर्ण –व्यवस्था व याज्ञिक कर्मकाण्ड का विरोध किया। फलस्वरूप दर्शन के क्षेत्र में ' वेदान्त दर्शन' का जन्म हुआ। दर्शन, समाज एवं धर्म के मूल नियमों को सूत्रकाल में लिपिबद्ध किया गया। भारतीय संस्कृति के अमूल्य ग्रन्थ स्रोतसूत्र, गृह्य सूत्र, वादरायण का वेदान्त सूत्र, पाणिनी की अष्टाध्यायी इसी युग की देन है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व बौद्ध, वैष्णव शैव धर्मो के जन्म एवं जैन धर्म के विकास ने अपने विचारों से भारतीय जन–मानस को प्रभावित किया। जिससे धर्म ही नहीं सामाजिक व्यवस्था में भी परिर्वतन आरम्भ हो गये। बौद्ध एवं जैन धर्मों ने जाति–पाँति एवं वैदिक कर्मकाण्डों का विरोध कर तप,त्याग,अहिंसा, एवं नैतिक चारित्रिक विकास पर बल दिया। बौद्ध धर्म में तो भिक्षुओं, मठों और विहारों को अधिक महत्त्व दिया गया। जिससे संस्कृति की धाराओं का जन्म हुआ।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व से ईसा की प्रथम सदी तक आते आते भारत पर ईरानी एवं यूनानी आक्रमणों तथा मौर्य साम्राज्य की स्थापना ने भारत को भारतीय संस्कृति के रचनात्मक निर्माण की दृष्टि से आलोड़ित कर दिया। ईरानियों के हखमनी सम्प्रदाय का प्रभाव भारतीय राज्यों पर भी पड़ा। ईरानियों ने सर्वप्रथम भारत को हिन्दू देश कहा तथा

भारतीयों को हिन्दू। यूनानियों के आक्रमणों के प्रभाव से भारत में यूनानी राज्य स्थापित हुए और वैवाहिक सम्बन्धों का सूत्रपात हुआ। भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण निधि धर्म विजय का वास्तविक उद्घोष अशोक के शासन काल में हुआ। देश के राजनैतिक एकीकरण के प्रयास हुए। परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् आने वाले चार सौ वर्षो में यवन,शक,पल्लव और कुषाण जातियों का प्रवेश भारत में हुआ। इन जातियों के भारतीय समाज में मिल जाने से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उथल–पुथल उत्पन्न हो गयी। इन जातियों से उत्पन्न सन्तानों को समाज में प्रतिस्थापित करने के लिए मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों की रचना हुई। विदेशी आक्रान्ताओं को पूर्णतः भारत में प्रवेश करने से रोकने का कार्य गुप्तकाल में हुआ। यह काल सांस्कृतिक दृष्टि से स्वर्णकाल था। कालिदास जैसे महाकवि असंग एवं वसुन्धरा जैसे दार्शनिक आर्यभट्ट जैसे गणितज्ञ एवं वराहमिहिर जैसे ज्योतिषाचार्य इसी युग की देन है। सांस्कृतिक विकास के इस क्रम को गुप्त काल के पश्चात धक्का लगा, परन्तु उसके पश्चात राजपूत काल में पुनः अव्यवस्था स्थापित हो गयी। यह उल्लेखनीय है कि राजपूतकाल आक्रमण करने वाले तुर्क में आक्रमणकारियों एवं उसके पश्चात मुगल आक्रमणकारियों ने स्वयं को हिन्दू संस्कृति में विलीन नहीं होने दिया। परन्तु सांस्कृतिक आदान प्रदान तो हुए ही। इसका स्पष्ट प्रमाण कबीर, नानक,दादू,नामदेव के विचार सूफी मत एवं दिल्ली सल्तनत युग की भवन–निर्माण कला एवं मुगलकाल के तुलसी, सूर, जैसे महाकवि, तानसेन जैसे संगीतज्ञ एवं ताजमहल जैसी कला है। मुगलों के पतन के पश्चात् भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का आधिपत्य स्थापित हुआ। ब्रिटिश शिक्षा ने भारतीय विद्यार्थियों के ह्दय में भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। परन्तु महर्षि दयानन्द, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, तिलक व महात्मा गाँधी आदि महापुरूषों ने भारतीय संस्कृति में आई कतिपय बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न करते हुए भारतीय संस्कृति के पुनरूद्धार का प्रयत्न किया। महात्मा गाँधी जी ने तो सत्य, अहिंसा, जैसे अस्त्रों का मार्ग अपनाया तथा हिन्दू संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहना प्रारम्भ कर दिया।

विश्व में समय समय पर अनेक संस्कृतियों मिस्र,बेबीलोन,स्पार्टा,रोम,यूनान, आदि का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ समय तक इन संस्कृतियों ने अपनी चकाचौंध से सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षिक किया। पर वे कुछ काल के पश्चात् ही अतीत के गर्भ में चली गयी। किन्तु

भारतीय संस्कृति पर अनेकानेक विदेशी धर्म एवं संस्कृतियों के आक्रमण होने पर भी वह अपनी महत्ता के कारण आज भी जीवित है। इसका सबसे बड़ा कारण समय के साथ भारतीय संस्कृति के आवश्यक परिवर्तनों को स्वीकार करना है। प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति का अत्यधिक प्रचार–प्रसार हुआ। इसके प्राचीन अवशेष आज भी अफगानिस्तान,चीन,ईरान, तिब्बत, वर्मा, मलाया,सुमात्रा, आदि देशों की संस्कृतियों में विद्यमान है।' संस्कृति शाश्वत एवं सनातन है।* विश्व की प्रत्येक जाति तथा राष्ट्र की संस्कृति की अपनी अलग आत्मा होती है। यही आत्मतत्व उसकी विशिष्टता एवं पृथकता का द्योतक है। यही आत्मतत्त्व संस्कृति का बीज कहा जाता है। जो प्रवाह रूप में नित्य बना रहता है। वृक्ष सूख जाता है किन्तु उसका बीज अनुकूल समय पाकर फिर उग उठता है। इसी प्रकार जातियाँ तथा राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं किन्तु उनकी संस्कृति उनके बाद भी बनी रहती है। संस्कृतियों में जो अनेकता या भिन्नता देखने को मिलतीहै उसका कारण है मानव वंशों की पृथकता जब विरोधी रूप धारण कर उनमें संघर्ष हुआ तो एक दूसरे ने एक–दूसरे के जीवन्त एवं उपादेय तत्त्वों को ग्रहण किया। संघर्ष में ही नहीं सामंजस्य की स्थितियों में भी यही हुआ। एक संस्कृति द्वारा दूसरी संस्कृति की उपादेयता ग्रहण करने की यह परम्परा बहुत पुरातन है। संस्कृतियों के द्वारा पारस्परिक उपादानों को ग्रहण करने की यह प्रवृत्ति निरन्तर आगे बढ़ती गयी। विश्व की अन्य संस्कृतियों के विकास के मूल में चाहे जो भी कारण विद्यमान रहे हों किन्तु भारतीय संस्कृति का विकास इसी रूप में हुआ। इसका आरंभिक विकास दो रूपों में हुआ। एक रूप का निर्माण तो समाज की वास्तविक या प्रकृत अन्तश्चेतना द्वारा हुआ और दूसरे का निर्माण तो समाज की वास्तविक या प्रकृत अन्तश्चेतना द्वारा हुआ और दूसरे का निर्माण पारस्परिक संघर्षो के कारण हुआ। ये दोनों कारण उसके विकास के आधार बने। इन आधारों ने उसको सतत नये–नये रूप दिये। ये नये रूप ही संस्कृति के 'परिवर्तन' कहे गये। पूर्व की अपेक्षा आगे–आगे जो नत्य एवं रूचिकर है, वही तो परिवर्तन है। इस दृष्टि से संस्कृति अपने नत्य–भव्य रूपों में निरन्तर विकसित होती गयी। विश्व की जो संस्कृतियाँ आगे बढ़ी उन्होनें अपने–अपने लिए लोकमंगल का स्थायी आधार और मानव आदर्शों को अपना सम्बल बनाया। यद्यपि प्रत्येक संस्कृति के विकास में देशकाल और परिस्थितियाँ एकमात्र

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गौरोला – पृ0 219

कारण रही है, फिर भी संस्कृति के जो शाश्वत मूल्य और सार्वजनीन मान्यताएँ है वे सभी युगों और परिस्थितियों में एक जैसे बने रहे और उन्हीं के द्वारा संस्कृति का निरन्तर विकास होता रहा। एक और दृष्टि से संस्कृति का विकास दो रूपों में हुआ– आध्यात्मिक और आधिभौतिक।* प्राकृतिक पदार्थो में मानव कृत परिर्वतनों एवं संस्कारों से भौतिक संस्कृति का निर्माण हुआ। मानव को जिस क्रिया में उसकी आत्मा या प्रकृति का संस्कार होता है उसे संस्कृति का अध्यात्मिक पक्ष कहा जाता है। मानव ने अब तक जो भौतिक प्रगति की है वही उसकी भौतिक संस्कृति का विकास है। इस प्रगति के अन्तर्गत विज्ञान, पशुपालन, शिल्प आदि का नाम लिया जा सकता है। इसी प्रकार मानव की आध्यात्मिक संस्कृति के अन्तर्गत धर्म,नीति,कलाएँ,और साहित्य का उल्लेख किया जा सकता है। संस्कृति के ये दोनों पक्ष परिस्थितियों और वातावरण के अनुरूप परम्परा से न्यूनाधिक्य रूप में आगे बढ़ते रहे। आध्यात्मिक संस्कृति का सम्बन्ध आन्तरिक और भौतिक संस्कृति का सम्बन्ध बाह्य जगत से होता है। इसलिए आध्यात्मिक संस्कृति का केन्द्र स्थल आत्मा है मनुष्य की आत्मा या अन्तस्थ में प्रसुप्त अनुभूतियाँ ही स्थूल पाषाण में मूर्ति को खोज लेती है। एक छोटे से कागज पर वह अनन्त आकाश और अथाह सागर को बैठा देता है। ऐसा वह इसलिए कर पाता है कि परम्परा द्वारा उसमें अनुभूतियाँ संचित होती हैं। संस्कृति के विकास की परम्परागत परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि व्यक्तियों के जीवनादर्श ही उसके मूल कारण रहे है। ये वैयक्तिक जीवनादर्श ही श्रेष्ठ समाज की निर्माण करते है। और उन्हें ही सामाजिक आदर्श के नाम से कहा जाता है। यही कारण है कि व्यक्ति के उच्चादर्शो को समाज का दर्पण कहा जाता है।** इस द्रष्टि से यदि देखा जाय जो रामायणकालीन और महाभारतकालीन संस्कृति के मूलाधार श्री राम और श्रीकृष्ण तथा कौरव–पाण्डवों के वैयक्तिक जीवनदर्शन थे। इसी प्रकार जैस संस्कृति तथा बौद्ध संस्कृति के आधार–स्तम्भ महावीर स्वामी तथा बुद्ध के आधर्श ही रहे है। अतीत और वर्तमान में किसी भी युग में सर्वत्र यही स्थिति देखने को मिलती है। अतः भारतीय संस्कृति के विकास को अनवरत क्रमबद्ध एवं निरन्तर प्रवाहशील कहना अनुचित नहीं होगा।

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गौरोला – पृ0 220

** वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गौरोला – पृ0 220

कारण रही है, फिर भी संस्कृति के जो शाश्वत मूल्य और सार्वजनीन मान्यताएँ है वे सभी युगों और परिस्थितियों में एक जैसे बने रहे और उन्हीं के द्वारा संस्कृति का निरन्तर विकास होता रहा। एक और दृष्टि से संस्कृति का विकास दो रूपों में हुआ– आध्यात्मिक और आधिभौतिक।* प्राकृतिक पदार्थो में मानव कृत परिर्वतनों एवं संस्कारों से भौतिक संस्कृति का निर्माण हुआ। मानव को जिस क्रिया में उसकी आत्मा या प्रकृति का संस्कार होता है उसे संस्कृति का अध्यात्मिक पक्ष कहा जाता है। मानव ने अब तक जो भौतिक प्रगति की है वही उसकी भौतिक संस्कृति का विकास है। इस प्रगति के अन्तर्गत विज्ञान, पशुपालन, शिल्प आदि का नाम लिया जा सकता है। इसी प्रकार मानव की आध्यात्मिक संस्कृति के अन्तर्गत धर्म,नीति,कलाएँ,और साहित्य का उल्लेख किया जा सकता है। संस्कृति के ये दोनों पक्ष परिस्थितियों और वातावरण के अनुरूप परम्परा से न्यूनाधिक्य रूप में आगे बढ़ते रहे। आध्यात्मिक संस्कृति का सम्बन्ध आन्तरिक और भौतिक संस्कृति का सम्बन्ध बाह्य जगत से होता है। इसलिए आध्यात्मिक संस्कृति का केन्द्र स्थल आत्मा है मनुष्य की आत्मा या अन्तस्थ में प्रसुप्त अनुभूतियाँ ही स्थूल पाषाण में मूर्ति को खोज लेती है। एक छोटे से कागज पर वह अनन्त आकाश और अथाह सागर को बैठा देता है। ऐसा वह इसलिए कर पाता है कि परम्परा द्वारा उसमें अनुभूतियाँ संचित होती हैं। संस्कृति के विकास की परम्परागत परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि व्यक्तियों के जीवनादर्श ही उसके मूल कारण रहे है। ये व्यैक्तिक जीवनादर्श ही श्रेष्ठ समाज की निर्माण करते है। और उन्हें ही सामाजिक आदर्श के नाम से कहा जाता है। यही कारण है कि व्यक्ति के उच्चादर्शो को समाज का दर्पण कहा जाता है।** इस द्रष्टि से यदि देखा जाय जो रामायणकालीन और महाभारतकालीन संस्कृति के मूलाधार श्री राम और श्रीकृष्ण तथा कौरव–पाण्डवों के वैयक्तिक जीवनदर्शन थे। इसी प्रकार जैस संस्कृति तथा बौद्ध संस्कृति के आधार–स्तम्भ महावीर स्वामी तथा बुद्ध के आधर्श ही रहे है। अतीत और वर्तमान में किसी भी युग में सर्वत्र यही स्थिति देखने को मिलती है। अतः भारतीय संस्कृति के विकास को अनवरत क्रमबद्ध एवं निरन्तर प्रवाहशील कहना अनुचित नहीं होगा।

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गौरोला – पृ0 220

** वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गौरोला – पृ0 220

अध्याय—द्वितीय

कवि का जीवन, समय एवं साहित्य

1. सियारामशरण गुप्त जी का जीवन वृत्त।

2. परिवेश–
   - (i) राजनैतिक परिस्थितियाँ।
   - (ii) आर्थिक परिस्थितियाँ।
   - (iii) धार्मिक परिस्थितियाँ।
   - (iv) साहित्यिक परिस्थितियाँ।
   - (v) सांस्कृतिक परिस्थितियाँ।
   - (vi) सामाजिक परिस्थितियाँ।

अध्याय-द्वितीय

कवि का जीवन, समय एवं साहित्य

1. कवि सियारामशरण गुप्त जी का जीवन वृत्त –

साहित्य की विधाओं में जीवनी–साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। किसी व्यक्ति विशेष का जीवन वृत्तान्त जीवनी कहलाता है। जीवनी का अग्रेंजी पर्याय शब्द लाइफ अथवा बायोग्राफी है।

उत्तर प्रदेश के झांसी जिले के चिरगाँव नामक कस्बे में भाद्र पूर्णिमा सम्वत् 1952 वि0 (1859 ई0) को कविरत्न सियारामशरण जी गुप्त का जन्म हुआ था। *

यह स्थान कानपुर झांसी रोड पर पडता है। इनके पिता का नाम सेठ रामचरण था। यह वैश्य जाति के थे। वैश्यों की जिस शाखा में सियारामशरण गुप्त जी का जन्म हुआ था उसे गहोई नाम से जाना जाता है। कहा जाता है कि गहोई शब्द गृहपति का अपभ्रंश है। बुन्देलखण्ड में गहोई वैश्यों की संख्या अधिक है। परिवार के कुछ लोग जैन धर्म से प्रभावित होकर जैनी हो गये थे। खजुराहो के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण गहोईयों ने कराया था। टीकमगढ के पास पपौरा नामक स्थान पर पत्थर की एक मूर्ति है जिसका निर्माण इन्हीं गहोई जैनियों द्वारा किया गया था। उस मूर्ति पर गहोई शब्द भी लिखा है। यहाँ के जैनी दिगम्बर सम्प्रदाय के है।**

सियारामशरण गुप्त जी का वंश कनकने नाम से प्रख्यात है। कनकने वंश के ही राघव जू कनकने सर्वप्रथम चिरगाँव आये थे। उस समय चिरगाँव पर अंग्रेजो का अधिकार था। राघव कनकने का परिवार आगे बढा और उनके पुत्र का नाम ललिन जू था। ललिन जू के तीन पुत्र उत्पन्न हुये, रामचरण,घनश्याम दास और भगवान दास। रामचरण जी को दाऊ जी के नाम से जाना जाता था। यह वंश वेली आगे बढती है और रामचरण जी के पाँच पुत्र उत्पन्न होते है। उनके नाम क्रम के अनुसार इस प्रकार है – महारामदास,रामकिशोर,मैथिलीशरण,सियारामशरण और चारुशीलाशरण।***

सियारामशरण जी के पिता के पास अच्छी खासी जमींदारी थी, जिसे उन्होंने समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए खरीदा था। वह धार्मिक विचारधारा के व्यक्ति थी। भगवान की भक्ति में लीन होकर उनका सारा समय व्यतीत हो जाता था। वह धार्मिक

---

* (i) सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 15

* (ii) भाषाकिरण–उ0प्र0बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा प्रकाशित कक्षा 8 की पाठ्य पुस्तक–पृ0 8

** सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 4

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 15

अनुष्ठानों का आयोजन करते जिसमें दूर–दूर से पंडितों,साधुओं एवं हरिभक्तों का आगमन होता था। पिता से अनुशासन और हरिभक्ति के संस्कार प्राप्त करने वाले सियारामशण गुप्त जी ही थे। सियारामशरण जी के पिता सेठ रामचरण जी के दो विवाह सम्पन्न हुये थे। सेठ रामचरण जी की पहली पत्नि से महाराम उत्पन्न हुये थे तथा दूसरी पत्नि श्रीमति काशीबाई से चार पुत्र उत्पन्न हुये। *

जिनमें सियारामशरण गुप्त जी का स्थान तीसरा था। उनकी शिक्षा प्राईमरी तक थी। उनका अनेक भाषाओं पर अधिकार था। जिनका अध्ययन उन्होंने घर पर ही किया था। संस्कृत,बंगला,गुजराती और अंग्रेजी में वह पारंगत थे। **

अंग्रेजी का अध्ययन करने में उनकी विशेष रूचि थी। एक बार टेनिसन की एक कविता का अनुवाद भी उन्होंने किया था। आरम्भ से ही उनका रूझान कविता की ओर था।

सियारामशरण जी के बचपन में कोई बचपना नहीं था। हाँ, स्वाध्याय के प्रति एक ललक अवश्य थी। चपलता से उनका व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही लिपटा था। एक बार मैथिलीशरण जी ने उनके सम्बन्ध में कहा – " सियाराम के पैर के फोड़े से इतनी पीव (मवाद) निकली कि मानो उनका सारा शरीर ही निचुड़ गया सम्भव है, उसी के कारण उनकी बाढ मारी गयी हो।" प्रारम्भ मे सियारामशरण जी के कोमल हृदय पर इस पीड़ा का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। आश्चर्य तो इस बात का है कि व्यवसाय जमींदारी और धार्मिकता के त्रिभुज के अन्दर सियारामशण जी ने अपनी रूचि का एक ऐसा बिन्दु खोज लिया था, जिसका सीधा सम्बन्ध देश की आम जनता से था। उनकी दृष्टि पहले वहाँ जाती थी, जहाँ करूणा थी, दैन्य था, दुःख था,शोषण एवं अनाचार था। जितना उन्हें (सियारामशरण गुप्त) उनका " आज " पसन्द था उतना न तो बीता हुआ कल पसन्द था और न आने वाला कल। जिस मार्ग पर उन्हें चलना था वह मार्ग उन्होंने स्वयं खोज लिया था।

जैसे–जैसे अनुभव बृद्धि और शरीर प्रौढ़ावस्था की ओर अग्रसर होने लगा, सियारामशरण जी का रूझान काव्य रचना की ओर बढ़ने लगा। वास्तविकता यह थी, कि सियारामशरण गुप्त संकोची स्वभाव के कारण अपनी रचना किसी को दिखाना नहीं चाहते थे। यह

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 16

** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 16

सम्भव नहीं था क्योंकि उनके बडे भाई राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त काव्य रचना के क्षेत्र में ख्यातनामा हो चुके थे। पत्र–पत्रिकायें हिन्दी में उन दिनों अधिक नहीं थी। उन दिनों एक मात्र सरस्वती पत्रिका ही प्रसिद्ध थी। जिसमें नामी गरामी लेखकों और कवियों की रचना ही छपती थी। जिसकी रचना एक बार सरस्वती में छप गयी उसे सभी लोग जान जाते थे। सियारामशण जी का व्यक्तित्व अपनी विशिष्टता में पृथक दिखाई देता है। वे प्रतिमा को पागलपन मे देखते थे। जब कभी सियारामशरण जी का बाल साथी छिमाधर कहता कि जाके हिरदय है छिमा ताके हिरदय आप" में मेरा नाम आता है तो सियारामशरण जी यह कहने में नहीं चूकते कि " सियाराम मम सब जब जानी"। रामायण की महिमा अपार है उनका नाम अपार महिमा वाले ग्रन्थ में छिप गया है। यह सुनकर छिमाधर चुप हो जाता।

उस समय की सामाजिक रीति के अनुसार सियारामशरण जी का बाल विवाह झांसी कानपुर रोड पर बडागाँव नामक गाँव के सेठ देवकीनन्दन जमींदार की सन्तान केशरबाई के साथ सम्पन्न हुआ। *

सियारामशरण जी चाहते थे कि पत्नि केशरबाई को घर पर ही अक्षर ज्ञान करायें, भरे–पूरे घर में उस समय यह सम्भव नहीं था। बडों के सामने बहू से बातें कैसे की जायें समस्या थी। तब उन्होंने छोटे भाई चारूशीलाशरण को अपनी पत्नि केशरबाई को अक्षर ज्ञान कराने का जिम्मा सौंपा। परन्तु यह प्रयास ज्यादा फल प्रदान करने वाला नहीं रहा। सियारामशरण गुप्त की कुल चार सन्तानें हुयी, जिनमें तीन लडके और एक लडकी। दुर्भाग्य से एक भी बच्चा जीवित न बचा। जिस समय सियारामशरण जी की आयु 27 वर्ष थी, तब सन् 1922 मे उनकी पत्नि का निधन हो गया। ** इस प्रकार अचानक उनकी पत्नि के जीवन की किताब सदा के लिए बन्द हो गयी। यद्यपि वे रोग–ग्रसित थीं, इस पर मौत ने सभी को निराश और दुःखी कर दिया था। पत्नि के दिवंगत होने पर वह अन्य विवाह कर सकते थे, किन्तु उन्होंने एक पत्नि व्रत रहना ही श्रेयस्कर समझा यह भी उनके लिए गौरव की बात है।

सियारामशण गुप्त जी अन्तर्मुखी चेतना के व्यक्ति थे। किसी से वह क्या कहते। अवसाद के इस अवसर पर कवि का हृदय निश्चय ही रोया था। ' विषाद ' की पंक्तियों

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 19

** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 20

मुंशी अजमेरी

मैथिलीशरण गुप्त

सियारामशरण गुप्त

चारुशीलाशरण गुप्त

सुमित्रानन्दन गुप्त
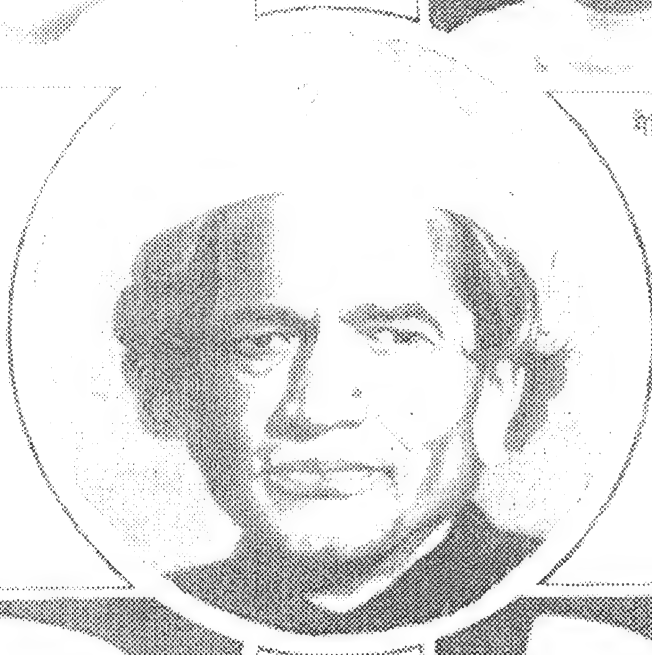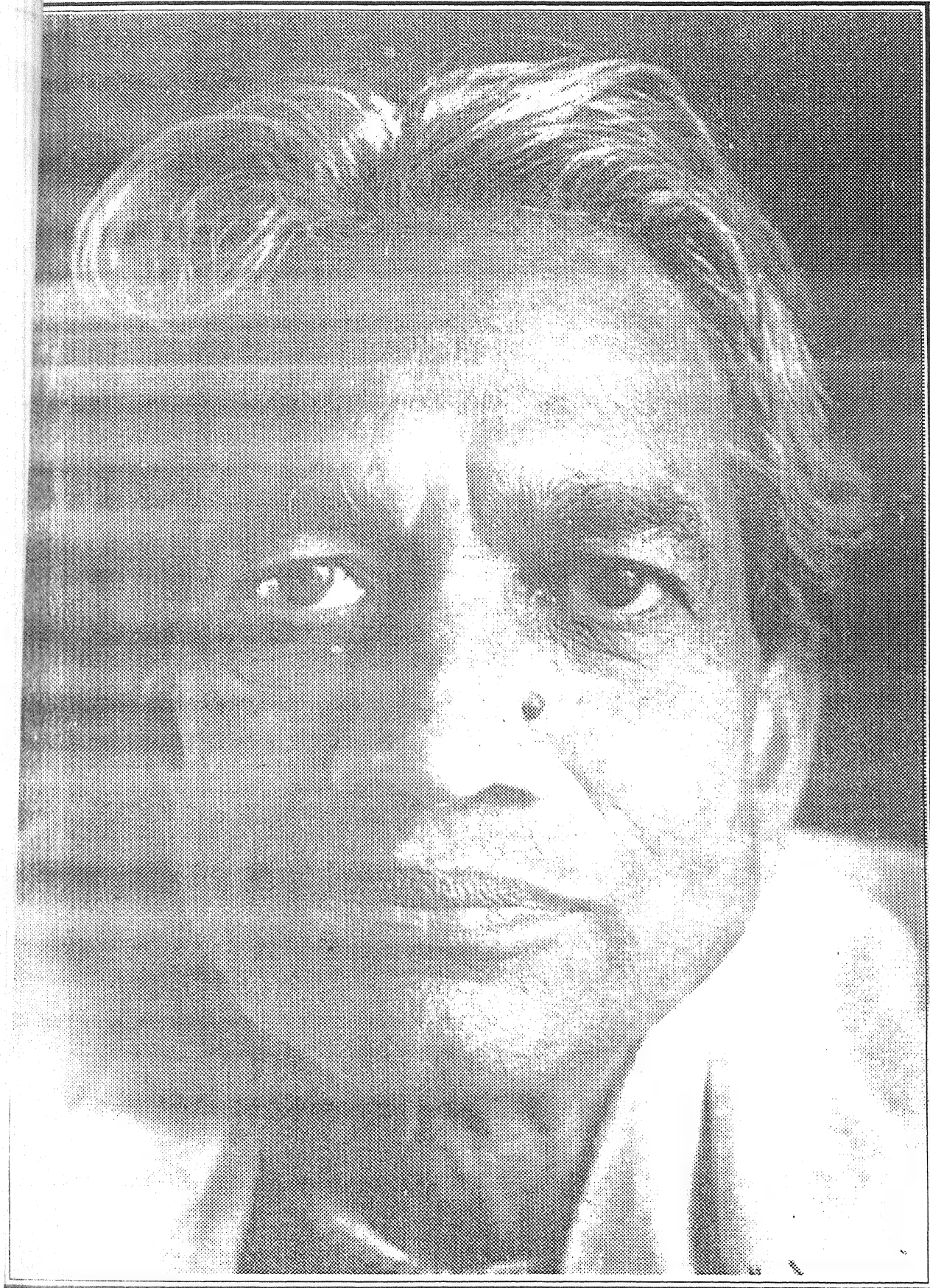
श्री सियारामशरण गुप्त जी

सेठ श्री रामचरण गुप्त

(श्री सियारामशरण गुप्त जी के पिता)
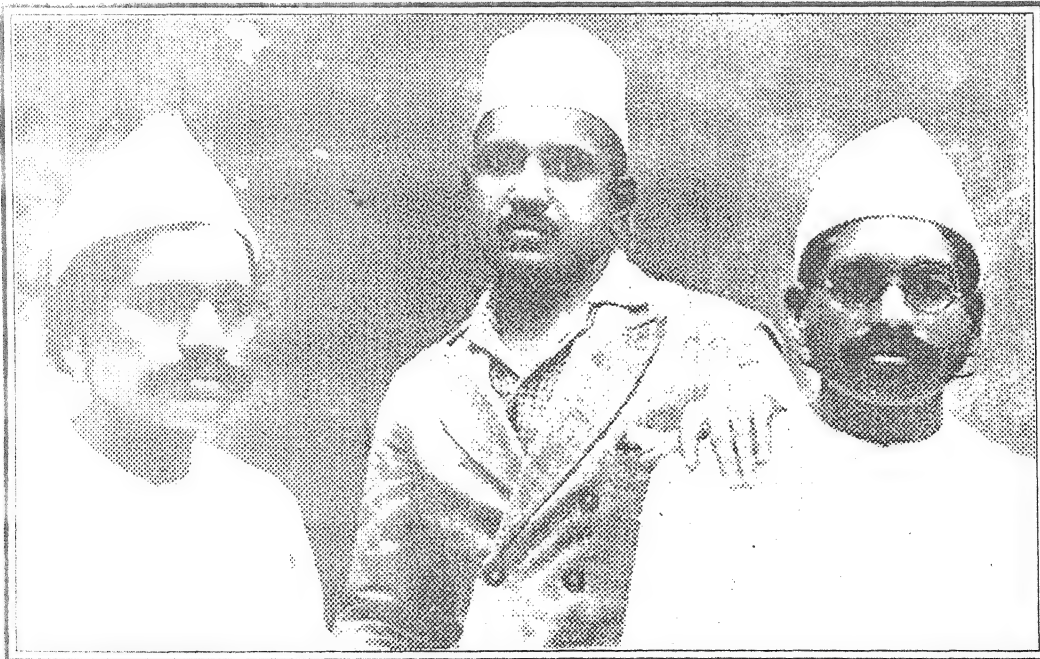
सियारामशरण गुप्त, उमशंकर शुक्ल, चारूशीलाशरण गुप्त
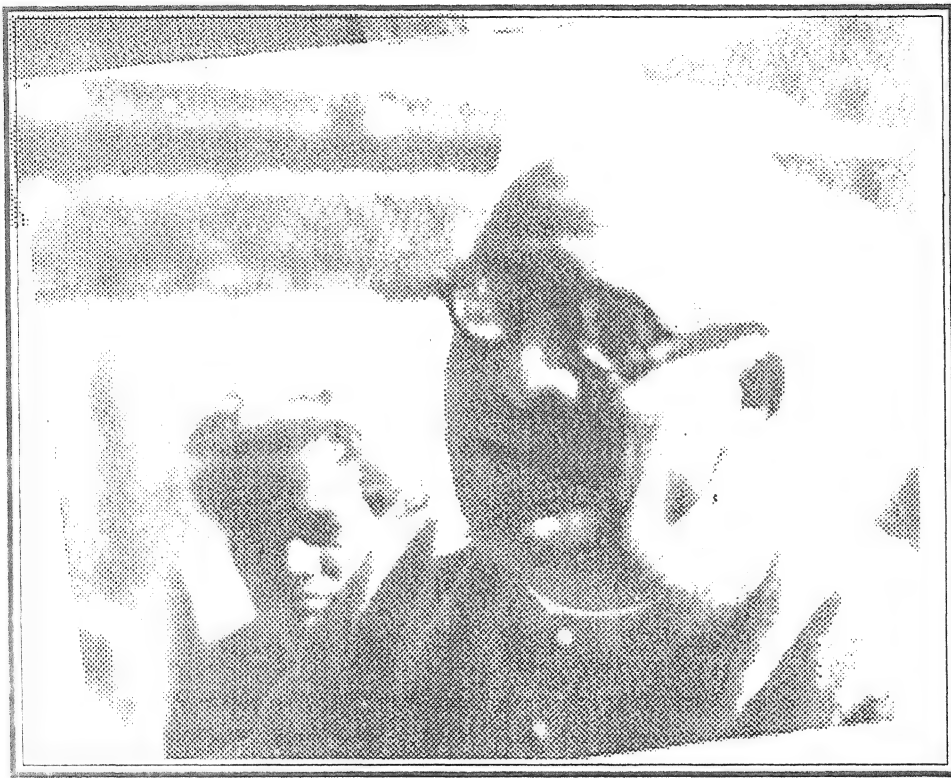
सियारामशरण गुप्त एवं बाल कृष्ण शर्मा (नवीन)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त परिवार के साथ चौपड खेलते हुए सियारामशरण गुप्त जी साथ बैठे हैं।
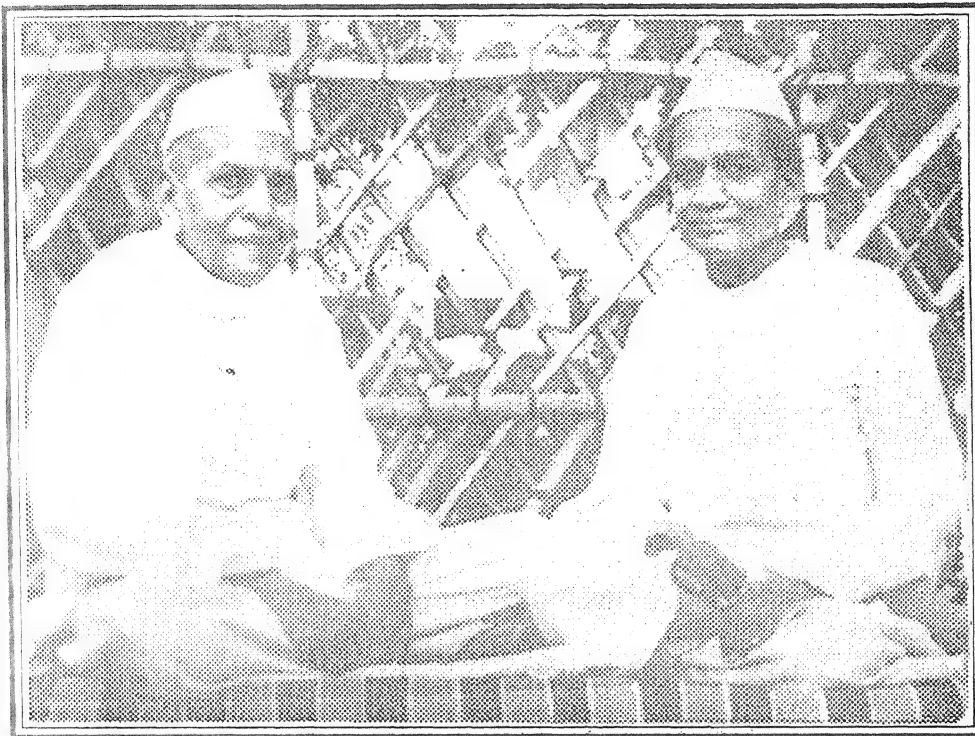
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त,सियारामशरण गुप्त
स्नेह और श्रद्धा की भूमिका

विनोबा के साथ सियारामशरण गुप्त (हाथ में छडी)
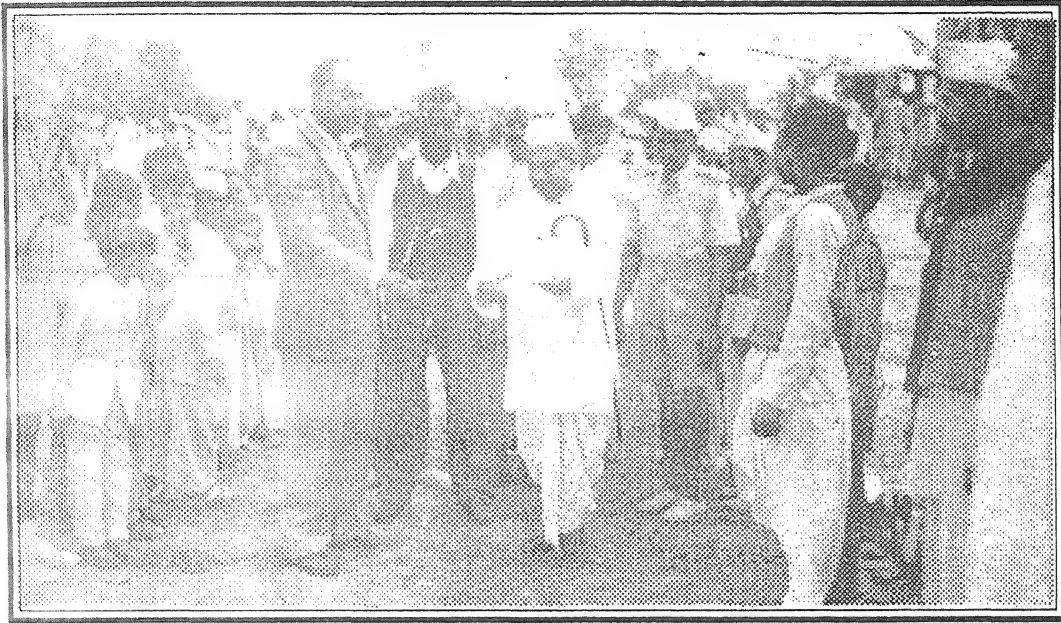
क्षेत्रीय विकास प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए श्री सियारामशरण गुप्त (सन् १९५५)
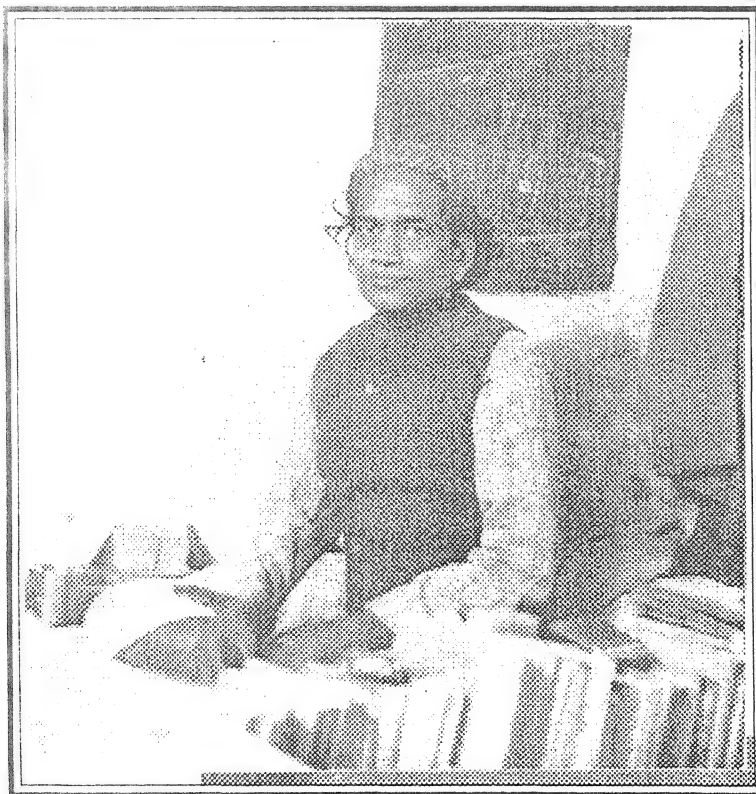
कवि सियारामशरण गुप्त अध्ययन कक्ष में चिन्तन के क्षण
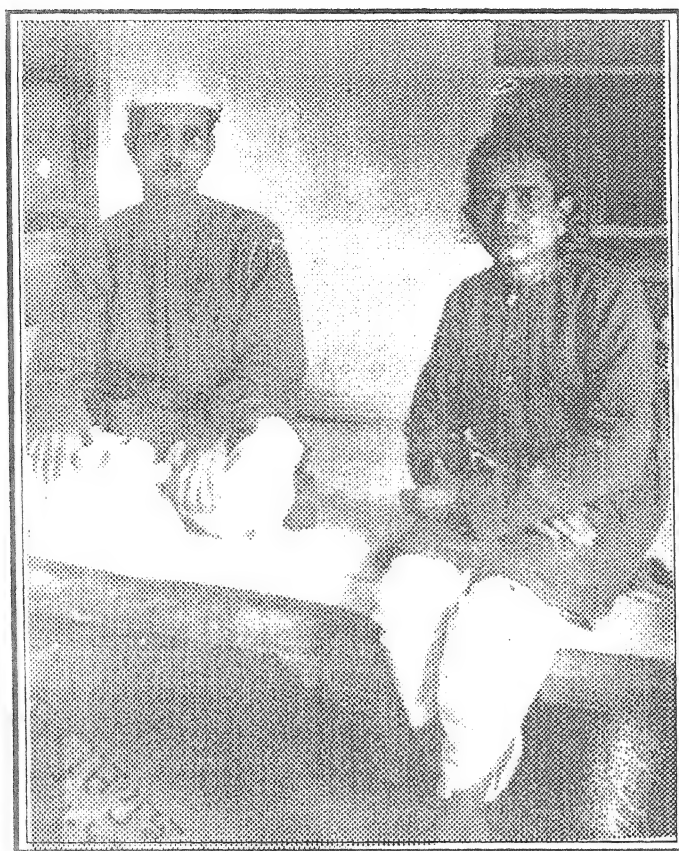
ए०जी०खेर के साथ सियारामशरण गुप्त
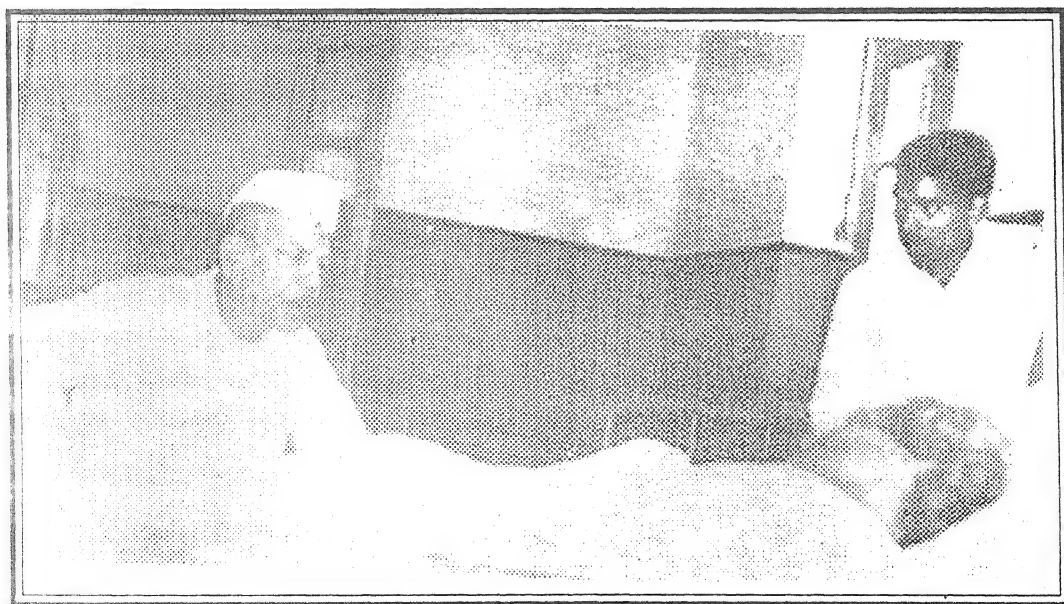
झांसी रेलवे अस्पताल में सियारामशरण गुप्त,
सिरहाने उर्मिलाचारण गुप्त एवं पायताने मैथिलीशरण गुप्त जी

वास्तविकता पूंछी जा सकती है। पत्नि के चल बसने के बाद बेटी उर्मिला ही बची थी। अपने ननिहाल में ही अचानक उसका देहावसान हो गया। संयोग कहिए कि उस समय सियारामशरण जी वहाँ मौजूद (उपस्थित) थे। ' भूख ' नामक कविता उर्मिला हो को लक्ष्य करके लिखी गयी है। बेटी स्मृति को कवि ने रचना के माध्यम से संजोया है। एक–एक करके बच्चों का जाना,उसके बाद पत्नि का महाप्रयाण और अन्त में यादों की प्रतीक बच्ची भी चली गयी। दुःख का पहाड उठाना आसान नहीं होता। अपने छोटे भाई को छोडकर परिवार में सबसे छोटे होने के कारण सियारामशरण जी में सेवा का भाव आ जाना स्वाभाविक था। ऐसी सेवा जो लक्ष्मण के समान अनुज सियारामशण हो अपने रत में किए रही।

धर्मपत्नि की मृत्यु के पश्चात 1929 में पन्द्रह विषादमयी रचना संकलित कर ' विषाद' काव्य का सृजन किया। महादेवी वर्मा ने इसे बहुत सराहा है – '' मैंने तो विषाद की पंक्तियाँ पढ़कर यही माना है कि अपनी बालसंगिनी पत्नि को उन्होंने अपने हृदय का समस्त स्नेह ऐसी निष्ठा के साथ समर्पित किया था कि उसे लौटा लेना दोनों लेने–देने वालों का अपमान बन जाता।'' * इस समय कवि को जो वेदना प्राप्त हुयी उसे वह चुपचाप ही पी जाता था। उनकी साहित्य साधना तो निरन्तर चलती ही रहती थी।

अनेक प्रकार के दुःख और बीमारी का कष्ट झेलते हुए सियारामशरण जी आगे बढते रहे। बडों की सेवा का भाव उनके यहाँ विस्तार पाकर मानवता की उपासना तक पहुँच गया था। उन्होंने बडी ललक और श्रद्धा के साथ गाँधी और विनोबा के आदर्शो को अपने जीवन में उतारा था। 1929 के नबम्बर में गाँधी जी चिरगाँव गये थे, जब सियारामशरण जी गुप्त की मुलाकात गाँधी जी से हुयी। सियारामशण जी कुछ दिनों के लिए सन् 1934 में वर्धा आश्रम में गाँधी जी के साथ रहे। गाँधी जी के प्रभाव में आकर सियारामशरण जी ने चरखा कातने की सोची, परन्तु दमा के मरीज थे– साँस फूलती थी। रूई के नन्हें कण गले में फँसकर कष्ट देते थे। गाँधी जी सियारामशरण जी के लिए चरखा चलाना अनिवार्य नहीं मानते थे। उस समय सियारामशरण जी के साथ चारूशीलाशरण भी थे। सियारामशरण जी के निर्देश पर चारूशीलाशरण जी चरखा और खादी के प्रचार के लिए गाँव–गाँव घूमते थे। आजादी के बाद गाँधी जयन्ती पर चिरगाँव की बखरी पर कताई का आयोजन होता था। **

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 21

** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 22

सियारामशरण जी की इच्छा थी, कि सम्वत् 1992 वि0 में राम नवमी के दिन बापू का आशीर्वाद लिखित रूप में मिले। वे महीने भर के लिए मौन व्रत धारण किये हुए थे। उन्हें छोटी–छोटी बातें लिखकर बतलानी पड़ती थी। सियारामशरण जी बापू को उस मौनकाल में कोई कष्ट नहीं देना चाहते थे। यदि कभी संयोग से दो–चार शब्द मिल गये तो वही शेष जीवन की पूँजी होगी। बापू ने अपने हस्ताक्षर के लिए पाँच रूपये निश्चत कर रंखे थे। इस बात को सुनकर सियारामशरण बहुत दुःखी हुये थे।

सन् 1940 में सुभाषचन्द्र बोस ने उत्तर प्रदेश (पुराना नाम संयुक्त प्रान्त आगर व अवध) का दौरा किया। झांसी तहसील मोंठ में उनका भाषण हुआ। जनता ने बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया था। चिरगाँच,मोंठ और झांसी के बीच में पडता है। वहाँ की जनता के आग्रह पर सुभाषचन्द्र बोस चिरगाँव गये। सियारामशरण जी ने स्वागत भाषण तैयार किया। लगभग बीस हजार श्रोताओं की सभा में वह स्वागत भाषण सियारामशरण जी पढा और सुभाष बाबू को भेंट किया। कुछ ही पहले गाँधी जी बंगाल की यात्रा पर थे। तब शिवरामपुर स्टेशन पर किसी ने उनके ऊपर जूता फेंकर दुर्व्यवहार किया था। अपने स्वागत भाषण में सियारामशरण ने सुभाष बाबू से उसका प्रायश्चित करने की मांग की थी। * उनके द्वारा लिखा गया स्वागत भाषण उस समय की सभी समाचार पत्र बंगला दैनिक,सैनिक,अंग्रेजी दैनिक लीडर,दैनिक भारत,साप्ताहिक आज, नेशनल हेराल्ड,नवशक्ति,हिन्दुस्तान,पायनियर,दैनिक प्रताप,हिन्दुस्तान टाइम्स आदि में यह समाचार प्रकाशित किया गया था। **

इन सभी समाचारों में मिली–जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की गई थी। तीन मार्च को जब सुभाष चिरगाँव गये थे, मैथिलीशरण जी बनारस चले गये थे। कलकत्ते के एक बंगला पत्र ' आनन्द बाजार पत्रिका' में सत्येन्द्र मजूमदार ने एक लेख लिखा था, कि क्षीणकाय व्यक्ति सियारामशरण गुप्त जब भाषण पढऋ रहे थे तो वे काँप रहे थे। साथ में उन्होंने यह भी कहा कि उस सभा में सुभाष के साथ वह थे।

गाँधी जी का किसी प्रकार का कोई अपमान हो गुप्त जी यह सहन नहीं कर सकते थे। उनके अन्दर सुभाषचन्द्र बोस के प्रति भी आदर की भावना थी। सन् 1949 में

---

* सियारामशरण गुप्त– सम्पादक– डॉ0 नगेन्द्र पृ0 10

** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 24

राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया था। खादी को बढावा देने के लिए बखरी पर सूत कताई के आयोजन होते रहते थे। पुलिस का इंस्पेक्टर ऊपर के अधिकारियों के कान भरता रहता था। वह चरखा कार्यक्रम को राष्ट्र विरोधी और सत्ता विरोधी मानता था। उस समय झांसी के अंग्रेज कलैक्टर मुनरो हुआ करते थे। 16 अप्रैल 1940 को जब झांसी का अंग्रेज कलैक्टर मुनरो से सब इंस्पेक्टर, मैथिलीशरण जी और रामकिशोर जी की गिरफ्तारी का वारंट लेकर बखरी पहुँचा तब सियारामशरण जी बहुत परेशान हुये थे। अपने आक्रोश को उन्होंने कई लेखों में व्यक्त किया है। ब्रिटिश राज के दमन चक्र का विरोध करते हुए गाँध ी और उनके आदर्शों के प्रति निष्ठा प्रकट करने में कोई कोर–कसर सियारामशरण जी ने नहीं छोड़ी। महादेव देशाई ने सेवाग्राम से गुप्त जी को लिखा–'' उनके चरखे का अनुराग और खादी का अपनाना, इन दोनों ही चीजों ने उनको यह यश दिया। मेरे दोनों भाईयों को प्रणाम और धन्यवाद। बापू भी बहुत खुश हुये। ''

सन् 1941 में गाँधी जी के निर्देश पर सियारामशरण जी के भतीजे रघुवीरशरण ने सत्याग्रह में भाग लिया। सियारामशरण जी का आशीष था। '' शुभास्ते सन्तु पन्थानः''

'' भुजाओं में भरकर भतीजे से कहा गोदी में उठा लेने का मन करता है पर तुम तो इतने बड़े हो उठे हो कि सब को उठा लो। '' * इस प्रकार के अनेक प्रसंग है जो गाँधी जी के प्रति सियारामशरण जी अनन्यता को व्यक्त करते हैं। ' बापू' काव्य में वे सारे भाव, सम्मान के सारे विशेषण खुलकर समाने आये है। दिल्ली के बिरला भवन में जहाँ बापू जी की हत्या हुयी थी (अन्तिम सांस ली थी) उसी भवन को गुप्त जी देश को समर्पित कर देने चाहते थे, इसीलिये उस स्थान का महत्त्व सार्वकालिक, सार्वजनिक और सार्वभौमिक हो गया है। इस सम्बन्ध में सियारामशरण जी ने घनश्याम दास बिरला से पत्र व्यवहार भी किया था। उनकी आशा के विरूद्ध घनश्याम दास जी ने उनकी सद्भावना इस रूप में ग्रहण की कि अपने नाम लिखे गये पत्रों के प्रकाशन की अनुमति भी उन्होंने नहीं दी। **

सियारामशरण गुप्त जी ने अपने काव्य में नई चेतना का निरूपण किया है। द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका पर आधारित गीति नाट्य ' उन्मुक्त' इस सत्य का प्रमाण है, कि वर्तमान चित्रित करने में वे अपने हमजोली कवियों में सबसे आगे थे। वे कबीर,भारतेन्दु

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 25

** सियारामशरण गुप्त – सम्पादक– डॉ0 नगेन्द्र पृ0 10

हरिश्चन्द्र,सूर्यकान्त त्रिपाठी,'निराला' और मुंशी प्रेमचंद के वर्ग के रचनाकार थे। वर्तमान की विभीषिका को, समस्याओं के स्तूप को, गिरावट और कलंक के इस संसार को देखना बहुत आसान नहीं होता। अनेक व्यवधानों की रचना के स्तर पर निरन्तर निखरते गये।

सियारामशरण गुप्त जी की साधना के पथ पर सभी समान थे। उन्होंने ऐसी रचनायें रचीं जिनमें ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, कुलीन–अकुलीन का भेद नहीं रहा। * जो चरित्र सामान्य जनता की दृष्टि में त्याज्य है, नगण्य है उसे अपनी रचना का विषय बनाने में सियाराशरण जी के मन में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। उनके रचना–संसार में ' सामान्य' को ही महत्त्व दिया गया है।

'' रचना प्रक्रिया के आत्मीय क्षण '' के प्रसंग में उन्होंने लिखा–'' कोइ जन्मजात कवि होते है, मैं जन्मजात रूग्ण हूँ। इस कारण भी मैं वह नहीं लिख पाता जो लिखना चाहता हूँ। अपने अग्रज से ली हुई कवि–दीक्षा निष्फल–सी हो रही थी। ऐसे में मुझे मेरे अनुज चारूशीलाशरण गुप्त से कर्म मंत्र की नई दीक्षा मिली। श्वास रोग के कारण लिखने के लिए बैठने से मैं स्वयं बचता था। एक–एक, दो–दो, पंक्तियाँ लिखकर कई दिन में कविता पूरी की जाये, यह मुझे अच्छा प्रतीत नहीं होता था। मेरे साहित्यिक बन्धु भी मेरे लेखन की इस प्रक्रिया से आश्चर्य का अनुभव करते थे। सम्भव है उनके आश्चर्य में दया का भाव भी मिला हुआ हो। मेरे अनुज ने अपनी प्रक्रिया में मुझे आश्वस्त किया। मेरा सौभाग्य है, इस प्रकार अग्रज के साथ अनुज से भी मुझे गुरू दीक्षा मिली। **

' हिंसा से हिंसा का शमन नहीं होता ', इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर गुप्त जी ने ' उन्मुक्त' गीति नाट्य की रचना की थी।

' दैनिकी' और ' नोआखाली में ' आदि कृतियाँ भी कवि की दृष्टि को स्पष्ट करती हैं। काका कालेलकर को गुप्त जी की कविता ' एक हमारा ऊँचा झण्डा एक हमारा देश' बहुत अच्छी लगती थी।

सन् 1959 में 16 अक्टूबर को भूदान यात्रा करते हुए विनोबा जी चिरगाँव गये थे। उनके इस अथक परिश्रम और उदार चेतना से सियारामशरण जी अत्यंत प्रभावित हुए थे। तभी सोचा था कि ' अचला' नाम की एक काव्यकृति तैयार ही जाये। यही ' अचला'

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 34

** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 34

ाद में ' अमृत पुत्र' नाम से प्रकाशित हुयी। ' अचला' की अपूर्ण पाण्डुलिपि आवश्यक :नंदिन वस्तुओं के साथ गायब हुयी थी। ' अतृम पुत्र' ' अचला' से पृथक एक स्वतन्त्र काव्य बनकर सामने आया। इसका अनुवाद अंग्रेजी में हुआ था। श्री ए0जी0शिरेफ ने अनुवाद करके इंग्लैण्ड से ही प्रकाशित करवाया था। ईसा से सम्बन्धित यह पुस्तक सेना के जवानों में बांटने के लिए इंदिरा गाँधी के नाम गुप्त जी ने भेजी थी। * 2 सितम्बर 1962 ई0 को ए0जी0शिरेफ का देहावसान हो गया। वे सियारामशरण और मैथिलीशरण के अभिन्न मित्र थे।

सियारामशरण जी ने बहुत पहले सोच रखा था कि गोस्वामी तुलसीदास के नाम पर 20,000/— रू0 का साहित्यिक पुरस्कार किसी भी भारतीय भाषा के लेखक को दिया जाए। बात आयी—गयी रह गयी। इस पुरस्कार का नाम उन्होंने " तुलसी" पुरस्कार सोचा था। इस कार्य के लिए व्यवस्था की आवश्यकता थी। उनके गिरते हुए स्वास्थ्य ने यह काम नहीं पूरा होने दिया। मन में एक ललक थी कि इस प्रकार की योजना तुरन्त लागू की जाये। वह इच्छा कभी पूरी न हुयी।

जीवन के अन्तिम चरण में एक और पुरस्कार— योजना की बात उन्होंने सोची, प्रारूप तैयार किया पर संकोच के कारण दद्दा को दिखा न सके थे। यह पुरस्कार दद्दा के नाम से मिलना था। 20,000/— रू0 की राशि से प्रतिवर्ष किसी साहित्यकार को यह पुरस्कार दिया जाना था। ' श्री मैथिलीशरण गुप्त पारितोषिक ' नाम से इस योजना का क्रम आगे बढना था। भारती की किसी भी भाषा के साहित्यकार को यह पुरस्कार मिलना था। पुरस्कार समिति के सदस्य भी नामित कर दिये गये थे। इसी बीच सियारामशरण जी को बुखार आ गया। पेचिस की शिकायत भी थी। आँख पर थोडी—थोडी सूजन थी। बीस—बीस हजार की लिखापडी अपने चार भतीजों के नाम करा गये थे।

25 फरवरी 1963 को सियारामशरण जी दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में उनकी तबियत ज्यादा खराब हो गयी। सूजन और श्वास की पीडा से बहुत विकल थे। दिल्ली के गंगाराम अस्पताल में वे अपनी जिजीविषा के साथ वे रोग से लडाई लड रहे थे। डॉ0 नगेन्द्र, सावित्री सिन्हा और चारूशीलाशरण जी एक साथ अस्पताल पहुँचे। मार्ग में डॉ0 नगेन्द्र ने बतलाया कि दवायें असर कर रहीं है। गुप्त जी के मन में था कि ' गोपिका'

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली—प्रथम खण्ड— सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 35,36

ार सावित्री सिन्हा अपनी राय दें, वे स्वयं उन्हें पाण्डुलिपी भी न दे सके थे।अधिक कष्ट के कारण सियारामशरण जी करवट भी नहीं बदल पाते थे, पलंग पर पडे–पडे, कभी–कभी कुछ कह पाने की स्थिति में होते थे। वे सुन पाने की स्थिति में नहीं थे। इस प्रकार भयंकर पीडा और असहनीय कष्ट सहन करते हुए 29 मार्च 1963 ई0 को सवा पाँच बजे प्रातः सियारामशरण जी ने इस मिथ्या जगत से अपना नाता तोड लिया।

कवि सियाराशरण गुप्त ने सन् 1914 से लेकर सन् 1963 तक लगभग अर्द्ध शताब्दी तक काव्य साधना की थी और अनेक काव्य रचनाओं का सृजन किया था। जो आज भी हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

(i) राजनैतिक परिस्थितियां

जिस समय सियारामशरण गुप्त जी ने कविता लिखने के लिए अपने हाथ में लेखनी उठाइ, उस समय देश ऐसे साम्राज्यवादियों के चंगुल में फँसा हुआ था। जिनकी शासन पद्धति प्राचीन काल के विदेशी,आर्य,यूनानी,अरबी,तुर्क,गजनी आदि से मुख्यतः भिन्न थी। अंग्रेजों से पहले जितने भी विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आये वे या तो लूटमार करके वापस चले गये या देश में देश के ही होकर रह गये। इसके विपरीत अंग्रेज शासक यहाँ रहते हुए भी यहाँ के निवासी नहीं बने। उनका उद्देश्य था, इस देश का शोषण कर अपने देश को समृद्धशाली करना। * इसलिए उनके प्रति आक्रोश होना स्वाभाविक ही था। यह आक्रोश धीरे–धीरे बढ़ता हुआ स्वाधीनता संग्राम के रूप में फूट पड़ा और इस स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के हाथों में था, जिनके प्रमुख अस्त्र थे– सत्य, अहिंसा और असहयोग की नीति। प्रारम्भ में इन उपकरणों से कोई विशेष सफलता तो नहीं मिली, किन्तु गाँधी जी और देशवाशी निरूत्साहित नहीं हुए। इस छायावादी युग के राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य में दो ही इच्छायें पूरी तरह से व्यक्त

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड– सम्पादक, ललित शुक्ल पृ0 40

हो रही थी– एक ओर तो कवियों ने भारत की आन्तरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया और दूसरी ओर जनता को विदेशी शान से मुक्ति पाने के लिए * स्वाधीनता–संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी,बालकृष्ण शर्मा ' नवीन' और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे इन कवियों के साथ–साथ सियारामशरण गुप्त जी का भी नाम आता हैं, जिनमें राष्ट्र प्रेम देशभक्ति की भावना जागरूक रही है। उन्होंने स्वयं देश की आजादी की लड़ाई में भाग लिया। फलस्वरूप उनकी राष्ट्रप्रेम की कविताओं में अनुभूति की सच्चाई और आवेश दिखायी देता है। कवि सियारामशरण गुप्त जी की कृति (मौर्य्य–विजय) की कुछ पंक्तियाँ निम्न दृष्टव्य है :–

'' पुण्यभूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी,
माता के सम मातभूति है यही हमारी।
हमको ही क्या, सभी जगत को है यह प्यारी,
इतनी गुरूता और कहीं क्या गई निहारी ?
यह वसुधा सर्वोत्कृष्ट है
क्यों न कहें फिर हम यही–
जय–जय भारतवासीकृती
जय–जय–जय भारतमही '' ।। (मौर्य्य–विजय) **

गुप्त शताब्दी की चर्चाओं में एक कवि का नाम चाहे अनचाहे उभरता रहा और वह नाम था, सियारामशरण का, जो स्व0 राजष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के अनुज थे और अपनी रचना – धर्मिता में कहीं अधिक एक निष्ठा रहे। सियारामशरण जी '' बापू'' की संज्ञा से जाने,जाने लगे। देशप्रमी गणेश शंकर विद्यार्थी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था, कृति में इनका योगदान सर्वोत्कृष्ट रहा है। ' अत्मोत्सर्ग– जो कि एक राष्ट्रीय कथा – काव्य है इसका प्रकाशन सन् 1931 में हुआ था। इसी की ही निम्न पंक्तियाँ उद्धृत है :–

'' संकट के संकीर्ण पथों पर,
अटल न हो जिसको कोई,
देह–यष्टि हल्की है ऐसी,
शान्त–तेज–रस से धोई। '' (मौर्य्य–विजय) ***

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास – सम्पादक– डॉ0 नगेन्द्र पृ0 533
** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 48
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 219

उक्त कृति में अहिंसा, सत्य,करूणा,विश्वबन्धुत्व शान्ति आदि गांधीवाद मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखायी देता है महात्मा गाँधी जी के प्रभाव से ही वे विशुद्ध खद्दरधारी और सत्य,अहिंसा,के उपदेशटा बने। * गाँधी ज़ी को काव्य नायक बनाकर उन्होंने प्रकार से आत्मसात् किया। उस पर वे इतने अधिक केन्द्रित हुए कि पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए उद्विग्न सम्पूर्ण राष्ट्रीय परिवेश उनकी कविता में उतना नहीं आ सका जितना जितना उनके अग्रज की रचनाओं मे आया।

राष्ट्र पर वे अधिक केन्द्रित हुए पर राष्ट्रपिता पर उससे भी अधिक। सत्य, अहिंसा को उन्होंने साधन ही नहीं, साध्य रूप में ग्रहण करके मानव को भावी निर्माण ही नयी दिशा प्रदान की। उनके सत्याग्रही निर्भय रूप की झांकी गुप्त जी ने ' बापू' कृति में दी है। ' बापू' कविता का बिम्ब देखते ही बनता है यथा :–

" विश्व महावंश पाल,
धन्य, तुम धन्य को धरा के लाल !
छद्म–छल के अबोध,
वीतराग वीतक्रोध,
तुममें पुरातन है नूतन में,
*नूतन चिरन्तन में। (बापू) ***

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात अंग्रेजी शासन ने अपने वचनों को पूरा नहीं किया। रौलट एक्ट तथा जलियाँवाला हत्या काण्ड जैसे जघन्य कृत्य जनता के सामने आये। सन् 1920 में महात्मा गाँधी द्वारा चलाया गया असहयोग आन्दोलन भी कुचल दिया गया। इसके पश्चात गाँधी जी के नेतृत्व में 1930 ई0 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में जनता ने बढ़–चढ कर हिस्सा लिया। उधर सन् 1936 में कांग्रेस के मंत्रीमण्डल स्थापित हुये, किन्तु जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रतिनिधि दलों से बातचीत किये बिना भारत के द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल होने की घोषणा कर दी, तो सन् 1939 में मंत्रीमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिये। *** सन् 1939 में अंग्रेजों ने देश को द्वितीय विश्वयुद्ध में झोंक दिया। गाँधी जी ने सन् 1942 में ' करो या मरो ' आन्दोलन चलाया और सन् 1947 में

---

* सियारामशरण गुप्त : रचना एवं चिन्तन – सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 223
** सियारामशश गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 401
*** हिन्दी साहित्य का इतिहास – सम्पादक – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 529

भारत गुलामी की बेड़ियों से मुक्त हुआ। इसके पश्चात स्वतन्त्र भारत के पूर्ण विकास का युग आरम्भ हुआ। ऐसे वातावरण में हमारे देश और समाज के बाहरी और भीतरी जीवन में प्रत्यक्ष और परोक्ष परिवर्तन हो रहे थे। उस समय राष्ट्रीय सांस्कृति काव्य धारा के कवियों ने सामूहिक व्यवहार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता की भावना जगायी और राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी।

सियारामशरण गुप्त जी का साहित्य काफी पुराना था, उन्होंने सन् 1912–13 से लिखना प्रारम्भ किया था। * अंग्रेजी शासन संस्कृति,भाषा और आदर्शो के टकराव से भारतीय जनजीवन अस्त–व्यस्त था। ऐसे ही समय में गुप्त जी अपने हस्त में प्रेम की पताका लिए सत्य के समर में निर्भय व निरस्त्र होकर आगे बढते है तथा उनकी वाणी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आपसी सदभाव, जातीय सौहार्द और राष्ट्रीय ऐक्य के द्वारा साहित्य को सार्थकता प्रदान करती है।

सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के समय उनकी पहली रचना ' मौर्य्य–विजय' जगमानस के समक्ष प्राचीन आदर्शो की ओर इंगित करते हुए भारत विजय का स्मरण कराती है।

सियारामशरण गुप्त जी का हृदय देश के स्पन्दन को ध्वनित करने की क्षमता रखता है। नोआखाली में जो अनैतिक बवण्डर उठा था, उसकी पीड़ा समस्त देश को हुयी थी। देश विभाजन के रक्तिम इतिहास में नोआखाली मानवता का प्रकाश– तीर्थ बन –चुका था। **

गुप्त की कृति ' जय हिन्द' 15 अगस्त 1947 के स्वतन्त्रता–दिवस के पुण्य अवसर पर लिखी गयी भारत वन्दना है।

फुटकर कविताओं में संग्रहीत ' वीर बालक ' कविता में वह बीर बालक अपने देश की रक्षा के लिए माँ से आशीर्वाद मांगता है और वह माँ उसे विजय प्राप्ति का आशीर्वाद देती है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है –

> *" कुंचित उन सब के ललाट थे करने का गंभीर विचार,*
> *मातृ भूमि पर मर जाने को प्रस्तुत थे वे सभी प्रकार।*
> *उन्हें मोह था नहीं किसी का, था तो मातृभूमि का मोह,*
> *उन्हें मृत्यु का सोच यही था, होगा हाया स्वदेश विछोह।।"* (वीर बालक) ***

---

* सियारामशरण गुप्त : रचना एवं चिन्तन – सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 277

** सियारामशरण गुप्त – सम्पादक– डॉ0 नगेन्द्र पृ0 73

*** सियारामशशण गुप्त रचनावली– द्वितीय खण्ड (फुटकर कवितायें)स0ललित शुक्ल पृ0 381

गुप्त जी का राजनैतिक में असीम योगदान रहा है। भारत देश के प्रति जो उनमें भक्ति है, वह उनकी कविता ' रानी लक्ष्मीबाई' में दृष्टव्य है।

" *रानी लक्ष्मीबाई के मुख की वह वाणी,*
स्वत्व घोषणा निखिल देश ने अपनी मानी।
देखा सबने चमर रही असिधार तरल में,
शक्ति–शौर्य की अभय मूर्ति निज आत्मिक बल में।। (रानी लक्ष्मीबाई) *

उक्त पंक्तियों में कवि की अपने देश के प्रति ओज पूर्ण वाणी व्यक्त हुई है।

(ii) आर्थिक परिस्थितयां

सियारामशरण गुप्त जी की दृष्टि जीवन और समाज के प्रति पूर्ण आस्थामयी थी। उन्होंने जीवन को शाश्वत प्रवाह के रूप मे ग्रहण किया था। अतः प्रवाहशील जीवन के प्रति निराशा और अनास्था भाव उनकी कृतियों मे कहीं भी नहीं। जब कभी उन्हें जीवन को तिरस्कृत,लांक्षित और प्रताड़ित होकर दैन्य दुःख के पंक में डूबा हुआ देखने का अवसर मिला उनका हृदय कराह उठा। 'हिमालय की झलक' निबन्ध में उन्होंने पहाड़ी कुलियों के जीवन का दुःख जिस करूणा–कातर शैली में व्यक्त किया है, वह देखते ही बनता है। **

सन् 1857 के पश्चात् अंग्रेजों की शासन सत्ता भारत में पूर्ण रूप से स्थापित हो गयी। हमारे देश में व्यवसाय एवं उद्योग धन्धे काफी फैले हुए थे, किन्तु अंग्रेजों ने उन्हें नष्ट करके हमारी सामाजिक और आर्थिक उन्नति में महान व्याघात उपस्थित कर दिया। अंग्रेजों आ उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने उद्योग–धन्धे स्थापित किये रेल,तार,डाक,आदि की व्यवस्था उन्होंने अपनी आर्थिक और राजनीतिक सत्ता की दृष्टि से की। मंहगाई,टैक्स और दरिद्रता बीसवीं सदी की प्रमुख आर्थिक समस्यायें है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली– द्वितीय खण्ड (फुटकर कवितायें)स०ललित शुक्ल पृ० 381

** सियारामशरण गुप्त : रचना एवं चिन्तन – सम्पादक– ललित शुक्ल पृ० 123

थम महायुद्ध के पश्चात कांग्रेस ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के द्वारा अंग्रेजों की औद्योगिक ोति तथा आर्थिक शोषण का विरोध किया। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ती के पश्चात भारत को ेश्व व्यापी मँहगाई और बेरोजगारी का शिकार होना पड़ा। पूँजीवादी का बोलबाला हो जाने े कारण श्रमिक और कृषक वर्ग शोषण की चक्की के दो निर्मम पाटों में बुरी तरह पिसे। वतन्त्रा के बाद देश की आर्थिक दशा में यथेष्ठ सुधार हुआ। पंचावर्षीय योजनाओं तथा अन्य व्यवसायों और उद्योग धन्धों के प्रचार एवं प्रसार के द्वारा राष्ट्र की आर्थिक स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिर्वतन आना प्रारम्भ हुये।

'मूल आर्थिक आवश्यकतायें थीं खाना व कपड़ा'। किसी भी ग्रामीण समुदाय के अधिकांश सदस्य इसीलिए या तो खेती करते या कपडे बुनते थे। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से स्थिरता का प्रतीक ग्रामीण समाज कहा जाता था। *

हिन्दू संयुक्त परिवार एक ओर परम्परागत सामाजिक प्रणाली थी, जिसका भारतीय लोगों के आर्थिक जीवन पर काफी गहरा प्रभाव था। कहा जाता है, कि एक ही पूर्वत की सात पीढ़ियों के वंशज एक ही छत के नीचे इकट्ठे रह सकते थे। संयुक्त परिवार, भोजन, भजन और सम्पत्ति के लिहाज से संयुक्त था। ऐसे परिवार ग्रामीण समाज में अपने जातीय ढांचे में रहकर कार्य करते थे।

कवि सियारामशरण गुप्त के परिवार की भी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, क्योंकि उनके पिता रामचरण के पास अच्छी खासी जमींदारी थी। ** परिवार की सेवा करने के लिए नौकर–चाकर भी थे। गुप्त जी के परिवार में मुंशी अजमेरी जी का भी प्रमुख स्थान था। कुल मिलाकर गुप्त जी का परिवार सम्पन्न था। परन्तु बाद के समय में स्थिति कुछ भिन्न हो गयी। गुप्त जी ने अपने समय की आर्थिक विपन्नताओं का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है ''अनाथ'' काव्यकृति में गुप्त जी ने एक साधारण कृषक की दीन–हीन दशा का निरूपण किया है। यथा :–

'' हड्डी–हड्डी निकल रही है सारे तन की,
है नितान्त की क्षीण ज्योति उसके जीवन की।
मच्छर भी, जो उसे काटते है आ – आकर,
*जाते वे भी नहीं उडाये हाथ उठाकर ।। (अनाथ) ****

---

* भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास – पी0एन0चोपड़ा पृ0 144–45
** सियारामशश्ण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 15
*** सियारामशश्ण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 71

गुप्त जी की ' आर्द्रा ' काव्य कृति में देश की दरिद्रता, अशिक्षा, नृशंसता पर सुन्दर कटूक्तियाँ की गयी हैं। ऐसे ही आंतरिक दुःख एवं अन्तर्वेदना का चित्र नीचे दृष्टव्य है :–

" आज मेरी गुप्त अन्तर्वेदना,
हो रही थी व्याप्त सारे विश्व में।
काँप एकाएक तिमिराच्छन्न तरू,
*अश्रू से टप–टप गिराते थे कभी ।। (आद्रा) **

गुप्त जी के समय 'दहेज प्रथा' भी फैली हुयी थी 'नृशंस' शीर्षक कविता में इसी प्रथा को ' धातक समाज कंस ' की संज्ञा दी गयी है।
यथा :–

" और तो नहीं हैं कुछ प्राण है हमारे पास,
लाओ यदि थैली हो तुम्हारे पास।
बात की ही बात में,
*कर दूँ विवाह इसी रात में।। (आद्रा) ***

गुप्त जी को अपने जीवन में जो धनीभूत पीड़ा हुई है उसको उन्होंने अपनी 'विषाद' काव्यकृति में चित्रित किया है। इस कृति में पत्नी के मृत्यु शोक का अवसर संग्रहीत है :–

" चली गई हे शुभे, कहाँ तू हमसे कितनी दूर,
किस अभाग्य की किस अदृष्ट की दृष्टि हुई यह क्रूर।
बहुत दूर तूँ चली गई बस, है इतना ही ज्ञात,
*पहुँच नहीं सकती है तुझ तक मेरी कोई बात ।। " (विषाद) ****

' आत्मोत्सर्ग ' रचना गणेश शंकर विद्यार्थी जी से सम्बन्धित है इस कृति में कानपुर के विषाक्त वातावरण का चित्र प्रस्तुत है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 91
** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 103
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 164

कवि अपने जीवन के जिन उद्देश्यों को स्थापित करने चला था, उसमें वह पूर्ण सफल नहीं हुआ है, ऐसा अनुभव होता है। क्योंकि हिंसा की ही पक्ष प्रबल अथवा कर्मण्य है। अहिंसा में शक्ति जो अवश्य है और कदाचित हिंसा की शक्ति से अधिक है, किन्तु यथार्थ जीवन–क्षेत्र में मानो उस अहिंसा का कोई परिणाम पाठक के समक्ष नहीं उपस्थित होता।

गुप्त जी के तीन ही उपन्यास हैं। 'गोद' 'अन्तिम आकंक्षा', 'नारी'। * ''गोद'' उपन्यास में एक ग्रामीण गृहस्थ की सरल कथा है, जो इनके जीवन से बहुत मेल खाती है।

दूसरा उपन्यास 'अन्तिम आकांक्षा' में गुप्त जी ने समाज में दलित वर्ग की कारूणिक कहानी के माध्यम से अपने विचार जन मानस तक पहुँचाये। अन्तिम उपन्यास ''नारी'' बहुत लोकप्रिय हुआ है। उसकी सी मार्मिकता कथा–साहित्य में बहुत कम मिलती है। इस प्रकार ये तीनों ही उपन्यास उनके आर्थिक जीवन से मेल खाते हैं।

गुप्त जी ने कहानियाँ भी लिखी हैं। जिनमें उनकी सादगी एवं बाल सुलभ सरसता के दर्शन होते हैं।

गुप्त जी के समय की आर्थिक परिस्थितियों ने ही उनको उक्त प्रकार की रचनाऐं करने के लिए प्रेरित किया है।

(iii) धार्मिक परिस्थितयां

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए राजनीतिक आन्दोलनों को चारित्रिक दृढ़ता और अगाध विश्वास की भावना की प्राप्ति तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों के द्वारा हुई। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, महाराष्ट्र समाज, थियोसोफिकल, सनातन धर्म, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द अरविन्द का वेदान्त दर्शन तथा गाँधी का मानवतावाद आदि ने बीसवीं शताब्दी के जनमानस पर एक अलग छाप छोडी। एनी बेसेन्ट जैसी पूज्य विदेशी नारी जो अपने आपको पूर्व जन्म की हिन्दू तथा हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानने वालों ने विज्ञान की अति बौद्धिकता का विरोध करके भारतीय आध्यात्मिकता का उत्थान किया। गांधी जी का समन्वयात्मक दृष्टिकोण है, उनका जीवन–दर्शन गीता का अनाशक्ति योग है। सत्य और अहिंसा उनके अमोघ अस्त्र हैं। जिनके द्वारा उन्होंने भारत स्वतन्त्रता के स्वप्न को सत्य में परिणित कर दिखाया। गाँधी जी ने भारतीय जनता में आत्मबल, नैतिकता, दृढ़ता उदारता और चारित्रिक गुणों का विकास

---

* सियारामशरण गुप्त —सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र पृ0 81

किया। केवल सियारामशरण गुप्त जी पर ही नहीं हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के द्वितीय चरण में भी गाँधीवादी विचार धारा का स्पष्ट प्रभाव है।

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना से जहाँ एक ओर राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में दयनीय शोषण हुआ, वहाँ दूसरी ओर आँग्ल भारत सम्पर्क तथा ईसाई मत प्रसार की प्रक्रिया स्वरूप भारत में धार्मिक सुधार में एक नव–चेतना भी आयी। सियारामशरण जी संयमशील कवि हैं। * प्राचीन के प्रति वे आस्थावान एवं नूतन के प्रति उनके हृदय में स्वागत का भाव है।

धार्मिक आन्दोलनों तथा सामाजिक क्रान्तियों के द्वारा उस समय बाल–विवाह, मिथ्यारूढ़ियों जाति भेद, धार्मिक मतभेद, समुद्र यात्रा निषेध, दहेज प्रथा, पूँजीवाद, जमींदारी प्रथा और अन्धविश्वासों का घोर विरोध किया गया। विधवा–विवाह का समर्थन किया गया और अछूतोद्धार बल दिया गया। शोषित एवं पीड़ित समाज तथा नारी के प्रति संवेदना प्रकट की गयी। मानवता तथा आध्यात्मिकता का प्रचार हुआ।

सियारामशरण जी धार्मिक विचार धारा के व्यक्ति थे। भगवान की भक्ति तल्लीन रहकर उनका सारा समय बीतता था। ** धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन होता था। दूर–दूर के पंडितों साधुओं एवं हरिभक्तों का जुटान होता था। सियारामशरण जी संस्कारी व्यक्ति थे निश्चय ही उस युग के मूल्यों के अनुसार उन्होंने अपने को ढाला होगा।

सियारामशरण जी ने ईसाई धर्म एवं मुसलमान धर्म पर भी अपनी लेखनी चलायी। उन्होंने अपनी कृति "मौर्य–विजय" के आरम्भ में ही मंगलाचरण ईश्वर की वन्दना की है –

" भक्तजनों के हृदय कमलविकसित करने को,
अनुपम धर्मालोक भुवन भर में भरने को।
जिन प्रभु ने अवतार स्वयं ही धारण करके
*मारे निशिचर–वृन्दभार भूतल का हरके ।। (मौर्य विजय) ****

'दूर्वा–दल' काव्यकृति में संग्रहीत " विनय" कविता में कवि गुप्त जी ईश्वर से विनय करते है, कि हम कभी भी दीनता के वशीभूत होकर किसी दूसरे के दरवाजे पर नहीं जावें।

---

* सियारामशरण गुप्त : रचना एवं चिन्तन – सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 23
** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 15
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 83

था –

" है यह विनय बारंबार,

दीनता वश हम न जावें दूसरों के द्वार

x x x x x

यदि कभी हमको मिले आनन्द हर्ष अपार,

भूल कर कर भी तो प्रभो। हम तुम्हें दें न विसार।" (दूर्वादल) *

कविता ' तुलसीदास' में भी उनका भक्त हृदय द्रवीभूत हो उठा है। वह प्रभु को पाकर अत्यन्त गर्व महसूस कर रहे हैं। इसकी कुछ पंक्तियाँ निम्न रूप से उद्धृत है :–

" तुम्हें प्राप्त कर शीश हमार।

है अति गर्वोन्नत यह,

भक्ति भार से पढ़ – कमलों में,

होता स्वयं प्रठात वह।। " (दूर्वादल) **

(प्रभू ईसा) ' अमृत–पुत्र' काव्य कृति में ईसा के चरित्र का वर्णन किया। ' अचला' काव्य कृति में ' हिजरत' शीर्षक से हजरत मुहम्मद पर भी कवि ने सुन्दर कविताएँ लिखकर अपने को धर्म सहिष्णु स्थापित करते हुए मानव समाज को एकता का सन्देश दिया। अमृत पुत्र की कुछ पंक्तियाँ कवि जी के शब्दों में प्रस्तुत हैं –

" ईसु वह जो अमृत–पुत्र महापुरुष

पंथ है सुनसान चारों ओर से

तप रहा है सूर्य नभ के मध्य में।। " (अमृत पुत्र) ***

'गोपिका' काव्यकृति में भी कवि सियारामशरण गुप्त जी की धार्मिक स्थिति दृष्टिगोचर होती है –

यथा – " जय–जय गिरिराज– कन्ये,

वन्दे सर्व काल धन्ये।" (गोपिका) ****

गुप्त जी काव्यकृति ' अचला' में संगृहीत ' गंगा' के प्रति, कविता में गंगा को अन्नत प्रवाहिणी एवं पाप पंक निवारणी कहा गया है, इसका स्पर्श निर्मल, पावन है –

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 177

** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 195

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली– द्वितीय खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 146

**** सियारामशरण गुप्त रचनावली– द्वितीय खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 231

यथा –

" धुल रही है इस धरा की धूलि यह,
निर्मले , पावन तुम्हारे स्पर्श से ।
चिर भागीरथ पुण्य इस नर लोक का,
*एक रस तुममें तरंगित नित्य है।" (अचला) **

सियारामशरण जी ने श्रीमद्भगवत्गीता का समश्लोकी अनुवाद किया था। गीता–सम्वाद नाम की पुस्तक की दो प्रतियाँ उन्होंने घनश्याम दास बिरला को भेजी थी। सियारामशरण जी आपने पहले पत्र में लिखते है – " मैं चाहता था, कि गीता का वह अनुवाद जो बापू के प्रति श्रद्धान्जलि अर्पित करने के विचार से ही प्रस्तुत हुआ है, बापू की ब्रह्म निर्वाण भूमि में पहुँच जाये। पता नहीं मेरा वह संकल्प आपकी कृपा से पूरा हुआ या नहीं पर उसी संकल्प से आज अपने हाथ में गीता–संवाद लेकर मैं बिरला भवन के द्वार पर उपस्थित हुआ था। यह मेरा " पत्र पुष्पम् फलं तोयं" था। मेरे साथ श्री जैनेन्द्र कुमार,कुछ परिवार की महिलायें और स्वजन थे। इस तीर्थ यात्रा में हम लोगों को जिस पीड़ा और क्लेश का अनुभव हुआ,उसी को इस पत्र के द्वारा आप तक पहुँचाना है।" **

' हिंसा से हिंसा का शमन नहीं होता ', इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर गुप्त जी ने ' उन्तुवत' गीति नाट्य की रचना की थी। इसी प्रकार ' अचला' काव्य कृति में हजरत शीर्षक से हजरत मुहम्मद पर भी कवि ने सुन्दर कवितायें लिखकर अपने को धर्म सहिष्णु के रूप में स्थापित करते हुए मानव समाज को एकता का सन्देश दिया। सियारामशरण गुप्त स्वयं राम भक्त थे, परन्तु उनके मन में सभी धर्मो के प्रति आदर का भाव था। गुप्त जी ने अपने समय की धार्मिक स्थिति का निरूपण अपने काव्य में अवश्य किया है। कवि की अनेक रचनायें मंगलाचरण से प्रारम्भ होती है। कवि पर गाँधी और विनोबा के दर्शन का गहरा प्रभाव था।

अहिंसा,सत्य,अस्तेय,ब्रह्मचर्य,अपरिग्रह आदि और वीरता,धीरता,पवित्रता,परोपकारिता, सच्चरित्रता आदि मानव गुण हैं। इन गुणों को यदि मानव अपने जीवन में यथार्थ रूप से प्रयुक्त कर सके तो वह अजर–अमर बन सकता है, एसे ऐहिक, पारलौकिक लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली– द्वितीय खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 305

** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 26

गुप्त जी के काव्यों में इसी मानव धर्म के दर्शन किये जा सकते हैं। यही कारण है कि उनकी कृतियों में हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृतियों का संगम है।

उक्त विवरण से ऐसा ज्ञात होता है कि स्वयं जी कर दूसरों को जीने देना (जियो और जीने दो), प्राणी मात्र में आत्म भावना करना, दया करना ही धर्म है। मानव के साथ धर्म का वही सम्बन्ध है जो शरीर के साथ प्राण का। लोकोपकारक धर्म को ही मानव धर्म कहा जा सकता है।

(iv) साहित्यक परिस्थितयां

हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के आधार पर कवि सियारामशरण गुप्त (1895–1963ई0) जी का काल आधुनिक काल ठहरता है। आधुनिक काल के उप विभाजन के आधार पर उन्होनें द्विवेदी काल (1900–1938 ई0) छायावाद काल (1918–1938 ई0) और छायावादोत्तर काल (1938 से प्रारम्भ) इत्यादि। *

मैंने अपने साहित्य के द्वारा हिन्दी साहित्य निधि को अमूल्य योगदान प्रदान किया। आधुनिक काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है – गद्य का आविष्कार तथा खडी बोली का , साहित्य के गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम स्वीकृत होना। इतिहास पुराण के गृहीत कथा प्रसंगों के आधार पर तथा कल्पना आश्रित उज्जवल कथायें लेकर आदर्श चरित्रों पर अनेक प्रबन्ध काव्यों का निर्माण, स्वार्थ, त्याग,कर्तव्य–पालन, आत्म–गौरव आदि उच्च आदर्शो की प्रेरणा, मानव मात्र के सुख–दुःख का वर्णन, राष्ट्रीयता,सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक आडम्बरों का इस काल के कवियों ने स्पष्ट शब्दों में प्रत्याख्यान किया। इसके साथ ही आधुनिक हिन्दी साहित्य में विभिन्न काव्य रूपों का भी प्रचलन हुआ – कहानी,उपन्यास,नाटक, जीवन–चरित्र,आलोचना,एकांकी,रिपोर्ताज आदि। इस समय की परिस्थितियों का प्रभाव कवि सियारामशरण जी पर भी पड़ा और उन्होंने इतिहास पर आधारित वीरता प्रधान काव्य 'मोर्य्य–विजय' की रचना सन् 1914 में कर डाली।

सियारामशरण गुप्त जी ने हिन्दी की नव काव्य रचना को विदेशी–देशी अनेक वादों के नव झंझावात में भी भारतीय साहित्य रचना के मूल उत्स से जोडे रखा। गुप्त जी की इन

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 429

रचनाओं 'आर्द्रा ' गोपिका', 'विषाद', ' दूर्वादल',' आत्मोत्सर्ग', ' बापू', ' दैनिकी' और ' मृणमयी' का विषय वस्तु की दृष्टि से विभाजन तो किया जा सकता है, किन्तु काव्य शिल्प की दृष्टि से कोई विभाजन नहीं है।

सियारामशरण जी की काव्य रचना का काल बीसवी शती ईसवी का तीसरा,चौथा तथा पाँचवा दशक है। पाँचवे दशक में छायावाद के प्रभाव का अवसान हो रहा था। इनके काव्य संग्रहों में ' दूर्वादल', ' दैनिकी' तथा ' विषाद' में छायावादी शैली,उसकी भाषा एवं अभिव्यक्ति का स्पष्ट प्रभाव है। उनमें मानवीय पीढ़ा तथा करूणा की ही अभिव्यक्ति हुयी है। साहस एवं कर्तव्य का गान इसमें निहित है।

गद्य,पद्य में 'गोपिका' की रचना की। साहित्यिक वातावरण उन्हें अपने परिवार में प्राप्त था; क्योंकि उनके अग्रज राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त काव्य रचना के क्षेत्र में,जब सियारामशरण जी युवा थे तब वह ख्यात–नाम हो चुके थे। सियाराशरण जी का संकोची मन कोई भी रचना सुधार के लिए दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) को दिख नहीं पाता था। मुंशी अजमेरी को उन्होंने इस कार्य के लिए चुन लिया था। जब एक बार उनके अग्रज रामकिशोर गुप्त (नन्ना) ने उनकी सेवा भावना से प्रभावित होकर कहा– " ऐसा वैसा नहीं सियाराम कवि भी है। " तब मैथिलीशरण गुप्त और अजमेरी जी ने बहुत आश्चर्य प्रकट किया। सियारामशरण जी को बुलाया गया और कविता बना लाने का आदेश दिया। मैथिलीशरण गुप्त जी ने कविता को काँट–छाँट करके नये संस्करण का रूप दे दिया।* कविता की ओर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति देखकर घरवाले कहा करते थे कि–" परिवार में सभी कवि हो जायेंगें या कोई हिसाब–किताब भी देखेगा। " हिसाब की दिशा में कच्चे होने के कारण वहाँ उनका मन नहीं लगता था। साहित्य सृजन में उनकी रूचि बचपन से थी। बचपन में अनेक बार कविता की रचना करने के लिए वे स्कूल नहीं गये रास्ते में कहीं एकान्त में बैठकर कवितायें लिखते रहे। **

साहित्य उनके जीवन में रंग गया था। पारिवारिक सुख में फैलने वाले रस–तन्तु उनके लिए साहित्य की कृतियों में भर गये थे। यही धारा मानो उनको जीवित रखती थी। साहित्य सदन के उस विशाल प्रांगण में जहाँ श्रद्धेय मैथिलीशरण जी के लिए दैवीय विचारों के अनेक विमान उतरे है, सियारामशरण जी एक वरदान की तरह है, जो अपनी उपस्थिति मात्र से उस स्थान के आनन्दी निर्झर को सतत प्रवाहित रखते है। राम के चिर बन्धु लक्ष्मण की तरह

* सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 18,19

** सियारामशरण गुप्त – सम्पादक– डॉ0 नगेन्द्र पृ0 18

उनकी सार्थकता है। गुप्त जी रूपी वट वृक्ष की सन्निधि में पनपने पर भी उनका अपना व्यक्तित्व है, जो उनकी बहुविध साहित्यिक कृतियों में प्रकट होता रहा है। अनेक कठिनाईयों में भी वे रचना की लगन को बनाये रखना चाहते थे। यहाँ तक कि वे रूग्ण अवस्था में भी कुछ न कुछ लिखते रहते थे। सियारामशरण गुप्त जी ने आधुनिक काल की अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है। काव्य के साथ–साथ उन्होंने नाटक,उपन्यास,निबन्ध तथा कहानी इत्यादी विधाओं का भी सृजन किया है। ' पुण्य पर्व ' उनका एक मात्र नाटक है। * उन्होंने तीन उपन्यास 'गोद', ' अन्तिम आकांक्षा' और ' नारी ' लिखकर बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'झूठ–सच','ऋणी','एक दिन','घेडाशाही','निज कवित्व','शुष्को वृक्षः', 'कवि की वेशभूषा','घूंघट में' आदि निबन्धों की रचना की है। सियारामशरण गुप्त जी ने ग्यारह कहानियाँ भी लिखी है। इस प्रकार सियारामशरण गुप्त जी ने अपने समय की समस्त परिस्थितियों को अपने साहित्य में उकेरा है। उनकी सर्वप्रथम रचना 1910 ई0 में ' इन्दु' प्रकाशित हुई। इसके पश्चात 'सरस्वती', 'विशाल भारत', 'प्रभा', 'सुधा', ' हंस' आदि पत्र–पत्रिकाओं में उनकी रचनायें निरन्तर उनकी मृत्यु पर्यन्त छपती रही।

हर्ष की बात यह है कि सियारामशरण गुप्त जी की साहित्यिक वेदी अभी निरन्तर प्रज्जवलित है।

(v) सांस्कृतिक परिस्थितयां

ईस्ट–इण्डिया कम्पनी की व्यापारिक नीति की सूक्ष्म कतर ब्यौंतों और तत्पश्चात अंग्रेजी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप भारत के धर्म,संस्कृति,अर्थ नीति और सभ्यता को एक प्रबल आघात पहुँचा। उस समय सन्तों व भक्तों के द्वारा प्रवर्तित भक्ति आन्दोलन एक त्राण बना। उस आन्दोलन की पृष्ठ भूमि में भवात्मक विह्वलता,क्षमा संवेत,खेदात्मक स्वर व ईश्वर शरणागति काम कर रही थी। हलांकि उसमें क्षमास्वर की प्रधानता थी अतः पध्यात्मिक भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ। निःसंदेह मुस्लिम शासन से हिन्दू धर्म व संस्कृति आहत हुई, किन्तु ब्रिटिश राज्य की स्थापना से समूची हिन्दू जीवन व्यवस्था ही बुरी तरह चरमरा गयी। एक ओर

---

* सियारामशरण गुप्त – सम्पादक– डॉ0 नगेन्द्र पृ0 79

अंग्रेजी शासन के निर्मम आर्थिक शोषण ने जन समान्य को निपट गरीब बना दिया, तो दूसरी ओर मिसनरी पादरियों के ईसाई धर्म से निष्ठुर आक्रामक प्रचार से हिन्दू धर्म,संस्कृति,रहन सहन,रीति–नीति आदि बुरी तरह से प्रभावित हुयी। पाश्चात्य संस्कृति के प्रहारों से उस समय ऐसा प्रतीत हुआ था कि कदाचित् हमारी संस्कृति सदा के लिए संसार से विदा हो जायेगी; किन्तु इसे पुनः चेत आया और वह उठ बैठी। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द स्वामी,रामतीर्थ,रातकृष्ण परमहंस,स्वमी विवेकानन्द आदि दिव्य विभूतियों ने इस संस्कृति में पुनः चेतना शक्ति भर दी। भारतीय जागे,वे अपने स्वरूप को समझने एवं अपने खोये हुए रत्नों को पुनः पहचानने लगे। इस प्रकार सांस्कृतिक नव जागृति के युग का निर्माण हुआ। *

उस समय के ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने पुराने धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। ब्राह्य समाज और प्रार्थना समाज ने तो नये परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया, पर आर्य समाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाये रखना चाहता था। उस समय की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृति विचारधारा पर आर्य समाज का विशेष प्रभाव पडा। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज और थियोसोफिकल सोसायटी की मान्यतायें बहुत कुछ बुद्धि विवेक और तर्क पर अधारित थी। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय थे। अरबी और फारसी का उन्हें बहुत गहरा ज्ञान था। इन दिनों विदेशी भाषाओं के माध्यम से ही वे अफलातून,अरस्तू,प्लॉटीनस आदि प्राचीन यूनानी विचारकों से परिचित हुए। बनारस में रह कर कुछ वर्ष उन्होंने गीता,उपनिषद आदि का भी अध्ययन किया। उनकी विचारधारा इस्लामी एकेश्वरवाद का स्वष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ईसाई धर्म से भी वे कम प्रभाविल नहीं थे। ये समस्त विचार धारायें उन्हें पुराने औपनिषदिक दर्शन में मिल गयीं– विशेष रूप से तैत्तिरीय और कौषीतकी में। कर्मकाण्ड और अन्ध विश्वास का विरोध करने के लिए उन्होंने उपनिषदों का उपयोग किया और मूर्ति–पूजा को धर्म का बाहय आडम्बर माना। उनकी विचारधारा में तर्क की प्रधानता थी जो लॉक ह्यूम और रूसों के अनुरूप थी। **

ब्रह्म समाज को देवेन्द्र नाथ टैगोर (1817–1905) और केशव चन्द्र सेन (1838–1884) ने आगे बढाया। देवेन्द्र नाथ वेदों की अपौरूषेयता पर विश्वास नहीं करते थे। उनकी आस्था

---

* भारतीय संस्कृति – शिवदत्त ज्ञानी — पृ0 364

** हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र — पृ0 448,449

अन्तः प्रज्ञा पर अधिक थी। केशव चन्द्र सेन बहुत कुछ प्रयोग वादी थी। उन्होंने ब्रह्म धर्म के प्रसार के लिए दूर–दूर तक यात्रायें की। उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप मद्रास में वेद समाज और बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुयी। वे वैष्णवों के भजन कीर्तन की ओर भी आकृष्ट हुये। ईसाई धर्म की ओर भी वे अधिकाधिक झुकते गये। प्रार्थना समाज के प्रमुख उन्नायक महादेव गोविन्द रानाडे ने धार्मिक और समाजिक समस्याओं पर तर्क पूर्ण ढंग से विचार किया और भागवत् धर्म का अनुशरण करते हुए संकीर्ण विचारधारा को कभी भी प्रश्रय नहीं दिया। मध्यकालीन महाराष्ट्रीय सन्तों के प्रति उनकी गहरी आस्था थी, पर अपने विचारों में वे कहीं भी प्रतिक्रिया वादी नहीं थे और न ही उनमें कोई पूर्वाग्रह था। रानाडे ने जिस सुधार पर बार–बार बल दिया, वह है मनुष्य की समानता। वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे ; किन्तु पाश्चात्यमत को भी उन्होंने बिना तर्क के स्वीकार नहीं किया। दूसरे शब्दों में वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार प्रणाली के अनुरूप ढालने का यत्न कर रहे थे। *

रामकृष्ण परमहंस अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परमहंस थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस गरीब,अनपढ,गवांर,रोगी, अर्द्धमूर्ति पूजक,मित्रहीन हिन्दू भक्त ने बंगाल को बुरी तरह हिला दिया। उनके योग्य शिष्य विवेकानन्द ने उन्हें बाहर से भक्त और भीतर से ज्ञानी कहा है। स्वयं विवेकानन्द के सम्बन्ध में ठीक इसका उल्टा कहा जा सकता है। सन् 1893 में विवकानन्द ' विश्वधर्म संसद' में सम्मिलित होने के लिए शिकागो गये। उनकी वक्तृता ने प्रभावित होकर ' न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिव्यून' ने लिखा था " विश्वधर्म संसद में विवकानन्द सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बडी मूर्खता थी। ** विवेकानन्द के अनुसार धर्म वह है जो शारीरिक,बौद्धिक, और आध्यात्मिक शक्ति दे, जो आत्म सम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहायता करे। विवेकानन्द ने इस देश को यह अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है, इस देश का अध्यात्मिक चिंतन असमानान्तर है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य–मनुष्य की समता,एकता,बन्धुता और स्वतन्त्रता की ओर भी उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया।

सन् 1967 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना करने वाले दयानन्द सरस्वती ने वेदों को आधार एवं अपौरूषेय माना। उनके आर्य समाज में जाति–भेद मनुष्य–मनुष्य या स्त्री–पुरूष

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र — पृ0 449,450

** हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र — पृ0 450

भेद या असमानता के लिए कोई अवकाश नहीं था। हिन्दूवादी दृष्टिकोण के बाबजूद आर्य समाज ने राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढाने में आश्चर्यजनक योगदान किया। प्रगतिशील होकर भी यह मुसलमानों के प्रति आक्रामक होने के कारण प्रतिगामी प्रवृत्ति का सूचक था।

थियोसोफिकल की स्थापना सन् 1875 में मैडम ब्लावस्तु और ओल्कार्ट द्वारा न्यूयार्क में हुई थी। इसके विकास में योगदान करने वाली ऐनी बेसेन्ट ने सोसायटी की अवधारणा के अनुरूप हिन्दू धर्म की अध्यात्मिकता के पक्ष में ओजस्वी भाषण दिये। थियोसॉफी में अपने आदर्शो को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने शिक्षा संस्थायें भी खोली। *

उर्पयुक्त संस्थाओं उनके संस्थापकों के सांस्कृतिक कृतित्त्व के तारतम्य में में भारत में गाँधी जी का प्रादुर्भाव एक महनीय और आलोक सामान्य घटना थी। उस तपस्वी ने सत्य और अहिंसा से सज्जित होकर असत्य और हिंसा पर आश्रित अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड फेकने का निश्चय किया। भारत की आकांक्षायें तथा महत्वाकांक्षायें गांधी जी में ही केन्द्रित होने लगी। उन्होंने भारतीय संस्कृति को न केवल अपने जीवन में ओत–प्रोत किया, अपितु मानव –जीवन के संचालन में भी उसकी उपयुक्तता चरितार्थ करके बता दी। उन्होंने पुनः समस्त भारत में भारतीय संस्कृति के प्रतीक सत्य,अहिंसा और लब की त्रिवेणी बहा दी, वह भी ऐसे समय में जबकि विश्व शान्ति के मृग–जल के पीछे दौडता हुआ अशान्ति–गर्त में गिरता है व नाना प्रकार की यातनायें भोगता है। महात्मा गाँधी ने न केवल भारतीय स्वतन्त्रय को ही जन्म दिया अपितु मानव स्वतन्त्रता व मानव सौख्य का महामंत्र इस संतप्त विश्व के सामने उपस्थित किया। उन्होनें विश्व को बता दिया कि मानवता के सिद्धान्तों पर आश्रित भारतीय संस्कृति को अपनाने से ही सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती हैं। ** जहाँ तक गाँधी जी संस्कृति को कवि सियारामशरण गुप्त द्वारा आत्मार्पित करने का प्रश्न है, इस पर इस प्रबन्ध के सप्रय अध्याय में विचार किया जायेगा।

(vi) सामाजिक परिस्थितयां

भारत समाज परिर्वतन के कई दौरों से गुजरा है। उजाले और अन्धेरे के लम्बे इतिहास में यदि प्रगति, पुनरूत्थान और सुधार के दौर आये है, तो अवनति, विघटन और ह्रास के युग

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 451

** भारतीय संस्कृति– शिवदत्त ज्ञानी– पृ0 364, राजकमल प्रकाशन दिल्ली सन् 1944

भी आये। 18 वीं शताब्दी अवनति और ह्रास का ही युग रही। * उस समय जो भी आन्दोलन स्थापित हुए उन सभी का एक मात्र उद्देश्य था ' समाज सुधार एवं भारतीय स्वाधीनता' .इस उद्देश्य की पूर्ति प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से होती ही रही। जिनमे सहायक ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल, महाराष्ट्र समाज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस,विवेकानन्द और गाँधी जी का मानवता वाद आदि आन्दोलन थे। राजाराम मोहन राय ने समाज की कमियों,संकीर्णताओं को रूढियों को समाप्त किया, गोविन्द रानाडे ने सामाजिक संस्थाओं की स्थापना की, जिनका उद्देश्य सामाजिक सुधार एवं भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना था। गाँधी जी ने भी भारतीय जनता में आत्मबल, नैतिकता, दृढ़ता, उदारता एवं चारित्रिक गुणों का विकास किया। ** उनके भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना हुयी। इस स्थापना से जहाँ एक ओर राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में दयनीय शोषण हुआ, वहीं दूसरी ओर आंग्ल भारतीय सम्पर्क तथा ईसाई मत प्रचार की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत के समाजिक सुधार में एक नवचेतना भी आयी। इस समाजिक क्रान्तियों के द्वारा बाल विवाह,दहेज प्रथा,पूँजीवाद और जमींदारी प्रथा का घोर विरोध किया गया। विधवा विवाह का समर्थन किया गया और अछूतोद्धार पर बल दिया गया। शोषित एवं पीड़ित समाज तथा नारी के प्रति सम्वेदना प्रकट की गयी। स्वतन्त्रता के पश्चात सबको विकास के लिए समान अवसर मिला। इन सब का प्रभाव सियारामशरण गुप्त जी पर भी पडा और उन्होंने इनमें से अनेक बिन्दुओ पर रचनायें लिखीं। 'अनाथ' काव्यकृति में उन्होंनें ग्रामीण समाज की दीन–हीन दशा का जीता–जागता चित्र प्रस्तुत किया है। श्रम की कुण्डलिनी पर जागने वाले भारतीय कृषकों और अन्य ग्रामीणों के दुःख की राम कहानी द्रोपदी की चीर बन जाती है। ***

इस लघुकथा काव्य के संदर्भ में डॉ0 सुधीन्द्र ने लिखा है – ' अनाथ' में एक भूमिपति वाणिक शोषित अकिंचन मोहन किसान की आर्त्त– कथा है, जिसका ज्येष्ठ पुत्र रोग–शैय्या पर है, छोटे बेटे के रोटी मांगने पर वह लोटा गिरवी रखकर चून लेकर लौट आता है, कि बीच में चौकीदार उसे बेगार में पकड़ लेता है। थाने में उधर वह पकडा हुआ है उधर घर में मरणासन्न पुत्र और वेदना–विकल पत्नि से ऋण मांगने काबुली पठान आ धमकता है और पत्नि के बेगार में पकड़ ले जाता है। मोहन थाने से बेगार से छूटा तो मालगुजार के सिपाही के फंदे में फस गया और वहाँ ले जाया गया जहां राग रंग हो रहा था। वहीं उसे पुत्र की मृत्यु

---

* भारत की सामाजिक संस्कृति और आर्थिक इतिहास – पी0एन0चौपडा पृ0 77
** हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ – डा0 शिवकुमार शर्मा पृ0 406
*** सियारामशरण गुप्त : रचना एवं चिन्तन – सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 250

का दु:संवाद मिला, लौटा तो पत्नी भी वहाँ नहीं थी। यह देखकर वह भी मृत्यु की शरण में चला जाता है। इस प्रकार एक ऋणभार त्रस्त कृषक की यह दुखान्त कथा है। जो कानों में कहती रहती है–

पशुतुल्य हम लाखों मनुज हा! जी रहे क्यों लोक में।
*जीते हुए भी मर रहे पड़कर विषय दुःख शोक में।। (अनाथ) **

' अनाथ' में ग्राम्य जीवन के चित्रण में जिन कुरीतियों एवं अत्याचारों की ओर संकेत किया गया है, वे इस प्रकार है –

गरीबी और ग्रामीणों की दयनीय दशा ।
ऋण ग्रस्तता
अधिकारियों का ग्रामीणों के प्रति क्रूर व्यवहार।
जमींदारो के अत्याचार ।
कतिपय निजी दुर्बलताएं।
*बेगार और शोषण । ***

' आर्द्रा ' की चौथी कविता ' नृशंस' में दहेज की समस्या को उठाया गया है तथा इसमें समाज को ही नृशंस बना दिया गया है ; क्योंकि दहेज व्यक्तिगत नहीं सामाजिक समस्या है। कविता में पिता सोच रहा है कि बेटी के विवाह के लिए दहेज कहाँ से लाये! माँ भी इसी चिन्ता से व्याथित है। बेटी को इसका आभास हो जाता है और वह विष खाकर मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। कुछ पंक्तियाँ है :–

कैसे यह प्रत्यय कराऊँ मैं –
ब्याह से न होगा मुझे कोई सुख,
जन्म भर होगा दुःख।
होगा यह कन्या दान
*या कि आत्मघात ही महा महान ? ****

सामाजिक दृष्टि से ' आर्द्रा की पाँचवी कविता ' एक फूल की चाह', सियारामशरण गुप्त की प्रसिद्ध रचनाओं में से एक है। श्री बनारसी दास चर्तुवेदी के शब्दों में यह कविता अछूतों के मन्दिर–प्रवेश के पक्ष में वह काम करा सकती है जो सैकडों पैम्पलेट भी न कर सकेंगे। यदि

---

*   सियारामशरण गुप्त रचनावली (अनाथ) – सम्पादक – ललित शुक्ल   पृ0 86
**   सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – सम्पादक – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 46
***   सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड (नृशंस) –सम्पादक–ललितशुक्ल पृ0 104,105

कहीं ढक्कर बापा इसे एक बार सुन पाते तो वे सहस्त्रों प्रतियाँ जनसाधरण में वितरण कराए बिना न रहते। अछूत बालिका सुखिया, देवी के प्रसाद का एक फूल न प्राप्त कर अतृप्ति में काल कवलित हो जाती है। एक सप्ताह का कारावास भोगकर जब वह घर लौटता है तब सुखिया कई दिन पूर्व राख की ढेरी बन चुकी थी। पिता का करूणा यह कहने के लिए विवस हो गयी –

हाय ! फूल सी कोमल बच्ची ,
हुई राख की ढेरी।
अन्तिम बार गोद में बेटी,
तुमको ले न सका मैं हा ।
एक फूल माँ के प्रसाद का
*तुझको दे न सका मैं हा। **

' आर्द्रा ' की छठी कविता ' अग्नि परीक्षा ' साम्प्रदायिक दंगों से सम्बोधित है। ' चोर' कविता धन के लोभी उस डाक्टर की कथा है, जो डूबने से रक्षित स्त्री की चिकित्सा न कर उसे मरने के लिए बाध्य कर देता है। समाज की सेवा का संकल्प लेकर चिकित्सा करने के लिए संकल्पित चिकित्सक किस प्रकार बिडंबना का पत्र बन गया है, यह कवि ने भली भाँति दर्शाया है।

भारतीय समाज के दो प्रमुख सम्प्रदाय – हिन्दू तथा मुसलमानों अपेक्षित उदार दृष्टिकोण का एकांतिर अभाव है। जिसके परिणाम स्वरूप गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे समाज सेवी, उदार, व्यापक दृष्टिकोण वाले नर श्रेष्ठ की नृशंस हत्या कर दी जाती है। ' आत्मोत्सर्ग' के अनुशीलन से यही स्पष्ट होता है। जहाँ इस प्रकार का अकाण्ड, ताण्डव होगा, वहाँ कवि के शब्दों में यही व्यक्त करके पश्चाताप करना होगा –

अरे दीन के दीवानो हा !
यह तुमने क्या कर डाला ?
अपने हाथ खून से रंग कर
*किया स्वयं निज मुँह काला । ***

अपनी संकीर्ण व्यथा–कथा को विस्मृत कर मातृ भूमि को बन्धन मुक्त कराने का उदात्त संकल्प

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड (आद्रा) –सम्पादक–ललितशुक्ल पृ0 118

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 69

ोकर अग्रगामी होने वाले सेनानी भी आने क्रिया–कलापों से अंग्रेजी शासन को प्रकम्पित कर ़हे थे। इनकी एसी ही वीरत्व व्यंजक गतिविधियों को कवि ने इस प्रकार वाणी दी है– उनकी प्रशस्ति करते हुए :–

सिर के ऊपर प्रहार सब, सुमन समूह समान झड़े।
पैरों के नीचे कांटे मृदु, मृणाल से जाम पड़े।
भय के दीप्तानल में धँसकर, उसे बुझा दे पैरों से।
छाती खोल, खुले में अड़कर, विपदाओं के साथ लड़ें। *

' मृण्मयी ' गुप्त जी की आठवीं कृति है। जिसमें स्फुट कथात्मक कवितायें संकलित हैं। इस संकलन की चौथी कविता ' नाम की प्यास' में कवि ने आधुनिक मानव की अदम्य यशलिप्सा का निरूपण किया है ; जो परहित साधन की भावना से नितान्त दूर हैं ** इसी संकलन की आठवीं कविता में ' अमृत मंथन' की पार्थिवता को ग्रहण कर कवि ने सुख दुःख,अमरता एवं जीवन आदि पर अपने विचार प्रकट कर किए है। समाज की पार्थिवता एवं भौतिकता के अन्तर तक से निःसृत से विचार आधुनिक मानव को कभी–न– कभी उद्वेलित अवश्य करते होंगे। कवि ने असुरों के अंतिम शब्दों के माध्यम से यह कहना चाहा है कि जिसे उन्होंने हलाहल (जीवन तत्त्व या सत्त्व) समझा था वही अमृत या सत्य था –

छले गये हा ! छले गये हम
पा न सके निज भाग।
जिसे हलाहल समझा हमने
अमृत वही था सत्य।। ***

आज का मनुष्य महत्वाकांक्षा के वात्याचक में फंसकर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए अनेक छल–छद्म अपनाता है। इसी संकलन की कविता ' भोला' में सामाजिक बोध है जहाँ यह संकेतित है कि गरीबों को लिए खर्च किया जाने वाला थोडा सा धन भी महत्त्व रखता है। वर्तमान मानव अपनी हस्तगत सम्पत्ति से संतुष्ट नहीं है, यह विज्ञापित करने में कभी विस्मृत

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 73
** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 76
*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 77

नहीं हुआ है। ' खिलौना' कविता में गरीब दीन बालक राजकुमार का सोने का खिलौना चाहता है * वर्तमान संकीर्ण मानवता या दानवता के प्रति कवि का जो क्षोभ है वह इन शब्दों से व्यक्त हो जाता है –

पशु से बच जायें बचा है कौन मनुज से।
*आह ! मनुज के लिए मनुज है क्रूर दनुज से । ***

---
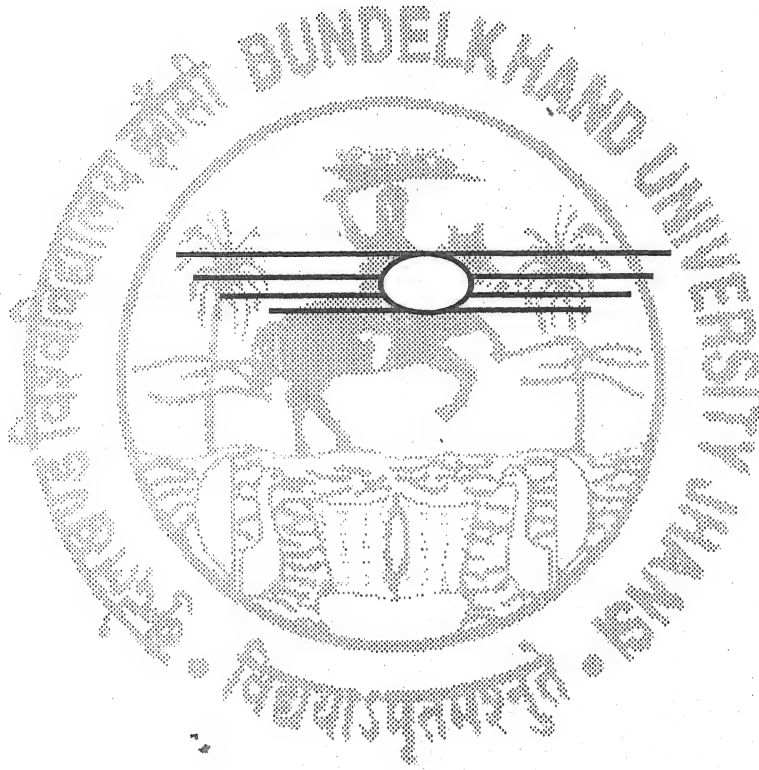
* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र पृ० 78

** सियारामशरण गुप्त रचनावली– प्रथम खण्ड– सम्पादक– डॉ० ललितशुक्ल पृ० 374

अध्याय—तृतीय

<u>*कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य*</u>

1.	मौर्य विजय	सन् – 1914
2.	अनाथ	सन् – 1923
3.	आर्द्रा	सन् – 1927
4.	विषाद	सन् – 1929
5.	दूर्वादल	सन् – 1929
6.	आत्मोत्सर्ग	सन् – 1933
7.	पाथेय	सन् – 1934
8.	मृण्मयी	सन् – 1936
9.	बापू	सन् – 1938
10.	उन्मुक्त	सन् – 1940
11.	दैनिकी	सन् – 1942
12.	नकुल	सन् – 1946
13.	नोआखाली में	सन् – 1946
14.	जय हिन्द	सन् – 1947
15.	अमृत पुत्र	सन् – 1959
16.	सुनन्दा	सन् – 1959
17.	गोपिका	सन् – 1959
18.	अचला	
19	फुटकर कवितायें	

अध्याय-तृतीय

कवि सियारामशरण गुप्त का काव्य

मैथिलीशरण गुप्त की भाँति उनके छोटे भाई सियारामशरण गुप्त की प्रतिभा भी बहुमुखी और उर्वर रही है। अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना करके उन्होंने हिन्दी साहित्य की वृद्धि की है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अपने अन्तर में कई विशेषतायें लिये है। भारतेन्दु काल से लेकर द्विवेदी काल तक साहित्य की धारा में अनेक मोड़ आये हैं और इन विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों के पीछे कवियों की काव्य शैली की अनेक दिशाऐं काम करती रही हैं। युग परिवर्तन के नए प्रकाश में मौलिक उद्‌भावनाओं के साथ–साथ पश्चिमी साहित्य का प्रभाव भी जाने–अनजाने में हिन्दी साहित्य पर पड़ता रहा है। सियारामशरण गुप्त जी की प्रतिभा अपनी मौलिकता के आधार पर शैलियों का निर्माण करते हुए आगे बढती रही है। इनकी पहली रचना सन् 1910 में 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित हुई। * इसके बाद सरस्वती में इनकी कई रचनायें छपीं। विषय प्रतिपादन और अभिव्यंजना शैली की दृष्टि से जहाँ इन पर एक ओर द्विवेदी युगीन रचना पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है, वहाँ दूसरी ओर ये छायावादी शिल्प से भी प्रत्यक्षतः प्रभावित है। सियारामशरण गुप्त जी ने विशेष ख्याति अपने उपन्यास 'नारी' के कारण पायी। फिर भी कविता के क्षेत्र में जो कार्य आपने किया वह अमर और स्थायी है। उन्होनें कविता,कहानी,उपन्यास,नाटक तथा निबन्धों के सृजन के साथ –साथ संस्कृत एवं पालि भाषा की पुस्तकों के अनुवाद भी हिन्दी में किये हैं। कवि ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता के अन्तर्गत मुख्यतः गाँधीवादी,विचारधारा को वाणी दी है। 'उन्मुक्त',' मृण्मयी,'पाथेय' ' नकुल' 'आर्द्रा,' दूर्वादल,'बापू' और अमृतपुत्र उनके उल्लेखनीय काव्य ग्रन्थ हैं इनके अतिरिक्त ' दैनिकी' ' आत्मोत्सर्ग 'विषाद' ' मौर्य–विजय' ' अनाथ' नोआखाली में और ' जय हिन्द' उनकी संक्षिप्त काव्यकृतियाँ हैं। 'गीता–संवाद'और ' बुद्धवचन' में उन्होंने क्रमशः श्रीमद्‌भगवद् गीता और ' धम्मपद' का समश्लोकी अनुवाद किया है। उन्होनें नाटक (पुण्य–पर्व), निबन्ध (झूँठ–सच) कहानी (मानुषी) और उपन्यास–साहित्य (गोद, अन्तिम–आकांक्षा,नारी) की भी रचना की है। सियारामशरण जी साहित्य की यात्रा का पथ बदलते रहे है। अनेक रचना सरणियों में चलते हुए, कवि अपने वर्तमान के प्रति अधिक सजग रहा। जहाँ कहीं उसने अतीत के झरोखों से झाँका है, वहाँ भी उसकी यात्रा वर्तमान से होती हुई पूरी हुई है।

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास –डॉ0 नगेन्द्र –प्रकाशक – मयूर पेपर बर्क्स,नोयडा पृ0 538

1. मौर्य–विजय :–

सियारामशरण गुप्त जी ने अपनी प्रारम्भिक प्रेरणा भारत के प्राचीन गौरव से ग्रहण की। राष्ट्र के निर्माण कार्य में अतीत का गौरव–गान हमारे स्वतन्त्रता–युद्ध की परम्परा रही है। 'मौर्य–विजय' अतीत के प्रति आस्था और प्रेम व्यक्त करने वाली प्रथम काव्य कृति है। इस कृति का प्रथम प्रकाशन 1914 ई0 में हुआ था। यह कृति तीन सर्गो में विभक्त है।

प्रथम सर्ग का प्रकाशन अप्रैल 1914 में 'सरस्वती पत्रिका' में प्रकाशित हुआ। मौर्य–विजय में कवि ने सेल्यूकस के भारत आक्रमण की कथा को लिया है। रचना की भूमिका कवि के अग्रज कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखी है। अतीत के गौरव की ओर भूमिका में संकेत किया गया है। प्राचीन भारत का इतिवृत्त बहुत कुछ अप्राप्त और लुप्त किंवा नष्ट भ्रष्ट होने पर भी अवशिष्ट जो कुछ मिलता है वह हमारे लिए गौरव की वस्तु है। उसकी बाँतो घटनाओं के आधार पर अनेक प्रकार के उन्नत साहित्य की सृष्टि की जा सकती है। 'मौर्य विजय' भी ऐसी ही महत्त्वमयी प्राचीन इतिहास घटना के ऊपर लिखी गई है। और उसके लिखने का कारण कवि अपने देश के प्रति देशप्रेम और आदर्श भाव प्रकट करता है। सिकन्दर,सेल्यूकस तथा चन्द्रगुप्त मौर्य का परिचय देने के लिए पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'भारत भारती' से उद्धरण प्रस्तुत है –

> जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकंदर की चली
> वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली।
> जिसके कि सिल्यूकस समर में हार तो था ले गया
> कांधार आदिक देश देकर निज सुता था दे गया। *

कवि अपने देश की आन–बान के प्रति जागरूक है। भूत, वर्तमान के आधार पर भविष्य की सुदृढ़ नींव का निर्माण किया जा सकता है। अतीत के गान हमारी शिराओं और धमनियों में नवीन रक्त का संचार करते है, ऐसा कवि का विश्वास है रचना के आरम्भ में मंगलाचरण रूप में छः पक्तियाँ रखी गयी है :

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – सम्पादक– ललित शुक्ल – पृ041

" भक्त–जनों के हृदय–कमल विकसित करने को,

अनुपम धर्मालोक भुवन भर में भरने को,

जिन प्रभु ने अवतार स्वयं ही धारण करके–

मारे निशिचर–वृन्द भार भूतलका हरके,

वे रावणारि रघुवंश–रवि, विश्वेश्वर, कल्याणमय

दें इस जीवन–संग्राम में हमें अभय करके विजय।। *

यह ग्रन्थ राम वन्दना से आरम्भ होता है। भारत भूपति चन्द्रगुप्त की वीरता एवं उसकी प्रजा के सुखमय जीवन का वर्णन किया गया है चन्द्रगुप्त को चन्द्र तुल्य कहा गया है, उनकी राजधानी पाटलिपुत्र बतायी गयी है। चन्द्रगुप्त मौर्य के ऐश्वर्य पूर्ण राज्य के वर्णन के पश्चात कवि ने सिल्यूकस के आक्रमण को छन्दबद्ध किया है –

"यूनानी सम्राट वीरवर सिल्यूकस था,

अर्द्ध एशिया खण्ड हो हो चुका उसके वश था।

उसने रण में सदा विजय–गौरव था पाया

बड़े गर्व से भरत–भूमि पर वह चढ़ आया।

उसके सैनिक निज कार्य में शिक्षित थे, वरवीर थे,

के कभी नहीं संग्राम में देखे गये अधीर थे।। **

भारतीयों की वीरता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :–

" धीर–वीर से भारतीय होते हैं कैसे,

किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे।

क्या ही उज्जवल गेय चरित इनके होते हैं,

ग्रीकों का भी गर्व कार्य इनके खोते है ,

देखें इस भीषण युद्ध का होता क्या परिणाम है

उस चन्द्रगुप्त से ही हमें करना अब संग्राम है।। ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 43

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 45

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड–(मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 47

सर्ग के अन्त में चन्द्रगुप्त अपनी सेना लेकर तक्षशिला तक पहुँच जाते हैं। सैनिकों में मातृभूमि के प्रति अगाध स्नेह का कवि ने उल्लेख किया है –

सर्वत्र अतुल उल्लास ही,
सेना में है छा रहा!
कोई कोई सैनिक वहाँ,
इस प्रकार है गा रहा–
'' पुण्यभूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी,
माता के सम मातृभूमि है यही हमारी।
हमको ही क्या, सभी जगत को है यह प्यारी,
इतनी गुरुता और कहीं क्या गई निहारी ?
यह बसुधा सर्वोत्कृष्ट है, क्यों न कहें फिर हम यही–
जय–जय भारतवासी कृती
जय–जय–जय भारत मही।। *

द्वितीय सर्ग का प्रकाशन सरस्वती पत्रिका में मई 1914 में हुआ द्वितीय सर्ग का आरम्भ प्रकृति–चित्रण से होता है। शयन के बाद सम्राट चन्द्रगुप्त उठते है युद्ध की तैयारी होने लगती है। रणवाद्य सुनकर सैनिक गण गाते है –

'' हम सैनिक है, हमें जगत में किसका डर है?
रणक्षेत्र ही सदा हमारा प्यारा घर है।
ह्रदय हमारा विपुल वीरता का आकर है,
आँगन–सा है हमें भुवन,प्रकटित सब पर है।
वह कौन कार्य्य है हम जिसे
कर न सकें पूरा कभी ?
निज भारतीय बल–वीर्य्य का
आओ, परिचय दें अभी।। '' **

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 48

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 51

युद्ध भूमि में दोंनों सम्राट एक दूसरे के सामने पहुँचते हैं सबने शस्त्र हाथों में ले लिए हैं तब चन्द्रगुप्त सैनिकों का उत्साहवर्द्धन करने के लिए कहते है :–

" वीरो, सच्चा युद्ध वैरियों को सिखला दो,
आर्य्यों का बल– वीर्य्य आज जग को दिखला दो।
अपनी कीर्ति–ध्वजा आज सब ओर उड़ा दो,
मातृभूमि को विपज्जाल से शीघ्र छुड़ा दो।
खाली कर दो रण– भूमि यह,
शत्रु जनों को मारकर ?
जो बचें भगें वे ग्रीस को
लज्जित होकर हारकर।।" *

युद्ध का वीभत्स वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :–

" कहीं किसी की टूक–टूक हो गई सिरोही,
खो बैठे निज अश्व अनेकों अश्वारोही।
हाथ–पैर भी छिन्न हो गये कितनों ही के,
शीश छड़ों से भिन्न हो गये कितनों ही के।
बस हत–आहत ही वीर थे
आते दृष्टि जहाँ तहाँ,
भी ताण्डव–सा करने लगी
भीषण मृत्यु स्वयं वहाँ।। " **

द्वितीय सर्ग के अन्त में चन्द्रगुप्त मौर्य को युद्ध विजय की प्राप्ति होती है और सिल्यूकस की सेना पीठ दिखाते हुए भाग खड़ी होती हैं :–

अहा ! शीघ्र बज उठी हिन्दुओं की जय भेरी,
वैरी अस्तव्यस्त हो गये, लगी न देरी।
मृग सिंहो को देख भाग उठते है जैसे–
पीठ दिखाते हुए दृष्टि आये वे वैसे।
तब नृपवर के आदेश से,
आर्य्य वीर तत्काल ही–
उनके पीछे धावित हुए,
कम्पित–सी करके मही । ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 54

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 59

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल–पृ0 59

'मौर्य–विजय' के तृतीय सर्ग का प्रकाशन जून 1914 ई0 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य और सिल्यूकस के बीच 304 ई0 पूर्व एक सन्धि सम्पन्न होती है जिसमें सिल्यूकस अपनी पुत्री एथेना का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से करने को राजी होता है यह भारत का प्रथंम अन्तर्राष्ट्रीय विवाह प्रतीत पड़ता है। कवि ने एथेना के प्रसंग में सौन्दर्य वर्णन तृतीय सर्ग में उद्धृत किया है साथ ही चन्द्रगुप्त के शौर्य वर्णन में अपनी तल्लीनता दिखायी है। भारत की प्राचीन संस्कृति को कवि आदि संस्कृति मानता है –

" साक्षी है इतिहास हमी पहले जागे है,
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे है।
शत्रु हमारे कहाँ नहीं भय से भागे है।
कायरता से कहाँ प्राण हमने त्यागे हैं ?
है हमीं प्रकम्पित कर चुके
सुरपति तक का हृदय,
फिर एक बार हे विश्व ! तुम
गाओ भारत की विजय।। " *

चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस की पुत्री एथेना का विवाह दो संस्कृतियों के मिलाप की ऐतिहासिक पर शाश्वत गाथा है–

" फिर एथेना नियत समय पर नृप ने पाई,
मौर्य्य–विजय प्रत्यक्ष मिली मानो मन–भाई।" **

तृतीय सर्ग के अन्त में कवि ने चन्द्रगुप्त की वीरता को इस प्रकार प्रत्यक्ष किया है –

" चन्द्रगुप्त सम्राट हमारे हैं बलधारी,
सिल्यूकस की सर्वशक्ति है जिनसे हारी।
जिनका वीर्य विलोक मुग्ध मन में हो भारी
पहनाई जयमाल जय–श्री ने सुखकारी।
हे हरि गुञ्जत हो स्वर्ग तक
यह विजय–ध्वनि हर्ष मय,
फिर एक बार हे विश्व, तुम
गाओ भारत की विजय।। ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 66

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 67

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(मौर्य विजय) सम्पादक–ललित शुक्ल–पृ0 68

यह कृति द्विवेदी युग के इतिवृत्तात्मक काव्य का सुन्दर उदाहरण है कथा छप्पय छन्दों में कही गयी है। मौर्य–विजय राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत है। श्रृंगार और वीर रस का युगपत् प्रवाह, दृष्टिगोचर होता है सुन्दर कथात्मक शैली में लिखे गये काव्य की दृष्टि से यह कवि सियारामशरण गुप्त जी की अमर कृति है।

2.अनाथ :–सियारामशरण की 'अनाथ' रचना चार भागों में विभक्त है इस रचना का सर्वप्रथम प्रकाशन सरस्वती पत्रिका के नवम्बर–दिसम्बर सन् 1917 के अंक में हुआ था। * इस काव्य में कथा के मुख्य आधार पर पर ही कल्पना की संयोजना है। गुप्त जी की रचनाओं में इस कृति का विशिष्ट स्थान है। साथ ही इस काव्य में उस समय की राजनैतिक स्थिति पर तीखा व्यंग्य है। 'अनाथ' की कथावस्तु एक साधारण कृषक मोहन की है। मोहन के साथ उसकी धर्मपत्नी यमुना और मरणासन्न अवस्था को पहुँच चुका उसका पुत्र मुरलीधर है। मोहन का जीवन गरीबी और निराशा से भरा हुआ है। उसके पास कच्ची मिट्टी का छोटा सा घर है। जो बहुत ही जीर्ण–शीर्ण और जर्जर अवस्था में है। उसको यह डर बना रहता है कि यह हमारा घर गिर न जाये– अन्यथा विपत्तियों पर एक विपत्ति और आ जायेगी क्योंकि उसका बड़ा पुत्र रूग्ण अवस्था में चारपाई पर पड़ा हुआ है। उसके खाने के लिए रोटी भी नहीं है जिससे उसकी पत्नि रो रही है कवि के शब्दों में वर्णन इस प्रकार है :–

" घर में कुछ भी शेष नहीं है रूखा–सूखा,
बडी देर से आज रूग्ण सुत भी है भूखा!
हाय! इसी से व्यथित हुई यमुना रोती है।
सभी ओर से उसे निराशा ही होती है।।" **

कृषक मोहन दुःखी मौन बैठा हुआ है और वह सोच रहा है कि वह भीख माँगने के लिए किसके दरवाजे जाये उसे कोई ऋण देने वाला भी नहीं है वह भूखे लडकों के लिए अत्यंत ही व्याकुल हो रहा है। उसके पास बडे लोगों के जैसा (जैसे महाजन आदि) मसहरी पलंग नहीं है, उसके पास तो बीच में गहरी सी–टूटी सी खाट है जिस पर फटा–पुराना अत्यन्त मलिन वस्त्र बिछा हुआ है, जिस पर रोगी पुत्र पड़ा हुआ है। उसे देखकर सभी वेदना ग्रस्त

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 88
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 70

इसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

" बड़े कष्ट से पड़ा हुआ है उस पर रोगी,
उसे देखकर हाय! वेदना किसे न होगी।
फटी हुई एक लँगोटी उसके तन पर –
पीड़ा से छा रही विकलता है आनन पर।। " *

रोगी पुत्र के सारे शरीर की हड्डियाँ दिखाई दें रही हैं और उसके जीवन की ज्योति क्षीण है। जब वह माता यमुना से क्षीण स्वर में जल माँगता है। तब वह रो पड़ती है अपने बीमार बेटे दो दो दाने खिलाने के लिए भी उसके पास कुछ नहीं है। तब अपने बीमार बेटे और छोटे बच्चे को कुछ भी खाने के लिए न दे पाने पर माँ बिलख–बिलख कर रोने लगती है। माँ को बिलखते हुए देख बच्चे भी रोने लगते हैं –

" बच्चा भी रो उठा देख माता का रोना,
हा! क्या यों ही प्राण इन्हें होगा अब खोना ?
रोगी ने तब रोक अश्रु जल ज्यों त्यों करके
क्षीण स्वर से कहा साँस ठंडी सी भरके।।" **

माँ यमुना चुप होकर आँखे पोंछती हुई धैर्य को धारण कर पति से कहती है कि क्या हमारी इस दुर्गति से रक्षा नहीं होगी ? यदि हो सके तो कहीं से थोड़ा सा अन्न ले आओ जिससे कि बच्चों के प्राण बच जायें क्या इस संसार में दया नाम की चीज नहीं रह गयी है। हे प्रभु! तुम्हारा हृदय यदि इतना कठोर है तो हमें मौत क्यों नहीं दे देते ? कवि के 'अनाथ' काव्य की कुछ पक्तियाँ निम्नलिखित है :–

" प्रभुवर ऐसी कड़ी तुम्हारी जो छाती है–
तो हमको क्यों नहीं मौत ही आ जाती है ?
प्रिय पुत्रों का तड़प–तड़प करके मर जाना
हा भगवन् ! क्यों हमें यही है और दिखाना। " ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 71

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 71

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 72

किसान, मोहन कह रहा है कि मुझे न तो ऊँचे ऊँचें घर चाहिए और न ही धन पैसा, हमें तो बस मुठ्ठी भर अन्न ही चाहिए, जिससे हम अपने परिवार का पेट भर सकें। वह कहता है कोई तो धन पैसे को व्यसन में व्यर्थ उड़ा रहा है और हमें पेट भरने के लिए अन्न तक नहीं मिल रहा है हे भगवान! यह तुम्हारा कैसा न्याय है! अब तुम ही बताओ तुम्हें हमारा और करना क्या है –

" कोई तो बहु वित्त व्यसन में व्यर्थ उड़ावें,
बच्चों के लिए अहो! हम अन्न न पावें!
कैसा है यह न्याय भला भगवान, तुम्हारा ?
क्या करना है कहो तुम्हें अब और हमारा ? " *

कथा वस्तु को आगे बढ़ाते हुए कवि चित्रित करता है कि जठरानल को दूर करने के लिए मोहन के पास मात्र एक बर्तन लोटा ही शेष बचता है, जिसे वह गिरवी रखने चला जाता है। उसके बदले में थोड़ा सा चून (आटा) पाता है, उस आटे को वह बहुत सम्हालकर पकड़े हुए घर को चलता है। आटा प्राप्त होने पर उसे मन में थोड़ा सन्तोष होता है, और उसका मन कल्पनाओं में खोकर सुख का अनुभव करने लगता है –

" जब मृतप्राय सा लौट चला वह घर को,
क्या दया हुई तब दया सिन्धु प्रभुवर को ?
लोटे के बदले चून मिल गया उसको,
माना जीवन मिल गया फिर नया उसको। " **

मोहन को डर है कि उसके हाथों से आटे की पोटली गिर न जाये यह सोचकर वह सजग हो गया और तत्काल घर जा पहुँचा उसके घर पहुँचते ही सभी के मुख पर हर्ष की रेखा खिंच जायेगी वह कल्पनाओं में डूबा हुआ था। इसी क्षण कथा नया मोड़ लेती है और पीछें से चौकीदार मोहन को पुकारता है। मोहन को उस समय शरीर की सुध–बुध नहीं थी और उसे उसकी बात सुनायी नहीं दी तब चौकीदार मोहन से कहता है कि मैं तुम्हारा बहरापन दूर करता हूँ। कवि लिखते है –

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 73

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 74

'' सुनता है क्यों कुछ नहीं अरे मोहन तू !

बहरा बनता है, बने जहाँ तक बन तू।

तो यह बहरापन दूर करूँ मैं तेरा ''

पीछे को मुहँ अब उस 'अनाथ' ने फेरा।। '' *

चौकीदार की गालियाँ मोहन को सुननी पडती हैं चौकीदार बेगार कराने के लिए भी धमकाता है तब मोहन बोलता है मुझ पर दया कीजिए मुझे घर जाना है ; क्योंकि मेरा बेटा मरणासन्न अवस्था में है; पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मोहन को लात से मारने की धमकी दी जाती है चौकीदार के धक्का देने पर मोहन के हाथ का आटा गिरकर बिखर जाता है–

'' गिरते–गिरते वह सँभल गया ज्यों–त्यों कर,

पर सह सकती थी चोट पोटली क्यों कर ?

खुल गई गाँठ, गिर–गया चून वह सारा,

जो बिखर गया सब ओर वायु के द्वारा! '' **

इतना ही नहीं मोहन बेगार के लिए पकड़ा गया। चौकीदार उसे लेकर थाने पहुँचा बदले की भावना में भी मोहन कुछ कर नहीं सकता, क्योंकि दुर्बल है,गरीब है। थाने में उसे अनेक कष्ट मिलते हैं यातना की चक्की में मोहन पिस जाता है। पंखे की डोर पकड़ कर वह अनचाहे भी खींचता रहता है। जान बूझ कर मोहन को पीड़ा पहुँचाने के लिए उसे धूप में बैठा दिया गया है। दरोगा जी भोजन कर रहे है। उनका कुत्ता भर पेट भोजन पाकर हॉफ रहा है। इसी भूमिका में सिपाही मोहन को बेंत मारकर कहता है –

'' बदमाश कहीं का, जरा नहीं डरता है।

बेहया जोर से हवा नहीं करता है।।

रण–शूर सिपाही लौट गया यह कह कर।

मोहन ने सब सह लिया मौन ही रहकर।।'' ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 75

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 76

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 78

मोहन के घर का दृश्य अत्यंत कठोर था पत्नि यमुना चुपचाप अश्रु बहाती हुई दुःखी हो रही थी बड़ा पुत्र मुरलीधर जो रोगी था उसका हाल भी विकराल हो रहा था भूख के मारे उसके प्राण छटपटा रहे थे उसे अपने परिवार की दयनीय, कष्टमय स्थिति ज्ञात थी परन्तु वह किसी से भीं नहीं कहता था जिस समय उसके नेत्र भर आते थे तब वह मुँह पर वस्त्र डाल लेता था। छोटे भाई क्लेश देखकर वह विशेष रूप से दुःखी होता और उसके मुँह से आह निकलती थी। कवि लिखते हैं –

" देख छोटे भाई का क्लेश,

दुःख होता था उसे विशेष।

नहीं रूकता था अश्रु प्रवाह

निकलती थी बस मुँह से आह।। " *

मुरलीधर कहता है कि यदि हमसे कोई दोष हुआ हो तो हे प्रभु! आप हमीं पर रोष प्रकट करें जो बालक अबोध हैं उन पर क्रोध न करें। इस तरह प्रलाप करता हुआ मुरलीधर अपने आप उठा, उसके अन्दर शक्ति लेशमात्र नहीं रह गयी थी और वह तत्काल ही गिर गया तब अभागी माता यमुना को चारों ओर घोर अंधकार दिखायी देने लगा और उसे कोई उपाय नहीं सूझा पुत्र की असहाय दशा को देखकर उसे किसी प्रकार से चुप करके उपचार करने लगी और कहने लगी कि हे भगवान! हमने कितने दुःख सहे है, ? क्या इनका अन्त नहीं होगा ? मैं किस तरह इन दुःखों को सहूँ। भूख के कारण मेरा यह बालक रो–रो करके सो गया और उसकी हालत गम्भीर हो रही है। कवि का वर्णन इस प्रकार है –

" भूख से रो–रो करके हाय!

सो रहा है यह बालक हाय !

इधर मुरलीधर भी इस काल,

हो रहा है कैसा बेहाल ? " **

मोहन के हृदय में शोक,करूणा,भय,विस्मय एवं पश्चाताप आदि भाव एक साथ जगते हैं फिर भी उसके हाथ पंखे की डोरी को जल्दी–जल्दी खींचने लगते हैं। नीचे तपती धरती थी, ऊपर लू के थपेड़े। प्रकृति भी मोहन के प्रतिकूल थी। संध्या के आने के साथ मोहन के जाने का

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 80

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 83

समय हुआ। उधर अवकाश मिला इधर मुख से राम–राम स्वतः उच्चरित हुआ घर जाते हुए मोहन को अशुभ का आभास हो गया था। अधिक ज्वर में मुरलीधर प्रलाप कर रहा था। बच्चे भूख से व्याकुल थे। मोहन से कोई काबुली वाला अपने दाम बसूलने के लिए यमुना से उसका पता पूछता है।

मदोन्मत्त काबुलीवाला यमुना का हाथ पकड़ लेता है। कारागार से छूटकर मोहन का मन दुःखी भी है और प्रसन्न भी। दुःखी इसलिए कि वह अपने बच्चों का दारूण दुःख नहीं देख सकेगा। दूसरी परेशानी मोहन को यह है कि उसके देशवासी ही उसको कष्ट दे रहे हैं। मोहन का जीवन नारकीय बन गया है वह अपने को पशु समझने लगा है। अचानक मोहन मालगुजार के महल के सामने होता है सिपाही उससे पूछता है कि वह लल्ला के विवाह की तैयारी में बेगार करने क्यों नहीं आता है :–

" है ब्याह लल्ला का नहीं आता कभी बेगार को,
आँखें किधर हैं, क्यों नहीं पहचानता सरकार को ?
अच्छा हुआ फिर भी कि जो तू आ गया खुद ही यहाँ,
अब क्यों खड़ा है चोर–सा, चल काम होता है जहाँ ।।" *

बेगार के प्रस्ताव को मोहन ठुकरा देता है। उसकी पेशी दरबार मे होती है। वहाँ वेश्या का नाच हो रहा है। मालगुजार और दरबारी नृत्य देखने में तन्मय हैं। सिपाही ने मोहन को बाहर बैठा दिया, इसी बीच एक व्यक्ति ने सहसा आकर मोहन से कहा :–

" यमुना पता नहीं कहाँ गयी ?मुरलीधर अपनी जीवन–लीला समाप्त कर चुका है। मृत शरीर के पास छोटा बच्चा रो रहा है"। यह खबर पाकर मोहन जर्जर हृदय लेकर घर लौटता है। दौड़ते हुए मार्ग में उसे ठोकर लगती है। चोट खाकर गिरते ही उसके प्राण–पखेरू उड़ जाते हैं–

" मोहन को घर का परन्तु वह दृश्य देखना पड़ा नहीं
ठोकर एक अचानक खाकर तत्क्षण वह गिर पड़ा वहीं।
फूट गया उसका सिर उसके बहने लगी रक्त धारा
हुआ पुत्र का अनुमानी हा! वह अनाथ, वह बेचारा।।" **

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 87

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (अनाथ) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 88

सियारामशरण गुप्त जी ने इसी कथावस्तु पर 'अनाथ' काव्य की रचना की है, अनाथ काव्य रचना के प्रथम भाग में 23 छन्द्, द्वितीय में 34 छन्द् तथा तृतीय में 31 छन्द् और चौथे में 25 छन्द् हैं। कवि का हृदय देश की घोर दरिद्रता और सामाजिक कुरीतियों से सदा क्षुब्ध रहा है। यही कारण है कि भारतीय ग्राम्य जीवन का जीता–जागता चित्रण करने में सियारामशरण जी पटु है। श्रम की कुंडलिनी पर जागने वाले दीन–हीन भारतीय कृषकों और अन्य ग्रामीणों के दुःख ही राम कहानी द्रोपदी की चीर बन जाती है। इस रचना में गाँव में निवास करने वाली जनता में व्याप्त अनेक कुरीतियों को कवि ने चित्रित किया है। गरीबी,ग्रामीणों की दीन–दशा ,ऋण ग्रस्तता,अधिकारियों का क्रूर व्यवहार, जमींदारों का अत्याचार, किसानों की निजी दुर्बलतायें एवं बेगार और शोषण आदि से किसान का जीना दूभर हो गया है। इसी को कवि ने अपनी लेखनी के द्वारा 'अनाथ' कृति में लेखनीबद्ध किया है।

3.आर्द्रा – इस काव्य संग्रह का प्रथम प्रकाशन सन 1927 में हुआ था। कृति का नामकरण कदाचित् उस 'आर्द्रा' से सम्बन्धित है जो ' खादी की चादर' नामक रचना में अभागिनी अबला के रूप में चित्रित की गयी है। कवि ने किसी भूमिका का संयोजन नहीं किया है। कविताओं में गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवन की झाँकी पग–पग पर हमें मिलती है। 'हूक' 'प्रयाणोन्मुखी' 'डाकू' 'नृशंस' 'एक फूल की चाह' 'अग्नि परीक्षा' ' चोर' ' डॉक्टर' 'अबोध' 'वंचित' ' खादी' की चादर' ' अब न करूँगी ऐसा' तथा ' बन्दी' 'शीर्षकों को मिलाकर कुल तेरह कविताएँ 'आर्द्रा' में है। 'हूक' कविता में बेटी रमा की हृदय गति के कारण होने वाली मृत्यु का वर्णन है और मानव की अतृप्त आकांक्षाओं का भी साथ ही मार्मिक चित्रण हुआ है।

> '' हो गई है शान्त बेटी आज ही,
> सर्वदा को! अब कहेगी कुछ न वह,
> उलाहना देगी न रोवेगी कभी।
> हृदय की गति आज एकाएक रूक,
> ले गई उसको कहाँ किस लोक में,
> कौन गति से, किस अपरिचित ठौर पर।।'' *

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (आर्द्रा) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 91–92

'आर्द्रा' की दूसरी कविता 'प्रयाणोन्मुखी' सियारामशरण जी की उल्लेखनीय कविताओं में एक है और इसका रचनाकाल माघ कृष्ण 8 सं0 1982 वि0 है। श्री बनारसी दास चर्तुवेदी के अनुसार –''पुस्तक खोली और प्रयाणोन्मुखीं पर दृष्टि पड़ी पढना आरम्भ किया। पढ़ते–पढ़ते जब उसके अन्त पर आया तब तक ''आर्द्रा'' मेरे पाषाण–हृदय को आर्द्र बनाकर अपना नाम सार्थक सिद्ध कर चुकी थी। ''सम्भवतः प्रयाणोन्मुखी कविता पत्नी के अंतिम वक्तव्य के रूप में लिखी गई है और इसमें मरणोन्मुख नारी स्मृतियों के चित्र अंकित करते हुए कहती है कि उसके व्यथित प्रिय सामाजिक मर्यादाओं के कारण अपनी वेदना भी प्रकट नहीं कर पाते तथा वह चाहती है कि उसकी मृत्यु के उपरान्त पति का घर सूना न रहे और उसकी परिचर्या के लिए कोई आ जाय। करूणा से ओतप्रोत प्रयाणोन्मुखी की अंतिम पंक्तियों में अंतिम प्रणाम का दृश्य भी अत्यन्त मर्मस्पर्शी है –

किसलिए आप इतने वेध्रजन
पड़ गया अवसन्न जब सब तन बदन ?
अब सभी के सामने ही छोड़ लाज,
रो रहे हो किसलिए नाथ, आज ?
चल चुका हूँ कोटि–कोटि प्रमाण है
रूँध गया है कंठ, पूर्ण विराम है *

'आर्द्रा' की तृतीय कविता 'डाकू' का रचनाकाल माघपूर्णिमा सं0 1982 वि0 है और वह गाँधी–दर्शन के अनुसार हृदय–परिर्वतन का उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत करती है। एक डाकू डाका डालने जाता है, पर सामने एक बालिका को पाकर उसे अपनी पुत्री का स्मरण हो जाता है और पह अपना कुकृत्य छोड देता है। इस कविता में डाकू का पश्चाताप अवश्य मर्मस्पर्शी है और कवि ने एक स्थल पर यह संकेत भी किया है कि डाकू केवल बंगलों में नहीं होते बल्कि साधु–कहलाने वाले समाज शोषक भी डाकू हैं।

आर्द्रा में संकलित 'नृशंस' कविता का प्रकाशन सं0 1983 को हुआ। इस कविता में '' माँ'' शीर्षक में माँ अपनी पुत्री जानकी से कह रहीहै कि हे जानकी! तुझे सन्निपात कैसे हो गया है मैं इसके लिए क्या उपाय करूँ रे बेटी! तूँ नेत्र खोल और अपनी माँ को देख, तूँ मौन क्यों पड़ी हुई है। तेरा कार्य तेरी बाट जोह रहा है। मैं जानती थी कि मेरा अन्त समीप आ गया

* सियारामशरण गुप्त की की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र – पृ0 59

है ऐसे में तूँ मुझे सँभालेगी जाग रात–रात भर मेरी सेवा करेगी और कवि के ऐसे शब्दों में द्रष्टव्य है :–

" जानती थी,– आ गया समीप मेरा अन्त अब,
खाट पै गिरूँगी मैं तुरन्त अब,
तो तू सिराहने बैठ मुझको सँभालेगी,
जाग रात–रात भर सेवा व्रत पालेगी
पंखा लिये हाथ में। मैं वार–वार रोकूँगी,
तो भी तुझे खाठ पर बैठी अवलोकूँगी। *

'एक फूल की चाह' कविता तो अस्पृश्य जाति के प्रति किये गये सवर्णों के अत्याचार की हृदय स्पर्शी कहानी है। कुछेक कारूणिक पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :–

" बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर
छाती धधक उठी मेरी,
हाय! फूल–सी कोमल बच्ची
हुई राख की भी ढेरी!
अन्तिम बार गोद में बेटी,
तुझको ले न सका मैं हा!
एक फूल माँ का प्रसाद भी
तुझको दे न सका मैं हा! " **

' आर्द्रा को छठी कविता ' अग्नि परीक्षा' का रचनाकाल फाल्गुन शुक्ल 3, 1883 वि0 है और यह कविता हिन्दु–मुस्लिम दंगों की भूमिका पर लिखी गयी है। श्री हरिशंकर विद्यार्थी ने इस कथा को सत्य बताते हुए कहा है कि यह कविता कानुपर के नील वाली गली के सुखराज महाराज की कहानी है जिन्हें गुलाब चंद का नाम दिया गया है " इस कविता में व्यक्ति के आडंबर एवं समाज के भय से त्रस्त मनोदशा का वर्णन है। श्री विद्याभूषण अग्रवाल के अनुसार उपर्युक्त "भूमिका पर सुभद्रा नाम की हिन्दूनारी के सतीत्त्व के ओजमन दर्शन होते है जिसने सीता की भाँति 'सलिल–परीक्षा' देकर अपने प्राण त्याग दिये। "स्मरणीय है कि अपहृत

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (आर्द्रा) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 107

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (आर्द्रा) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 118

सुभद्रा का सतीत्त्व नष्ट नहीं हुआ था, फिर भी उसके पति गुलाबचंद उसे नहीं स्वीकारते; पर उसकी आत्म हत्या के बाद पश्चाताप करते है –

" जल लहराता था,
घाट पर पत्थरों के साथ टकराता था।
रोते थे गुलाबचंद मुँहपै तमाचा मार बार–बार
पागल समीर कहता था जोर से पुकार
नारकियों से भी क्रूर तूने है कि–या प्रहार " *

" चोर " कविता का प्रकाशन सं0 1983 को हुआ था। इस कविता में मालकिन उमा दयावती नाम की विधवा स्त्री को अपने घर में स्थान दे देती है; परन्तु कुछ दिनों पश्चात एक दिन प्रातः काल मालिक ने गिन्नियों की गड्डी उमा के पास रख दी और किसी काम से बाहर चला गया लौटकर आने पर देखा तो गिन्नियाँ पूरी नहीं थी इस चोरी का इल्जाम दयावती पर लगाया गया यद्यपि वह गिन्नी उमा को कपड़ो के ढेर में प्राप्त हो गयी पर दयावती काम छोड़कर जा चुकी थी यहाँ संकेत है कि समाज में विपदग्रस्त स्त्रियों के लिए कोई सहानुभूति नहीं है। इस प्रकार चोर की कोटि में 'मालिक' ही आ जाता है।

" डाक्टर " कविता में धन के लोभी और अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीन डाक्टरों पर व्यंग्य करते हुए नैतिकता की भावना के प्रति आग्रह व्यक्त किया गया है। कवि के अनुसार–नदी में बहती हुई एक स्त्री बचा ली जाती है। पर डॉक्टर उसकी चिकित्सा करने नहीं जाता क्योंकि उसे एक निर्धन व्यक्ति बुलाने आया था। वह स्त्री चिकित्सा के अभाव में मर जाती है। बाद में डॉक्टर को मालूम होता है। कि वह स्त्री उसकी पत्नि थी। यह जानकर डाक्टर रो पड़ता है। कवि प्रवर लिखते है–

वज्रपात सा हुआ अचानक ही डॉक्टर पर
निर्दयता से पीट उठे विक्षिप्त हृदय वे,
दौड़ पड़े फिर नदी और को उसी समय वे ।।
कहीं अभी मिल जाय वहीं उसका जीवित शव
दबे पैरों से पवित्र पत्र कर उठे करूण रव। **

---

* सियारामशरण गुप्त की की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र – पृ0 62

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (आर्द्रा) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 131

'डॉक्टर' कविता कवि के अपने अनुभवों पर आधारित है। 'आर्द्रा' की नवीं कविता 'अबोध' का रचना काल श्रावण शुक्ल सं0 1984 वि0 है और यह अन्य कविताओं की तुलना में आकार में अत्यन्त लघु है; पर यह करूणा से ओत प्रोत है। इस कविता में छोटी बच्ची जानकी के सोते समय ही उसकी माँ के स्वर्गवास की ओर संकेत कर कवि ने यह बतलाना चाहा है। कि वह अबोध बच्ची माँ की अर्थी देखकर कितना करूण विलाप करती है। इसी प्रकार श्रावण शुक्ल सं0 1984 वि0 की रची गई ' वंचित' नामक ' आर्द्रा' की दसवीं कविता में कवि ने उस व्यक्ति की कथा कही है। जो पारस पत्थर की खोज में भटकते– भटकते एक तालाब के समीप पहुँचता है। जहाँ एक सुन्दर युवती उसी पारस पत्थर से पैरों को मल कर स्नान कर रही थी। वह व्यक्ति सोचता है कि जब युवती उस पत्थर को रख देगी, तब उसे ले आयेगा पर वह युवती उसी पत्थर को तालाब में फेंक देती है और उस व्यक्ति को अत्यधिक पश्चाताप होता है, पर वह स्त्री हँसकर कहती है –

" दोष किसे देता है अरे अपात्र ?
मेरे लिए तो था वह लोष्ठ मात्र !
तू ही जान–बूझ के छला गया
तेरे हाथ से ही वह रत्न है चला गया। *

'आर्द्रा' की ग्यारहवीं कविता " खादी की चादर" नामक है और इसका रचनाकाल भाद्र कृष्ण 11 सं0 1984 वि. है। आकार की दृष्टि से यह ' आर्द्रा' की सबसे लंबी कविता है। इसकी कथा अत्यन्त सजीव और मार्मिक है तथा यह सामाजिक कुरीतियों से सबंध रखती है। श्री विष्णु प्रभाकर के कथनानुसार ' खादी की चादर' की करूणा संगदिल को भी पानी कर देने की शक्ति रखती है। यह एक तिरस्कृत विधवा नारी की कथा है जिसके कुटुम्बी धोखे से उसे तीर्थ में छोड़ आये हैं और सहायता के अभाव में जिसकी एकमात्र बच्ची चल बसी है। उस विधवा नारी की उपचेतना में कलाकार ने जिस एकनिष्ठ और आरोपहीन करूणा का उद्रेक कराया है, वह निश्चय ही अद्भुत है। "

इसी प्रकार ' आर्द्रा' की बारहवीं कविता ' अब न करूँगी' (रचनाकाल आश्विन कृष्ण 6 सं. 1984 वि0) में ऊँच–नीच की सामाजिक समस्या का व्यंगात्मक चित्रण किया गया है। बालिका मुलिया एक धनी घर में नौकरी करती है और उसे घर के कुछ अन्य कार्यो को करने

* सियारामशरण गुप्त की की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र – पृ0 63

के साथ–साथ कुँए से पानी खींचकर कुत्ते को भी स्नान करना पड़ता था परन्तु एक दिन बीमारी के कारण वह घर से नहीं आ पाती तथा मजदूरी न मिलने के कारण वह दो दिन से भूखी भी रहती है। अचानक उस धनी व्यक्ति का ध्यान अपने कुत्ते की ओर जाता है और उसे गन्दा देखकर वह नौकर को भेजकर मुलिया को पकड़ मंगाता है वह नौकर उसे कस कर एक थप्पड़ भी मारता है पर मुलिया काँपते हुए स्वर से अपनी स्थिति का वर्णन कर कुएँ से पानी खींचकर कुत्ते का स्नान कराने लगती है लेकिन उस व्यक्ति के कान में मुलिया के स्वर गूँजते रहते है –" अब न करूँगी ऐसा "। *

' आर्द्रा ' की अंतिम और तेरहवीं कविता ' बन्दी' है। इस कविता में कारागार में बन्द एक बन्दी तथा उससे भेंट करने आये एक बाल्य बन्धु का वार्तालाप प्रस्तुत किया गया है। इसमें आदर्शवाद की स्थापना है जो राष्ट्रीय भावना से अभिव्यक्त है। बन्दी मुक्त किये जाने का आश्वासन प्राप्त करके भी अपने साथियों का नाम नहीं बताता भले ही उसकी माँ पीडित व्यक्ति हो। उसका कथन अपने बाल्यबंधु से इस प्रकार है –

"आज रो रही है एक मेरी माँ,
कैसे मैं रूलाऊँ अब और बहुतेरी माँ ?
दुःख एक माँ का है असह्य मुझे इतना
– अन्य साथियों का गला
कैसे जानबूझ के फँसा दूँ भला –
होगा शतमाँओं का कराल क्लेश कितना!
ओ माँ आज मेरे लिए
हो गया है कैसा हाय! तेरा हाल।

'नृशंस' शीर्षक कविता में दहेज प्रथा की पृष्ठभूमि में समाज को 'घातक समाज' कंस की संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार की कहानियों द्वारा कवि ने हिन्दु–समाज तथा भारतीय राष्ट्र के करूणार्द्र चित्र 'आर्द्रा' में प्रस्तुत किये हैं। कथात्मक पद्य प्रवाहमयी शैली साहित्य में अनूठा है। कहीं–कहीं गद्यात्मकता का अधिक समावेश है,अतएव पाठक के लिए रस क्षीण हो जाता है। काव्य– सौष्ठव इन कविताओं में किंचित न्यून है। 'प्रयाणोन्मुखी'' इसका अपवाद है, और वह शायद इस कारण कि इसकी प्रेरणा कवि के वैयक्तिक आत्म पीड़न से

---

* सियारामशरण गुप्त की की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र – पृ0 64

सम्बन्धित है। समाज की अनेक कुरूतियों पर कवि ने दृष्टि–निक्षेप किया है और सरल प्रसादमयी भाषा में कथाओं के सहारे देश की दरिद्रता,अशिक्षा,नृशंसता आदि पर सुन्दर कटुक्तियाँ की है। सियारामशरण गुप्त ज़ी अपने काव्य में सामाजिक पक्ष को सदा सामने रखते है। *

विषाद :– इस काव्य संग्रह का प्रथम प्रकाशन 1929 को हुआ। इस पुस्तक में पन्द्रह विषादमयी रचनाएँ संकलित है! जिनकी प्रेरणा कदाचित धर्मपत्नी की मृत्यु से कवि को प्राप्त हुई है। इन कविताओं के शीर्षक अलग–अलग है 'स्वर झंकार' 'दूरागत गान' 'किरण' 'चित्रांकिता' 'एक चमक' 'स्मृति' 'स्वप्न' ' वही तिथि 'मौनालाप' ' स्वर्ण–प्रतिभा' 'अभिसार' 'पत्र' 'धनाह्लाद' 'पलायित' और 'विदा'।

स्वर–झंकार :– में कवि अपनी पीड़ा को नियन्त्रित कर उसे सक्रिय शक्ति के रूप में देखने की चेष्टा कर रहा है। किन्तु सफलता अभी दूर है। यथा –

" आँसूओं का यह प्रचुर प्रवाह,
हृदय का ऐसा दाहक दाह।
धर्म का इतना गहरा घाव
साधनों का यह बृहदाभाव'
वेदना का यह चिर चीत्कार।। **

दूरागत गान :– कविता से कवि का तात्पर्य अपनी पत्नी की स्मृति से है। एक समीक्षक के अनुसार इस कविता से कवि की वेदना प्रकट होती है –

" ज़गा वेदना को सोते से,
यों ही प्राण छोड़ रोते–से,
लो लय होते हो अनन्त में
निर्म्मम–निठुर–समान,
दूर से आकर तुम हे गान ! ***

किरण :– कवि की व्यथा बड़ी गहरी परन्तु संयत है। कवि के ' विषाद' काव्य में संग्रहीत ' किरण' कविता जून 1925 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई जिसमें कवि ने अपनी पत्नी

* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र (आर्द्रा) – पृ0 61

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 159

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 160

को एक रश्मि के रूप में चित्रित किया जिस प्रकार एक रश्मि से अंधकार दूर हो जाता है और सम्पूर्ण जगत प्रकाशमय बन जाता है उसी प्रकार उन्होंने अपने जीवन में पत्नी का आना और यह मायावी जगत छोड़कर चला जाना चित्रित किया है जिससे उनको अपार वेदना का अनुभव हो रहा है, यथा – "वे जाने न जाने किस द्वार से,

कौन से प्रकार से
मेरे गृहकक्ष में
दुस्तर तिमिर दुर्ग–दुर्गम विपक्ष में
उज्जवल प्रभामयी
एकाएक कोमल किरण एक आ गयी ।।
X X X X
आकर सुधा की धार अमृत पिला गई,
और फिर देखते ही देखते बिला गई।" *

चित्रांकिता :– हे चित्र–चित्रिते! तुम मेरे अन्दर व्यक्त वेदना को जगा रही हो, मेरे इस मानस मंन्दिर में सभी का जाना वर्जित था वहाँ तू बिना हिचक के घुसकर क्या अशेष कर आयी हो –

" कर परिचय यह लघुतर –विशाल
इस मानस–मन्दिर में विशेष
वर्जित था सबका ही प्रवेश,
झट बिना हिचक घुसके उसमें
हलचल क्या कर आयी अशेष ?" **

एक–चमक :– नामक कविता में कवि का रोम–रोम चीत्कार कर उठता है और धैर्य का बाँध टूट जाता है –

" हाय देकर वह दिव्य प्रकाश
किया है तूने तमो विकास!
मेघ! मत तू ये आँसू डाल,
हृदय से ही निष्ठुर है काल।
बडों की गति ही है अज्ञेय,
करें जो कुछ वे, है वह श्रेय। '***

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड – (विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 160–161
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 162
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 164

'एक–चमक' नामक कविता फरवरी 1923 को 'प्रभा' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उक्त कविता में कवि कह रहा है हे बादल! तू ये आँसू मत डाल क्योंकि यह काल हृदय से ही निष्ठुर है।

स्मृति :– कविता में कवि अपनी वैयक्तिक वेदना का साधारणीकरण करना चाहता है। उसके लिए वह प्राण–प्रण से प्रयत्नशील है। अपनी वेदना की स्वीकृति भी वह नहीं करना चाहता है; किन्तु दुःख इतना तीव्र है कि उसे स्नेह की याद बरबस आ जाती है। यथा –

" तन में मन में रोम–रोम में, नख से शिख पर्यन्त
लिखकर तू रख गयी स्नेहमयी! अपना स्नेह अनन्त।
बार–बार मन में लाता है तेरा स्मरणविषाद,
क्षण–भर को ही वहाँ तुझे क्या आती है कुछ याद ?
कभी कल्पना पहुँचाती है क्या तुझ तक यह बात,
मैं इस समय कर रहा हूँगा नीरव अश्रु–निपात।। *

स्वप्न :– कविता में कवि सियारामशरण जी कामना कर रहे है कि मेरे इस शरीर में कोई स्वप्न प्रवेश कर जाये और मन्द–मन्द गति से आकर मेरे नेत्रों को खोल दे, जिससे मैं उसके मिलन से हर्षित हो उठूँ ; यथा–

" मन्द–मन्द गति से आकर तू आँखों सी दे खोल
फिर से तेरे मंजु मिलन में उठे हर्ष– कल्लोल।" **

वही–तीथि :– कविता जो कि सियारामशरण गुप्त जी के विषाद संकलन में सग्रहीत है। ' वही तीथि' आज घूम फिर कर के अतिथि बन कर आयी है और मैंने उसे अन्तःपुर में छिपा लिया है। ऐसा कवि का उदगार है –

" मैनें उसको छिपा लिया है अन्तःपुर में
मुखरित है संगीत आज वह उर के उर में।
तो भी यों ही नहीं लौटने दूँगा तुझको,
आगे बढ़कर मंत्रमुग्ध–सा लूँगा तुझको। ***

मौनालाप :– कविता में कवि पत्नी का मानस–प्रत्यक्ष करते हुए उससे इस प्रकार मौनालाप करने को विवश है –

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 165–166

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 166

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली– प्रथम खण्ड–(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 167

" आन सकेगी किन्तु आज तू उसी भाँति साह्रद,
लिखने मुझे नहीं देती बस, आकर तेरी याद।
तो फिर उस तेरी स्मृति से ही करके मौनालाप,
आज और कुछ नहीं लिखूँगा रूक कर अपने आप"।। *

स्वर्ण प्रतिमा :– कविता में भगवान श्री राम यज्ञ में सीता की पूर्ति करने के लिए जनकजा की सोने की मूर्ति बना सकने में भी समर्थ थे, वह राजराजेश्वर थे उनके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं था, न ही कोई कार्य दुष्कर था पर कवि अकिंचन और साधन हीन होने के कारण उनसे यही प्रार्थना कर सकता है –

"दयाकर आज तुम्हीं दो साथ।
हृदय में कहीं पुण्य का लेश
किये हो यदि सुवर्ण शुभ वेश
उसी से रचकर मूर्ति प्रसन्न
करो मुखरक्षक मख संपन्न।

अभिसार :– कविता में कवि अभिसरण करता है उस गन्तव्य की ओर जहाँ उसकी प्रिया का वासस्थान है ज्ञात नहीं .... मुदमान।

धनाह्लाद :– कविता की कुछ पंक्तियाँ जिनमें धनाह्लाद विषाद के रूप में परिणत हो जाता है

" रह–रह कर यह पिक बार–बार
कर रहा मधुरिमा का प्रसार।
है हरित धरा का हेमगात्र
भर ओत प्रोत प्रमोद पात्र।
x x x x
पर इस उर में यह धनाह्लाद
धारण कर लेता है विषाद! " **

विदा :– कविता में वह नहीं जानता कि कहाँ से और क्यों मृत पत्नी की स्मृति पुरवाई हवा की भाँति आती है और उसे झकझोर जाती है, –

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 169

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 172

यह क्या यह –तो है '' विषाद। ''
कुछ मुझको भी आ रही याद।
वह भूला–भटका मनस्ताप
कर उठा अचानक है विलाप ।। '' *

कविता में कवि सियारामशरण जी की अन्तिम दो पंक्तियाँ हृदय मर्म को छू लेती है व वियोग श्रृंगार की अनुभूति कराती है यथा --

'' हे श्रान्त ! पहन अब अश्रु–माल
लो विदा, आज है पुण्य काल''! **

कवि की पूजा का थाल रिक्त है। वह अपने हृदय के भूचाल को नहीं संभाल पा रहा है कवि अपनी वेदना को कविता के माध्यम से जगत के सामने प्रस्तुत करना चाहता है पर वह नहीं चाहता कि उसे अपनी वेदना और पीड़ा प्रसिद्धि का प्रसाद मिले। 'विषाद' कृति कवि की अन्यतम उपलब्धि है सियारामशरण जी के कवि को पहचानने में यह विशेष सहायक है। कवि के जीवन की करूण झाँकी देने वाला यह काव्य–ग्रन्थ काव्य प्रेमियों की रूचिकर वस्तु है। गुप्त जी के जीवन–मोह का एक मात्र स्रोत जब चुक गया तो उनकी आत्म–पीड़ा क्रन्दन कर उठी। 'विषाद' करूण रस की अमर रचना है। ***

'' विषाद'' रचना मे कवि के हृदय की कालिन्दी उमड़ी है, उन्हें सारा संसार सूना–सूना लगता है। क्योंकि उनकी वाटिका वीरान हो चुकी है। सारे आकर्षण अनचीन्हें से प्रतीत हो रहे हैं करूण भाव–भूमि में कविता सजीव हो उठी है। रचना का नाम '' विषाद'' भावात्मक है। भूमिका के रूप में कवि ने कुछ नहीं लिखा है।

दूर्वा–दल :– इस काव्यकृति का प्रथम प्रकाशन सन् 1929 में हुआ था। सियारामशरण गुप्त जी के ''दूर्वादल' काव्य में 35 कविताओं का संग्रह है। ' तुच्छ धूलि से बनी हुई' ' भेंट' ' विनय' ' विश्वास' ' अभागा फूल' 'शरणागत' ' गृह–प्रदीप' ' अनुरोध' ' मृत्यु–भय' ' गूढ़ाशय' ' माली के प्रति' ' परीक्षा' ' कामना' 'सुजीवन' ' अपूर्णयांचा' 'सन्तोष' ' लेखनी' ' सु'–अवसर' ' निर्विवेक' ' असमय' ' अनौचित्य' 'कृतध्न' ' गत दिवस' ' जननी' ' तुलंसीदास' ' समीर' के प्रति ' मूर्ति ' कजागर पूर्णिमा' ' घट' ' वीणा' ' कब ' ' पथ' बाढ़'' 'वृद्ध' ' 'वर्ष–

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 173

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड –(विषाद) सम्पादक–ललित शुक्ल– पृ0 174

*** सियारामशरण गुप्त सं0 डॉ0 नगेन्द्र –(विषाद) पृ0 60

प्रयाण'। दूर्वादल रचना में मंगलाचरण सम्बन्धी'तुच्छ धूलि से बनी हुई' कविता भी सम्मिलित है। इस कविता में धरती मेघ के प्रति अपनी विभूति का समर्पण इस प्रकार करती है –

> कैसे करूँ कृतज्ञ–भांव ! हा! में होना प्रकटित गुण–हीना ?
>
> x x x x
>
> हैं बस मेरे पास अंकिचन ये दूर्वादल,
> प्राप्त करूँ सन्तोष आज कैसे इनके बल ?
> अर्पित ये किस भाँति करूँ उनश्री– सदमों में,
> सत सहस्र अलि–वृन्द सुसेवित पद्–पदमों में ? *

'विनय' शीर्षक कविता में कवि ईश्वर को छोड़कर और किसी की भी सहायता नहीं चाहता है। 'विनय' कविता में ईश्वर से बार–बार विनय करता है। कि दीनता के वशीभूत होकर हम किसी दूसरों के द्वार न जावें और यदि कभी आप हम पर क्रुद्ध होंगे तो हम उसे भक्तिपूर्वक स्वीकार कर लेंगे। यथा –

> " है यह विनय बारबार,
> दीनता–वश हम न जावें दूसरों के द्वार।
>
> x x x x
>
> यदि कभी हम पर करो तुम क्रोध का व्यवहार,
> भक्ति पूर्वक तो सदा वह हो हमें स्वीकार।" **

विश्वास :– संवत् 1972 के वैशाख मास की कृष्ण अष्टमी को कवि ने 'विश्वास' नाम की एक कविता लिखी थी जिसमें उसे विपद् सिन्धु के पार हो जाने का विश्वास है। 'विश्वास' कविता में कवि कहता है कि हे करूणागार ! यदि कभी किसी प्रकार से भूलकर भी मुझसे कोई अपराध हो जाये तो आप निर्दय बनकर हमें दण्ड देना; किन्तु मेरे विश्वास को मुझसे मत छीनो।मैं उसकी ही सहायता पाकर बिना किसी प्रयास के शीघ्र ही विपत्तियों के सागर को पार कर जाऊँगा। कवि सियारामशरण के शब्दों में उद्धृत है

> " पाकर उसकी ही सहायता
> सत्वर बिना प्रयास,
> विपद –सिन्धु हम तर जावेंगे
> है हमको विश्वास।" ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 176

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 177

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 178

अभागा फूल :– इस कविता में कवि फूल के भाग्य हीन रह जाने का दुःख प्रकट कर रहा है कवि कहता है कि हे अभागे फूल ! तू अभी से ही मुरझाने लगा है, तू अपने सौरभ को भी नहीं फैला पाया और अभी से गौरव खो चला है। '' अभागा फूल' कविता में कवि का श्रृद्धालु और आस्थावादी मन हर प्रयास को प्रभु की ओर मोड़ देना चाहता है। फूल भी यदि अभागा है तो इसमें दयामय का ही हाथ है। –

'' अभागे फूल मुरझाने लगा तू,
सताया काल से जाने लगा तू।
अभी अच्छी तरह खिल भी न पाया,
कि तुझ पर हाय! ऐसा दुःख आया।

x x x x

हुआ क्यों हाय! यह चिर दुःख– भोगी,
दयामय! क्या दया इस पर न होगी ?।। '' *

'शरणागत ' :– इस कविता में कवि को विकट जंजाल चारों ओर से घेरे हुए है, उसकी छोटी सी नाव है चारों ओर समुद्र है। हवा के झकोर विकराल रूप धारण किये हुए है। नौका को निगल जाने के लिए सागर की तरंगें सौ–सौ जिह्वाएँ फैलाये हुए है। हिंसक जन्तुओं के चिन्ह दिखायी दे रहे है जिससे वह भयभीत हो रहा है। वह शरण्य की शरण ग्रहण कर निर्द्वन्द्व हो जाता है।

'' आ गया कराल रात्रि–काल, है अकेले यहाँ,
हिंस्र जन्तुओं के चिन्ह जा रहे निहारे हैं।
किसको पुकारें यहाँ रोकर अरण्य– बीच
चाहे जो करो शरण्य! शरण तुम्हारे हैं।'' **

गृह–प्रदीप :– इस कविता में पर्णकुटी में रखे हुए घर के दीपक को अचानक समीर(हवा) आकर बुझा देती है। जिससे अँधकार हो जाता है कवि कहता है हे नाथ अब मैं क्या करूँ, और तुम्हारा स्वागत कैसे करूँ। तुम अंधेरा देखकर के बाहर से ही मत लौट जाना क्योंकि

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 179

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 180

जब द्वार देहली तक एक चरण ही पहुँचेगा तब तक सौ–सौ दीपावलियाँ घर को प्रकाशमान कर देंगी। कवि के शब्दों में वर्णन निम्नलिखित है –

" पहुँचेगा तब एक चरण ही
द्वार–देहली तब जब तक,
सौ–सौ दीपावलियाँ गृह को
सुप्रभ कर देंगी तब तक! " *

माली के प्रति :– इस कविता में माली कवि से कहता है कि तुमने कैसा वृक्ष लगाया है, जिसमें अभी तक कोई भी फूल नहीं आया। कितने ही बसन्त व बरसातें निकल चुकी है इस वृक्ष के पत्ते भी शुष्क हो गये है इसलिए या तो तुम इस वृक्ष को काट डालो या फिर इसे हरा–भरा कर दो। यथा–

" साथ छोड़ती जाती है सब,
शाखा आदि रूखाई से
शुष्क हुए पत्तों को इसने
इधर–उधर छितराया है!
अरे, काट ही डालो इसको
अथवा हरा–भरा कर दो
कहें सभी आहा! तुमने वह
कैसा वृक्ष लगाया है! " **

परीक्षा :– इस कविता में कवि स्वयं को अकेला महसूस करता है और कहता है कि क्रोध,लोभ,मोह आदि अनके शत्रु मुझे चारों ओर से घेरे हुए है। इस कठिन परीक्षा कार्य में मैं जब उत्तीर्ण हो जाऊँ तब तुम मेरे मानस–सद्म में शान्ति–सुगन्धि फैला देना।–

" इस कठिन परीक्षा–कार्य में
हो जाऊँ उत्तीर्ण जब
कर देना मानस–सद्म में
शान्ति–सुगन्धि विकीर्ण तब। ***

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 181
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 183
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 184

सुअवसर,निर्विवेक,असमय,अनौचित्य, एवं कृतघ्न जैसी कविताएँ प्रकृति की अनूकूलता प्रति कूलता की सूचक है।

तुलसीदास :- इस कविता में सरयू आदि नदियों के तट पर तुलसीदास जी ने रस धारा बहाई उसकी भाषामयी प्रशस्ति है

" रम्य रामचरितामृत से यह
मानस तुमने भर कर ,
किया पुनीत प्रेममय इसको
पाप -ताप सब हर कर। " *

इस कविता में संबोधन शैली का अनुकरण किया गया है। इन सभी पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि इन पंक्तियों में ईश्वर-भक्ति आत्म निवेदन आदि की अभिव्यक्ति है।

समीर के प्रति :- कवि जी की इस कविता में प्रकृति-चित्रण की धारा प्रवाहित रही है। कवि कहता है कि समीर तुम पर्वतों,वनों,उपवनों,नदियों को चूमते हुए घूमते रहते हो, जब से तुमने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है, क्षण,मात्र के लिए भी विश्राम नहीं किया है। तुम विश्व के सारे रहस्यों को जान चुके हो और जानकर उन्हें छान भी चुके हो।

" हो प्रभात या दिवस या कि दिवसान्त ही,
करते रहते भ्रमण सदैव अशान्त ही,
सब रहस्य तुम जान चुके हो विश्व के,
कोने-कोने छान चुके हो विश्व के "। **

' घट',' वीणा','पथ',और 'कब ' शीर्षक कविताओं में छायावादी व रहस्यवादी शैली के दर्शन होते है। *** सुकोमल भावों की सूक्ष्म व्यंजना करने वाले लघु-गीतों की जो शैली उस दशक में चल पड़ी थी उसका भी बहुत कुछ प्रभाव इस संकलन की कविताओं में परिलक्षित है। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली-प्रथम खण्ड(दूर्वादल) -सम्पादक - ललित शुक्ल पृ0 194

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली-प्रथम खण्ड(दूर्वादल) -सम्पादक - ललित शुक्ल पृ0 195

*** सियारामशरण गुप्त - (दूर्वादल) सम्पादक - डॉ0 नगेन्द्र पृ0 59

" किस दिन माया जाल तोड़ के

गेह निज छोड़ के,

बाहर हुए थे इस अक्षय भ्रमण को ?

विश्व महासिन्धु सन्तर को ?

है सर्वत्रगामी चर

विचर–विचर कर

ढूंढ़ते कैसे हो तुम –

कौन प्रेयसी है वह, चाहते जिसे हो तुम ?" *

'बाढ़' 'वृद्ध' 'वर्ष प्रयाण' आदि कविताएँ बड़े कलेवर में प्रस्तुत है।

वृद्ध :– इस कविता में वीभत्स रस का चित्रण दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि इसमें जो वृद्ध व्यक्ति है उसे फाँसी का झटका– सा महसूस होता है क्रूर खाँसी का वेग बार–बार लगता है उसके दाँत भी नहीं है किसीने दोनों नेत्र फोड़ के छोड़ दिये है सारी त्वचा सिकुड़कर सिमट गई है। अस्थियों का ढाँचा मात्र रह गया है यथा–

" छोड़ प्राण–धन को

निकली क्या अस्थियाँ इसी से पलायन को ?

छिपकर आप अपने के बीच निस्सहाय,

सिकुड़ सिमट गई त्वचा हाय!

कमर ने है सिर–सा झुका दिया,

हाय! वृद्ध आके तुम्हें लूट किसने लिया" ? **

सियाराम शरण गुप्त जी की कुछ कविताओं में नव जागरण एवं छायावाद आदि काव्यधाराओं का बिम्ब दृष्टिगोचर होता है।

इन कविताओं की कवि ने समय–समय पर अपने तथा देश के जीवन से प्रभावित होकर लिखी। कवि का आत्म–पीड़न तथा अपने जीवन को सोद्देश्य और महत्त्वपूर्ण बनाने की सद्भिलाषा अनेक रचनाओं में व्यक्त हुई है। सियारामशरण की उदात्त वृत्तियों से अभिभूत व्यक्तित्व भली प्रकार से इन कविताओं में निखरा हुआ प्रतीत होता है। जन्मभूमि की प्रशस्ति में भी कई कविताएँ लिखी गयी है। इस संकलन की इन तीन रचनाओं ने काफी ख्याति प्राप्त की है– तुलसीदास, घट, वर्ष–प्रयाण।

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 205

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(दूर्वादल) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 212

काव्य सौष्ठव की दृष्टि से ये कविताएँ हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। छन्द–रचना के क्षेत्र में कवि ने कई नये प्रयोग किये है। अन्य कविताओं में कवि का आत्म निवेदन, राष्ट्रीय–प्रेम तथा ईश्वर–भक्ति की अभिव्यक्ति है। सियारामशरण जी के काव्य को समझने के लिए ' दूर्वादल' एक महत्त्वपूर्ण संकलन माना जाता है।

6.आत्मोत्सर्ग :– भारत की स्वतंन्त्रता के लिए जिन महापुरूषों ने अपने प्राणों की बाजी लगायी थी, उनमें अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम प्रमुख है अमर शहीद श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान के अवसर पर ही यह राष्ट्रीय कथा– काव्य ' आत्मोत्सर्ग' लिखा गया है। ' आत्मोत्सर्ग रचना का प्रथम प्रकाशन सन 1931 में हुआ था। सियाराम शरण जी का विद्यार्थी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था। सियारामशरण जी और विद्यार्थी जी के परिचय का एक प्रसंग इस प्रकार है – '' एक बार विद्यार्थी जी विरचित ' हमारी 'आत्मोत्सर्गता ' नामक पुस्तक की हस्तलिपि मैथिलीशरण जी के पास भेजी गयी थी। इसी प्रसंग में सियारामशरण जी और विद्यार्थी जी का परिचय हुआ। विद्यार्थी जी ने इन्हें राजस्थान का कोई कथानक बतलाकर काव्य रचना के लिए प्रेरित किया। वे एक ऐसा ग्रन्थ चाहते थे जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों का ऐक्य प्रदर्शित हो। लम्बा समय बीत जाने पर कवि के ध्यान से कथानक उतर गया।* सियारामशरण गुप्त जी लिखते है :–

'' उसके बाद आँखों में आँसू और हृदय में विषाद लेकर जब मुझे साहित्य की राजसभा में उपस्थित होने के लिए देव या दुर्देव ने बाध्य किया तब तक उस कथानक की बात मेरे मन से बिल्कुल उतर गयी। पूज्य विद्यार्थी जी के संसर्ग का सौभाग्य भी बीसियों बार प्राप्त हुआ पर उस विषय की चर्चा फिर कभी नही हुई। ** इस स्थिति में परिर्वतन तब हुआ जब एक दिन सियारामशरण जी समाचार पत्रों से अवगत हुए कि अचानक हुए कानपुर के साम्प्रदायिक दंगे में विद्यार्थी जी लापता हो गये है, तब उसी समय उनके मन में आया कि विद्यार्थी जी जिस आग को बुझाने के लिए अपना जीवन होम सकते है, उसे बुझाने के लिए उन्हें अपनी नगण्य स्याही का भी कुछ–न–कुछ उपयोग अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार उपर्युक्त समाचार ' 'आत्मोत्सर्ग' की रचना में कारणीभूत बना। इस संदर्भ में कवि ने भी लिखा है .. .. जब उद्देश्य की बात आ ही गयी है तब मुझे इस बात की आशा करने का कोई आधार नहीं मिल रहा है कि हिन्दी धनी –धोरी इसे संतोष के साथ देखेंगे; क्योंकि न तो यह

---

* सियारामशरण गुप्त रचना एवं चिंतन – सम्पादक– ललित शुक्ल – पृ0 254

** सियारामशरण गुप्त रचना एवं चिंतन – सम्पादक– ललित शुक्ल – पृ0 254

निरूद्देश्य है और न ऐसी कि इसकी कोई बात समझ में न आ सके। फिर भी मुझे विश्वास है कि विद्यार्थी जी के अगणित भक्तों की स्नेह–दृष्टि से यह वंचित न रहेगी। मेरे लिए इतना ही बहुत है। ''इसी प्रकार कवि ने अपने निवेदन में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि उस कविता में विवरण संबंधी त्रुटियाँ निकालना कठिन न होगा। परन्तु मैने इस बात की परवाह न की। मेरे लिखने का जो उद्देश्य है, संभवतः उसे कविता ने अपने भीतर छिपा नहीं लिया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता की आग में विद्यार्थी जी ने अपने आप को स्वाहा कर दिया था और इसी आग को शान्त करने के उद्देश्य से ' आत्मोत्सर्ग' की रचना की गयी है। इस सन्दर्भ में गाँधी जी ने भी विद्यार्थी जी के आत्म बलिदान की प्रशंसा में कहा था ''. .... पर गणेश शंकर विद्यार्थी ने जिस वीरता का परिचय दिया है। वह अन्त में पत्थर से पत्थर हृदय को भी पिघला कर एक में मिला देगी। .... वह मरे नहीं; आज वह तब से कहीं अधिक सच्चे रूप में जीवित हैं। जब तक हमने उन्हें भौतिक शरीर में, देखा तब तक हमने उन्हें न पहचाना। * इस काव्य–कृति में मात्र युगपुरूष महात्मा गाँधी ने ही अपने विचार नहीं रखे, वरन् श्रद्धांजलि के रूप में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी इस प्रकार अपनी संवेदना व्यक्त की –

> निर्धनता का गर्वी था तू
> विघ्न विजेता गुणी गणेश।
> जिस पर तू बलिदान हुआ है
> तेरी तुक है तेरा देश।। **

एक समीक्षक के अनुसार ' आत्मोत्सर्ग ' इतिवृत्तात्मक काव्य है पर सम्पूर्ण काव्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक अत्यन्त सरल एवं सजीव काव्य है। इतिवृत्तात्मक अंश इतना ही है कि यह गणेश शंकर विद्यार्थी के उत्सर्ग की कथा है; पर इसका व्यंगात्मक पक्ष है धार्मिक संकीर्णता और अनुदारता की निन्दा करना। यहाँ कवि प्रवर ने कबीर के सदृश हिन्दू और मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों की कट्टरता धर्मान्धता अंधविश्वास पर प्रहार किया है और यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि इन दोनों सम्प्रदायों की एकता से ही शक्तिशाली भारत का स्थायित्व संभव है। काव्य में उग्र भीड़ के समक्ष विद्यार्थी जी यही कहते है –

---

* उद्धृत – सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – सम्पादक– डॉ0दुर्गाशंकर मिश्र – पृ0 68

** उद्धृत – सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – सम्पादक– डॉ0दुर्गाशंकर मिश्र – पृ0 68

" हाजिर मेरा खून तुम्हारा
फूले–फले अगर इस्लाम,
x x x x
अब मत भोगो अपने हाथों
अरे! बहुत तुमने भोगा
हिन्दु–मुसलमान दोनों का
यह संयुक्त राष्ट्र होगा।"*

वस्तुतः ' आत्मोत्सर्ग के उक्त रचयिता का उद्देश्य है मातृभूमि के प्रति प्रेम, हिन्दु–मुस्लिम ऐक्य तथा पारस्परिकता की भावना उद्दीप्त करना । काव्य के अवान्तर उद्देश्यों में एक विद्यार्थी जी के व्यक्तित्व के उदात्त गुणों को उजागर करना भी रहा है। पुनः कवि विद्यार्थी जी के साथ अपने संबधों को भी एक पुनीत आयाम देना चाहता है। यह इसलिए भी कि उसकी दृष्ठि में विद्यार्थी जी का अवसान एक सामान्य व्यक्ति का अवसान नहीं, एक राष्ट्रीय क्षति के समतुल्य है। उनकी हत्या करने वालों के प्रति कवि को कहना पड़ता है।

"अरे दीन के दीवानों हा!
यह तुमने क्या कर डाला ?
अपने हाथ खून से रंग कर।
किया स्वयं निज मुख काला।"**

कवि कवि होता है क्योंकि किसी घटना या क्रिया संवेदना के सन्दर्भ में प्रकृति की अनेक रूपात्मकता में से भावानुकूल प्रतिक्रिया को प्रकट करना पड़ता है। प्रकृति को कवि अनूकूल–प्रतिकूल दोनों प्रकार के भावों में योजित आता रहा है। यही कारण है कि विद्यार्थी जी के साथ अन्य के ' आखेट' बन जाने पर वह भी अपनी संवेदना या क्रिया व्यक्त किये बिना नहीं रहती

"अन्धकार में निशाकर
खिसक गया निज ज्योति समेट
काँप उठे झिलमिल तारागण
निरख निरीहों का आखेट।"***

आत्मोत्सर्ग कविता में वेदना का चरम अभिव्यक्त हुआ है। कवि ने अपने ह्दय.की सम्पूर्ण

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 250
** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 252
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 229

करूणा को विद्यार्थी जी के उत्सर्ग के साथ जोड़कर जो कुछ कविता के रूप में कहा है, वह भारत के राष्ट्रीय संग्राम में अपना महत्त्व रखता है। कवि कहाँ तक अपने आँसू बहाए उसे इन पंक्तियों की रचना कर अपने को शमित करना पड़ता है –

"अपने तन की खाद बनाकर
अमर बीज तुमने बोया।
नहीं बुझेगी चिता तुम्हारी
उसकी यह ज्वलंत ज्वाला।
निज प्रकाश से मातृभूमि का
मुख उसने है धो डाला।" *

किसी भी बलिदानी का राष्ट्रहित या समाजहित में किया गया उत्सर्ग व्यर्थ नहीं जाता–समाज का एक एक चिन्ताशील व्यक्ति इस पर विचार करने को बाध्य हो जाता है कि क्या मनुष्य के ज्ञान की यही परिणति है ? क्या इसी प्रकार की क्रियाओं से भारत राष्ट्र या विश्व सबल बनेगा –

"निखिल विश्व में परिव्याप्त हो
मति यह सर्व हिता तेरी!
घर–घर ज्ञानप्रदीप जला दे,
मरणोद्दीप्त चिता तेरी।।" **

काव्यकला की दृष्टि से ' आत्मोत्सर्ग' की अपनी सीमाएँ है– जैसा कि डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र ने लिखा है " .... यह काव्य कृति वक्तव्य बहुल हो गयी है और अतीत की घटनाओं का चित्रण करने से कहीं–कहीं केवल रसाभास होने लगता है, अपितु काव्य गत आनन्द भी लुप्त– सा हो जाता है; पर ऐसे प्रसंग अधिक नहीं है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि इस काव्य कृति में केवल श्री गणेश शंकर विद्यार्थी का यशोगान करना ही कवि का लक्ष्य नहीं है बल्कि कवि की राष्ट्रीय भावना भी प्रेरक तत्व के रूप में सक्रिय जान पड़ती है। ***

7.पाथेय :– इस कृति का प्रथम प्रकाशन सन् 1934 में हुआ था। " पाथेय" में कुल 44 कविताएँ संग्रहीत है। ' प्रणाम' ' उत्सुक' ' विदा' ' उन्मुक्त' 'यथास्थान' ' यात्री ' ' पूजन' '

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 256

** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 257

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – सम्पादक – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 70

अविराम' ' दुर्वार'' आह्ललाद' ' आदान–प्रदान' ' जाग्रत' ' परदेशी' ' बोध' ' परस्पर' ' क्षणिक' बीच में ' रत्न की आभा' ' दोनों ओर' ' चोर' ' पुलक–प्राप्ति' ' एक बूँद' ' नवजीवन' ' तिमिर पर्व' ' अनुकूल' ' मार्ग बन्धु' ' नेत्रोन्मीलन' ' 'एक क्षण' ' शान्ति' ' लक्ष्मी' ' समाधान' ' अमर' ' आकांक्षा' ' स्नेह–रीति' 'मितिरालोक' 'असफल' ' शुभागमन' आह्वान' ' कसक' ' शंख–नाद' ' भ्रान्ति–मोचन' ' वीर–वन्दना' ' दयनीय' ' अक्षत–दान' एवं विदा के समय'। पाथेय की समस्त रचनाओं में एक नवीन आशा है नया विश्वास है। पत्नी के स्वर्गवास हो जाने पर कवि के सम्मुख विषाद साकार हो उठा था। कुछ समय बाद आशा और जीवन के संबल के रूप में ' पाथेय' की रचना हुई थी। एक समीक्षक के अनुसार विचारात्मक कविताओं का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है।

प्रणाम :– इस कविता का प्रकाशन मई 1934 में ' विशाल भारत' के तीन खण्डों में हुआ था। ' प्रणाम' कविता में कवि संभवतः अपनी त्रुटियों, दुर्व्यवहार आदि के लिए संभवतः अपने अग्रज से क्षमा –याचना करता हुआ प्रमाण निवेदित करता है –

'' पूर्व में मैंने किसी प्रकार
किया हो यदि कुछ दुर्व्यवहार,
निरंकुश होकर क्रूर अबाध
किया हो गुरुतर गुरू अपराध,

x x x x

क्षमा उसके निमित्त शत बार
माँगता हूँ मैं हाथ पसार। '' *

''पाथेय'' की ' प्रणाम' कविता में विनम्रता और शालीनता है।

' विदा' :– कविता में जब कवि अपनी माँ से अलग (विदा) होता है तब उसे अपार दुःख होता है और वह कहता है कि यदि मैं तुझसे दूर रहूँगा तो तूँ मुझे स्मृतियों के साथ याद बनी रहेगी और मैं कहीं भी रहूँ तुम प्रति क्षण प्रतिपल मेरे भीतर मंगल कथा कहती रहना।

यथा –

''तुझसे दूर रहूँगा तो क्या ?
स्मृति के संग रहेगी तू।
क्यों न कहीं भी रहूँ, समय पर
आकर बाँह गहेगी तू।। ''

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 260

पाथेय' रचना की उन्मुक्त कविता में कवि माता से विदा लेने के पश्चात उन्मुक्त दिखलायी पड़ता है कवि के शब्द में अवलोकनीय है –

" आहा यह आकाश अपार!
अक्षय कवच हुआ है मेरा
दिग्दिगन्त तक दीर्घाकार।
छाया–छत्र रहेगा सिर पर
जाऊँ रहूँ कहीं पर भी।
x x x x
आहा यह आकाश अपार!" *

कवि का यंत्रयान यथास्थान चलता जाता है और वह इस बात को स्वीकार करता है कि वह एक यात्री है। कवि ' यात्री' कविता में कह रहा है कि मैं मुक्त पक्षी की भाँति उड़ जाऊँ परन्तु मैं पंख कहाँ से लाऊँ। कवि आगे कहता है कि मेरे पैर क्या कुछ कम है, मैं उन्हीं से क्यों न बढ़ जाऊँ– कवि की निम्नलिखित प्रस्तुति है –

" गह्वर टीले इधर–उधर है,
मुझको पथ देने को ही
अपने इन पदचिन्हों पर ही
नूतन मार्ग बनाऊँ मैं!
कुछ हो, पैर बढाऊँ मैं।"

'यात्री' कविता का प्रकाशन जून 1923 के ' विशाल भारत' पत्रिका में हुआ था। पूजन की माँग करता हुआ कवि अविराम चलता रहता है। ' अविराम' कविता के एक उदाहरण में कवि दूर जाना चाहता है यथा –

" आज दूर जाना है मुझको,
जल्दी में मन है मेरा
बन्धु मुझे इस नव यात्रा के
पागलपन ने है घेरा।।" **

अविराम कविता का प्रकाशन जनवरी 1934 के ' विशाल भारत' पत्रिका में हुआ था। कवि

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 263

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) –सम्पादक – ललित शुक्ल पृ0 267

सियारामशरण गुप्त जी के कविता–संकलन " पाथेय" में संग्रहीत ' दुर्वार' कविता की कुछ पंक्तियाँ जिनमें कवि बन्धु को रोक रहा है दृष्टव्य है –

" रूक जा ,रूक जा बन्धु आज तू,
आज समय–गति है प्रतिकूल;
रूद्र व्योम घन–जटा खोल निज
लिए हुए है विद्युत–शूल।" *

उक्त ' दुर्वार' कविता की पंक्तियों में कवि अनेक झंझावतों और प्रतिकूल प्राकृतिक वातावरण होने पर भी दुर्वार की ओर संकेत करता है इसी पथ पर चलने पर राही को आह्लाद मिलता है। रोम–रोम में पुलक भर जाता है दूर देश को जाने वाला पथिक अपने साथियों से वाणी का आदान प्रदान भी करता है।

जाग्रत' :– कविता में जाग्रत पथ के अंधकार में उसे जाग्रत होने का भान होता रहता है यथा –

" देखा–देख नहीं सकता कुछ,
अन्धकूप का है घेरा।
ओ जाग्रत वह स्वप्न मात्र था,
पथ है खुला पड़ा तेरा।। " **

परदेशी' :– कविता में कवि को ' सघनता' प्रतिकूलता और ' तमिस्रा' चारों ओर से घेरे हुए है वह कहता है देवि, मैं दूर देश से आया हुआ एक परदेशी हूँ, जब मैं अचानक यहाँ आया, तब मुझ घर से बिछुडे हुए को बालक के समान मानकर झट से अपने में मिला लिया आगे कवि के शब्दों में पंक्ति रूप में द्रष्टव्य है –

" मुझ घर–बिछुड़े को बालक –सा
झट से हिला लिया तूने।
अतिथि नहीं, कौटुम्बिक करके,
निज में मिला लिया तूने।" ***

कवि को प्रतिकूलता एवं तमिस्रा में भी अपने पथ का बोध हो जाता है। उच्चता की प्यास

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 268

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 271

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 272

बुझाने के लिए कवि' पथ' के कूप से परस्पर बातें करता है। यात्री को अपने यात्रा पथ पर कोयल की ' क्षणिक' में कूक सुनायी पड़ती है। क्षण भर की उस कोयल की कूक ने कवि के उस नीरव–निर्जन पथ को मुखरित–मन्त्र प्राप्त करा दिया है –

'' मेरे नीरव–निर्जन पथ को
मुखर–मन्त्र मिल गया अचूक
कम क्या, यदि सुन सका क्षणिक हो,
कोइल, वह तेरी कल –कूक ? *

'बीच में' कवि का यात्री गिरिवर की हेमचूड़ा' पर अपना लक्ष्य साध लेता है; यथा–

'' निद्रा ने आकर दुलार कर
इसे गोद में सुला लिया;
निज अंचल–पट से मस्तक का
स्वेद पोंछ, श्रम भुला दिया' । **

कवि को ' रत्न की आभा' के दर्शन होते हैं। एक ग्राम्य बालक से भेंट हो जाती है। परस्पर बातचीत में –' दोनों ओर' हर्ष का समुद्र हिलोर लेने लगता है। हर्ष की इसी भूमिका में यात्री को पवन' चोर' मिल जाता है। इस घटना से उसे ' पुलक प्राप्ति' होती है। ' सीपी' को एक बूँद की प्यास है कवि इस तथ्य को जानता है *** स्वयं कवि के शब्दों में निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत है :–

'' मेरे पुलक–स्वाति के घन हे।
पूरा कर मेरा अभिलाष ;
अधिक नहीं, बस, इस सीपी को
एक बूँद की ही है प्यास ''। ****

अपने लक्ष्य में पहुँचने से पहले ही पथिक को ' नवजीवन' प्राप्त होता है। 'मार्ग में मार्ग

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 277

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 279

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 285

**** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 293

बन्धु' हो जाती है ' कुहु' से नेत्रोंन्मीलन का भी सन्देश मिलता है।' नेत्रोन्मीलन कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है :–

" खोल दिये मेरे दृग तूने

पर तू दीन दिखाई ;

थी तेरी ऐसी क्रीड़ा यह,

मुझे बहुत ही भाई।" *

कवि को ' असफल' कविता में विजय का आभास होता है कवि आगे कहता है कि बन्धु यह अविजय ऐसी है जिसमें तू नवीन शोभा को प्राप्त करता है और दीपावली भी अँधेरी अमावस्या में आने से झिझकती नहीं है – यथा –

" नहीं झिझकती है दीपावलि

अन्ध–अमा में आने से

गिर कर पंकिल भी ओ घन–जल

किसे नहीं तू भाता है ? " **

कविता 'आह्वान' क्रमशः में पावस के राजदूत वैशाख, पावस के अग्रदूत ज्येष्ठ एवं पावस केतु आषाढ़ का आह्वान सुनाई पड़ता है। कवि में सहसा जीवन के भौतिक पक्ष के प्रति हर्षातिरेक व्याप्त हो चुकी है और वह उस स्फूर्ति और उन्मेष का गीत गा उठता है –

" अहा! अचानक प्रबल वेग से,

मुझमें नवजीवन आया।

आया हाँ आया–आया,

तरल तरंगों में उठ इसने

तन को मन को लहराया,

लहराया हाँ लहराया।।" ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 293

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 303

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 286

' पाथेय' संग्रह की एक रचना काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी है जिसका शीर्षक है शंखनाद

" मृत्युंजय इस घट में अपना।

काल–कूट भर दे तू आज।।"*

' वीर वन्दना ' की स्वर– संस्कृति के साथ यात्री को ' दयनीय' की दशा याद आ जाती है। वह ' अक्षत दान' से निहाल हो जाता है। अन्त में वह ' विदा के समय' कहता है यथा –

" चिन्ता की क्या बात सखे यदि

मैं हूँ पूरा वर्ष।

लौट पडूंगा क्षण ही में मैं,

ले नूतन का हर्ष ।। " **

" पाथेय" कृति के प्रयोगों की नवीनता और भाषा का लालित्य उसकी सम्पदा है। कवि की काव्य–यात्रा का यह एक मुख्य पड़ाव है। कवि की मनोदशा को एक नये रूप में प्रदर्शित करने वाली ये कविताएँ भावुक पाठकों को अधिक रूचिकर नहीं होंगी– ऐसी हमारी आशंका है परन्तु कवि के मानसिक विकास की प्रगति का अध्ययन करने वाले पाठक इस संग्रह में कवि को अधिक सक्षम एवं जाग्रत रूप को देखते है। कवि मानवीय तत्त्वों के सहारे नव निर्माण का शिलान्यास करने की चेष्टा की है। इस संग्रह की ' असफल' घट, शुभागमन, अनूकूल, अमर आकांक्षा एवं शंखनाद आदि कुछ कविताएँ विभिन्न मनोदशाओं का परिचय देती है। इनमें से ' घट' कविता से स्पष्ट होता है कि कवि चिर–परिचित छोटे–छोटे और लोकानुभव हृदय में बड़ी गहराई तक पहुँच जाते है तथा अनुकूल अमर एवं आकांक्षा आदि कविताएँ जीवन की सफलताओं के मध्य विचरते हुए सुनिश्चित वैयक्तिक विचारधाराओं का ही प्रतिपादन करती है। *** शुभागमन में गाँधीजी का महत्त्व अंकित है तथा असफल कविता में कवि ने जन चेतना में आत्म विश्वास की भावना जागृत करनी चाही है। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस काव्य संग्रह में संकलित ' शंखनाद' नामक कविता ने बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी। और उसमें शंख का गंभीर घोष सुनाई पड़ता है तथा उसकी तुलना ' दिनकर' की हुंकार से की जाती है। शेष कविताओं में कवि आंतरिक चिन्तन से

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 309

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(पाथेय) पृ0 322

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 72

परिचालित जान पड़ता है और दार्शनिकीकरण की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से परिलक्षित होती है। सत्य तो यह है कि कवि अपने कुटुम्ब की सांस्कृतिक परम्परा से अनुप्राणित रहा है और धार्मिक वातावरण में पालित–पोषित होने के कारण उसमें आस्तिकता के बीज प्रारंभ से ही विद्यमान थे। इसी कारण 'पाथेय' में कवि वैष्णव भावना एवं आस्तिकता से परिचालित जान पड़ता है। इसी क्रम में वह जीवन और जगत के विषय में विचार करते हुए उसके मूलाधार ईश्वर पर दृष्टि डालता है। और उसमें जिज्ञासा एवं कौतूहल का उदय होता है तथा वह पुनः स्रष्टा का चिन्तन करने लगता है। इस प्रकार ' पाथेय' की अधिकांश कविताएँ रहस्यवादी है और उसके रहस्यवाद में प्राचीन एवं नवीन स्वरूप का सम्मिश्रण सा दीख पड़ता है और उसकी प्राचीनता इसमें है कि एक वैष्णव मार्गी कवि अपनी आस्तिकता को लिए हुए जीवन और जगत पर विचार करता है। आधुनिकता इस बात में है कि कवि ने साधनात्मक प्रणाली का उपयोग नहीं किया। वह उपनिषदों में प्राप्त उस चिन्तन के निकट है जिससे छायावादी काव्य तक को प्रभावित किया। *

8.मृण्मयी :– 'मृण्मयी' रचना का प्रथम प्रकाशन सन् 1936 को हुआ था। इस रचना में ध रती से सम्बन्धित कविताएँ हैं। लघु कथाओं को कवि अपनी सहज और सात्विक शैली में कविता का रूप देता गया है। दूर–दूर तक फैली हुई शस्याबलि को देखकर कवि का मन उत्साह से भर जाता है। ' मृण्मयी' में कुल ग्यारह कविताएँ संग्रहीत है। यथा –'सावनतीज के प्रति' 'रजकण' 'लाभालाभ' ,'मंजुघोष' ,'नाम की प्यास', 'छल','ग्वालिने', 'सम्मिलित','अमृत','पुनरपि','भोला और खिलौना'। कई रचनाओं का ताना–बाना कथानक के आधार पर बुना गया है। 'सावन की तीज के प्रति' कविता अलग से दी गयी है। बुन्देलखण्ड के उन्मुक्त जीवन का प्रभाव कवि पर सदा रहा है। और उसी धरती का हृदय स्पन्दन कविताओं में संग्रहीत है प्रारम्भिक समर्पण जो – 'सावन की तीज के प्रति' हुआ है यथा –

'' दूर–दूर तक शस्यावलि में,
वसुधा का पुलकोद्भव है,
हे मंगलमयि, तेरे कर में,
पुष्य पुरातन नव–नव हैं।
हे सुवत्सले, तेरे उर में,
x x x x
मेरी शुष्क मृण्मयी भी यह
मानस में ही हरी–हरी।।'' **

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 73

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी) पृ0 323–324

रजकण' कविता भी अपने नाम को सार्थक करती है। निम्न पंक्तियों में वह स्वयं को ही पहचान नहीं पा रहा है। कवि की पंक्तियाँ हैं –

" आया था जो अभी अतिथि–सा

क्षण में ही वह स्वजन हुआ;

क्या में रजकण हूँ ? निज को ही,

अब पहचान न पाता हूँ"। *

'रजकण' कविता का प्रकाशन जून 1935 के 'विशाल भारत' में हुआ था। सामान्यतया इस कविता में आत्मा का परमात्मा के प्रति निवेदन प्रकट किया गया है और कवि ने विराट् सत्ता की अनुभूति प्रकृति के माध्यम से करनी चाही है। ** 'लाभालाभ' कविता में श्रेष्ठी नर वाहन दत्त की एक साधारण–सी–कथा के माध्यम से इस मरणशील जगत् और उसमें व्याप्त असंतोष का चित्रण किया गया है। इस प्रकार 'लाभालाभ' में नरश्रेष्ठ लोभ का प्रतीक है और उसमें बार–बार वणिक वृत्ति के कारण पश्चाताप का भाव भी जाग्रत होता है तथा आकाश से आती हुई ध्वनि मनुष्य को सावधान करती है *** स्पष्ट है यहाँ कवि का नैतिकता के प्रति आग्रह उजागर हुआ है। इस संग्रह की तीसरी कविता मंजुघोष में भी नीति व्यंजना ही है , तथा कवि ने सांसारिक प्राणियों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि किसी वस्तु का महत्त्व न तो उसके अभाव में है और न उसकी प्राप्ति में है। **** इसलिए कवि का कहना है–

" पाती रहे सुख ही सदैव यदि वसुधा

उसकी प्रसन्न क्षुधा

मंद पड़ जायगी, *****

व्याधि रूप हो के उसे शांति ही सातायेगी।

मृण्मयी की चौथी कविता 'नाम की प्यास' में मनुष्य की यश लिप्सा की निस्सारता

---

*	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 75
**	सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)	पृ0 326
***	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 75
****	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 75
*****	सियारामशरण गुप्त की रचनावली – सम्पादक – ललित शुक्ल	पृ0 338

व्यक्त हुई है जो परहित–विरोधिनी है। पाँचवी कविता ' छल' में कवि ने बाल–क्रीड़ा की पीठिका पर सागर एवं मनुष्य के भ्रम अथवा आत्मवंचना के सुन्दर चित्र संग्रहीत है सागर –तट पर लहरों का यह वर्णन दृष्टव्य है –

"अदभुत– अपूर्व किसी मेला में,
जीवन की खोल में
एक-दूसरे से टकराती है,
x x x x
गिरती हुई भी एक सी ही खिली
एक लय एक मान गाती है।
x x x x
मानों इस क्रीड़ा में खिझाली है
टीका फेन–चंदन का लगा लगा जाती है। *

' ग्वालिनें' कविता में कवि का वैष्णव– हृदयनाद सौन्दर्य के साथ मुखरित हुआ है। कृष्ण के व्यक्तित्व से प्रभावित कवि की पंक्तियाँ दृष्टव्य है :–

" तू आगे– आगे थी पीछे
तेरा यह वनमाली !
अरो ओ ग्वालिन गोरसवाली **

यहाँ प्रेम का माहात्म्य एवं उसका उदात्त स्वरूप चित्रित है। सम्मिलित शीर्षक कविता में वसुधा और प्रकृति का मातृत्व रूप व्यक्त हुआ है।

" मातः वसुधे, स्वजन–स्वजन का वैर–पंक वह
तेरी सुरसरि–मध्य हुआ है निष्कलंक यह।
तेरे इस युग–विटपि तेल मैं निर्भय घूमूँ,
लेकर ये फल–फूल इन्हीं पत्तों सा झूमूँ।

" अमृत' कविता में कवि ने अमृत–मंथन की कथा वर्णित करते हुए हलाहल– अमृत के समान

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 354

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 359

तत्त्व का वर्णन किया है। ' अमृत' के बिना जीवन नीरस मृतक प्राय है। देव और दानव भी उनके हित कृतयत्न थे। एक दिन मंच पर देवासुर स्वच्छन्द रूप से मिले और गम्भीर कण्ठ से कहने लगे –

" सुनो सुरासुर, हम आपस में
लड़ कर सहठ सगर्व
मान चुके हैं निज–निज सौ–सौ
विजयोत्सव के पर्व।

x x x x

क्या ही शुभ है सबल देह में
सद्‌गुण का अभिषेक ।" *

' अमृत' कविता का प्रकाशन दिसम्बर 1939 के ' विशाल भारत' पत्रिका में हुआ था। जल में, थल में, नभ में, एक साथ जब जय जयकार गूँजने लगा तब दानवपति निद्रा का त्याग करके चौंक पड़ा और कहने लगा हम छले गये, जिसे हमने हलाहल समझा था वहीं अमृत सत्य था। कवि सियारामशरण गुप्त जी के शब्दों में दृष्टव्य है।

" छले गये हा! छले गये हम
पा न सके निज भाग।
सुरन्दल ही है या जयी यहाँ भी,
मिला उसी को तथ्य
जिसे हलाहल समझा हमने,
अमृत वहीं था सत्य।।" **

अमृत मंथन की इस कथा में कवि ने सुख–दुःख अमरता एवं जीवन आदि अनेक प्रसंगों पर अपने विचार प्रकट किए हैं। इस कविता में विष एवं अमृत का प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयोग कर कवि ने स्पष्ट करना चाहा है कि जीवन की गहराई में प्रवेश किये बिना सत्य की प्राप्ति असंभव है और इस यथार्थ जगत की कठोरता ही विष है और उसे सह लेना ही अमृत प्राप्त करना है। ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 363

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 379

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 77

पुनरपि" कविता में कवि ने प्राकृति को वरदायिनी और क्षमामयी रूप में ग्रहण किया है और नुष्य की क्रूरता और महत्वाकांक्षा के अनेक चित्र उत्कीर्ण किये है –

" पूश से बच भी जायँ ,

बचा है कौन मनुज से ?

आह! मनुज के लिए

मनुज है क्रूर दनुज से।। *

x x x x

" रागरंजित थी प्राची;

पत्र–पत्र पर उषा अरूण–आभा में नाची।

देखा जन ने कहीं नहीं है भय का कारण

नव किरणों ने किया सहज ही तिमिर–निवारण

" पर अब चलना कठिन राज पथ भी दुर्गम यह"।

अंग–अंग में जाग उठा था उत्कट श्रम वह। **

इस कविता में यह भी संकेतित है कि साधन की महत्ता एवं निर्दोषिता पर ही साध्य का स्थायित्व निर्भर है। इस प्रकार गाँधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन की ओर कवि का संकेत प्रतीत होता है –

शुचि साधन से सिद्ध उसे जिस दिन कर लेंगे

मनचाही चिर हेमराशि से घर भर लेंगे। ***

'भोला' – कविता में भोला से सभी लोग कहते हैं – कि भोला तेरा भाग्य खुल गया भोला भी सोचता है यह बात ठीक है क्योंकि पिता ने मुझे झिड़का नहीं है। और भाई ने अच्छी बातें की है। व माता सदा माता ही होती है। भोला को जब एक रूपया मिल गया तब वह उसी में ही सन्तुष्ट हो गया। मृण्मयी की कविताओं का दर्शन निम्न हुआ है

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 374

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 377–378

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 381

" मिट्टी कंचन है और कंचन मिट्टी।"

ना की इस कथा में कवि ने यह संकेत किया है कि गरीबों के लिए खर्च किया जाने वाला डा सा धन भी महत्त्वपूर्ण है। " खिलौना" कविता में दीना का लाल मचल जाता है, कि तो बस वही खिलौना लूँगा जिसको रामकुमार उछाल–उछाल के खेल रहा था। यथा –

" मैं तो वहीं खिलौना लूँगा',

मचल गया दीना का लाल।

खेल रहा था जिसको लेकर,

राजकुमार उछाल–उछाल।।" *

खिलौना' कविता में ही आगे राजकुमार सोने के खिलौने को फेंककर मिट्टी का खिलौना चाहता है कवि गुप्त जी के शब्दों में उद्धृत है –

" राजहठी ने फेंक दिये सब

अपने रजत– हेम उपहार,

" लूँगा वही, वहीं लूँगा मैं!"

मचल गया वह राजकुमार। **

इस कविता में कवि ने दो बालकों की भावनाओं का चित्रण कर यह स्पष्ट करना चाहा है कि मनुष्य उपलब्ध वस्तु से संतुष्ट नहीं होता। ' मृण्मयी' कविता महान उद्देश्य को लेकर लिखी गयी है। ' मृण्मयी' की कविताएँ गद्यात्मक अधिक है। ' मृण्मयी' में श्रृंगार,शांत,करूण,अद्भुत आदि रसों का परिपाक हुआ है। वाक्यचातुर्य कवि की अपनी विशेषता है। अलंकार स्वाभाविक रूप से ही आ गये हैं। भाषा का और ग्राम्य भाषा का भी प्रयोग है। छन्दों के प्रयोग में गुप्त जी विशेष पटु हैं। कविताओं में कथा भाग अत्यन्त सुन्दर है। इस संकलन की कविताओं में कवि सामाजिक आदर्शो की ओर उन्मुख होता हुआ जान पड़ता है। इन कविताओं में अधिकांशतः सोद्देश्यता का प्रबल आग्रह है और यथार्थवाद की ओर उन्मुखता भी है।– गाँधी–दर्शन के 'सत्य' को भी यहाँ अपनाने पर जोर दिया गया है।

9."बापू" – सियारामशरण गुप्त गाँधीवादी चिन्तक और कवि थे वे गाँधी जी की रीति–नीति

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 392

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(मृण्मयी)सं0 ललित शुक्ल पृ0 392

ो जीवन में उतार कर ही संतोष पाते थे। हिन्दी कविता में गाँधी जी का केवल उल्लेख भर । नहीं हुआ, बल्कि उन्हें आधार बनाकर महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना भी की गयी है। ऐसे हात्मा गाँधी जो सत्य–अहिंसा के पुजारी है उनसे सारा संसार परिचित है। गाँधी जी के ीवन का बहुत प्रभाव सियारामशरण गुप्त जी पर पड़ा था। गाँधी जी के प्रति उनकी गहरी ास्था थी। सियारामशरण जी की ' बापू' रचना गाँधी जी से सम्बन्धित है। इस रचना का र्वप्रथम प्रकाशन 1938 में हुआ था। सम्वत् 1994 की दीपावली और बसन्त के बीच यह रचना रूप ले सकी। रचना के आरम्भ में महादेव देसाई की भूमिका है जिसमें उन्होंने गाँधी जी को धर्म तीर्थ के रूप में स्वीकार किया है। सियारामशरण गुप्त जी ने ' बापू' रचना का आरम्भ वेदना से किया। कर्म और वाणी के मिलाप को रेखांकित करके गुप्त जी ने गाँधी जी के सिद्धान्तों की व्याख्या की। नगरी के एक भाग में उत्सुक जनता उस महापुरूष की एक झलक देखने के लिए व्यग्र थी, जिन्होंने शोषित, दलितों की आँखों से निरन्तर बहने वाले आँसू पोंछे थे। प्यास का उत्तर शीतल जल से दिया तथा निराशा की भूमि पर आशा के लहलहाते पौधे रोपे थे। जिस प्रकार से सूर्य की किरणें अन्धेरे को काटकर प्रकाश बिखेरती हुई धरती को चूमने लगती है वैसे ही बापू के रूप दर्शन से सारे जन समूह को शुद्ध श्रृद्धा की सफलता प्राप्त होती है, यही 'बापू' पुस्तक की विषय–वस्तु है। गाँधी दर्शन के सूक्ष्म अभिव्यंजना इस पद में हैं –

" आई अहा! मूर्ति वह हँसती,
जैसे एक पुण्य, रश्मि स्वर्गा से उतर के।
अन्ध तमः पुंज छिन्न करके
दीख पड़ी अन्तस के अन्तस में धँसती।
आत्ममणि का–सा पारदर्शी पात्र,
दृष्टि हेतु गात्र उपलक्ष मात्र,
भीतर की ज्योति से छलकता।।" *

मध्य की कविताओं में उस अन्धकार का वर्णन है, जो जन–मानस पर सदियों से आच्छादित है। उन्होंने निराश –हताश युग को कर्म का मंत्र दिया। सत्य, अहिंसा को उन्होनें साधन ही

सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 395

नहीं, साध्य रूप में ग्रहण करके मानव की भावी निर्माण की नयी दिशा प्रदान की। उनके सत्याग्रही निर्भय रूप की झाँकी गुप्त जी ने प्रस्तुत की है। कवि ने क्रूर कारागार की यातनाओं की स्मृति में दुःख प्रकट किया है –

'' घृण्य वह कारागार ?
वह तो अबन्धन का मुक्तिद्वार।
x x x x x x
लाली लिये ले रहा लहर है
मृत्यु के निकेत पर जीवन का पुण्य–केतु। *

बापू कविता में कवि सियारामशरण गुप्त जी ने प्रेम की महत्ता को स्पष्ट किया है। जिसका बिम्ब निम्न पंक्तियों से दृष्टिगोचर होता है। –

'' प्रेम है स्वयं ही प्रेम
प्रेम की ही अन्त में विजय है,
प्रेम रत्न नित्य ज्योतिर्मय है
फैला दो उसी का मृदु दीप्ति–हास
हिंसा के तमिस्र का स्वयं हो ह्रास! '' **

वस्तुतः गाँधी जी ने पीड़ित जनता को अभयदान देकर शोषितों का सबसे बड़ा उपकार किया है। निम्न पंक्तियाँ इसे व्यक्त करतीं है।

'' जिसने किया है महातंक छिन्न
विश्व के प्रपीड़ितों के अन्तर से,
बोध का प्रदीप दीप्त करके
x x x x x x
वह है निरस्त भी महत्वासीन
अपने अजेय आत्म–बल से
x x x x x x
मुक्त सर्व थैव वह एक मात्र स्वेच्छाधीन। '' ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 405

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 408

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 415

बापू के कृतिकार का कहना है कि गाँधीजी की अहिंसा–भावना भारत और विश्व के विभिन्न धर्मो से प्रभावित भी है –

'' बुद्ध से मिला परमार्थ–भाग
ईसा से नरानुराग,
हिंसा–त्याग धीर महावीर– से वरद से,
दृढ़ता मुहम्मद से,
धौत तुलसी के मानसर से
लाया है पराई पीर नरसी के घर से ।। '' *

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर बापू कविता के उल्लेख्य बिन्दुओं का साररूप में प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जा सकता है सर्वप्रथम कवि ने तत्कालीन भारतीय जनता की आकुलता–व्याकुलता का निदर्शन करते हुए रक्तहीनत क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में बापू को इस प्रकार देखा –

आये, वह आये! उठा हर्ष रव
हो गये प्रफुल्ल मुख पदम जन–जन के
बापू का विजय घोष ! नव–नव
अन्तर कपाट खुले दृष्टि के श्रवण के । **

बापू के आध्यात्मिक स्वरूप से जनसमुदाय विशेष रूप से प्रभावित हुआ ; क्योंकि उनमें वाह्य ज्योति न होकर आन्तरिक ज्योति थी –

'' आई अहा! मूर्ति वह हँसती ;
x x x x x x
दीख पडी अन्तस के अन्तस में धँसती।
x x x x x x
आत्ममणि का सा परदर्शी पात्र
दृष्टि हेतु गात्र उपलक्ष मात्र
भीतर की ज्योति से छलकता। '' ***

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 417
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 395
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 395

ॉविवर गुप्त की कृति' बापू' में कोरे भावुक कवि की श्रृद्धा न होकर दार्शनिक कवि की श्रृद्धा ी प्रतीत होती है। कवि अन्त को लेकर इस प्रकार विचार करने लगता है –

'' अन्त ! अरे कौन कहाँ–कहाँ कैसा अन्त ?
श्री गणेश यह है नवीन के सृजन का ,
x x x x x x
नाश नहीं जीवन का
बीज उसमें है चिरन्तन का। '' *

10. उन्मुक्त – सियारामशरण गुप्त जी की ' उन्मुक्त– कृति को गीत नाट्य की संज्ञा दी जाती है। उन्मुक्त का सर्वप्रथम प्रकाशन 1940 ई0 में हुआ। इस रचना में युद्ध और उसके दुष्परिणामों का वर्णन है। इसकी पृष्ठभूमि के विषय में डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है '' बुन्देलखण्ड की शस्यश्यामला भूमि, रूग्ण कवि का एकान्त वास, युद्ध के भीषण समाचारों की मोटे–मोटे अक्षरों में देने वाले दैनिक पत्र। कवि श्वास रोग से पीड़ित है। पत्रों में हत्याकाण्ड के समाचार पढ़कर उसकी व्यथा द्विगुण हो जाती है जी घुटने लगता है। मन के बोझ को हल्का करने के लिए वह बाहर देखता है। वसुन्धरा का अंचल उसे शरण देता है और वह स्वस्थ होकर कविता लिखता है, जिसका सुफल होता है ' उन्मुक्त' **

'उन्मुक्त' की कथा सोलह दृश्यों मे वर्णित है और प्रथम सात दृश्यों में कथावस्तु का आरम्भ एवं विकास है तथा आठवें दृश्य से तेरहवे दृश्य तक उनका मध्यांश अथवा संघर्ष है और अंतिम तीन दृश्यों में कथा की परिणति दिखाई गयी है। यद्यपि ' उन्मुक्त' का कथानक मुख्यता कुसुमद्वीप से सम्बन्धित है ; पर उसमें प्रासंगिक रूप से लोह द्वीप, ताम्रद्वीप और रौप्य द्वीप की भी चर्चा हुई है। गुप्त जी के अनुसार लौहद्वीप के आधिपति ने सम्पर्ण संसार को अधिकृत करने का निश्चय किया था और उसके प्रचण्ड प्रताप से भी सांसारिक प्राणी प्रभावित होते है तथा ताम्रद्वीप एवं रौप्यद्वीप को नत–मस्तक करने के पश्चात् अब लौहद्वीप कुसुमद्वीप पर आक्रमण करता है कुसुमद्वीप के शक्ति संचालक पुष्पदंत, मृदुला एवं गुणधर हैं, जो यद्यपि अहिंसा के विश्वासी है; पर पुष्पदंत एवं मृदुला आत्मरक्षा के लिए हिंसा का प्रयोग उचित समझते है। संभाव्य युद्ध के चिंतित होकर गुणधर पुष्पदन्त से इस प्रकार कहता है।

'' होगा परिणाम अन्त में क्या, यह सोचा है,
क्या हम हरा सकेंगे लौह सैन्यदल को
ताम्र ध्वस्त रौप्य ध्वस्त,ध्वस्त प्रायः स्वर्ण भी,
तुम कहते हो हुआ ; हम तो कुसुम हैं।
होगी क्या हमारी दशा।'' ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(बापू) सम्पादक– ललित शुक्ल पृ0 414

** सियारामशण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 91

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(उन्मुक्त) पृ0 430

पुष्पदन्त और कुसुमद्वीपवासी अपना सारा पराक्रम अपने देश की मर्यादा को बचाने में लगा देते हैं; परन्तु लौहद्वीप की सेना आगे बढ़ती ही जाती है। पुष्पदन्त शत्रुओं का सामना करने के लिए भस्कास्त्र का प्रयोग करना चाहता है; पर उसकी इस बात से गुणधर का मन युद्ध से विरत हो जाता है और वह अपना यह भिन्न विचार प्रकट करता है –

" नये खेत का शस्यशालिनी में लहराकर
लता–गुल्म की विकच हासमाला में छाकर
खिल उठता है नवल रूप यौवन में फिर–फिर
ओझल होकर लौट–लौट आता है सुरूचिर !
हूँ मैं भी अश्वस्त नहीं यों ही जाऊँगा,
हृदय–हृदय में भाव–सुमन बन खिल आऊँगा
विकसित होता हुआ सतत। " *

इस प्रकार के भावों से भावित होकर गुणधर भस्मकास्य के प्रयोग से मना कर देता है। परणिाम में पुष्पदन्त उसे मृत्युदण्ड से दंडित करने का निश्चय करता है। दैव दुर्योग से पुष्पदन्त का भस्मक अस्त्रवाही विमान गन्तव्य के बीच में ही खराब होकर शत्रु के हाथ में पड़ जाता है और इस प्रकार लौह द्वीप कुसुम द्वीप पर अपनी विजय पताका फहराने में समर्थ होता है। पराजय होने के पश्चात् पुष्पदन्त का हृदय हिंसा के उक्त अकाण्डव ताण्डव से क्षुब्ध हो जाता है। और वह सकरूण भाव गुणधर को बंदी जीवन से मुक्त करके उसकी प्रशंसा भी करता है। यहीं वह अहिंसा के प्रति अपनी आस्था प्रकट कर गुणधर के विचारों और सिद्धान्तों का समर्थन करने लगता है। ' उन्मुक्त' के अंतिम दृश्य में गुणधर, मृदुला और पुष्पदन्त तीनों ही ऐकात्म्य हो जाते हैं– हिंसा या युद्ध के विपक्ष में। इस प्रकार 'उन्मुक्त' हिंसा की निष्फल भीषणता प्रदर्शित करता हुआ सत्य एवं अहिंसा की स्थापना करता है। कृति का प्रमुख पात्र पुष्पदन्त कहता भी है–

" हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल
जो सबका है वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर –
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर। "**

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(उन्मुक्त) पृ0 487

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली–प्रथम खण्ड(उन्मुक्त) पृ0 425

उपर्युक्त विचार स्पष्टतः गाँधी–दर्शन से अनुप्राणित है। कविवर ने यही सिद्ध करना चाहा है कि अहिंसा के आचरण से ही शान्ति स्थापना संभव है और अहिंसा में ही मानवमात्र का कल्याण निहित है। डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र ने ' उन्मुक्त के संदर्भ में रामधारीसिंह ' दिनकर' की आलोचना को इस प्रकार उद्धृत किया है –

" यह पुस्तक युद्ध और गाँधीवाद की तुलना के निमित्त लिखी गयी है क्योंकि युद्ध के अन्त में पराजित लोग अहिंसा की दुहाई दे रहे है। यह उल्टा न्याय है क्योंकि अहिंसा अब उन्हें शोभा दे सकती है जो आक्रमणकारी होकर भी जीत गये है।

" डा0 मिश्र ने इस विचार से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए लिखा है – " श्री सियारामशरण गुप्त का उद्देश्य तो युद्ध की ध्वंस–लीला की पीठिका पर अहिंसा की लोक स्वीकृति की प्रतिष्ठा मात्र करना था। ' उन्मुक्त' का एक प्रमुख पात्र गुणधर अहिंसा का समर्थक होते हुए भी देश की रक्षा के लिए प्रयत्नशील होता है, पर जब वह असंख्य नर –नारियों और शिशुओं का वध देखता है तब उसे स्वाभाविक ही युद्ध से विरक्ति हो जाती है इस प्रकार – 'उन्मुक्त' में अहिंसा–सिद्धान्त की स्थापना स्वाभाविक ही मानी जाएगी और ' उन्मुक्त–' का रचयिता मानवता की एकता में पूर्ण विश्वास भी करता है तथा उसे स्वाभाविक ही मानवता के पतन पर मनोव्यथा भी होती है

वह सैनिक भी न था और कुछ, वह था मानव,
ऐसा मानव, लाभ उठा जिसकी शिशुता का
किसी इतर ने चढा दिया था उसे पशुता का।
ऊपर का वह खोल। आत्म विस्मृति से छाकर ।
उसका बोध विलोप कर दिया था। उस पर।
रोष करूँ या दया।

मानवतावादी भावनाएँ प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही ' उन्मुक्त' के रचयिता ने युद्ध का तीव्र विरोध किया है। और नैतिकता को मनुष्य की शक्ति मानकर यही मत प्रकट किया है कि नैतिकता का पतन होने परे मनुष्य पशुत्त्व की श्रेणी तक पहुँच जाता है। *

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– सम्पादक– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 94

गुष्ट वैचारिक पक्ष एवं प्रभावशाली भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी ' उन्मुक्त' एक प्रंशसनीय कृति है और समीक्षक यही कहते है – ''सम्पूर्ण रचना में कही ध्वंस के चित्र है; कहीं हिंसा की ज्वाला जल रही है, और कहीं हिंसा अपना नाशोन्मुख विस्तार वैभव चाहती है। कहीं दया की मंदाकिनी उमड़ रही है और कहीं विश्वासघात का विष हिंसा संत्रस्त मानव को मृत्यु की ओर संकेत कर रहा है। कृति की प्रंशसा में डॉ0 नगेन्द्र का मत उल्लेख्य है ''–. सियारामशरण जी की कविता उत्तरोंचर गंभीर और प्रौढ़ होती जा रही है। उनकी पिछली कृति' बापू' एक महान कविता थी – 'उन्मुक्त' उससे भी महत्तर है इस श्रेणी की कविता पिछले दो–एक वर्षो में कष्ट –प्राप्य ही रही है। *

11दैनिकी :– सियारामशरण गुप्त जी की 'दैनिकी'– संकलन का सर्वप्रथम प्रकाशन 1942 ई0 में हुआ था जिसमें द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रतिदिन की घटी–घटनाओं का पद्य बद्ध संग्रह है। दैनिकी में 'विकलांग', 'रूद्रकक्ष','दो पैसे', 'परिवर्तित','दाता','दुर्लभ','जागरण','प्रसंग' 'निवेदन','विस्मरण', ' सन्देह', 'मजूर', ' आज का पन्ना', ' अञ्जलि–दान', ' आवाहन' ' अण्डमान', ' यन्त्रपुरी',' स्वाश्रयी' ,'नवनिर्माण', 'सीधापन',' लोहा', 'स्मरण','बिरजू', 'खनक' 'पृथ्वी', 'स्मृति','लघु','फिर वही' ,'रक्षित','स्वप्न भंग','अबोध–कलह', 'सजग–द्वन्द', ' मेरा घट', ' शरीर साधन', ' आश्वस्त' शतमुख', ' विकट' ,' मनुज' ,' बधिक' ,' श्यामा' ,'नरकिंवा पशु', 'उद्गम', 'अविचल' ,'स्थानच्युत', 'श्रृंखलित', 'नवपथ', 'उन्मुख', ' अनुसंधान', ' सोमवती' 'कर्कश','नीरव' रचनाएँ संकलित है। उर्पयुक्त कविताओं में से अधिकतर कविताएँ 1942 ई0 में ' विशाल भारत' पत्र में प्रकाशित हो चुकी है। विश्वयुद्ध के वातावरण में कवि का ध्यान जीवन की नित्य प्रति होने वाली नगण्य घटनाओं की गम्भीरताओं की ओर गया। 'दैनिकी' समाचार पत्र में यह पढ़कर कि एक सहस्त्र व्यक्ति हताहत हुए है, अचानक जिज्ञासा होती है। कि धरती पर उनका जीवन क्या कृमि–कीटो सा है ? उनके लिए क्या किसी व्यक्ति के हृदय में करूणा के लहर नहीं उठी? उनमें से कुछ व्यक्ति तो अब भी ज्वाला में जल–भुन के धरती पर तड़फे रहे होंगे। इन सब से कवि का मन कचोट उठता है और कवि एक विकलांग कविता का सृजन करता है।

> '' एक सहस्र हताहत!'' सहसा जाग उठी जिज्ञासा,–
> धरती पर उनका जीवन था क्या कृमि–कीटों का–सा ?
> उनके लिए किसी के उर में उठी न करूणा–लहरी
> उनकी मरण–यातना में भी बोध शक्ति है बहरी।'' **

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– सम्पादक– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 95

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 13

रूद्रकक्ष' शीर्षक कविता में रूग्ण शैय्या पर पड़े हुए प्राणी की वाणी मुखर हुई है। वैशाख पूर्णिमा की तिथि को गौतम श्रवण–नयन– उद्घाटन हुआ था। जैसे ही उन्होंने चौंककर प्रथम बार पृथिवी पर यह देखा कि पशु बनकर, काष्ठयूप से कसकर नर बँधा हुआ है उसकी गूँगी वाणी को सुना उनके अंधरों से नव करूणा फूट पड़ी। कवि 'दैनिकी' कविता में संकलित ' रूद्रकक्ष' कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं –

" तिथि हो वही मधुऋतु हो वही सूर्य– शशि –तारा,
वही पवन हो, वही धरातल, वही पसारा सारा;
वहाँ अनागत ही है आगत जहाँ पड़े हों ताले,
रूद्र कक्ष में पूनों में भी हैं मावस घन काले। *

" दौ पैसे" शीर्षक कविता में दो पैसे की साधारण बात को दरिद्र के प्रसंग में महत्त्वपूर्ण बना दिया गया है यथा–

" राजनीतिकों के कौशल में ज्वार उमड़कर आए,
खुले कृपाणों के वीरों ने हाथ अनन्त बढाए।
सबके मुँह में पानी है जब, तृषित दृगों से कैसे,
ताक रहा भूखा दरिद्र वह मेरे वे दौ पैसे।" **

जीवन की चिरन्तनता को ' दुर्लभ' शीर्षक कविता में आँका गया है। ' दैनिकी' कविता में संकलित ' दुर्लभ' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित है –

" वैर व्याल के फुंकारों में
वीरों की इन हुंकारों में,
इस कालानल के बरसा से
उठते हुए धुँआधारों में,
सब है, सब है, सब है ,
सत्य मरण दुर्लभ है!" ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 14

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 15

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 16

जागरण –प्रसंग' कविता में अभय को जगाने का उद्‌बोधन देखने को मिलता है – यथा

'' नव जागरण – प्रसंग –

जाग तू उज्ज्वल अभय अभंग!

रूक्ष रसा के अन्तस्तल से,

ला भस्मर कर रस कल से। '' *

'' दैनिकी में संग्रहीत ' संदेह' शीर्षक कविता में संशय एवं अविश्वास की शाश्वत स्थिति का ज्ञापन है;

'' बचपन था तब मान लिया निस्संशय वह सब,

अब मन में जब अविश्वास ही अविश्वास तब

आसपास अवलोक हो रहा यह कैसा भ्रम

पहुँच गये है उसी भूमि पर तो न कही हम!'' **

'अण्डमान' – में मधुर व्यंग्य है। 'अण्डमान' से देश निष्कासन के स्थान पर मानवीय संकीर्णता का जिक्र किया गया है। कवि गुप्त जी के शब्दों में उद्धत है –

'' राष्ट्र–राष्ट्र का निष्कासन है

निज के छोटेपन में।

अण्डमान हो रहे प्रतिष्ठित

देश –देश जन–जन में।।'' ***

'' यन्त्रपुरी ' कविता का प्रकाशन ' विशाल भारत पत्रिका में सन 1943 को हुआ था। इस यन्त्रपुरी नगरी के मनुष्य अन्ध, अखण्डित, जन्मजात एवं निपट मूक हैं। तब भी प्रत्येक क्षण हूक–कूक सुन पड़ती है। – यथा –

'' मन, विस्मय से तू मूढ़ न बन,

नव यन्त्रपुरी यह है अपार,

सबकी रचनाएँ श्रवण, नयन

वह लिए दूर है मन्त्रकार !'' ****

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 17

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 18

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 22

**** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 23

लघु' कविता में तारे की लघुता में छिपी प्रकाश की गुरूता का संकेत है। कवि ने बड़ी बारीकी से अपने रचना सूत्र एकत्रित किये है। – यथा –

" उस किसी एक लघुतारक पर
रूक गई दृष्टि मेरी जाकर।
कुछ अन्य बहुत–से आस–पास
कर रहे विकीरित थे विभास।
सोचा– सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ
यह इन सबमें है यों ज्येष्ठ।" *

' सजग–द्वन्द ' एक बहुत ही सुन्दर रचना है, इसमें रात्रि के व्याकुल क्षणों का सुन्दर चित्र खींचा गया है। रोगी की आशा–निराशा का द्वन्द्व इसमें अच्छी प्रकार वर्णित है। कवि सियारामशरण गुप्त जी के शब्दों में निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

" उचट मेरी आँख यह फिर से गई।
मेदिनी यह है अहर्निश गतिमयी।
क्षणिक भी पाती नहीं विश्राम है,
द्वन्द्व इसका सजग आठों याम है ।।" **

"आश्वस्त" कविता में चारों ओर संकोच है, पापाहरण है सम्पूर्ण आरक्षित जीवन है। कवि कहता है कि इस वसुधा (पृथ्वी) को मैं तब भी प्यार करूँगा। कवि जी के शब्दों में प्रस्तुत है–

" इस विषम धूम में साँस नहीं ले पाता,
यह जन –दावानल सहठ फैलता आता!
x x x x x
छोडूँगा अंचल नहीं धरा का तब भी,
इसको माटी निर्ज्वलन सिन्धु –सुस्नाता! " ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 31
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 35
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 37

''मजूर ' कविता में निर्धम अनल में काम करने वाले मजदूर का वर्णन है। ' सोमवती ' अमावस्या के नाम और गुण के विरोध पर कवि चुटकी लेता है कि सोमवती में कहीं भी सोम किरण नहीं दिखाई पड़ती है।, यथा –

'' सोमवती में सोम–किरण तक
मिली कहीं न गगन में।
वह तमसा, वह तिमिर–पूर्णिमा,
भी घन –घनावरण में।। '' *

'' दैनिकी'' में संकलित अन्तिम कविता – 'नीरव' है जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है,

'' दिन–दोपहरी में आ उभरी
यह इस नीरवता की रात,
रही अधर में ही अटकी–सी,
भटकी–सी, अन्तस की बात। '' **

दैनिकी की विषय–वस्तु और रूप विधान दोनों उत्तम कोटि के हैं। कवि अपने दैनन्दिन जीवन में अनुभूत बातों को –अनुभव के बहुआयामी रूपों को 'दैनिकी' में काव्य विषय बनाता है। उषा,संध्या,रात्रि,अन्धकार,प्रकाश,पृथ्वी,आकाश इत्यादि के सुन्दर चित्र इसमें मिलते है। द्वितीय विश्व युद्ध, त्रस्त विश्व तथा रोग ग्रसित अपने जीवन की पृष्ठभूमि पर भी कवि की आत्मा में किसी प्रकार की कुण्ठा नहीं है। वह जीवन के असंख्य क्षेत्रों तक अपनी सहानुभूति का जल पहुँचाता है।

संक्षेप में यह संग्रह युद्ध–जनित दैनिक घटनाओं की प्रतिक्रियाओं की एक प्रकार की डायरी है। दैनिकी के संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है –

'' कला में सतर्कता शून्य में पंख खोलने से डरने की वृत्ति, निरे आनन्द को त्याज्य समझने की भावना, ठोस एवं शास्त्रीय भावों को छायावाद की आनन्दमयी शैली में बाँधने की उत्कृट इच्छा जीवन की नगण्य घटनाओं एवं उपादानों में से किसी सत्य को व्यंजित करने का लोभ, भावुक की शैली में विचारक की मणि को जड़ देने की उमंग इन सारी प्रवृत्तियों का सुन्दर एवं चरम विकास उसकी, 'दैनिकी, नामक सबसे नवीन कृति में हुआ है 'दैनिकी'

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 47

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) सं0 ललित शुक्ल – पृ0 48

एक विचारक कवि की शैली और भाव दोनों ही के सुरम्य परिपाक का सुन्दर उदाहरण है और इसकी तुलना रवि बाबू की ' काणिका' से की जा सकती है। '' *

12. नोआखाली में :–' नोआखाली में' नामक रचना का सर्वप्रथम प्रकाशन 1946 ई0 में हुआ। इस लघु पुस्तक की कुछ कविताएँ सर्वोदय में भी प्रकाशित हुई थी। सियारामशरण गुप्त जी ने इस रचना में नोआखाली नामक स्थान पर जो रक्तपात हिन्दु और मुसलमानों के बीच हुआ था उसकी अभिव्यक्ति की है समस्त देश के साथ–साथ सियारामशरण गुप्त जी भी इस पीड़ा से अछूते न रह सके। बीमारी के कारण कवि वहाँ जा नहीं सकता था, पर उसका मन वहीं था। इस समय हिन्दू –मुसलमान एक–दूसरे के शत्रु बन गये थे। इस सन्दर्भ में डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी का एक भाषण प्रसारित हुआ था। उसी से प्रेरणा पाकर कवि ने नोआखाली की गाथा गायी है। सम्पूर्ण रचना हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल देती है। प्रारम्भ में कवि के अग्रज मैथिलीशरण की पंक्तियाँ दी गयी है। जिनका आशय है कि मूलतः हम सभी एक है। 'नोआखाली में' निम्नांकित कविताएँ ' अखण्डित ' मातृभूमि के प्रति' ' अक्षय' ' ग्यारह दोहे' ' रमज़ानी' 'पाक–कलाम' ' विहार के प्रति' 'ध्वंस' 'नोआखाली में' 'निशान्त' ' एक हमारा देश' का संकलन है।

कृति का आरम्भ ' अखण्डित' नामक कविता से होता है कवि कहता है कि अरी ओ गंगा ठहर, मेरी बात सुन तू बहुत बह चुकी है पीछे से तू विच्छिन्न है।

गंगा का कहना है –

'' तुम जो खण्डित मुझे करोगे,
इस तट पर क्या धूलि धरोगे,
घट अपना किस भाँति भरोगे ?'' **

'' अखण्डित' कविता के पश्चात कवि ने अगली कविता 'मातृभूमि के प्रति ' समर्पित की है यथा –

'' मातृभूमि तेरे अंचल में उड़ती है यह धूल,
बैठी है तू छिन्न–वसन यों खिन्न –वदन सुध भूल!***

'ग्यारह दोहे' कविता शीर्षक से कवि ने दोहों की रचना की है, जो समकालीनता के सन्दर्भ

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना –डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 103

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 50

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 50

में प्रभावशाली है। ग्यारह दाँई ओर से ग्यारह मात्र सदैव रहती है। यदि उन्हें बाँयी ओर से आँको तब भी वे वही रहती हैं। कवि सियारामशरण गुप्त जी के शब्दों में निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है :–

" निकट पड़ौसी बन्धु का
भवन –निवास उखाड़
तू निज पास–पडौस में
बोने चला उजाड़" ।। *

'ग्यारह दोहे' कविता में आगे भी दोहे हैं,उनमें भी समकालीनता के दर्शन होते है अन्तिम दोहा दृष्टव्य है –

"आस–पास में चारों ओर ।"
तो फिर डर की बात नहीं है –"
बोल उठा कासिम खिलकर –
गाँधी का कुछ कर न सकेगे,
बाकी बीस सभी मिलकर"(पाक कलाम)। **

"ध्वंस ' कविता मे कवि कहता है कि मेरे मस्तिष्क में बार–बार वह चित्र निरन्तर आता है जिसमें ऊँचे भवन का ध्वंस मात्र था जिस पर तेल छिडक–छिडक कर आग लगायी गयी थी। जिससे वह विस्फोटक–विकलांग –विकृत पड़ा हुआ था इसीलिए भवन को अविलम्बित ? देखकर एक प्रश्न किया गया था यथा –

" हिन्दु से या मुसलमान से,
किससे यह सम्बन्धित ?" ***

'ध्वंस' कविता की अन्तिम पंक्तियाँ यह है कि –

" थे वे कौन कहूँ क्या यह भी ?
रहें कहीं मिल –जुल के,
गुण्डे गुण्डे ही हैं केवल,
नहीं धर्म के कुल के।" ****

---

*	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना द्वितीय खण्ड (नोआखाली में)	पृ0 51
**	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना द्वितीय खण्ड (नोआखाली में)	पृ0 57
***	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में)	पृ0 59
****	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में)	पृ0 61

' नोआखाली में'' कविता के आरम्भ की चार पंक्तियाँ निम्न हैं –

" तुम हमको हम भी तुम्हें ,
सहन करें सप्रेम,
दोनों की इस जीत में,
दोनों का है क्षेम।" *

" रमजानी' और ' पाक कलाम' कविताएँ तत्कालीन वातावरण को सुन्दर रूप से व्यक्त करती है यथा –

" निडर रहो, बोलो, रमजानी,
झूठा है जो बकता है,
हम हैं, तब तुम तम पर कोई,
वार नहीं कर सकता है। **
रमजानी

' पाक–कलाम' कविता में कासिम ने अकबर से पर्चा में छपी नई खबर को सुना। अकबर ने कहा दुनिया वही पुरानी है गाँधी जी ने हठ ठानी है कि गाँव –गाँव पैदल घूमेगें, वे बहुत घूमे होंगे परन्तु अब यह नोआखाली है। तब कासिम ने कहा–क्या नोआखाली जंगल है।जहाँ भेड़िये रहते है ? अकबर ने कहा –

" अब्बा, ऐसी बात नहीं है,
वहाँ हमारा ही है जोर,
सौ में अस्सी तक मुस्लिम है।"
बड़ीही सुन्दर, सरल व सरस हैं,।

" नारिकेल कें पूँगीफल के
पेड़ों की हरियाली में,
उजड़ा,उजड़ा एक गाँव वह
है उस नोआखाली में।। " ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 52

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 56

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 61

'निशान्त' कविता में 'नोआखाली में' बापू के प्रति उदि्छष्ट का चित्रांकन किया गया है। यथा–

" वे गेह जो कि गिर गये, पड़े श्रीहत हैं,

वे भी जो नभ में उठे अड़े अक्षत है,

जागें तुमसे हे, कालतीर्थ के यात्री,

x x x x

जन–जन में एक प्रतीति गीति सर साओ,

काली तमसा के नव निशान्त, तुम आओ!" *

अन्तिम कविता ' एक हमारा देश' के माध्यम से कवि ने देश की एकता,अखण्डता का गान किया है , यथा –

" एक हमारा ऊँचा झण्डा,

एक हमारा देश,

इस झंडे के नीचे निश्चित

एक अमिट उद्देश्य।

x x x x

अनगिनत धाराओं का संगम ,

मिलन –तीर्थ – संदेश,

एक हमारा ऊँचा झंडा

एक हमारा देश "।। **

इस संग्रह की कविताओं का मूल्य सामयिक ही है और उनमें सरल शब्दावली में ही मानवता के पतन की ओर संकेत करते हुए समस्त भारतीयों को जाति–धर्म, की संकीर्णकारा से मुक्त होकर उन्मुक्त वायुमंडल में मानवता का वृक्ष अभिसिंचित करने की प्रेरणा दी गयी है। इस प्रकार यह काव्य संकलन सोद्देश्य ही प्रस्तुत किया गया है और आकार में लघु होते हुए भी वह अपना महत्त्व अवश्य रखता है। ***

13.'नकुल' – ' नकुल' का नाम पौराणिक ग्रन्थ महाभारत में मिलता है। महाभारत के पात्र पाँचों पाण्डव में से नकुल एक थे। उन्हीं के जीवन से सम्बन्धित खण्ड–काव्य ' नकुल' की

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 71

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 72

*** सियारामशरण गुप्त काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 106

रचना सियारामशरण गुप्त जी ने की। ' नकुल' रचना का सर्वप्रथम प्रकाशन 1947 में हुआ था। यह कृति पाँच खण्डों में विभक्त है। महाभारत के वन पर्व में नकुल की कथा पायी जाती है। इस काव्य का काल उस समय से सम्बन्धित है, जिस समय पाँचों पाण्डव द्रोपदी के साथ बारह वर्ष का वनवास पूरा कर रहे थे। उसी अवधि के अन्तिम दिन से इसकी कथा प्रारम्भ होती है। जब इस वन को छोड़ उन्हें पूरे एक वर्ष के लिए अज्ञातवास के लिए कहीं चले जाना था। उसी समय एक साधारण–सी घटना घटी जो आज लोक में प्रचलित है वन में रहने वाले तापस की,। उन्हें तपस्वी के हेतु ले आने के लिए युधिष्ठिर धनुष–वाण लेकर मृग के अनुसंधान में चल पड़े। शेष पाण्डव द्रोपदी सहित इसके पूर्व ही भ्रमणार्थ अमृतह्रद की ओर निकल चुके थे दुर्जय और बज्रबाहु जो दुर्योधन–दल के दो व्यक्ति थे–अमृतह्रद को विषाक्त बना ही चुके थे, जिससे पाँचों पाण्डवों की जीवन–लीला समाप्त हो। इस काव्य में पात्र थोड़े से ही हैं और कथा–प्रवाह अबाध रूप से चलता है।

पाँचों पाण्डव वन में रह रहे थे उनका शान्ति कुटीर पत्तों से ढका हुआ निकट था। द्विज का स्वर सुन कहने लगे अरे यह कैसा अनर्थ हुआ। उटज से शीघ्र युधिष्ठर बाहर निकल आये – यथा

" हरण–काण्ड यह व्यथित विप्र ने कहा हरिण–कृत,
मेरा हृतधन वीर, तुम्हीं कर सकते उद्धृत।
होगा उसके बिना विफल मेरा होमव्रत,
गया इधर वह चोर, करो जो करना हो द्रुत। " *

' नकुल' कविता में यक्ष ने वीर से कहा– वीर! तुम्हारा अभिवन्दन हो, तुम्हारे वचन शीतल चुन्दन की भाँति है। मैं आश्चर्य चकित हूँ कि जहाँ पानी के लिए प्राण तरसते है, वहाँ तुमने कैसे वर्षो बिता दिये। मुझको यहाँ आये अभी थोड़ा ही सही समय बीता है इतने में ही मेरा हृदय गीला हो उठा है , कवि गुप्त जी के शब्दों में निम्नलिखित पंक्तियाँ उदघृत है :–

" कुछ रहस्य –सा लिये विजन का है अभ्यन्तर,
भीतर–भीतर चक्र कहीं चल रहा निरन्तर।
कुछ ऐसे जन दीख–दीख जाते है जब –तब
जो हों तस्कर तुल्य स्वयं में वृत सबके सब ;" **

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) पृ0 74

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) पृ0 82

पाण्डवों ने पद–पद पर अनुभव किया कि दुर्योधन के दूत उनके पीछे लगे हुए हैं। आज प्रातःकाल जब धर्मतनय ने सम्मार्जन कर माँ कुन्ती की चरण वन्दना मन ही मन की। धर्मतनय ने तब देखा– जो अर्पित हैं वो सुमन नहीं है जिन्हें द्रोपदी नित प्रेम सहित चुन लाती थी। सहसा ही ध्यान में आया कि कुचक्रियों ने कोई नया चक्र तो नहीं चलाया है। कुछ समय के लिए सन्देह तो उठा परन्तु शीघ्र ही तिरोहित हो गया। इसके आगे कवि लिखता है :–

" तात", उन्होनें कहा–"आप में उतावलापन,

किसने देखा कहाँ विजन हो या राजासन!

रवि तो जल्दी कभी देर में सोकर जगता,

ऋतु का सुख–दुख किन्तु आपको है कब लगता !" *

मणिभद्र के माध्यम से ही युधिष्ठिर तथा नकुल के चरित्र विकास में सहायता मिलती है। यह अलकापुरी से निर्वासित एक यक्ष है। जो अमृताचल पर कुछ समय से रह रहा है। इसके पास संजीवनी बूटी का एक ही कण है जिसके प्रयोग से वह केवल एक मृतक प्राणी को जिला (जीवित) सकता है। मणिभद्र युधिष्ठिर से पूछता है कि किसको जीवित किया जाये,यथा –

" था जब मैं कैलाशपुरी में गरल–विदारण,

मुझे मिला था वहाँ एक लघु संजीवन कण।

कहें किसे दूँ उसे यहाँ इस कठिन समय में,

मुझे रंच आपत्ति न होगी उस निर्णय में।। " **

तो युधिष्ठिर उत्तर देते हैं –

'नकुल' उसी क्षण अनायास कह गये युधिष्ठिर,

उत्तर उनका वहाँ प्रथम ही हो ज्यों सुस्थिर।" ***

इस उत्तर में ही मानो गुप्त जी ने अपने काव्य की समस्त विषय–वस्तु केन्द्रित कर दी हैं। प्राचीन कथा में इस विशेषता को रखकर गुप्त जी ने अपनी काव्य–प्रतिभा का ही परिचय नहीं दिया है, बल्कि उन्होंने अनजाने में अपने पारिवारिक जीवन की किसी अवचेतन ग्रन्थि की ओर भी सहसा संकेत कर दिया है। लघु–ज्येष्ठ की इस मनोवैज्ञानिक समस्या अथवा

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) पृ0 99

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) पृ0 127

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) पृ0 127

भावग्रन्थि का ऊहापोह करना हमारा लक्ष्य नहीं है ; किन्तु आधुनिक मनोविश्लेषण–शास्त्र के ज्ञाता पाठक कदाचित उस काव्य मे गुप्त जी के वैयक्तिक जीवन की इसी झलक की ओर अप्रिय संकेत कर सकते हैं। कवि का तात्पर्यार्थ उसी के शब्दों में प्रस्तुत है :–

" छोटे के भी लिए बड़े–से–बड़ा समर्पण
किया जाय जब, तभी धर्म–धन का संरक्षण।

x x x x x

करना होगा बडा त्याग, निज सुख जीवी को
होना होगा स्वयं समर्पित गाँडीवी को "। *

आगे धर्मराज कहते हैं कि मैं आज मुरलीधर की बात को सोच रहा था। पहली बार वह मुझे वेणु अधर की फूँकते हुए दिखायी दिये, अब उन्होंने सुदर्शन चक्र ले लिया है धर्मराज मणिभद्र को स्पष्ट करते हुए सान्त्वना देते हैं :–

" लेना होगा निखिल–क्षेम–व्रत निर्भय हमको,
देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुतम को।
लघु से लघुतम कौन, नहिं यदि हों हम खोटे,
वही हमारे लिए बड़े हमसे जो छोटे।
जितना आगे उदित हुआ है जो जन हममें,
उतना आगे चला गया वह जीवन –क्रम में। " **

द्रोपदी के ममतामय और रौद्र दोनों प्रकार के रूप बड़े ही सफल रूप में दिखाई देते है इनके चरित्र–चित्रण में भी कवि ने विशेष श्रम किया है। गंगातट के बीच पांचाली की मनमोहक झाँकी पाठक को रूचिकर प्रतीत होती है। सात्विक वृत्ति वाले पात्रों के चित्रण में कवि पूर्ण रूपेण सफल हुआ है किन्तु तामसी प्रकृति के अंकन में कवि अपनी आत्मा से नहीं, मात्र काव्य–कौशल से काम लेता प्रतीत होता है। एका स्थल पर शब्द–चित्र और वर्णन भी सुन्दर बन पड़े हैं। यह काव्य तुकान्त छन्द में लिखा गया है। ' नकुल' कृति पाँच खण्डों में विभक्त है इन खण्डों के कोई नाम नहीं हैं कथा की एक सूत्रता में कोई व्यवधान नहीं पडता। कहानी के आधार के साथ–साथ प्राकृतिक और मनोवैज्ञानिक चित्रण का निरूपण किया है।

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) पृ0 129
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) पृ0 131

चनाकार ने मूल वस्तु का उपयोग स्वतन्त्रता से किया है ऐसा उसने इसलिए किया है कि तृक सम्पत्ति का उपयोग देशकाल के अनुसार सन्तति कर सकती है।

यद्यपि कोश की दृष्टि से 'नकुल' शब्द का अर्थ– नेवला,चतुर्थ पांडव पुत्र, शंकर आदि होता है पर सियारामशरण जी ने 'नकुल' शब्द का एक अन्य अर्थ भी ग्रहण किया है, जो उनकी गाँधीवादी दृष्टि का परिणाम है। इस प्रकार उन्होंने ' नकुल' शब्द का समास विग्रह ' न + कुल' कर उसको कुल गोत्र हीन अर्थात जिसका कोई कुल न हो ही स्वीकार किया है। युधिष्ठिर जब मुरलीधर कृष्ण के बालरूप का दर्शन करते हैं, तब उनके मन में उक्त व्यापक भाव व्यक्त हुआ है,

> ग्राम ग्राम में घाट–बाट में, भीतर–बाहर,
>
> सुलभ रहेगा बालरूप वह सबको घर–घर
>
> नकुल न गोत्र न जाति सभी को होकर निज जन
>
> देगा सबको भव्य भविष्यत् का आश्वासन।

उपर्युक्त पंक्तियों में ' नकुल' का अर्थ है–कुल–गोत्र हीन–ओछा,छोटा नीच एवं लघु। अतएव इस अर्थ से नकुल एक ओर छोटों का प्रतिनिधि हुआ और दूसरी ओर वह छोटों से भिन्न भी हुआ। पर यहाँ यह ध्यातव्य है कि कवि गुप्त मानव समूह के दो वर्ग मानकर भी वर्ग–संघर्ष के समर्थक नहीं है; क्योंकि वे तो गाँधीवादी हैं और ' वसुधैव कुटुम्बकम् ' का सिद्धान्त मानते है। इसीलिए वे हृदय–परिवर्तन के सिद्धान्त में ही विश्वास करते है और ईशोपनिषद् का तेन त्यक्तेन भुञ्जीयसः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् नामक सूत्र अपना कर ' नकुल' की पौराणिक कथा में संशोधन प्रस्तुत कर देते है। *

डा0दुर्गाशंकर मिश्र ने उर्पयुक्त कृति में मनौवैज्ञानिकता की स्थिति का भी संकेत करते हुए लिखा है – इतना ही नहीं ' नकुल' की कथावस्तु में मनोवैज्ञानिकता भी है और कवि ने महाभारत की कथा के मानवेतर रूप को अत्यन्त स्वाभाविक मानवीय रूप प्रदान किया है तथा यह न केवल उसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, अपितु उसकी युग जागरूकता का प्रमाण भी है। **

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 111

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 112

14. जयहिन्द :– 15 अगस्त सन् 1947 में स्वतन्त्रता दिवस के पुण्य अवसर पर 'जयहिन्द' रचना प्रकाशित हुई थी। इस रचना में भारत वन्दना है। यह रचना अपने कलेवर में अति लघु है और लगभग ढाई सौ पंक्तियों की ओजपूर्ण कविता है। जिसमें देश के प्रति कवि ने अपने उद्‌गार प्रकट किये गये हैं। सोलह पृष्ठों की इस कृति में 'बापू' (महात्मा गाँधी)' 'राष्ट्रीय पताका' तथा 'जनता' के प्रति विचार व्यक्त हैं। जय हिन्द रचना का आरम्भ स्वदेश के यशोगान से होता है। यथा –

" जय–जय भारतवर्ष हमारे,
जय–जय हिन्द, हमारे हिन्द,
विश्व–सरोवर के सौरभमय,
प्रिय अरविन्द, हमारे हिन्द।।" *

आगे कवि कहता है कि हे हमारे हिन्द! तेरी चक्रपताका आकाश में सदा स्वाधीन होकर ऊँची उड़े और हमें नित्य नवीन शक्ति दे। सबके हित में ही हमारा हित है हम अपनी इस असिन्धु धरा में हीन होकर नहीं रहेंगे। हिमालय पर्वत,विन्ध्याचल पर्वत और हमारा हिन्द ऊँचे और विनम्र सदा के लिए हैं। कवि सियारामशरण गुप्त जी के शब्दों में भारत का गान निम्न रूप से दृष्टव्य है –

" भारत हे भारत, हमारे देश
अपनी पुनीत भव्य–भावन वसुन्धरा में,
अमिट परम्परा में
पूजित हमारे पूज्य पूर्वजों के प्यारे देश'। **

हे भारत! तेरी सदैव जय हो तेरी नई पीढ़ियाँ अपने जीवन में दीपमाला बार–बार जगा सकेंगीं। उन्हें मन में हीनता का भार ढोना नहीं होगा। कवि जी के शब्दों में प्रस्तुत है कुछ पंक्तियाँ जो निम्न है –

" भारत हे, तेरा यह आज का अतुल योग
के गल नहीं संयोग;
विगत सहस्राधिक वर्षकाल
निरवच्छिन्न साधना का ज्वाला जाल
x x x x x
सर्वहित पालन के पथ में,
मांगलिक यात्रा है स्वतन्त्र जयरथ में।"***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 136
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 137
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 141

राष्ट्रीय–ध्वजा, महात्मा गांधी तथा जनता–जनार्दन का अभिनन्दन करते हुए कविं ने जो वर्णन किया है वह अद्वितीय है यथा –

" कवि के स्वतन्त्र देश,
तेरे लिए कौन नया गीत आज गाऊँ मैं ?

x x x x x

मेरे घट में हो आज गंगा–यमुना का नीर,
भावित हो संगम का तीर्थ–तीर
छन्द में समुद्वेलित हो उठे प्रमोद भरी,
रेवा,शोण,वेन्नवती,पंचनद,गोदावरी
उल्लसित प्रेम–प्रेरी,
शिप्रा,सिन्धु सरयु, पवित्र कृष्णा कावेरी
सबके पुनीत अभिमज्जन से
नव–अभिषेक करूँ, आज के सुदिन का
लाऊँ मातृभूमि के चिरन्तर से
एक रस आ रही अखण्ड निर्मलिनता ।।" *

" जय हिन्द' रचना में कवि ने नये प्रभात का इन शब्दों में आह्वान किया है यथा –

" आज के स्वतन्त्र अरूणोदय में,
उद्धत धरित्री से अभय में,
कोटि–कोटि सन्तति का कोटि–कोटि नमस्कार।
आज आत्म–गौरव की हानि नहीं।
अन्तस में दासता की ग्लानि नहीं।। **

" जय हिन्द" कविता में कवि ने पाठक के हृदय में अतीत गौरव, वर्तमान हर्षोल्लास, तथा भावी आशा व्यक्त की है। रचना की भाषा प्राञ्जल और भाव मार्मिक हैं। छन्द प्रवाहमयी, विषय–वस्तु के अनुरूप ही है। कवि ने अपनी रचना ' जय हिन्द' को निम्न पंक्तियों से समाप्त किया है। कवि जी के शब्दों में प्रस्तुत हैं –

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 143

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 137

" प्रार्थना है आज जन–जन की,

जनकी न होके यह जनता की जय हो।

निखिल भुवन की

पींड़ित मनुष्यता जहाँ भी हो अभय हो!

भारत रहे स्वतन्त्र,शुभतन्त्र,

प्रभु हे, सुरक्षित हो, उसका सुधर्ममन्त्र !

उसका महात्मबल अक्षय हो

जय हो सदैव प्रभो, भारत की जय हो।" *

इस कृति की प्रत्येक पंक्ति में राष्ट्रीयता की भारत देश के प्रति प्रेम की झलक दृष्टिगोचर होती है।

15.अमृत पुत्र'– ' अमृत पुत्र' रचना का प्रथम प्रकाशन सन् 1959 में हुआ था। यह रचना ईसा के सम्बन्ध में है और ईसा का संक्षिप्त चरित्र उनके समय के दो व्यक्तियों के द्वारा उपस्थित हुआ है। हिन्दी में उग्र जी का महात्मा 'ईसा' नाटक प्रसिद्ध है। हिन्दी में ईसा पर अमृत पुत्र प्रथम काव्य कृति है। किशोरीलाल मश्रूवाला की ' ईस–खिस्त' से इस काव्य सृजन में सहायता ली गयी है विनोवा भावे जी की चिरगाँव पद–यात्रा के अवसर पर कवि का शिशु–सुलभ हृदय श्रृद्धा–भार से झुक गया था। उसी घटना से प्रभावित होकर उन्होंने ' अगृत पुत्र' काव्य का सृजन किया था। 'अमृत पुत्र' काव्य में दो आख्यान सामरी तथा क्रूसधर है। ' अमृत पुत्र' कृति का आरम्भ मंगलाचरण से होता है जो चार पंक्तियों में है कवि गुप्त जी के शब्दों में प्रस्तुत है–

" राम,वन–वन में तुम्हारा संचरण,

जो जहाँ जिस रूप में नत हो सकूँ,

भूल वह जो भव–विभव पातक–हरण,

स्वरित करके कण्ठ में टुक ढो सकूँ। **

' सामरी' नाम से लिखी गई पहली कविता समारा प्रान्त से सम्बन्धित है। यहूदी लोग समारा प्रान्त को इतना अपवित्र समझते थे कि यदि उन्हें गैलिली जाना होता तो समारा होकर जाने

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 144

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 145

की अपेक्षा समुद्र के मार्ग से अथवा चक्कर काट कर दूसरे भू–भाग से होकर जाते थे। यहूदियों में राजा और पुजारियों का विरोध देख प्रभु ईसा ने अपनी गैलिली यात्रा इसी भू–भाग में होकर की, जिसका वर्णन दृष्टव्य है –

'' दूर तक निर्द्वन्द्व पथ पर एक ही,
दीखता है निभृत में निस्संग वह।
सामने के क्षुद्र क्षुप की ओट में,
देखने पाते नहीं हैं जो उसे,
बोध होता है उन्हें भी वह उठी ,
अलख मन्थर यह पवन आभामयी।। '' *

' सामरी' कविता में समारा प्रान्त की उस स्त्री (सामरी) का वर्णन है जो अपने निकृष्टता के निर्मोक से अपने को आवृत समझ वैठी, प्रभु ईसा ने उसके हाथ का जल–पान किया यथा

'' कह रहे हैं कौन ये,
जल दो मुझे।। **

सामरी अपने को मलिन समझती है, और प्रभु ईसा के द्वारा जल माँगने पर वह सोचने लगती है, यथा –

'' जल अरे इस कलश में मेरे कहाँ ?
आग में फुँकते हुए भी उच्च जन
उबरना तक चाहते हमसे नहीं।
तृषित हैं, कैसे हरूँ इनकी तृषा ?'' ***

इस पर प्रभु ईसा ने सामरी को जबाब दिया कि –

'' दान ईश्वर का नहीं तू जानती,
सामने जो माँग जल तुझसे रहा,
माँगती तत्काल तो मुझसे यहाँ,
तू स्वयं वह दिव्य–जल पीकर जिसे,
सब तृषाएँ सर्वदा को शान्त है।।'' ****

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 146
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र) पृ0 148
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र) पृ0 148
**** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र) पृ0 148

आगे सामरी कहती है कि तुम कौन हो ? जिसे मैं जान नहीं पायी। साथ में तुम यह शस्त्र कौन सा लाये हो जिससे मैं एक पत्र में विजित हो गयी। किन्तु जब प्रभु ईसु और उनके शिष्य जा रहे होते हैं तब सामरी की स्थिति का बिम्ब देखते ही बनता है निम्न प्रस्तुत है –

'' समारी के नयन झर–झर–झर उठे।
तड़पतीसी लहरती मूर्च्छित पड़ी।
सामने पग–रेख निर्जन मार्ग की
दी दिखाई, शून्य नभ था सीस पर।
वन्य तरू बिखरे खड़े चिन्तन–निरत
डोलते थे साँस लेकर जब कभी।।'' *

'अमृत पुत्र' कविता में संग्रहीत सामरी आख्यान की अन्तिम पंक्तियों में नायिका सामरी स्वयं को महामूर्खा, तुच्छ नारी बताती है। यथा –

''ईस के हैं पुत्र सबके खीस्ट वे,
तुच्छ नारी में महामूर्खा अधम,
देखते ही समझ जब उनको गई,
कठिनता क्या तब समझने में तुम्हें।
तुम उन्हें सत्कार दोगे, अतिथि का।
प्रार्थना मेरी, रहो सुख से सदा,
हो तुम्हारे साथ ही हम सब सुखी।'' **

'अमृत पुत्र' कृति में संग्रहीत आख्यान 'क्रूसधर' में एक गूँगा भिखारी हमें (कवि को) जब कभी दूर से दीख जाता है तब डर सा लगता रहता है कि कहीं कुछ पार न कर दे। सभी उसे कुछ दे–दिला कर टाल देते हैं एक दिन उसे कुछ दूर पर देखा उसे देखकर आश्चर्य चकित होकर खड़ा रह गया। उसका कण्ठ सहज कुण्ठाहीन था तब मैं उसे अपने साथ घर ले गया। तब उस गूँगे भिखारी ने कहा –

'' यह कृपा है साधु की''–उसने कहा–
'' है नजारथ के महात्मा ईसु वे।''
जानता था, साधु-सन्तों के लिए
कठिन कुछ भी है नहीं संसार में''।***

---

*	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द)	पृ0 150
**	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र)	पृ0 153
***	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र)	पृ0 154

चेत्त के उन्नत शिखर पर रात–दिन अडिग रह, कर उसने (ईसु) विविध तप किये है; उसके व्रत–नियम–उपवास सुदृढ़ है उसे (ईसु को) शैतान भी झुका नहीं पाया। मैं उस पुण्यगिरी को देख लूँ, जिससे वर वचन के स्रोत छूटकर दूर तक धरा को शीतल कर चुके हैं –

'' धन्य वे जो दीन–दुःखी नम्रनत,

भूख--प्यास जिन्हें हृदय में धर्म की

धन्य वे जो सदय है, संशुद्ध हैं,

शान्ति की संस्थापना जो कर रहे,

कर रहे धर्मार्थ जो सब कुछ सहन;।।'' *

ईसु की पतित–पावनता को सभी ने सुना, फिर यह सुना कि वह कह रहा है कि तुम मेरे पास पहुँच नहीं सकते किन्तु वही नर मेरे निकट आ सकता है जो अपना क्रूस उठाकर चल सके

'' भ्रमण में आकर पता मुझको चला,

खोजते चिर फिर रहे हैं, ईसु को

मैं भले ही निरख भी न सकूँ उन्हें,

वे रहे रक्षित उठी यह प्रार्थना।'' **

यह काव्यकथा भारतीय जनमानस के बहुत अनुकूल है तथा इसमें तात्कालिक परिस्थितियों की चेतना अभिव्यक्त हुई है। क्रूसधर कविता में ईसु को क्रूसारोहण हेतु ले जाते हुए प्रहरियों ने साइमन नामक व्यक्ति से बेगार ली थी। आगे की सम्पूर्ण कथा का वर्णन साइमन ने स्वयं किया है क्रूस के भार से सम्बन्धित अनेक उक्तियाँ इस काव्य में प्राप्त होती है, अन्यायी के प्रति भी मानवीय करूणा रखने वाले ईसा की यह अमर उक्ति कितनी प्रेरणादायी –

कर क्षमा उनको , पिता तू कर क्षमा!

कर रहे क्या वे नहीं यह जानते।।'' ***

हे प्रभु! यह तुम्हारा क्रूसधर तुम्हें नम्र रूप से नत मस्तक है! ' अमृत पुत्र' कृति की अन्तिम पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

---

*	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द)	पृ0 157
**	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र)	पृ0 159
***	सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र)	पृ0 167

'' सुन रहा हूँ शुभ चतुर्मुख वृत्त मैं,
जग गये हो प्रभु पुनः तुम जग गये,
सहन करनें बढ़ रहे निर्भीक हो।
कर्म में मुखरित तुम्हारे हैं वचन।
सुन रहा हूँ दूर से ही मैं यहाँ।
यह तुम्हारा क्रूसधर हैं नम्र नत।।'' *

वास्तव में ' अमृत पुत्र' कवि की दीर्घ कविता ' अचला' का एक स्वतन्त्र अंश ही है। हृदय की श्रद्धा से इसकी रचना हुई है– कदाचित् इसीलिए इसमें काव्य–रस क्षीण है।

' अमृत पुत्र' का अनुवाद शिरेफ महोदय ने अंग्रेजी में किया था – नाम रखा था 'दि क्रास बियरर' यह पुस्तक लंदन रायल इण्डिया पाकिस्तान एण्ड सीलोन सोसायटी से प्रकाशित हुई है। मानव उद्धार की आस्था के स्वरों से इस काव्य का अन्त होता है। यद्यपि कवि सियारामशरण गुप्त ईसाई नहीं हैं, परन्तु रचना में उन्होनें अपनी श्रद्धा और धार्मिक औदार्य का पूर्ण परिचय दियाहै। ईसा की वेदना और मर्मान्तक पीड़ा को वस्तुतः मानवता की व्यथा के प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त किया है तथा शान्ति–स्थापना के उनके प्रयासों की भी चर्चा की है। ईसा के अंतिम शब्द उनकी अहिंसा शक्ति को ही व्यक्त करते हैं –

कर क्षमा उनको पिता, तू कर क्षमा
कर रहे क्या वे नहीं यह जानते।।'' **

' अमृत पुत्र' (प्रभु ईसा) में अतुकान्त छन्दों से कथा प्रवाह अविरल रूप से गतिमान रहा है।

16.सुनन्दा – सियारामशरण गुप्त जी ने ' सुनन्दा' काव्य कृति को 12 अप्रैल सन 1956 में पूरा किया था। उनके जीवन काल में इस काव्य कृति का प्रकाशन नहीं हो सका। ' सुनन्दा' का प्रकाशन कवि की मृत्यु के पश्चात सं0 2025 वि0में हुआ।

इस खण्ड काव्य में नक्षत्र नगर के राजकुमार तथा उसके मित्र रंजन की सुनन्दा एवं चम्पा के लिए की गयी प्रेम यात्रा का वर्णन है। राजकुमार अमलवंश का है अतः ऐसी सावधानी रखी जाती है। कि उसे धूल का एक कण भी स्पर्श न कर सके। स्वयं अमल कन्याएँ भी मन

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 171

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र) पृ0 167

को आकृष्ट नहीं कर पातीं। यही कारण है क राजकुमार धरती की सुनन्दा के आकर्षणवश अपनी नगरी से निकल पड़ता है। उधर सुनन्दा चम्पा के साथ मकर मालिनी के तट पर लौह दुर्ग में वंदनी है, यह दुर्ग रंजन द्वारा भस्म हो जाता है, पर सुनन्दा राजकुमार से नहीं मिलती, क्योंकि उसे उत्तरोत्तर उर्ध्वगामी होना है। वह विश्राम के पक्ष में नहीं है, इसीलिए वह बार–बार इसी ओर संकेत करती है –

चलना है हमको चलना है
रहे रात–दिन जैसे *

आगे वह फिर कहती है

''सुप्रियवे नक्षत्र निवासी
उतरे है ऊपर से,
रौंद चुके है ऊँचे नीचे
कितने पथ प्रान्तर वे
क्या उनसे हम भूमि सुताएँ
मिलें निम्न ही स्तर पर'' **

अपना ऊर्ध्वगामी वृत्ति के परिजमन में सुनन्दा अमल हृदय लेकर गगन की दिशा में उठना चाहती है वह इसीलिए अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करती है।

चल सखि, अमल हृदय लेकर हम
ऊँची उठें गगन में,
जीतेंगी जाकर रानी का
मन विश्रान्ति भवन में! ***

कृति का अन्त सुनन्दा के इस विचार के साथ होता है –

''खर्व नहीं–हम, खर्व नहीं तुम
आओ प्रियतम, आओ,
ऊँचा स्थान तुम्हारा वह जो,
हमें वहीं तुम पाओ।।'' ****

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 219
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र) पृ0 219
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र) पृ0 219
**** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत पुत्र) पृ0 219

ग्रन्थ के इस अवसान से ऐसा लगता है जैसे कुछ छूट–सा गया है। डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र ने तो यह कहकर अवकाश ग्रहण कर लिया है कि ''इसमें सुनन्दा में कवि का आदर्शोन्मुख दृष्टिकोण ही व्यक्त हुआ है। '' उन्होंने यह भी लिखा है कि '' सम्भावित मिलन की स्थिति में यह वियोग अस्वाभाविक प्रतीत होता है'' फिर यह भी कहा है – वास्तव में यह सम्पूर्ण काव्य सांकेतिक है और उन्मुक्त' एवं ' गोपिका' के सदृश 'सुनन्दा' में भी प्रतीक पद्धति प्रयुक्त हुई है।'' *

जहाँ तक संभाव्य मिलन की बात है, यह स्पष्ट है कि कवि ने नायक–नायिका का संयोग नहीं कराया है। इसी तथ्य से विषय की सूक्ष्मता या प्रतीकमयता गम्य हो जाती है। परन्तु इस विचार के मूल में क्या दर्शन है, यह सर्वथा गोपनीय भी नहीं रह सका है। कवि ने सुनन्दा के ही माध्यम से स्पष्ट किया है कि ऊर्ध्वगामिता ही जीवन का उद्देश्य है कामोपभोग नहीं। कवि गीता का भी भक्त है और उसी गीता में यह उल्लेख है

''कामोपभोग पर मा एतावदितिनिश्चिता'' ** अर्थात काम सिद्धि चरम सिद्धि न होकर पूर्व सिद्धि या लोकसिद्धि है जो महनीय या उच्चलम नहीं है। नक्षत्र लोक उन्नत लोक है, अमल है; भूलोक मल सम्प्रक्त है अतः भूलोकवासियों के लिए ऊर्ध्वगामी होकर नक्षत्र लोक की विशेषताओं से युक्त होना आदर्श है– ऐसे जीवन को ही सुनन्दा आदर्श और वरेण्य समझती है। इसीलिए वह अपनी स्थिति को खर्व नहीं कहती और न राजकुमार की स्थिति को हेय मानती है। इस प्रकार यहाँ अध्यात्मिकता को प्रश्रय दिया गया है कवि गुप्त के विचार के अनुसार इसे आत्मपीडा कहना ठीक न होगा। ***

17.गोपिका :– 'गोपिका' कवि की अप्रकाशित कृति है जिसे उन्होंने अपने स्वर्गवास से कुछ ही दिनों पहले पूरा किया था। इस कृति को लिपिवद्ध करने में कवि को बारह वर्ष का समय लगा था । 1992 में सियारामशरण गुप्त रचनावली भाग दो, में इसका संकलन किया गया है। जिस समय सियारामशरण गुप्त इस कृति को लिख रहे थे, तब उसका एक चौथाई भाग उनसे रेल यात्रा में खो गया था,परन्तु लेखक ने स्मृति के सहारे इसे दुबारा लेखनीबद्ध किया रचना से पूर्व कवि ने एक कथा सूत्र दिया है। इस रचना का आधार मधुर प्रेम है। प्रेम से भक्ति–भावना दृढ़ होती है। सत्यभामा रूक्मिणी,इन्दु और निम्बा सभी स्त्री पात्र अपने–

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 126

** गीता अ/12

*** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 35

अपने प्रियतमों से प्रसन्न है। ' गोपिका' की लोक भावना उसकी सबसे बडी विशेषता है कृष्ण के रसिक चरित्र को सियारामशरण जी ने लोक के समक्ष प्रस्तुत किया है। क्रूर और स्वार्थी व्यक्तित्व को औदार्य और प्रेम की ओर मुड़ते दिखाया गया है। वर्तमान के अनेक–संकेत गोपिका में विखरे पडे है। कवि ने समष्टि के मंगल की कामना की है, कुल सत्रह खण्डों में 'गोपिका' रची गयी है। कृति के आरम्भ में कथा सूत्र के पश्चात ' उपक्रम' कविता और उसके बाद प्रथम खण्ड ' इन्दुमति' है। ' इन्दुमती' दो खण्डों में दिया हुआ है। इसके आगे के खण्ड क्रमशः दुर्जय कुमार, रूचिरा और आमोद,भद्र और एक यात्री आमोद, भद्र आमोद, मंजुला, दुर्जय , भद्र, इन्दुमति,, भद्र, हंस, वृन्दवाटिका, है। सियारामशरण गुप्त जी के इस गोपिका काव्य की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें गद्य और पद्य दोनों साथ–साथ चलते है। गोपिका का काव्य रूप राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के ' यशोधरा' के निकट पड़ता है। कवि ने अनेक स्थलों पर दार्शनिक स्पर्श देकर भी लौकिक राग में अलौकिकता का समावेश किया है। कृष्ण की उक्ति है एक दूसरे के अनुसारी हम खोजते हैं एक दूसरे को गाँव गाँव घर–घर और जन–जन में जब तक चित्र में प्रतीत हुआ पा लिया है। तो भी यह मिलन सुदुर्लभ है ब्रज के गोपाल का अनिंधू गोपवाला से

" सतत प्रमोदमयि दासि,

नहीं तू सुचिर संगिनी है और

चिर सहचर सखा हूँ मैं " *

'गोपिका' कविता का आरम्भ 'उपक्रम' से होता है उपक्रम की आरम्भिक चार पंक्तियाँ निम्न है –

" श्री सुरभि पथ से यह गली–नव नागरी

किस अमल मधुवन को गई

प्रिय प्रेम रस से भर यहीं निजगागरी

किस तट सुहावन को गई ?" **

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 220

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 224

'इन्दुमती' खण्ड में इन्दुमती स्वयं कह रही है माधव के वेणु तुल्य अहरह नादित हैं– नन्दित हैं मेरे ये श्रवण–रन्ध्र भूलते नहीं हैं मुझे रूचिरा के उस दिन के वे बोल :–

" आ तू तनिक यहाँ आली,
अभी सामने ही नीचे से
निकल गया है वनमाली ।
खड़ी झरोखे में मैं अविचल
निरख रही थी दूर जमुन जल
चौंकी सहसा जगर–मगर थी
सम्मुख हरि की उजियाली
आ तू तनिक यहाँ आली।। " *

सियारामशरण जी ने कृष्ण–लीलाओं और नायिका भेदों के चौखटे के पुराने विलास–संस्पर्शित रंगों को मिटाकर उनके स्थान पर कोमल सात्विक विमल और दीप्त रंग चढा दिये हैं। जिन पनघट लीलाओं,माखन चोरी और कुंज लीलाओं का चित्रण कृष्ण भक्त कवि नैन–सैन,गोरस–दान,छेड़छाड़ इत्यादि के बिना कर ही नहीं सकते थे, उसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की अनेक उक्तियों द्वारा की गयी है –

" पीकर किस महुए की महूक,
प्राणों की कोयल उठी कूक।
यह स्वर शर दूरागत अचूक
मेरे झिर–झिर , झर–झर प्रभात। " **

कवि गुप्त जी ने अपनी कृति गोपिका के खण्ड इन्दुमति में वनवीथि को जनहीना,फलहीना प्रियहीना कहा है – यथा –

" गहन अभी है और गहन में,
गति निःशेष नहीं विचरण में,
ढली कहाँ उस मध्य गगन में
यह दोपहरी जली–जली,
प्रिय हीना मिल गई यहीं तू
वीथि, अरो ओ वीथि भली। " ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 226
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 228
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 231

इन्दु कह रही है कि मैं निजशून्य गगन में भूली–भूली भटक रही थी और अपने हृद को भूलकर जल से सुचित्रित बादलों में निखरती रही। मुझे निज थल का भी स्मरण नही आया और सारे भुवन में घूमती फिरी, परन्तु मुझे बोध नहीं हुआ कि कहाँ का मारूत गन्ध शरीर में तरंगित हो रहा है कवि गुप्त जी के शब्दों में दृष्टव्य है –

" ध्यान न आया निज थल का ही
डोली–फिरी भुवन में,
हुआ न बोध, कहाँ का मारूत –
गन्ध तरंगित तन में। " *

निम्न पंक्तियों में गिरिराज पुत्र की जय को कवि ने अपने शब्दों में उदधृत किया है

" जय–जय गिरिराज सुते
जय–जय भव हेतु रेतु– जय–जय।
वेला भ्रम–भ्रान्त वही
अर्चना अधूरी रही
स्वीकृत हो ऊनी यही
पुष्पांजलि पुण्य द्युते
जय–जय गिरीराज सुते– जय–जय। " **

श्याम ने जब अचानक आकर कहा दही तो बस तेरा है तब दूर गली की ग्वालिन चौंक गयी कि दधि किसका क्या मेरा है ? यथा –

" पय तक नहीं मधुर इस घर का
ब्रज में बस ब्रज के बाहर का
यहाँ दिवस पग धरते डरता,
घना तिमिर चौफेरा,
आकर सहसा कहा श्याम ने–
दधि है तो बस तेरा! " ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 233
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 234
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 237

जब रात कर चाँदनी में स्नान देखती है तब द्वारिका विजन में गोपिका का ध्यान करती है। गोपिका के घर – वहाँ के कुञ्ज में गतिमान हैं अरे प्रेममयि, तुझमें द्वारिका का ध्यान सफल हो। आगे कवि के शब्द हैं –

" मौन मुरली ही यहाँ यह,

फूँक अधरों की वहीं वह,

कनक तो है, अलग अहरह

मूल्य का आधान,

ले यहीं से भाग्यवती,

तेरा नमन सम्मान।।" *

गोपिका कह रही है, कि रात्रि बीत गई है और नव प्रभात हो गया है। ऐसे समय में इन्दुमति का सौन्दर्य देखते ही बनता है। जिसका जूडा तिमिर बन्ध था जिसमें लगे हुए पुष्प की गन्ध चारों ओर फैल रही थी, जिससे वृक्ष के पत्ते–पत्ते पुलकित हो रहे थे। अभी वह निज निधि की खोज करती हुई बुझी–बुझी सी लौटेगी तब उसकी शोभा धरोहर की भाँति दिखायी देगी। कवि जी के शब्दों में इन्दुमती का सौन्दर्य ऐसा है –

" इस ओर पीठ कर इन्दुमुखी

जूडा था जिसका तिमिर बन्ध,

खिसकाती दिनमणि–पुष्प गई

फैला जिसका यह प्रभा– गन्ध।। " **

सियारामशरण गुप्त जी की काव्य कृति ' गोपिका' एक उद्देश्य प्रधान का व्य है। अपार्थिव मधुर भाव जिसका प्रतिपाद्य विषय है जिसमें कवि की उत्तम विमल भावना और कल्पना को अभिव्यक्ति मिली है। ' गोपिका' कवि की अंतिम और मृत्युत्तर जात कृति है। लोक भावना इस की सबसे बड़ी विशेषता है। कृष्ण के रसिक चरित्र को कवि ने लोकोन्मुख किया है क्रूर और स्वार्थी व्यक्तित्त्व को औदार्य और प्रेम की ओर मुड़ते दिखाया गया है। वर्तमान के अनेक संकेत ' गोपिका में विखरे पडे हैं। डा0 सावित्री सिन्हा ने अपने निबंध अप्रकाशितं काव्य 'गोपिका' में 'गोपिका' का मूल्यांकन करते हुए लिखा है– पहली बार मेरे मन पर कृष्ण

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 262

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (गोपिका) पृ0 296

आवृत्ति के राग और दर्शन का सम्प्रक्त प्रभाव तारा बाबू के बाँगला के उपन्यास राधा के कुछ स्थलों पर पडा और तभी पहली बार मेरे 'दुष्ट स हृदय' ने श्रृंगार और मधुर रस में अन्तर की भोडी अनुभूति की। वहाँ कुछ ऐसा मिला जो श्रृंगार रसानुभूति से भिन्न अलौकिक,मधुर और उज्ज्वल था। 'गोपिका' में वह उज्ज्वलता वह माधुर्य आरम्भ से अन्त तक विद्यमान है। मध्यकालीन भक्त–कवियों ने जिस मधुर भाव की उज्ज्वलता को स्थूल श्रृंगारिक क्रीडाओं के आवरण में प्रच्छन्न कर दिया था, सियारामशरण गुप्त ने उसके अपार्थिव माधुर्य को अपनी विमल भावनाओं और कल्पनाओं द्वारा निखार दिया। इस दृष्टि से ' गोपिका' का स्थान हिन्दी–साहित्य में अन्यतम है। *

कविवर गुप्त ने उपर्युक्त मधुर भाव के समकक्ष और विरोध में ' दुर्जय' और 'क्रूर ' नामक दस्युओं के अमानवीय काण्ड रखें है। जो कृष्ण के चले जाने के बाद ब्रज के सांस्कृतिक और नैतिक पतन के सूचक हैं। ऐसे चित्र नूतनता की दृष्टि से उल्लेख्य है; पर इनका व्यवहारिक महत्त्व नही हो सकता – ऐसा ही डॉ० सिन्हा ने लिखा है – '' मधुर भाव अपने आप में चाहे जितना पवित्र गंभीर और निर्मल हो, परन्तु विश्व में प्रबल रूप से छाई हुई क्रूर प्रवृत्तियों का निराकरण करने में समर्थ नहीं हो सकता – वह एक–दो व्यक्तियों का हृदय भले ही छू ले, लेकिन समष्टि स्तर पर उसका समाधान ढूँढना अव्यावहारिक और यथार्थ से दूर है। '' **

<u>18.अचला</u> :– ' अचला' काव्यकृति सियारामशरण गुप्त जी की अप्रकाशित रचना है। सन 1992 ई0 में ललित शुक्ल जी ने सियारामशरण गुप्त रचनावली भाग दो में इसे संकलित किया। ' अचला' काव्य कृति में कविताओं को ' उदय' 'प्रकाश' 'आतप' और ' छाया' खण्डों में विभाजित किया गया है। ' उदय' में कुल दस कविताएँ है जिन्हें ' महाकाल' ' गंगा के प्रति' 'क्षमा प्रार्थना ' मनुज' ' क्रीड़ा–सहचर' ' शंकाकुल' ' ग्रही ' अग्रसर' ' बाह्र बेला और ' समतल' शीर्षकों में विभाजित किया गया है। ' प्रकाश' खण्ड में ' बोधि लाभ' ' प्रियदर्शी ' ' अशोक' ईश्वर पुत्र' और 'हिजरत' शीर्षक से कविताएँ दी गयी हैं। आतप खण्ड के अन्तर्गत ' नमस्कार' 'प्रत्यावर्तित और ' प्रनुश्च ' कवितायें है – अन्त में ' छाया' खण्ड है। इसमें ' बापू' और 'बिनोवा' शीर्षक की दो कविताएँ है। ' अचला' कृति का आरम्भ ' महाकाल' से होता है। कवि कहता है– हे महाकाल तुम मेरा प्रणाम स्वीकार करो मेरे पास मानदण्ड नहीं है यदि हम

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 239

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 244

तुम्हारा एक क्षण माप लें तो यह हिमाचल की तुला ऐसी नहीं है कि जिस पर तुम्हारा एक कण तोल लें।

'' अन्तरिक्ष असीम के उस कोण में,
उडु–पदीप उजाल जो तुमने दिया।
एक जिसका रश्मि दूर्वादल नवल,
चलित चारू प्रकाश गति से बीच के,
लक्ष–लक्ष युगान्त वत्सर पार कर।।'' *

'' अचला' में संकलित ' गंगा के प्रति' कविता में कवि कहता है कि हे त्रिपभगे । इस पृथ्वी की धूल तुम्हारे निर्मल, पावन स्पर्श से धुल रही है। प्रसन्नचित्त भारतवर्ष में रहने वाले मनुष्य तुम्हें जाह्वी के रूप में पूजते है और भक्ति में अपने दिये लघुनाम से तुम्हें बाँध लेना चाहते हैं –

'' मुदित भारतवर्षवासी जन तुम्हें
पूजते हैं जाह्वी के रूप में ।
बाँध लेना चाहते हैं हम तुम्हें
भक्ति में अपने दिये लघुनाम से ।'' **

' मनुज' कविता में मनुष्य ने जागकर दोनों नेत्र खोलकर चारों ओर प्रथम बार तब अपनी दृष्टि डाली जब भावभंगी स्वर वचन सबके मेरे ऊपर पड़े – यथा–

'' दीखता है दृश्यमान समस्त जो,
छू लिया मैंने उसे यह छू लिया।।
सद्य जागरिता अछूती दृष्टि से ! '' ***

मानव जो अभी तक नितान्त अज्ञानी था अचानक जब उसके हाथ में गेंद आ गई तब वह उसके रंच मात्र स्पर्श से जड़ से सचेतन प्राणमय हो उठा। ताड़िता भी ऊर्ध्व थी कि झाँकी उझक लेती हुई उछलती–कूदती थी। लौटकर फिर'–फिर कर वह गेंद को पाने लगी और

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) सं0 ललित शुक्ल पृ0 304
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) सं0 ललित शुक्ल पृ0 305
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) सं0 ललित शुक्ल पृ0 308

उसका सहचर्य भी आनन्द में उसे पाने लगा। इस प्रकार यह रूचि पूर्ण क्रीड़ा बढ़ती चली गई। यथा –

" रूचिर क्रीड़ा बढ़ चली , बढ़ती चली
यह अभी इस क्षण यहाँ, उस क्षण वहाँ
खेलते ही खेलते प्राचीर निज
हो गई उत्तीर्ण कब अविदित रहा।" *

' अचला' में संकलित ' ग्रही' कविता की कुछ पंक्तियाँ गुप्त जी के शब्दों में निम्न हैं –

" अब निरा नंगा नहीं सुगृहस्थ वह,
जानता है बैठना भी अविचलित।
बुन रहा है बहु विविध पट वस्त्र जो
मुक्त होकर मृत्तिका के स्पर्श से
अधर में ही उँगलियों पर उग पड़े
विपुल विस्तृत बहुल वर्ण प्रसून– दल।" **

सिन्धु तल पाताल में धँसकर वहाँ का श्रीसदन देख आया है और प्रवाल –निकुंज से इस धरा को भेंटने के लिये रजत मुक्ताफल तोड़ लाया है जब सूखकर कब का न जाने उपल समान नीर निश्चेतन हिम पड़ा हुआ था। तब मनुष्य ने शस्य श्याम बसुन्धरा के गान से वहाँ का शून्य आकाश भर दिया।

" सुखकर कब का न जाने उपल सम
नीर निश्चेतन पड़ा था हिम हुआ,
उच्च–निम्न उठे–गिरे उस ठौर में
वह धरा का श्वास–सा ही था जमा।
भर दिया नर ने वहाँ का शून्य नभ।
शस्य श्याम वसुन्धरा के गान से।" ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 309
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 312
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 321

'बोधि–लाभ' कविता में बोधि वृक्ष की छांह में विश्व ने अफलेच्छु की दूर तक वाणी सुनी। यथा –

" भय न कर मानव अरे तू भय न कर
भारती तुझको नहीं है मृत्यु वह।
हन रही हिंसा तुझे तेरी स्वयं।
भ्रम रहा है क्यों छिपे के फेर में
बहुत यह प्रत्यक्ष है तेरे लिए ? " *

राज्य के अधिपाल वीर अशोक (प्रियदर्शी अशोक) का चारों ओर जय–जय कार हो रहा है, उन्हें प्रजा प्रियदर्शी कहती है अजित भूमि कलिंग की थी सामने जिस पर नर केसरी टूट पड़ा। चिर काल से युद्ध ही है उनमें पूर्व–पश्चिम का भेद नहीं है। जो पृथ्वी रक्त रंजित थी वह हरित थी। घर–मन्दिर, भवन, झोपड़े अपनी चिता स्वयं बन गये थे। सैकड़ों शव सड़ रहे थे, जिन पर गिद्ध दल विजय सुख लेते हुए टूटते थे –

" सौध गृह मन्दिर भवन घर झोंपड़े
बन गये अपनी चितायें आप थे।
सड़ रहे शत–शत शवों पर गिद्ध दल
टूटते थे विजय–सुख लेते हुए,
मत्त सैनिक वृन्द ज्यों क्रीड़ानिरत। " **

सम्राट अशोक कहते हैं कि मेरे हृदय में क्या है ? मैं स्वयं अनभिज्ञ हूँ। यह ज्ञान मुझे कैसे हो कि यह मेरा भ्रमण कलिंग वसुन्धरा पूर्ण कर देगी। क्या सिद्धार्थ मैं सफल हो सकूँगा ? छोर पाकर शाक्य राजकुमार के समस्त भव कट गये थे। इस नवीन कलिंग की जय भूमि पर क्या मुझे भी सर्व जय मिल जायेगी ? –

" हो जिसे अगला न कुछ, पिछला न कुछ ?
क्या कहूँ, यह नव विजय, कितनी बड़ी।
सब विजय इतिहास में इस एक से
हीन बनकर हैं पराजित पूर्णतः। " ***

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 321
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 322
*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 326–327

प्रियदर्शी सम्राट अशोक की तो बस यही कामना है कि सभी जीव प्रेम पूर्वक क्षेम से, कल्याण से एवं सुसंयम से रहें। राज्य भूरिशः बिगड़ेंगे बनेंगे असंख्यों मनुष्य आयेंगे फिर जायेंगे और एक दिन लाखों कलिंग युद्ध के घाव आप ही भर जायेंगें –

" नाम प्रियदर्शी जयी सम्राट का
एक दिन पुँछ जायेगा जन–चित्त से ,
सुदृढ़ है विश्वास यह मेरा तदपि
आज मेरे इस अकुण्ठित कण्ठ से
हो रहा है प्रेम का जय–घोष जो
प्रध्वनित होता रहेगा व्योम में
सब दिशाओं में धरा पर सब कहीं।" *

हिजरत कविता में कवि कहता है कि जब कोई श्रद्धालु सारी कठिनाईयों को पार करके मुहम्मद साहब के जन्म स्थल पर पहुँचता है तब उसका किया गया श्रम सफल हो जाता है यथा –

" दूर का श्रद्धालु कवि सप्रेम यह
दूर के दुर्गम पुरातन काल काल की
तीर्थयात्रा पर यहाँ हैं, बीच के
सम–विषम व्यवधान सारे लाँघकर
श्रम सफल है पहुँचकर उस भूमि पर
विचरते हजरत मुहम्मद हैं जहाँ। " **

इस तरह कवि ने हिजरत साहब पर कविता लिखकर स्वयं हिन्दु होते हुए भी सर्व धर्म समभाव का परिचय दिया है। नमस्कार कविता में कवि सियाराम शरण गुप्त जी कहते हैं हे राम! आप जन–मन के विश्राम हो, आपको हम विनती कैसे अर्पित करें ? युग–युगान्तर के पदों की धूलि के लुप्त चिन्ह ओट में छिपे हुये हैं जिस पर सैकड़ों संख्यों की परत जम चुकी है –

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 332

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 333

'' निपट पाषाणी गिरा यह आज की

प्राण से खोकर जडित अभिशप्त है,

चरण से आकर तनिक इसको छुओ,

कंठ इस का खुल सके यह झुक सके,

कह सके'' हे राम''!— हूँ सिरसा नमित।'' *

कवि सियारामशरण गुप्त जी की लेखनी कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लिए मुखारित हुई हैं, यथा –

'' कवि ठाकुर— कवि देव – तात,

आनन्द – शिखर गत

जनगणमन के नमस्कार तुम लो ये शत—शत। '' **

19.फुटकर कविताएँ :—

कवि सियारामशरण गुप्त जी की फुटकर कविताओं को ललित शुक्ल जी ने संकलित करके सियारामशरण गुप्त रचनावली खण्ड —दो को 1992 ई0 में प्रकाशित कराया फुटकर कविताओं में अधिकतर ऐसी कविताएँ है जो कभी सरस्वती, हंस,विशाल भारत , बंग दर्शन आदि में क्रमशः प्रकाशित हो चुकी हैं।

फुटकर कविताए क्रमशः ' एक बीघा ' श्री राघव विलाप' ' वीर बालक' ' अनवसित' ' रानी लक्ष्मीबाई, 'चरखा गीत' ' विगत दिग भ्रम, ' उपक्रत, ' रासमणि 'कृष्णा' ' अरे राम' ' झण्डा गीत' ' विक्रम' ' परिचय' 'हे राम' 'अनागत, ' कल के प्रति ' जाग —जाग ' अविचल' ' हीरक तिथि' ' हमारा ह्रास ' ' अखण्डित' ' पचत्तर वर्ष' शीर्षकों में लिखी गई है।

' एक बीघा' कविता में कवि ने लिखा—वह भूमि जो दूर सागर जल में मौन मुख बाहर किये जा छिपी थी। भिन्न—भिन्न अनाम दीपों में उसे प्राप्त करके कर्म मुखित कर दिया और हम सिन्धुतल पाताल में धँस गये, वहाँ का श्री सदन देख आये प्रबाल निकुँज से रजत मुक्ताफल इस धरा को भेंटने के लिए तोड़ लाये –

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 336

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 357

'' भूमि वह जो दूर सागर नीर में
जा छिपी थी मौन मुख बाहर किये,
भिन्न–भिन्न अनाम द्वीपों में उसे
प्राप्त करके कर्म मुखरित कर दिया।
धँस गये हम सिन्धुतल पाताल में,
देख आये वह वहाँ का श्री सदन,
रजत मुक्ताफल प्रवाल निकुंज से
तोड़ लाये इस धरा को भेंटने। '' *

'श्री राघव विलाप ' कविता मेघनाद वध के आधार पर रचित है। मेघनाद जगधर लक्ष्मण से कह रहे है;कि रात्रि समय रोज कुटीर द्वार पर धनुष को धारण किये रहने वाले तुम ही हो। तुम ही ने तो हमें वन में सभी प्रकार के सुख दिये फिर जा हे लक्ष्मण धनुर्धर! आज हमें भूल क्यों रहे हो जब हम दुःख रूपी समुद्र में चले जा रहे है। इस शत्रु नगर में हम दुस्सह व्यथा को सहन कर रहे है परन्तु हाय! तुम हमको सर्वथा भूलकर निरन्तर निद्रा में निमग्न हो। अब तुम्हारे बिना इस घोर दुःख में हमारा कौन रक्षक है ? इस बन्धु के आदेश को क्या तुमने माना नहीं है फिर आज तुम निद्रा को त्यागकर मेरे क्लेश को क्यों नहीं हरते। दुर्भाग्य से यदि तुमने हमें छोड़ ही दिया परन्तु मुझे यह बताओ अभागी सीता ने कौन सा अपराध किया है सम्मान्या जानकी को बद्ध करने वाले दस्यु को बिना दण्ड दिए तुम क्यों सो रहे हो –

'' माता मही सम्मान जिसको है सदा तुमने दिया,
तब कुल–वधू उस जानकी को बद्ध है जिसने किया।
उस दस्यु पामर को समर में योग्य दण्ड बिना दिये,
क्यों सो रहे हो हाय! तुम निश्चिन्त यों होकर हिये।। '' **

' वीर बालक' कविता में बालक माँ से स्वदेश रक्षा के लिए आशीर्वाद की माँग कर रहा है और कहता है कि माँ तुम मुझे ऐसा आशीर्वाद दो, कि युद्ध में चाहे मेरे प्राण निकल जायें, परन्तु मैं विचलित न होऊँ। वीर बालक प्रताप के इन उच्च विचारों को सुनकर माँ का कण्ठ अपार प्रमोद प्राप्त करके गद्‌गद हो गया। निम्न पंक्तियों में माँ उस वीर बालक को युद्ध में

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 365
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 372

जाने का विजय प्राप्त करने का आर्शीवाद देती है यथा –

" अपने एक मात्र सुत को क्षत्रिय–गौरव के रक्षार्थ

रण में जाने को माँ ने यों दिया निदेश त्यागकर स्वार्थ,

ईश्वर मंगल करे तुम्हारा, जाओ रण में वत्स! सहर्ष

वही काम करना तुम जिससे मातृभूमि का हो उत्कर्ष *

' वीर बालक' कविता में देश प्रेम की भावना का प्रकाशन हुआ। कविता ' रानी लक्ष्मीबाई' में भी वीरता का भाव व्यक्त हुआ हैं रानी लक्ष्मीबाई कहती है कि मैं अपनी झाँसी किसी को नहीं दूंगी।–

" दूँगी नहीं कदापि अन्य को अपनी झाँसी।" **

इस कविता की अन्तिम पंक्तियों में जन–जन के शत–शत पावन प्रणाम अर्पित हुए दिखाये गये हैं। कवि गुप्त जी के शब्दों में यह बिम्ब अत्यन्त ही स्पष्ट प्रतीत होता है जो निम्न है

" रही हमारी अमिट प्रेरणा चिरजीवित वे,

अजर अमर हैं महामृत्यु– मुख मे दीपित के।

उनकी पहली श्राद्धशली के समय– नम्र नत

जन–जन के पावन प्रणाम अर्पित है शत–शत "। ***

' चरखा गीत' कविता में चरखा गीत को मन का गीत, जन–जन का संगीत कहा गया है इसके तकुए का पतला तार बढ़–बढ़ कर सात समन्दर पार कर सकता है। ऐसे ही कुछ बिम्ब इस कविता में दिखायी पडते है –

" सीधे सच्चे इस तकुए का पक्का पतला तार

बढ़–बढ़ कर ले सकता है सात समुन्दर पार ,

लूटपाट करके औरों में

जले फुँके उजड़े ठौरों में

बन बैठके जो सिरमौरों में

भय उनका निस्सार। " ****

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 375

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 381

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 381

**** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 382

गाँधी जयन्ती के अवसर पर विनोवा भावे जी के प्रति सप्रणाम विगत दिग्भ्रम कविता लिखकर सियारामशरण गुप्त जी ने भेजी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है –

'' तुम वहाँ दिवलोक में हे देव हमारे गेय,
तुम वहाँ शिवलोक में हे शिव हमारे प्रेय।

x x x x

दूर भी मृदु हास लहरित तुम यहा पर हो,
निरन्तर नित हमारे पास।।''*

' झंडागीत' कविता में हमारे इस तिरंगे झंडे का महत्त्व दिखाया गया है –

'' यह झंडा है तो जीवन है, जीवन में है सार,
इसकी रक्षा में न्यौछावर हम सब सौ– सौ बार।
जब तक यह ऊँचा उड़ता है गौरव का आधार,
बना रहेगा ऊँचा सिर यह सुन ले सब संसार।

x x x x

एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश।
सुनो सब, एक हमारा देश।।'' **

' कृष्णा' कविता एक गीत नाट्य है जिसमें उदयपुर के महाराजा भीमसिंह, महारानी, पुत्री आदि पात्रों को लेकर लिखा गया है।

(अन्त में)

इस प्रकार सियारामशरण गुप्त जी की फुटकर कविताएँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। ' एक बीघा' में मानवीय अनन्त संभावनाएँ है ; 'श्री राघव विलाप' में भ्रातृभावाश्रित करूणा है 'वीर बालक' में चित्तौड़ धरित्री की संतान प्रताप का स्तवन है 'अनवसित, में गुरूदेव के प्रति नमन है; 'रानी लक्ष्मीबाई' के पाद–पद्मों जन–जन के शत–शत प्रणाम अर्पित हुए है,'चरखा गीत' में चरखा जनमन का मीत बना है, 'विगत दिग्भ्रय', में विनोबा भावे का पुण्य स्मरण है;

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 404
** सियारामशरण गुप्त की रचनावली द्वितीय खण्ड (फुटकर कविताएँ) पृ0 383

अध्याय चतुर्थ

सियारामशरण गुप्त के काव्य में सामाजिक चित्रण

1. समाजिक व्यवस्था।
2. पारिवारिक जीवन का स्वरूप।
3. पारिवारिक संगठन।
4. सम्बन्ध एवं कर्त्तव्य।
5. पारिवारिक शिष्टाचार एवं अतिथि सत्कार।
6. नारी समाज एवं कवि का नारी के प्रति दृष्टिकोण।
7. संस्कार।
8. पर्वोत्सव एवं त्योहार।
9. खान–पान।
10. वस्त्र या वेशभूषा।
11. आभूषण और श्रृंगार प्रसाधन।
12. व्यवहार की सामान्य वस्तुयें।
13. आवास।
14. यातायात के साधन।
15. मुद्रा।
16. मनोविनोद।
17. कृषि– संस्कृति।
18. लोक मान्यतायें और सामान्य विश्वास, अभिशाप,वरदान।

अध्याय चतुर्थ

सियाराम शरण गुप्त जी के काव्य में सामाजिक चित्रण

1. सामाजिक व्यवस्था

ऋग्वेद के 'पुरूष सूक्त' में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः परमेश्वर के मुख, बाहु, जाँघ और पैर से उत्पन्न बताया गया है * यही चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अपनी एक विशेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ऋग्वेद काल से लेकर आज तक अपने किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है।

मनुष्य, समाज का आधार स्तम्भ है। वस्तुतः अनेक मनुष्यों के संगठन का नाम समाज है। परन्तु समाज कहीं अनेक मनुष्यों के स्वछन्द व्यवहारों से पथभ्रष्ट न हो जाए, इसके लिए अनेक प्रकार के आदर्श एवं विचार उसे एक सूत्र में पिरोये रखने के लिए सदा निर्मित अथवा परिष्कृत होते रहते हैं। इसीलिए व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए वर्णो की व्यवस्था की गयी है।

समाज व्यवस्था में मूलतः, स्थान विशेष के लोगों का बाह्य जीवन तथा आचार–विचारों का समावेश रहता है। मानवीय बौद्धिक चिन्तन को इसके अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसके अन्तर्गत तो हमारे जाति सम्बन्धी विचार इन्हीं विचारों से सम्बन्धित समस्यायें, वर्ग–संघर्ष, आपसी व्यवहार, साम्प्रदायिक विचार, पुलिस व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, न्याय, भ्रष्टाचार आदि सभी दैनिक व्यवहारिक उपकरण आते हैं।

वैदिक युग में कार्य में सुचारूता एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए तद्‌युगीन समाज शास्त्रियों ने, समाज में चार वर्णो की व्यवस्था दी। इसके अनुसार, बौद्धिक कार्य करने वाला वर्ण ब्राह्मण, सम्बन्धी भार वहन करने वाला वर्ग क्षत्रिय, व्यापार करने वाला वर्ग एवं कृषि वर्ग वैश्य तथा सब ही प्रकार की सेवा का भार वाहक वर्ग शूद्र कहा गया। यह वर्ण–व्यवस्था व्यक्ति की कार्य क्षमता के आधार पर बनायी गई थी। कोई व्यक्ति जन्म से न तो ब्राह्मण था, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र। एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता था अपने व्यवसाय को त्यागकर दूसरे वर्ण के व्यवसाय में दीक्षित हो वर्ण परिवर्तन कर सकता था। परन्तु यह लचीली व्यवस्था वर्णाश्रम धर्म के प्रारम्भिक युग तक सीमित रही। शनैः शनैः इस व्यवस्था

* ऋग्वेद – 10/90/12

का रूप और व्यवहार कठोर होता गया। व्यक्ति जन्म से ही जाति बन्धन में बँध गया। उसे अपने वर्ण या जाति को बदलने का स्वातन्त्र्य न रहा। ब्राह्मण कुपात्र होते हुए भी वन्दनीय हो गये और शूद्र बेचारे अस्पृश्य। *

वर्ग– संघर्ष

मानवीय प्रतिस्पर्धा और वैभव में जीने की लालसा, सदैव से ही वर्ग–संघर्ष को जन्म देती रही है। वर्ग संघर्ष हीन समाज की न तो कल्पना ही की जा सकती है न सम्भावना ही की जा सकती है। यदि किसी राष्ट्र के सम्बन्ध में ऐसी कोई सूचना प्राप्त होती है तो इसका अर्थ यही होगा कि उस राष्ट्र की प्रगति अवरूद्ध है। उसके निवासियों की चेतना और प्राणतत्त्व का ह्रास हो रहा है अथवा वह जाति अर्द्ध सभ्य किंवाअसभ्य है। जो भी हो संघर्ष मानवीय चेतना का प्रतीक है। अतः बिना संघर्ष के मानवीय प्रगति भी असम्भव है। **

समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए, पुलिस का महत्त्व भी सदैव ही रहा है वृन्दावन लाल वर्मा जी के उपन्यासों में भी समाज के इस महत्वपूर्ण वर्ग का चित्रण दृष्टिगोचर होता है

न्याय व्यवस्था – भारतीय न्याय व्यवस्था अपने प्रारम्भिक युग में सामन्तों, राजाओं और पंचों के हाथों में रही है। परन्तु अंग्रेजों के आगमन से इसमें परिवर्तन उत्पन्न हुए। इस जाति ने भारत की पवित्र भूमि पर, अपने पैर जमते ही इस प्राचीन व्यवस्था में हस्तक्षेप कर अपने यहाँ की लम्बी और तर्को तथा साक्ष्यों पर आधारित न्याय व्यवस्था को लागू कर दिया। वकीलों के तर्कों पर चलने वाला यह न्याय जितना शिथिल गति से चलता है, उतनी ही आसानी से खरीदा और बेचा जा सकता है।

अपराधी को वकील तर्कों के आधार पर निरपराध सिद्ध कर दे तो कानून यह जानते हुए भी व्यक्ति अपराधी है उसे दण्ड नहीं दे सकता। न्याय के लिए गवाह चाहिए और गवाह रूपयों के लालच में गीता और कुरान की शपथें ले लेने में भी पीछे नहीं रहते। इसीलिए न्याय आज खरीदा और बेचा जा सकता है।

---

* उद्घृत–वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 ऊषा भटनागर, पृ0 156

** उद्घृत–वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ0 ऊषा भटनागर, पृ0 163

कर्मयोगी तिलक जी का कथन है :– "पुराने जमाने के ऋषियों ने श्रम–विभाग रूप चातुर्वर्ण्य संस्था इसलिए चलाई थी कि समाज के सब व्यवहार सरलता से होते जावें, किसी एक विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग पर ही सारा बोझ न पड़ने पावे और समाज का सभी दिशाओं से संरक्षण और पोषण भली भांति होता रहे।" *

प्राचीन काल में समाज वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था द्वारा आबद्ध था। चारों वर्ण और चारों आश्रम समष्टिगत तथा व्यक्तिगत उन्नति की दिशा में अग्रसर थे।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की दो खास विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह कि इसका धर्म से गहरा संबंध है, दूसरे यह व्यक्तियों की अपेक्षा समूह का संश्लेषण है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था एक सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था है। प्राचीन काल से ही सामाजिक संस्थाओं का आधार धार्मिक था और सामाजिक नियम धर्म द्वारा अनुमोदित भारत के सभी परम्परानिष्ठ पंडितों के समान सामाजिक व्यवस्था में सियारामशरण गुप्त जी की भी आस्था है। परन्तु उनके समय तक सामाजिक वर्ण व्यवस्था जो ऋग्वेद काल में थी, वह विकृत अवस्था में आ चुकी थी। मध्यकाल में तुलसीदास जी जैसे समदर्शी पण्डित और विरक्त महात्मा भी उस विकृत वर्ण व्यवस्था में पोषित होने से उन विकारों से नहीं बच सके और हमारे अपने युग में तुलसी–साहित्य के प्रसिद्ध मर्मज्ञ एवं प्रस्तोता आचार्य शुक्ल ने काव्य शास्त्र के क्षेत्र में गहन तार्किक विश्लेषण करने पर भी सामाजिक क्षेत्र में संस्कार–दृढ़ता के कारण तुलसी के अतर्क्य मन्तव्य :–

" पूजिअ विप्र सील–गुन–हीना।
सूद्र न गुन–गन ग्यान प्रवीना।। " **

का समर्थन किया है। सियारामशरण गुप्त जी के काव्य 'अनाथ' में ग्रामीण विपन्न जीवन का एक करूण चित्र है जो गुप्त जी के समय की दयनीयता और विषमता का बिम्ब उपस्थित करता है। यथा :–

" विकल विह्वल था मुख का भाव,
हुआ था उर में गहरा धाव।
पा रही थी प्राणन्तक कष्ट,
हो चुकी थी आशा भी नष्ट।।
अभागे रोगी का भी हाल,
हो रहा था विशेष विकराल।
छटपटाते थे उसके प्राण,
भूख के मारे था प्रियप्राण।। "***

---

* श्रमद् भगवद् गीता रहस्य – तृतीय संस्करण, पृ0 65

** श्रीराम चरितमानस 3/34/2

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (अनाथ) – ललित शुक्ल पृ0 79–80

कवि अपने समय की विकृत वर्ण–व्यवस्था का एक और रूप 'आर्द्रा' में संकलित 'एक फूल की चाह' कविता में अछूतों के मन्दिर प्रवेश पर लगे प्रतिबन्ध के संदर्भ में प्रस्तुत करता है, जिसमें एक अछूत की दुखिया लड़की जिसका नाम सुखिया था महामारी में बीमार पड़ी हुई है। वह बेटी कहती है – अपने पिता से –

" मुझको देवी के प्रसाद का।
एक फूल ही दो लाकर ।। " *

पिता पुत्री से पूछता है –

" बेटी बतला तो तू मुझको,
किसने तुझे बताया यह।
किसके द्वारा कैसे तूने,
भाव अचानक पाया यह ?
मैं अछूत हूँ, मुझे कौन हा।
मन्दिर में जाने देगा।
देवी का प्रसाद ही मुझको
कौन यहां लाने देगा" ? **

पुत्री के हठ पर वह अभागा मन्दिर में चला जाता है –

" सिंह पौर तक भी आँगन से
नहीं पहुँचने मैं पाया।
सहसा यह सुन पड़ा कि– कैसे।
यह अछूत भीतर आया ?
पकड़ो, देखो भाग न जावे,
बना धूर्त यह है कैसा
साफ–स्वच्छ परिधान किए है,
भले मानुषों के जैसा!

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा) – ललित शुक्ल पृ0– 111

** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा) – ललित शुक्ल पृ0– 111

पापी ने मन्दिर में घुसकर,

किया अनर्थ बड़ा भारी,

कलुषित कर दी है मन्दिर की

चिरकालिक शुचिता सारी।।'' *

उस बेचारे बाप पर मुकदमा चला और उसे सात दिन की सजा हुई –

'' दण्ड भोगकर जब मैं छूटा।

पैर न उठते थे घर को।

पीछे ठेल रहा था कोई,

भय–जर्जर तनु पञ्जर को।।

बुझी पड़ी थी चिता वहां पर

छाती धधक उठी मेरी,

हाय! फूल सी कोमल बच्ची।

हुई राख की थी ढेरी।। '' **

गुप्त जी की काव्यकृति 'नोआखाली में' संकलित या संगृहीत 'पाक–कलाम' कविता में कवि की हिन्दू–मुस्लिम–ऐक्य में जो दृढ़ आस्था है उसका इसमें परिचय मिलता है –

'' गाँधी जी की रखवाली मे

चुस्त सिपाही हैं तैनात।

विस्मय था बूढ़े कासिम को

बेटा, तुम यह क्या कहते

नोआखाली जंगल है क्या,

वहाँ भेड़िये हैं रहते ?

अब्बा ऐसी बात नहीं है,

वहाँ हमारा ही है जोर।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (आद्री) – ललित शुक्ल पृ0– 117

** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (आद्री) – ललित शुक्ल पृ0– 118

सौ में अस्सी तक मुस्लिम हैं

आस–पास में चारों ओर।

x x x x

मुसलमान ईमान समझकर

आये का आदर करता,

गाँधी है – दुश्मन भी हो तो

उसके लिए जूझ मरता।। '' *

इस प्रकार समाज में आयी बुराईयों को सियाराम शरण गुप्त जी ने अपने काव्य में उद्‌धृत किया। ऋग्वेद कालीन संस्कृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का विभाजन कर्म के आधार पर था, उनमें ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं था। गुप्त जी ने अपने काव्य में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए स्पष्टतः संकेत किया है कि इसका सही रूप समाज के लिए कितना लाभकारी था और विकृत रूप कितना विध्वंसकारी। इस विध्वंसकारी रूप की भर्त्सना भी हम काव्य में अनेक पात्रों के मुख से सुन सकते हैं, जो इस बात का स्पष्ट संकेत है कि आज के युग में भी हमें ऐसे विध्वंसात्मक तत्त्वों का दृढ़ता से विरोध करना होगा, तभी मनुष्य की जय–यात्रा निर्विघ्न चल सकती है। कविवर गुप्त जी ने अपनी उक्त कविता में अस्पृश्यता एवं मन्दिर प्रवेश–निषेध का प्रत्याख्यान किया जो 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्रीय स्तर पर छाया हुआ था।

2. पारिवारिक जीवन का स्वरूप परिवार ही व्यक्ति,समाज और राष्ट्र का आधार है उसकी सुव्यवस्था, शान्ति और उन्नति पर ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उन्नति निर्भर है। वैदिक युग का पारिवारिक जीवन पारस्परिक आत्मीयता और कर्त्तव्य निष्ठा पर आधारित था, उसमें पारिवारिक हित, चिन्ता और सबके लिये कर्म करते रहने की उदार भावना विद्यमान थी। पिता, पुत्र , पौत्र, पितामह, पत्नी और जन्मदातृ माता तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्धियों के प्रति सादर एवं सस्नेह प्रेम भाव का बाहुल्य था। ** मनुष्य के लिये परिवार प्राकृतिक है क्योंकि इसकी आवश्यकता मानव जैसे विकसित प्राणी को होती है। शिशु पालन में

* सियारामशरण गुप्त रचनावली-द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) – ललित शुक्ल पृ0– 57–58

** अथर्ववेद 9/5/30

जितनी अधिक आवश्यकता परिवार की विकसित जन्तुओं में है, उतनी कम विकसित प्राणियों में नहीं, क्योंकि इस वर्ग के शिशु जन्म के समय अधिक से अधिक असहाय अवस्था में होते हैं। अतः उनके उचित विकास के लिये अधिक से अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है। इसी लिये मानव समाज में परिवार का स्वरूप अधिक दृढ़ और परिष्कृत है।

प्रसिद्ध समाज शास्त्री श्री बी0सी0 टोंग्या ने परिवार का अर्थ स्पष्ट करते हुये लिखा है –

" परिवार का अंग्रेजी रूपान्तर है Family यह शब्द लैटिन भाषा के शब्द "फैमूलस से निकला है जिसका मूल अर्थ माता–पिता, बच्चों, सेवकों एवं दासों के एक समूह से है। *

श्री जे0एस0मेकेन्जी ने अपनी पुस्तक "समाज दर्शन की रूपरेखा" में परिवार का विचार करते हुये लिखा है कि –

"परिवार उतना ही प्राचीन है जितना कि मनुष्य यह आज भी समाज की सर्वोच्च, प्राथमिक तथा महत्त्वपूर्ण इकाई है। यह मानव जीवन का प्रमुख केन्द्र है, सभी समाजिक समूहों का मूलभूत रूप है। यह प्रत्येक समाज में सामाजिक विकास की अवस्थाओं में और सभी सामाजिक स्तरों पर पाया जाता है।" **

प्रसिद्ध समाजशास्त्री वोगार्डस ने परिवार को परिभाषित करते हुये कहा है –

" Family is a Small Social group, normally composed of a father, a mother and one or more children, in which affection and responsibility are equitably shared and in which children are reared to become self controlled and socially motivated persons."(E.S. Bogrdus) अर्थात् परिवार एक ऐसा छोटा सामाजिक समूह है, जिसमें साधारणतः माता–पिता तथा एक या अधिक बच्चे होते हैं; जिसमें स्नेह और उत्तरदायित्व का समान हिस्सा होता है तथा जिसमें बच्चों का पालन–पोषण, उन्हें स्वनियन्त्रित एवं सामाजिक प्रेरक व्यक्ति बनाने के लिये होता है।" ***

---

* गढ़कुण्डार – वृन्दावनलाल बर्मा (उदधृत) पृ0– 127

** गढ़कुण्डार – वृन्दावनलाल बर्मा (उदधृत) पृ0– 127

*** गढ़कुण्डार – वृन्दावनलाल बर्मा (उदधृत) पृ0– 157

बर्जेस एवं लॉक के अनुसार –

" परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो रक्त या गोद लेने के सम्बन्धों में परस्पर संयुक्त हों। जो एक गृहस्थी का निर्माण करते हों तथा जो पति–पत्नि, माता–पिता, पुत्र एवं पुत्री, भाई एवं बहन के अनुरूप कार्यों में परस्पर अन्तः क्रियाओं एवं विचारों का आदान प्रदान करते हुये सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं।" *

ये पारिवारिक स्वरूप किसी न किसी देश या राष्ट्रीय समाज से सम्बन्धित हैं। भारतवर्ष में तीन प्रकार के मुख्य परिवार पाये जाते हैं –

01. **विवाहित पति–पत्नी और बच्चों का परिवार।**
02. मिश्रित परिवार।
03. रक्त सम्बन्धी या संयुक्त परिवार।

भारतीय नारी जब "वसुधैव कुटुम्बकम् " का समर्थन करती है तो उसके अनुसार समस्त विश्व के लोग एक ही परिवार के सदस्य कहलाते हैं, परन्तु व्यवहारिक रूप में गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले स्त्री–पुरुष पारस्परिक संयोग द्वारा प्राप्त संतति–सहित एक परिवार बनाते हैं। वस्तुतः यही वह संस्था है, जिसके द्वारा एक पीढ़ी के आदर्श दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किये जाते हैं तथा एक समाज के विचार दूसरे समाज तक पहुँचाये जाते हैं।** पारिवारिक सदस्यों में मुख्यतः पति–पत्नी, माता–पिता, पुत्र,पुत्री, भाई–बहन आदि की ही बात की जाती है। इन सब सदस्यों को आपस में जो अगाध स्नेह और प्रेम होता है वह उनकी आवद्धता का सेतु बनता है। परिवार का यह विकास समुदाय और समाज को विकसित और संवर्धित करता है तथा उसके सांस्कृतिक जीवन को ही पल्लवित–पुष्पित करता है। *** समाज का लघु संस्करण है परिवार। वास्तव में परिवारों का संघट्ट ही समाज है और किसी समाज की समुन्नति पारिवारिक जीवन की सुख–शान्ति पर आधारित है। सियारामशरण पारिवारिक जीवन के ही कवि हैं। वास्तव में जैसा कि डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है – "भारत वर्ष के सभी मर्यादा–प्रेमी कवि परिवार के कवि रहे हैं।" ****

---

* गढ़कुण्डार – वृन्दावनलाल वर्मा (उद्धृत) पृ०– 136

** भारतीय मनीषियों ने इसी के विकास के रूप में " वसुधैव कुटुम्बकम् " की बात की है

*** प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास – डॉ० जयशंकर मिश्र पृ०– 307

**** हिन्दी साहित्य : संस्करण सन् 1955 पृ०– 443

सियारामशरण जी की माता का नाम काशीबाई था पांच भाइयों में वे चौथे नम्बर पर थे, महारामदास, रामकिशोर गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त और चारूशीलाशरण गुप्त। सभी भाईयों में परस्पर अगाध प्रेम था। अपनी सज्जनता और विनयशीलता के कारण उन्हें परिवार के सभी लोग प्यार करते थे। पिता रामचरण थे जो न केवल नाम बल्कि काम से भी भगवान राम के चरणों के दास थे। सियारामशरण गुप्त जी परिवार में संयुक्त परिवार का समर्थन करते हैं, उनके सभी सुपात्र सम्मिलित परिवार के ही सदस्य हैं।

सियारामशरण गुप्त का एक खण्डकाव्य 'नकुल' है और जिसका आधार महाभारत का वन–पर्व है। जिस समय पांचों पाण्डव द्रौपदी के साथ बारह वर्ष का वनवास पूरा कर रहे थे उसी अवधि के अन्तिम दिन से इसकी कथा आरम्भ होती है। यक्ष के पूछने पर युधिष्ठिर नकुल को जीवन–दान की प्राथमिकता देते हैं। मणिभद्र युधिष्ठर से पूछता है कि किसको जलाया जाय ?

" था जब मैं कैलासपुरी में गरल–विदारण
मुझे मिला था वहा एक लघु संजीवन कण।
कहें किसे दू उसे यहां इस कठिन समय में
मुझे रंच आपत्ति न होगी उस निर्णय में।। " *

तो युधिष्ठर उत्तर देते हैं –

" नकुल उसी क्षण अनायास कह गये, युधिष्ठर
उत्तर उनका वहा प्रथम ही हो ज्यों सुस्थिर।। **

प्राचीन कथा में इस विशेषता को रखकर गुप्त जी ने अपने पारिवारिक जीवन की किसी अवचेतन ग्रन्थि की ओर भी सहसा संकेत कर दिया है। युधिष्ठिर का नकुल के लिए 'आत्म–दान' किसी भी परिवार के लिए सामंजस्यकारी हो सकता है। विमातृ बन्धु के पक्ष में सहोदरत्त्व का विसर्जन सचमुच आज भी काम्य है।

3. पारिवारिक संगठन – जे0एस0मेकेन्जी लिखते हैं– " अंग्रेजी फेमिली शब्द जिसका अर्थ परिवार करते हैं, स्वयं अपने जिस रूप पर प्रकाश डालता है अपने विचार में

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) – ललित शुक्ल पृ0– 127

** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (नकुल) – ललित शुक्ल पृ0– 127

हम उसे अवास्तविक कह सकते हैं। रोम में फेमूलस नाम का एक व्यक्ति पारिवारिक गुलाम था और "फेमिलिया" का अर्थ मूलतः एक गृहस्थ से सम्बन्धित गुलामों के एक समूह से लिया जाता था। तत्पश्चात फेमिली का अर्थ केवल गुलाम ही नहीं रहा परन्तु उस गृहस्थ में रहने वाले सभी नियमित सदस्यों के अर्थ में लिया जाने लगा। " *

परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जहाँ पर माता–पिता, पति–पत्नि, पुत्र–पुत्री, भाई एवं बहन सभी संयुक्त रूप से रहते हों और जहाँ का धर्म, खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार, पर्व–त्यौहार, आमोद–प्रमोद और क्रीड़ा आदि सभी विविध विषय एक साथ होते हों।

धर्म – हिन्दू धर्म आध्यात्मिकता और लौकिकता का एक अदभुत सम्मिश्रण है। "जीवन की खिड़की में से ही परमात्मा की झांकी मिली सम्भव है और परमात्मा रहित जीवन का उपयोग माया है।" ** इस विचारधारा से इस सम्मिश्रण के सिद्धान्त की सहज पुष्टि हो जाती है। जिस जीवन को हम माया कहते हैं उसमें होकर मन का नियन्त्रण करने से जीवन माया या सपना नहीं रहता। ऐसे जीवन में सब कुछ कर सकते हैं – विवाह, प्रेम, व्यवसाय, युद्ध इत्यादि सब। इसमें लिप्त और निमग्न न हो जाना ही मन के नियन्त्रण का लक्षण है। इसीलिए हमें केवल कर्म करने का अधिकार है, कर्म के फल का नहीं। ***

सियारामशरण जी के परिवार में भी धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन होता था रामचरण जी ने अपने सभी बच्चों को हरिभक्ति के संस्कार दिये। गुप्त जी की काव्य कृति "दूर्वादल" में संग्रहीत तुलसीदास का एक बिम्व दृष्टिगोचर होता है –

" ऐसे श्रेष्ठ शब्द सुमनों को।
देव ! कहाँ हम पावें
जिन्हें समर्पित कर हम तुमको
अपनी प्रीति जनावें।
तुम्हें प्राप्त कर शीश हमारा
है अति गर्वोन्नत यह
भक्तिभार से पद–कमलों में
होता स्वयं प्रणत वह। ****

---

*	गढ़कुण्डार	– वृन्दावनलाल वर्मा	(उद्धृत)	पृ0– 127
**	कचनार	– वृन्दावनलाल वर्मा	(उद्धृत)	पृ0– 225
***	झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	– वृन्दावनलाल वर्मा	(उद्धृत)	पृ0– 163
****	सियारामशरण रचनावली प्रथम खण्ड (दूर्वादल)	– ललित शुक्ल		पृ0– 195

खान–पान :– इसके अन्तर्गत गुप्त जी के परिवार में एवं समाज में कभी-कभी संयुक्त रूप से भोजन, पंगतों, जेवनारों या भोज्य पदार्थों का आयोजन होता था जबकि उत्तर वैदिक युग में भोजन की सुस्वादुता पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था जितनी कि उसकी पौष्टिकता पर दिया जाता था।

आमोद–प्रमोद और क्रीड़ाएँ :– मनोरंजन का मानव जीवन में उतना ही महत्व है जितना जीवन के स्वास्थ्य विकास के लिए सुरूचिपूर्ण, सुपाच्य भोजन का। मनोरंजन उसके मानसिक और भावनात्मक पोषण का अनुपम आहार है। मनोरंजन मानव को मानसिक विश्रान्ति तो देता ही है, साथ ही उसके मन की तहों में दबी हुई वासनाओं और कुण्ठाओं को प्रकाशन का अवसर देकर मन को शान्ति भी देता है। मनोरंजन के कई साधन है इन साधनों में नृत्य, नाटक, गीत, खेल और शिकार आदि प्रमुख साधन हैं।

सियारामशरण गुप्त जी के काव्य 'सुनन्दा' में संकलित 'रंजन का गीत' में हमें इस विषय की अनुभूति होती है जिसकी कुछ पंक्तियाँ हैं –

" आहा नव बसन्त मन भाया,
चुपके चुपके आया।
मैं यह इस तिमिरा के तल में
किसने पता बताया।
लुक–छिप वृथा यहाँ अन्तस की
सुलग उठी यह छाया
गमकी रात सुगन्ध गुँगानी
श्वास धूप लहराया।
मन चाहा मन भाया
यह तू आहा आया। *

(रंजन गीत)

इस प्रकार भारतीय समाज के सरल एवं सुरक्षित जीवन का कारण संयुक्तं परिवार प्रथा थी। संयुक्त परिवार में घर का मुखिया पिता होता था लेकिन कहीं–कहीं घर की मुखिया माता

* सियारामशरण रचनावली द्वितीय खण्ड (सुनंदा) – ललित शुक्ल पृ0– 206

होती थी। उसी पर ही सारी जिम्मेदारियां रहती थी। उसकी मृत्यु या अनुपस्थिति होने पर सबसे बड़ा भाई या सबसे बड़ी बहिन इस जिम्मेदारी को संभालती थी।

लेकिन 20 वीं शताब्दी तक इस व्यवस्था में भी विघटनकारी प्रवृत्तियाँ दिखाई देने लगीं। पिता की मृत्यु के पश्चात परिवार में बँटवारा एक सामान्य सी बात हो गई थी। कलह द्वारा संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में बँट गये। एकाकी परिवार वह परिवार हैं जिसमें केवल माता–पिता एवं स्वयं उनके बच्चे ही आते हैं।

परन्तु सियारामशरण जी ने इन सभी विकृतियों को एकदम अमान्य कर दिया चिरगाँव का संतुष्ट गुप्त–परिवार इसका जीवन्त प्रमाण है। वस्तुतः कवि की मान्यता जग को कुटुम्ब मानने की है '' वसुधैव कुटुम्वकम् '' अतः निर्विवाद सत्य तथ्य है कि कवि संयुक्त परिवार प्रणाली का पूर्ण पक्षधर था 'नकुल' नामक काव्य में नकुल (गुप्त जी अनुसार सबसे छोटा भाई) को जीवन–दान के मूल में यही कौटुम्बिक भावना है। * सब मिलाकर देखा जाय तो सियारामशरण जी का आदर्श समाज सम्मिलित परिवारों का संघत हैं। जहाँ समाज के सदस्यों में परिवार के समान सौहार्द्र और सौमनस्य है तथा परिवार के अगभूत विभिन्न व्यक्ति एक–दूसरे को सामाजिकों के समान पारस्परिक सापेक्षता में देखते हैं।

4. पारिवारिक संबंध एवं कर्त्तव्य – परिवार में एक मुखिया (कुलय) होता है वह हमेशा यही सोचता है कि परिवार के सभी लोग प्रेमभाव से रहें और दूसरे के प्रति भी प्रेम का बर्ताव करें।

परिवार की खुशहाली के लिए प्रयत्न करते रहने का निर्देश करते हुए ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि किसी से भी वैर–वैमनस्य न करते हुए सुख पूर्वक गृहस्थ आश्रम में निवास करना चाहिए। पूर्ण आयु प्राप्त कर पुत्र–पौत्रों के साथ आनन्द पूर्वक रहते हुए अपने परिवार को आदर्श बनाना चाहिए। **

अथर्ववेद में ऐसे परिवारों का वर्णन है, जिनमें निवास करने वाले मधुर और शिष्ट संभाषण करते हैं जिनमें सब तरह का सौभाग्य निवास करता है, जो प्रीतिभोजों से संयुक्त हैं, जिनमें सब हंसी–खुशी से रहते हैं, जहां न कोई भूखा है और न प्यासा वैदिक ऋषियों ने

---

* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र — पृ0 – 212

** ऋग्वेद — 10/85/43

परिवारिक जीवन की सुव्यवस्था एवं सुख–शान्ति के लिए कुछ सन्देश दिये हैं। अथर्ववेद के कुछ मंत्रों को यहां उद्धृत किया जा रहा है। उनमें कहा गया है –

" हे गृहस्थो, तुम्हारे पारिवारिक जीवन में सदा पारस्परिक एक्य, सोहार्द्र और सद्भावना होनी चाहिए। तुम एक–दूसरे को ऐसा प्रेम करो जैसे गौ अपने सद्यः प्रसूत बछड़े को प्यार करती है। *

" सहृदयं सोमनस्यम विद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्योडन्यमभि हर्यत वत्स जातामिवाध्न्वा।। **

पुत्र को चाहिए कि वह अपने माता–पिता का आज्ञानुवर्ती बने और उनके प्रति एकमन रहे। पत्नि अपने पति के प्रति मधुर और स्नेह युक्त वाणी का व्यवहार करे।

" अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्ति वाम् ।। ***

भाई–भाई के साथ और बहिन–बहिन के साथ तथा भाई–बहन परस्पर द्वेष न करें। एकमन होकर समान आदर्शों का अनुसरण करते हुए परस्पर प्रेम को बढ़ाने वाली वाणी का व्यवहार करना चाहिए –

" मा भ्राता भ्रातरंद्दिक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्च् सब्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।। "

वैदिक भारत के परिवारों की स्थिति बहुत उन्नत थी। वे धन–वैभव सम्पन्न ही नहीं थे, अपितु अन्न और पशुधन से भी परिपूर्ण थे, उदाहरण के लिए ' पैप्पलाद सहिता ' (3/26/5) का वह सन्दर्भ अवलोकनीय है, जिसमें वैदिक कवि यह कहता है – हमारे घरों में दुधार गायें, भेड़, बकरियां और अन्न को अमृत–तुल्य बना देने वाले रस भी हैं –

" उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।। " ****

---

*	अथर्ववेद		3/30/1–3
**	वैदिक साहित्य और संस्कृति	– वाचस्पति गैरोला	पृ0– 376
***	वैदिक साहित्य और संस्कृति	– वाचस्पति गैरोला	पृ0– 376
****	वैदिक साहित्य और संस्कृति	– वाचस्पति गैरोला	पृ0– 377

इस प्रकार वैदिक संस्कृति के आधार उसके परिवार सुखी, सम्पन्न और सर्वांगीण थे। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति पारस्परिक कर्तव्यों के प्रति सजग और निष्ठावान् था। मधुर सम्बन्धों के बीज जीवन यापन करता हुआ प्रत्येक पारिवारिक् उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर था।

उक्त वैदिक परम्परा के अनुधावन में कवि सियारामशरण गुप्त का प्रेम प्रवण हृदय परिवार परायण ही रहा है। इसी पारिवारिक सौमनस्य के कारण वे अपने ससुर देवकी नन्दन को संतुष्ट न कर सके जिनके पास पर्याप्त धन–धान्य था और जो चाहते थे कि उनका दामाद विवाह के कुछ दिन पश्चात उनके अनुरोध को स्वीकार कर उनके यहां रहने लगेगा। पर ऐसा नहीं हुआ और उन्होंने मरने से पूर्व अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी एक अन्य लड़के को बना दिया। *

कवि गुप्त की विधवा सास भी इस विषय में असंतुष्ट रही, पर उनके अनुरोध पर कविवर गुप्त सास के यहां पहुँचे और सास ने कुछ धन दे कोई व्यवसाय करने के लिए देना चाहा, जिसे कवि ने तब स्वीकार किया जब घर के गुरूजनों की अनुमति उन्हें प्राप्त हो गयी। ** कवि ने छोटे भाई चारूशीलाशरण ने कवि की पत्नी के विषय में इस प्रकार लिखा है – *" हमारी भाभी कामकाज और व्यवहार वर्ताव में भी कुशल थी। ये गुण उनमें जन्मजात थे, शिक्षाजन्य नहीं। वे हम लोगों को बड़े स्नेह से परोसकर खिलाती – पिलाती थीं। सन्ध्या समय अवकाश देखकर भैया के निर्देशानुसार मैं उन्हें अक्षराभ्यास कराने का प्रयत्न करता था। "* *** इन साक्ष्यों से सिद्ध है कि कवि पारिवारिक सम्बन्धों में बँधा हुआ था और वह परम्पराओं का यथावत निर्वहन करने का पक्षधर था।

5– पारिवारिक शिष्टाचार एवं अतिथि सत्कार

उजाले और अंधेरे के लम्बे दौर में यदि प्रगति पुनरूत्थान एवं सुधार के दौर आये हैं तो अवनति, विघटन ह्रास के भी युग आये हैं। बींसवी शताब्दी अवनति, ह्रास का युग रही है। युग जहाँ यूरोप में इसी दौरान ज्ञान बोध का युग चल रहा था वहाँ भारत में यह निष्क्रिय व जड़ता का दौर था। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए ग्रामीण समुदाय पहले की

* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र – पृ0 13

** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र – पृ0 14

*** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र – पृ0 14

भाँति अपने आप में समिट कर लगभग एकाकी जीवन बिताते रहे। सामाजिक व्यवस्थायें परम्पराओं और प्रभावों ने कठोर तथा ठोस रूप धारण करना शुरू कर दिया। इसका प्रभाव हमारे कवि सियारामशरण जी पर भी दिखाई देता है। गुप्त जी का विवाह कम उम्र में अर्थात बाल्यावस्था में केसरबाई के साथ हुआ था और वह चाहते थे कि केसरबाई कुछ अक्षर ज्ञान प्राप्त कर लें परन्तु गुप्त जी के संयुक्त परिवार में उस समय यह सम्भव नहीं था बड़ों के सामने बहू से कैसे बात की जाय यह समस्या थी तब गुप्त जी ने अपने छोटे भाई चारुशीलाशरण के द्वारा पत्नि को अक्षर ज्ञान कराने का प्रयास किया * यह तो था गुप्त जी के जीवन का स्वयं का दृष्टान्त परन्तु गुप्त जी ने काव्य में हमारे सम्मुख ऐसे आदर्श रखे जिसमें समस्त संसार के प्राणी सुखी एवं प्रसन्न हो जिसमें मानव–मानव में प्रेम सहानुभूति आदि सात्विक गुणों का आविर्भाव हो परिवार के सम्बन्ध में त्याग, सेवा, श्रम आदि को महत्व देते हुए परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध में आदर्श स्थापित किये हैं –

" जन्म दात्री की माँ की गोद;
पिता का प्रेम प्रपूर्ण प्रमोद।
बहिन का शुचि स्निग्ध वर्ताव;
बड़ों का वत्सलता का भाव।
अन्य स्वजनों का प्यार दुलार
पा चुका मैं फिर –फिर बहु बार।"

भारत की सांस्कृतिक धरोहर में अतिथि देवोभव ** का आदर्श स्थापित है अतिथि को देवता के समान बताया गया है कवि गुप्त जी ने अनेक स्थानों पर अतिथि सत्कार पाया है साथ ही अपने जन्म स्थल चिरगाँव में विनोबा जी ,गांधी जी एवं नेताजी सुभाषचन्द्र का स्वागत एवं सत्कार किया। सुभाषचन्द्र बोस जब चिरगांव आये तब गुप्त जी ने स्वागत भाषण तैयार किया, लगभग तीन हजार श्रोताओं की सभा में यह स्वागत भाषण पढ़ा और सुभाष बाबू को भेंट किया। इस प्रकार सम्मान्य महापुरूषों को उन्होंने सम्पूर्ण सम्मान दिया।

* सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड सं0 ललित शुक्ल – पृ0 22

** तैन्तिरीयोपपिषद – अनुच्छेद – 11

6—नारी समाज एवं कवि का नारी के प्रति दृष्टिकोण

भारत वर्ष में 'स्त्री' को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में निस्संदेह अनेक कालों में हमें स्त्री की दशा शोचनीय दिखलायी देती है, किन्तु भावनात्मक स्तर पर इसे सम्मान दिये जाने पर सदा बल दिया जाता रहा है। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना, शक्ति—साधना, मातृ—प्रधान परिवार के उदाहरण इस बात के प्रमाण कहे जा सकते हैं। वेदों में अनेक मन्त्र स्त्रियों द्वारा लिखे बतलाये जाते हैं। लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, सूर्या के नाम बहुचर्चित हैं स्वयंवर की प्रथा भी इस तथ्य की सूचक है। कि स्त्री के व्यक्तित्व को सम्मान प्राप्त था। 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि अपना कल्याण चाहने वाले कन्या के पिता, भाई, पति और देवर को चाहिए कि वे सदा (विवाह के बाद भी) कन्या का पूजन (आदर—सत्कार) करें तथा वस्त्राभूषण से उसे अलंकृत करें। *

इसी प्रकार भारतीय साहित्य में भी नारी को विविध रूपों में देखा गया है। कभी नारी के संदर्भ में कहा गया है – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' और कभी माना गया है – 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। नारी के 'जननी' रूप को महत्ता देते हुए यह भी स्वीकार किया गया है कि वह क्वचिदपि कुमाता न भवति **। सृष्टि विधान के अनुसार 'ईश्वर के आधे भाग से पुरुष का और आधे भाग से स्त्री का निर्माण हुआ है', स्त्री और पुरुष एक—दूसरे के पूरक कहे गये हैं।

उपनिषद्काल में स्त्री समाज में ऊँचे पद की अधिकारिणी थी। 'अनामदास का पोथा' के जाबाली, ऋजुका, ऋतम्भरा, अरुन्धती आदि नारी—पात्र इसकी पुष्टि करते हैं। नारी, पुरुष की तरह ही यज्ञ में भाग लेती थी तथा स्वाध्याय की अधिकारिणी थी। इसके साथ—साथ वह गृह कार्य में भी प्रवीणता प्राप्त करती थी। ऋतम्भरा को घर आये अतिथियों का सम्मान करने तथा उनके रहने की व्यवस्था करने आदि सभी कुछ का ध्यान बराबर बना रहता था। *** ऋजुका तथा जाबाली के प्रसंग से ज्ञात होता है कि स्त्री समाज में खुले आम घूम सकती थी। राजनीतिक मामलों में भी उसकी राय ली जाती थी। परन्तु इन सबके साथ—साथ कुछ क्षेत्रों में उसका प्रवेश निषेध भी था रंगमंच पर स्त्री द्वारा अभिनय किये जाने को उचित नहीं समझा जाता था। क्योंकि उसके अभिनय से अधर्म बुद्धि की आशंका थी।

---

* ग्रंथावली भाग 1 पृ0 186

** दुर्गासिप्तशती 14 / 15 / 35

*** रघुवंश ,

गुप्तकाल में नारी का वह स्थान नहीं रह गया था जो उपनिषद् काल में था क्योंकि इस काल में उसकी स्थिति गिर गयी थी। मातृत्व के रूप में उसकी उपासना की गई है। सहचरी और अर्द्धांगिनी के रूप में उसे प्रतिष्ठित किया गया है। नारी की विमोहिनी शक्ति हमें सदा आकृष्ट करती रही है। जनक अपनी कन्या के लिए स्वयंवर योजना करते हैं। इसके विपरीत पांचाली अपने कटु हास्य व्यंग्य से अठारह अक्षौहिणी पुरूषों का नाश करा देती है। वसन्तसेना वासवदत्ता, शकुन्तला, मालती, रत्नावली इत्यादि में नारी के रूप–लावण्य की शक्ति प्राप्त होती है। यदि महाश्वेता और कादम्बरी की रूप – साधना, पवित्रता और दिव्यता की प्रतिमूर्ति है, तो काममंजरी के रूप में समस्त कुटिलता का आगार। इसी से तो आज हम आश्चर्य–चकित हो प्रसाद जी के स्वर में स्वर मिलाकर कह रहे हैं – हे अनन्त रमणीय! कौन तुम। * पारिवारिक सम्बन्धों में भी नारी को बहुत आदर दिया जाता था जिसमें उसके माता, पत्नी, पुत्री, भाभी, बहन रूप की गणना की जा सकती है पुत्री के लिए देवरात का त्याग दृष्टव्य है। गणिका वसन्तसेना के प्रति साधारण नागरिकों ने जो त्याग किया वह नारी के प्रति तत्कालीन समाज के आदर भाव को व्यक्त करता है। **

मैथिलीशरण गुप्त जी ने नारी का हर रूप – पत्नी, माता, सास, प्रेयसी आदि अपने काव्य में अंकित किया है तथा नारी शिक्षा, विवाह समस्या, बहु विवाह प्रथा, विधवा समस्या, वेश्या समस्या आदि नारी सम्बन्धी समस्याओं का भी व्यापक रूप अंकित किया है। गुप्त जी के द्वारा अबला जीवन की व्यथा का रूप निम्न प्रकार से अंकित हुआ है – " अबला जीवन् हाय ! तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी" । ***

इस प्रकार भारतीय समाज में नारी का स्थान सदैव एक रूप नहीं रहा। परिवर्तित परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार उसकी स्थिति में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व नारी की जो स्थिति थी वह बाद में बनी न रह सकी। भारतीय इतिहास के मध्य युग में उसके अन्य रूपों की अपेक्षा उसका विलास पुत्तलिका

---

* राष्ट्रीय वेना के कवि मैथिलीशरण गुप्त – सं0 डॉ0 अर्जुन शतपथी पृ0 95

** ग्रंथावली भाग – 2 पृ0 26

*** मैथिलीशरण गुप्त और यशोधरा – मैथिलीशरण गुप्त (प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ) पृ0 162

वाला रूप अधिक आकर्षक सिद्ध हुआ। सन्तों और भक्तों ने अपनी वैराग्यपूर्ण वृत्ति से प्रेरित होकर उसे सर्पिणी और भवबंधन का मुख्य कारण बताया है। तुलसी ने अपनी समन्वयात्मक दृष्टि से उसे माता और जीवन की सच्ची सहधर्मिणी के रूप में चित्रित किया और भोग्य रूप का वर्जना भी की।

परम्परा से प्राप्त विचारधाराओं के अनुसार नारी चरित्र मनुष्य क्या देवताओं के लिए भी अज्ञेय रहा है। उसके चरित्र की यह अज्ञेयता ही उसके प्रति आकर्षण का विशेष कारण रहा है – जो ज्ञेय है वह निन्दा–स्तुति का कारण बना, जो अज्ञेय है उसे सैद्धान्तिक तुला पर विश्वास अविश्वास के पलड़ों में तौलने का प्रयत्न चलता रहा। विचारधाराओं के बाट बदलते रहे, कभी विश्वास का पलड़ा भारी रहा तो कभी अविश्वास का। धर्म, शास्त्र, नीति, कला एवं जीवन सभी न्यूनाधिक रूप से नारी का मूल्यांकन करते रहे, पर नारी किसी परिधि विशेष में बाँधी नही जा सकी। काल के डग ही ओछे न पडे त्रिकालज्ञ दृष्टि भी भटक गई। नारी प्रश्नचिन्ह थी और बनी रही। *

आलोच्य कवि गुप्त जी की अनूठी काव्यकृति विषाद में संग्रहीत कविता स्वर्ण–प्रतिमा बडी ही अद्वितीय है क्योंकि इसमें गुप्त जी ने नारी की महत्ता को स्पष्ट किया है –

" यज्ञ में करने को प्रतिपूर्ति,
जनकजा की सोने की मूर्ति,।
बना सकते थे वे सुसमर्थ
न था यह दुष्कर उनके अर्थ।। "

x x x x

अधूरा अपना जीवन यज्ञ
करे कैसे पूरा यह अज्ञ ?
सुखभोगी तुम ही हो नाथ
दया कर आज तुम्हीं दो साथ।। " **

---

* राष्ट्रीय चेतना के कवि मैथिलीशरण गुप्त – पृ0 96

** साकेत : विचार और विश्लेषण – डॉ0 वचनदेव कुमार पृ0 90

अपनी पत्नी की मृत्यु पर लिखी ''विषाद '' कृति में कवि ने अपनी सम्पूर्ण संवेदना व्यक्त की है जो उदात्त भाव की प्रतीक है –

'' तन में, मन में, रोम–रोम में नख से शिख पर्यन्त।

लिखकर तू रख गई स्नेहमयि! अपना स्नेह अनन्त।।*

दहेज की कुप्रथा के कारण हमारी बहिनों और माताओं को जो कष्ट सहने पड़ते हैं उनका हृदय–द्रावक वर्णन सियारामशरण गुप्त जी ने ''नृशंस'' कविता में किया है –

'' वय से भी है समृद्ध।

जान पड़ता है वह मेरे पिता से भी वृद्ध।

करके दहेज का पिनाक–भंग,

मेरी जानकी का वर होगा वह एक संग।।'' **

वे आगे भी लिखते हैं –

'' घातक – समाज – कंस,

सौंप दूँ स्वयं मैं तुझे कन्या यह रे नृशंस ?

आज ही इसे मैं मार डालूँगा,

तेरी यह आज्ञा मैं न पालूँगा।

प्रति दिन तीव्र भर्त्सना के संग,

निर्दय अनादरों से भंग कर अन्तरंग।

क्रूर कटु वातों में मिलाके विष है दिया,

कन्या ने सदैव चुपचाप उसे है पी लिया।

राजकन्या कृष्णा ने पिया था विष एक वार,

मेरी जानकी ने पिया रात–दिन लगातार। '' ***

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड (विषाद) सं0 ललित शुक्ल पृ0 169

** सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड (आर्द्रा काव्य) सं0ललित शुक्ल पृ0 108

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड (आर्द्रा काव्य) सं0ललित शुक्ल पृ0 109

मध्यकाल डॉ० राजेन्द्र पाण्डेय लिखते है कि प्राचीनकाल की अपेक्षा मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में ह्रास होने लगा था। * की सबसे बड़ी समाज की विकृति थी– विधवाओं के साथ अत्याचार। 'खादी' की चादर कविता में कवि ने यही व्यथा कथा कही है –

" मुझ अभागिनी का सहाय क्या,
कहीं नहीं होगा कोई ?
वैरी हुआ विश्व भर मेरा,
हाय! कहां अब जाऊँ मैं ? **

सियारामशरणगुप्त जी ने नारी की कोख की मूल्यवत्ता का निरूपण " बापू " काव्यकृति में किया है –

"ये नारियां है सीपियाँ जिनका मोलन तोल,
ना जाने किस कोख में छिपा रत्न अनमोल।
भूतल की शुक्ति यह छलकी,
एक बड़ी बूँद किसी पुण्य–स्वाती जल की।
दुर्लभ सुयोग जन्य,
प्राप्त कर तुम में हुई है धन्य धन्य धन्य।" ***

गुप्त जी ने "जननी" कविता में नारी को एक माता के रूप में दर्शाया है जो अपने पुत्र के लिए अनेकों–कष्टों को सहती हुई उसका पालन करती है –

हे जननी, हे जन्मदायिनी जननी मेरी,
हो जाता मन विकल याद आते ही तेरी।
समझा तूने सदा मुझे आँखों का तारा,
मुझे समझती रही सदा प्राणों से प्यारा।
तूने अनेक दुःख हैं सहे
सुख पूर्वक मेरे कल्याण–हित
तूने मेरे लिए,
क्या क्या यत्न नहीं किए,। " ****

---

* भारत का सांस्कृतिक इतिहास – डॉ० राजेन्द्र पाण्डेय पृ० 200

** सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड (आर्द्रा काव्य) सं०ललित शुक्ल पृ० 139

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड (बापू काव्य) सं०ललित शुक्ल पृ० 402

**** सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड (दूर्वादल) सं०ललित शुक्ल पृ० 190

सियारामशरण गुप्त जी ने नारी के प्रति सम्मान व्यक्त करने के ही साथ उसकी दुरवस्था का चित्रण भी किया है। यह उनकी विशेषता है काव्य के साथ कवि ने ''नारी'' उपन्यास में नारी के त्याग, सहनशीलता, प्रेम और वात्सल्य आदि गुणों को समाहित कर नारी के उज्ज्वल चरित्र को रेखांकित किया है। इस संदर्भ में डॉ0 नगेन्द्र का कथन प्रामाणिक प्रतीत होता है। डॉ0 साहब लिखते हैं – *नारी की ओर दृष्टि डालने से पूर्व यह सत्पुरुष अपनी आँखों को मानो गंगाजल से आँज लेता है।* यों तो इन के काव्यों में नारी के विविध रूपों का वर्णन है : नारी के माता, बहन, पुत्री, पत्नी और प्रेयसी सभी रूप मिलते हैं, परन्तु कहीं भी वे रति की आलम्बन प्रकृत नारी के रूप तथा मद का उद्घाटन नहीं कर सके हैं। नारी के लिए उनके मन में श्रद्धा औश्र संकोच मिश्रत स्निग्धता भी है।* यही कारण है कि वे उसके विषय में इस प्रकार लिख सके –

'' दुःख दावानल मध्य सती सीताएँ आती।
भव कानन में दूर–दूर तक ज्योति जगाती।।'' **

7– संस्कार :–

'' संस्कार का अर्थ है संस्कृत करना, ठीक करना, उपयुक्त बनाना या सम्यक करना आदि। *** किसी साधारण या विकृत वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है। इसे साधारण मनुष्य जीवन को विशेष प्रकार की धार्मिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है, जिससे कि वह जीवन में परम उत्कर्ष को प्राप्त कर सके। ये विशिष्ट धार्मिक प्रक्रियायें ही संस्कार है। शबर स्वामी ने लिखा है कि संस्कार वह है जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के लिए योग्य बनता है (संस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्जातो पदार्थो भवति योग्यः कस्य चिदर्थस्य)। संस्कार से तप द्वारा पापों या दोषों के परिमार्जन की योग्यता और नवीन गुणों को उत्पन्न करने की क्षमता प्राप्त होती है। गर्भाशय में प्रविष्ट होते है पर, जीव में जो प्रकृतिक तथा आगन्तुक दोष समाविष्ट होने हैं उनके मोचन की क्षमता और उपनयन तथा वेदाध्ययन आदि क्रियाओं के द्वारा नवीन गुणों के उत्पन्न करने की योग्यता संस्कारों से अर्जित होती हैं। ****

---

* सियारामशरण – डॉ0 नगेन्द्र – पृ0 100

** सियारामशरण गुप्त रचनावली, प्रथम खण्ड

*** वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गैरोला – पृ0 344

**** वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गैरोला – पृ0 344

समष्टि संयुक्त होने के कारण भूत, देव और ब्रह्मा तीनों संस्कार सापेक्ष्य हैं। भूत, संस्कारों से शरीर शुद्धि, देव संस्कार से देव शुद्धि और बह्म संस्कार से आत्म शुद्धि होती है भूत संस्कार अप्रधान होने के कारण, उसका शेष दोनों संस्कारों में अन्तर्भाव हो जाता है। इस लिए श्रुतियों और स्मृतियों में संस्कार दो ही प्रकार के माने जाते हैं। 1– ब्राह्म संस्कार और 2– दैव संस्कार। ब्राह्म संस्कारों को ''स्मार्त'' और देव संस्कारों को ''श्रौत'' नाम से कहा जाता है।*

संस्कारों का सम्बन्ध मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति से है इनसे आत्मा व शरीर दोनों की शुद्धि होती है और अन्तः कारण में सदविचारों एवं शुद्ध संकल्पों का उदय होता है वे अतीत, अनागत और वर्तमान, तीनों जीवनों के उपकारक हैं।

कवि सियारामशरण गुप्त जी के संदर्भ में संस्कार शब्द के अर्थ सामान्यतः संस्क्रिया , पूर्णता शिक्षा, अनुशीलन, मानसिक प्रशिक्षण, अन्तः शुद्धि पवित्रीकरण,** आदि होते हैं। इस प्रकार कवि का व्यक्तित्व जहां जहां परिष्कृति पूर्णता अन्तःशुद्धि आदि की दिशा में अग्रगामी हुआ है। वहां वहां उसमें संस्कारों की स्थिति समझनी चाहिए। इस दृष्टि से उनमें ब्राह्म और देव दोनों प्रकार के संस्कार देखे जा सकते हैं। अतः ये दोनों यदा कदा संश्लिष्ट हो कर दृष्टिगत होते हैं, अतः इन्हें विभिन्न विशेषताओं में एकत्र देखना समीचीन होगा।

सर्व प्रथम कवि के व्यक्तित्व की उदात्ता को ही लें जो अनेक दिशाओं में अपनी असाधारणता द्योतित कराती है। उदात्ता, सामान्यता का विपर्यास है। सामान्यता अधिकांश जन सुलभ हैं, पर उदात्ता विरल है। कवि ने अपने इस गुण के विषय में स्वयं इस प्रकार लिखा है :–

'' ओ दुःसह, तेरी दुःसहता, सहम सहय हम को हो जाय
तेरे प्रलय घनों की धारा निर्मल कह हमको धो जाय।

x x x x x x

निजता की संकीर्ण क्षुद्रता तेरे सुविपुल में खो जाय,
सचमुच यह संस्कारशीलता की चरम आकांक्षा है।।

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गैरोला – पृ0 349

** रचनावली भाग– 1 – पृ0 310

8– पर्वोत्सव एवं त्यौहार :–

भारतवर्ष में पर्वों और त्यौहारों की बहुलता को लेकर यह पंक्ति प्रायः कही जाती है कि यहां वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन में तीन सौ छॉछठ त्यौहार मनाए जाते हैं। यह कहावत बहुप्रचलित होते हुए भी अतिशयोक्ति पूर्ण है, फिर भी यह सत्य, नहीं नकारा जा सकता कि विश्व के समस्त राष्ट्रों से अधिक पर्व और त्यौहार भारत में मनाये जाते हैं। छोटे –मोटे पर्वों को छोड भी दिया जाय तब भी आए दिन हमारे यहाँ कोई न कोई त्यौहार मनाया जाता है। ऐसा लगता है कि भारतीय जनता त्यौहार मनाने का बहाना ढूढती रहती है।

कुछ विशेष प्रकार के पर्व व त्यौहार हैं – दीपावली, होली, रक्षाबन्धन, विजय दशमी, रामनवमी, गणेश चतुर्थी, अक्षय तृतीया, गणगौर और संक्रान्ति आदि।

गुप्त जी के काव्य में भी सर्वव्यापी और देश भर में मनाये जाने वाले उक्त त्यौहारों के वर्णन के साथ ही साथ बुन्देलखण्ड की भूमि से जुड़े हुए कुछ विशेष पर्व और त्यौहारों का भी वर्णन यदा कदा आया है।

हिन्दुओं के वर्ष का आरम्भ चैत्र मास से होता है। इस माह बसन्त अपने पूर्ण यौवन पर होता है। सम्पूर्ण वातावरण प्रकृति की मोहक हरियाली और पुष्पों की सुगन्धि से भरा होता है। ऐसे में समस्त हिन्दू, विशेषकर बुन्देलखण्ड का हर हिन्दू शक्ति स्वरूपा दुर्गा की पूजा बड़े मनोयोग से करता है। बुन्देलखण्डी भूमि, झांसी में इस अवसर पर घर–घर में गौरी की प्रतिमा स्थापित की जाती है। स्त्रियाँ वस्त्राभूषण पुष्पों से श्रृंगार कर एक –दूसरे को हल्दी कुमकुम देते हुए एक दूसरे के सौभाग्य की कामना करती है। इस पर वे युक्ति पूर्वक एक दूसरे के पति का नाम भी पूछती हैं। युद्ध की विभीषिका भी इस अवसर के हर्षोल्लास को कम नहीं कर पाती।

रामनवमी का त्यौहार पूरे देश में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है यह त्यौहार दुर्गाष्टमी के अन्तिम दिन होता है भारतीय मान्यता के अनुसार मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम ने इसी दिन जन्म लिया था। इसीलिए इस दिन सभी मन्दिरों में विशेष सजावट की जाती है स्त्री और पुरूष दोनों ही अपने इष्टदेव के दर्शनों के लिए मन्दिरों में जाते हैं। इसी प्रकार का देशव्यापी त्यौहार रक्षाबन्धन भी है,रक्षाबन्धन श्रावण मास की

पूर्णिमा को मनाया जाता है इस दिन भाई अपनी बहिन से रक्षा का धागा बँधवाता है। कुछ स्थानों पर ब्राह्मण भी पैसा लेकर रक्षा का धागा बाँधने का कार्य करते हैं। पर इसमें वह भावनात्मक सौन्दर्य नहीं रह जाता जो बहिन के द्वारा भाई को राखी बांधने में पाया जाता है।

कार्तिक मास की अमावस्या को दीपावली मनायी जाती है। घर–घर लक्ष्मी पूजन होता है और दीपक जलाए जाते हैं। इस अवसर पर फुलझरी और पटाके भी छोडे जाते हैं। दीपावली के उपरान्त आनन्द उल्लास का मिश्रित पर्व होली आता है। यह त्यौहार फागुन मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। इस दिन होली जलाई जाती है।

भारतीय संस्कृति में मनाये जाने वाले इन्हीं पर्वोत्सव एवं त्यौहारों के पीछे मित्रता, मानवता, समष्टि–कल्याण आदि की भावनाएँ काम करती रही हैं।

कवि सियारामशरण गुप्त जी ने ''पाथेय'' संकलन कृति की ''असफल'' कविता में विजय का आभास कराते हुए दीपावली पर्व का वर्णन किया है जैसे –

'' नहीं झिझकती है दीपावलि।
अन्ध–अम में आने से।।'' *

पुण्य पूर्णिमा तथा अमावस से भी कवि प्रवर प्रभावित रहे हैं :–

'' धन्य आज का यह खग्रास !
बहुत दिनो में जाना मैंने
मुझमें इतना विभव – विलास
आज पूर्ण मेरा उल्लास
प्रखर प्रभा को शीतल करके,
निखिल मधुरिमा उसमें भर के,
निशि की कुटिल कालिमा हरके
फैलाया मैंने मृदु हास
देखी, मैंने देखी अपनी
पूण्य–पूर्णिमा बारों मास।
किन्तु कहीं यह राहु न आता,
आकर मुझको नहीं छिपाता
देख भला मैं कैसे पाता।
यहाँ अमावस का आभास ?
मेरे बिना एक क्षण में ही
प्रकृति हुई गति–हीन उदास !
धन्य आज का यह खग्रास! '' **

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (पाथेय) पृ0 303

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (पाथेय) सं0 ललित शुक्ल पृ0 287

भारतीय साहित्य के अभिन्न अंग पर्व एवं त्यौहार आदि से गुप्त जी परिचित हैं और उन्हें अपने काव्य में यदा–कदा वाणी भी दी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की निष्ठावान जनता अपना उल्लास, अपनी श्रद्धा और अपने आह्यलाद की अभिव्यक्ति इन्हीं पर्वों के और त्यौहारों के माध्यम से करती आयी है इनमें उसका सुसंस्कृत मस्तिष्क और भावनायें प्रतिबिम्बित होकर समाज के सामने आती हैं।

9– खानपान :–

उत्तर वैदिक युग में भोजन की सुस्वादुता पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था जितना कि उसकी पौष्टिकता पर दिया जाता था। आमतौर पर प्रतिदिन के भोजन में अधिकांशत कडी–रोटी या दाल–रोटी भारतीय जन का भोजन था परन्तु कभी–कभी पूरी, सब्जी, दही, रायता, मिष्ठान आदि का आयोजन विशेष अवसरों पर ही कर लिया जाता था।

माँस एवं मदिरा का प्रयोग हमारी संस्कृति व समाज में वर्जित नहीं है खंगारों का विनाश भी इसी माँस और मदिरा के माध्यम से किया गया था। फिर भी इसका प्रचलन प्रत्येक वर्ग में आता रहा है। अंग्रेजों के भारत में पैर जमा लेने पर बीसवीं शताब्दी के आस–पास भारतीय समाज में, इनके द्वारा लाये गये पेय चाय का प्रचलन भी प्रारम्भ हुआ। ऐसे ही आधुनिक युग में भले ही धूप की गर्मी हो चाय पी ही जाती है; परन्तु सामन्त–युग में धूप और पसीने में लथ–पथ व्यक्ति मीठा–ठण्डा शर्बत पीता था।

भोजन के बाद पान खाने की व शैकिया पान खाने की परम्परा हमारी अपनी परम्परा है। वृद्ध महाराज कीर्तिसिंह को पान बहुत प्रिय थे उनके समय हर समय पान का भरा हुआ थाल रखा रहता था। आगतों का स्वागत भी पान से ही किया जाना, सम्मान की वस्तु समझा जाता था।

खानपान का स्तर किसी भी काल की संस्कृति का बोध कराता है। सियारामशरण गुप्त के काव्य में साधारण गरीब की स्थिति का विवेचन हुआ है। ''अनाथ'' कृति में एक

बालक अपनी माँ से रोटी माँगता है :–

" माँ अब तो दे मुझे एक रोटी खाने को।
भूख लगी है, प्राण हो रहे हैं जाने को।। *

सियारामशरण गुप्त जी उच्च स्थिति वालों में शराब सेवन का वर्णन किया है।

" काबूली था शराब में चूर।
चढ़ा था उसे नशा भरपूर।। " **

बच्चों के लिए दूध मुख्य भोजन था –

" बता वहाँ है कौन हाय! जो।
दूध पिलावेगा तुझको।। ***

गुप्त जी के समय में दूध–दही सभी को प्रिय था और इनका व्यवसाय किया जाता था।

" तनिक दूर ही चौराहे पर।
दूध दही की थी दुकान।। " ****

"पाथेय" काव्यकृति में संग्रहीत "अक्षत–दान" कविता में गुप्त जी ने एक भिक्षु की झोली में दान के रूप में चावल का दान किया है – यथा

"अटल देख कर तुझे किसी विध,
निकला मैं लाचार।
ले निज अंजलि में माँग के,
अक्षत–कण दो – चार।।" *****

"अचला" काव्यकृति में 'एक गृही' दूध के नये दानों को दुह रहा है –

कठिन और कठोर धरती तोड़कर
कर रहा है सिक्त उसको स्वेद से,
मृत्तिका से भिन्न–भिन्न प्रकार के
दुह रहा है दूध के दाने नये।। ******

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा) सं0 ललित शुक्ल पृ0 71

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा) सं0 ललित शुक्ल पृ0 84

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा) सं0 ललित शुक्ल पृ0 144

**** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा) सं0 ललित शुक्ल पृ0 148

***** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (पाथेय) सं0 ललित शुक्ल पृ0 320

****** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (अचला) सं0 ललित शुक्ल पृ0 312

इस प्रकार इन्ही सभी प्रसंगों के माध्यम से भारत की खान–पान सम्बन्धी विशिष्ट परम्पराओं पर हल्का सा प्रकाश पड़ता है खाने–पीने के विशेष व्यंजन भारत की अपनी माटी की देन है।

10– वस्त्र या वेशभूषा :–

भारत की विशालता और भौगोलिक पर्यावरण की भिन्नता ने उसमें स्थानीय वेश–भूषा में भिन्नता भर दी है। यह भिन्नता मात्र आचारगत भिन्नता है– इसमें कहीं भी भावात्मक भिन्नता नहीं पायी जाती।

प्राचीन युग की सामान्य जनता हिरन, बकरी अथवा तेन्दुओं की खाल को बंडियां पहिनती थी। यह आच्छादन उनकी दरिद्रता के द्योतक नहीं प्रत्युत, प्रत्युक दर्प के द्योतक थे। इस युग में पुरूष भी हाथों में कडे, वलय, गले में हार कमर में चौडी करधनी पहिना करते थे। वस्त्रों में कौशेय, बन्डी, कुर्ता, धोती, कमरबन्द, फेंटा आदि का प्रचलन था।

इस युग में विद्यार्थी जीवन, तपश्चर्या का युग था वासनाओं के संकलन का समय नहीं। इसीलिए विद्यार्थी को आश्रम में प्रवेश के लिए जाते हुए ब्रह्मचारी के वस्त्र धारण करने होते थे।

उत्तर वैदिक युग की स्त्रियाँ सामान्यतः अपनी देहों को रंग–विरंगी कंचुकियों और मोटी रंगीन धोतियों से आवरित करती थी। नैमिष्यारण्य के निकट स्थित ग्रामों में फूल और फल एकत्रित करती हुई ग्रामीण स्त्रियाँ ये ही वस्त्र धारण किये हुए वर्णित की गई है।

साड़ी या धोती हमारे देश का प्राचीन युग से अब तक का चला आ रहा पहनावा है।

सियाराम शरण गुप्त जी के काव्य में वस्त्र मुख्यतः सूत के बने होते थे और महिलाएँ सूत कातती थी –

"सूत कातती रही वहाँ वह।
जमकर बैठ कई दिन–रात।।" *

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा) सं0 ललित शुक्ल पृ0 145

'खादी की चादर' यह कविता भी आर्द्रा में ही संग्रहीत है इसमे कवि गुप्त जी ने एक विधवा नारी की दशा का वर्णन किया है –

''खादी की वह मोटी चादर,
नहीं चित्त को भाती थी।
अनमिल जन की अपनाहट– सी
रूचि से मेल न खाती थी।। '' *

'अचला' कृति में संग्रहीत ग्रही की कुछ पंक्तियाँ कवि सियारामशरण गुप्त जी के शब्दों में प्रस्तुत है –

''अब निरा नंगा नहीं सुगृहस्थ वह,
जानता है बैठना भी अविचलित।
बुन रहा है बहु विविध पट वस्त्र जो
मुक्त होकर मुविता के स्पर्श से।। '' **

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अपने और सियारामशण के वस्त्रों के विषय में लिखा है '' हमारे अँगरखों के घेर मे चारों ओर गोटे–पट्टे और पठि तथा बाहों पर सुनहले पान–पत्ते टँके होते थे, परन्तु उन कपड़ों का मूल्य स्यात् उतना भी न होला होगा, जितना आज कल लड़के एक कोट की सिलाई दे आते हैं और थोड़े में बहुत कुछ लेने का गर्भ करते है। हमारे अँगरखों के साथ स्वापे भी होते थे, परन्तु वे प्रायः कोरे ही रहते थे। उन्हें पहनकर कौन गांव के लड़कों से यह सुनता– कि बीबी के खुसने में चार–चार चीला। ***

इसी क्रम में विष्णुप्रभाकर ने अपने लेख सियारामशरण मेरी नज़रों में ! जो कुछ वस्त्र की वेशभूषा के विषय में लिखा है, वह प्रासंगिक है –'' उनके उन्नत ललाट पर रामानन्दी तिलक है, सिर पर पतली सी चोटी है, वे सफेद खद्दर का धोती–कुरता पहने हैं****

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि विदेशी आक्रान्ताओं के आगमन के पूर्व के युग में भारतीय वेश–भूषा प्रायः एक–सी ही थी। विदेशियों के आगमन से एवं मानव की सहज

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (आद्रा) सं0 ललित शुक्ल पृ0 136

** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (अचला) सं0 ललित शुक्ल पृ0 312

*** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र , पृ0 3

**** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र , पृ0 23

सौन्दर्य भावना से वेशभूषा में परिवर्तन आने प्रारम्भ हुए इसका परिणाम वेष विन्यास में आज की विविधता का पाया जाना है।

11– आभूषण और श्रृँगार प्रसाधन :–

शायद किसी भी अन्य देश में औरतें आभूषणों और श्रृंगार प्रसाधन के प्रति इतना मोह नहीं रखतीं जितना की भारत की स्त्रियाँ। अमीर और गरीब दोनों ही समान रूप से आभूषणें की जरूरत महसूस करते थे। कोई परिवार कितना समृद्ध व सम्पन्न है इसका अन्दाजा इस बात से होता था कि उस परिवार की औरतों ने सोने के कितने जेवर पहन रखे हैं। क्षमता के अनुसार लड़कियों को विवाह के समय दहेज में गहने देना एक सामाजिक कर्त्तव्य माना जाता था। संकट के समय सामान्य जन गहना बेचकर धन प्राप्त कर लिया करते थे और अपनी तात्कालिक आवश्यकता को पूरा करते थे। गाँव का सुनार अपने कई गुणों के लिए विख्यात था वह शुद्ध सोने व चाँदी का कारोबार करने में बहुत ईमानदार माना जाता था। बहुत सारे आभूषणों में सबसे ज्यादा प्रचलित, हार, बाजूबन्द, झुमके, नत्थ, चूडियाँ, कंगन, पायल, टाँगों के लिए सोने के बजाय चाँदी के गहने बनते थे राजघरानों और सम्पन्न वर्ग के लिए सोने में हीरे जवाहरात जड़े हुए गहने जौहरी बनाया करते थे।* सुनार राजसिंहासन और राजाओं की छत्र जैसी बड़ी चीजे बनाने में विशिष्टता रखते थे। महिलायें सिर पर जूँडा, आँखों में अंजन माथे पर बिन्दी सगुन की प्रतीक समझी जाने वाली हाथों में मेंहदी महिलाओं के प्रिय श्रृंगार थे।

सियारामशरण गुप्त जी ने अपनी 'अनाथ' कृति में भारतीय ग्रामीण जीवन का जो चित्रण किया उसमें एक किसान जब भूखों मरने लगता तो वह अपने घर के आभूषण साहूकार, जमींदार के यहाँ गिरबी रख देता है। कवि के चित्रण से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ मोहन की पत्नी यमुना आभूषणों से अपना श्रृंगार नहीं करना चाहती बल्कि अपना परिवार और अपने प्राण को बचाना चाहती है। गुप्त जी के द्वारा चित्रित यह यथा भारतीय समाज का जीता जागता उदाहरण है। सियारामशरण गुप्त जी के काव्य में श्रृंगार–प्रसाधन का वर्णन भी प्राप्त होता है। गुप्त जी ने 'रत्न की आभा' कविता में रत्न का

---

* भारत का सामाजिक,सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास – पी0एच0चौपड़ा दास,पुरी पृ0 159

राजमुकुट में जड़ जाने से उसके मूल्य के बड़ जाने का उल्लेख किया है :–

" रत्नराज इस दुर्गमखनि में,
होकर दीन मलीन।
रहते हो क्यों बुझे–बुझे से,
दूर–दूर धुति हीन ?
तुम्हें प्राप्त कर बढ़ जावेगा।
राज मुकुट का मोल।। *

क्षेत्रीय– वंश परंपरागत आग्रह से कविवर गुप्त को कुटुम्ब के पुरूष मोतियों के झुमके, जिनका बोझ संभालने के लिए मोतियों की ही दुहरी सांकलें कानों पर चढ़ी रहती थी पहना करते थे। पैरों में चाँदी के कड़े, तोड़े हाथों में सोने के कड़े पोहचियों और गले में गोप गुंज एवं कण्ठे आदि भी समय–समय पर पहना करते थे। सिरों पर मण्डील भी बाँध वाटे करते थे पर यह आभूषण विधान शाश्वत न रह सका। ** गुप्त जी ने नारी की व्यथा को अत्यधिक चित्रित किया है और नारी के श्रृंगार का स्पर्श कम ही किया है।

12– व्यवहार की सामान्य वस्तुयें :–

प्राणी जगत में मानव अपनी विलक्षण बुद्धि के कारण अलग अलग स्थान रखता है। जैसे–जैसे सभ्यता व संस्कृति का विकास होता गया। मनुष्य ने नये–नये प्रयोगों और अनुसन्धानों से अपनी सुख सुविधाओं के लिए अनेक वस्तुओं का निर्माण कर डाला और वह वस्तुएें उनकी जीवन शैली का अंग बन गयी।

भोजन करने के बर्तनों की सभी को जरूरत महसूस होती है ये वर्तन ग्रामीण उद्योगों में तैयार होते थे, हालांकि इस तरह के गाँव सभी जगह नहीं होते थे। आमतौर पर ये बर्तन पीतल या ताँबे के होते थे। एक विशेष प्रकार की धातु कांसा भी बर्तन बनाने के लिए खूब काम में आता था। खाने पीने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले बर्तन कई तरह के और विभिन्न आकारों के होते थे। मंदिरों में देवी–देवताओं को पूजा के लिए ताँबे

---

* सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड (अचला) सं0 ललित शुक्ल पृ0 280

** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र , पृ0 3

के बर्तन आवश्यक होते थे इसी काम के लिए कुछ स्थाानों पर पीतल के बर्तनों की आवश्यकता पडती थी। साथ ही रोजमर्रा के इस्तेमाल की चीजें जैसे ताले, चाबियां, चाकू, कटार, तलवार और हुकवर्गर भी होते थे। *

ग्रामीण समाज में कुम्हार का स्थान भी बड़ा ही महत्वपूर्ण था। चावल बनाने, पानी इकट्ठा करके रखने, दूध उबालने, सब्जी बनाने, चिवडा छौकने या धान उबालने के लिए यहां तक कि तालाब से खेत तक पानी ले जाने के लिए मिट्टी के बर्तनों की आवश्यकता होती थी। खाना पकाने के लिए हांडी, पानी के लिए कलसे, मटके, घड़े और सुराहियां आदि की सभी को जरूरत पडती थी।

कवि सियारामशरण गुप्त जी ने अपने काव्य में उपर्युक्त जन सामान्य के व्यवहार की वस्तुओं पर अपनी लेखनी चलायी है कवि ने अनेक जगहों पर दीपक, घट, मिट्टी की मूर्तियों और बर्तनों का यथा स्थान निरूपण किया है। कहीं उनके यह पात्र सुख सुविधाओं में उल्लिखित है तो कहीं दुःख का अनुभव कराते हैं। यथा –

" रहकर सम्मुख दीप।
मन्द जिसका प्रकाश था।।" **

इसी प्रकार 'अग्नि परीक्षा' कविता के गुलाबचन्द्र दीप उसका कर प्रकाश सचेत करते हैं; पर आक्रामक तत्वों के बलात् भवन में प्रविष्ट होने पर पवन का एक झोंका उस द्वीप को बुझा देता है *** इसी कविता में गान–बाध का उल्लेख होने से व्यंजित होता है कि हिन्दू समुदाय कीर्तन के समय बाद्य के उपकरण प्रयुक्त करके अपनी अध्यात्म – वृत्ति को चरितार्थ **** करता था, इसके अतिरिक्त खाट, *****पलंग,****** मसहरी (मच्छरदानी),*******

---

1. भारत का सामाजिक,सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास – पी0एच0चौपड़ा दास,पुरी पृ0 160
2. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (विषाद) पृ0 171
3. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 119
4. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 119
5. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 70
6. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 70
7. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 70

बिछौनी,*लँगोटी,** थाली, *** लोटा, **** वेंत, *****लट्ठ,****** ट्रंक *******सीप, घोंघे, घुँघचियों,******** बन्दूक, तलबार,********* अलमारी, **********तिजोरी *********** आदि दैनन्दिन प्रयोग की वस्तुओं का उल्लेख भी यथा स्थान प्रसंगानुसार हुआ है।

13— आवास :—

वेदों और वैदिक साहित्य में घरों के निर्माण की विस्तृत चर्चाएँ देखने को मिलती है। वैदिक आर्यों द्वारा सुव्यवस्थित घरों में रहने का उल्लेख ऋग्वेद (3) (53 / 6 आदि),अथर्ववेद (7 / 83 / 1 आदि) ऐतरेय ब्राह्मण (2 / 3 / 1 आदि) और बाजसनेयी संहिता (2 / 32 आदि) अनेक ग्रन्थों में हुआ है। वहां गृह के लिये दम्, पत्स्या आदि अनेक पर्यायों का उल्लेख हुआ है।

वैदिक युगीन घर इतने बड़े और व्यवस्थित होते थे, जिनमें परिवार के लोगों के रहने के अतिरिक्त मवेशियों तथा भेड़ों आदि को भी सुविधापूर्वक रखा जा सकता था। उसमें अनेक कक्ष हुआ करते थे और दरवाजों से सुरक्षित रूप में बन्द किया जा सकला था। ************

कवि सियारामशरण गुप्त जी ने अपनी कृतियों में अंग्रेजी शासन काल की गरीब जनता द्वारा किस प्रकार जीवन यापन किया जा रहा था उसका वर्णन बहुत सुन्दर ढंग में किया है।

---

1. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 71
2. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 71
3. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 71
4. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 71
5. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 78
6. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 87
7. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 90
8. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 90
9. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 97
10. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 99
11. सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथमखण्ड (आर्द्रा) पृ0 101
12. वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गैरोला – पृ0 406

कवि एक घर का वर्णन इस प्रकार करता है। यथा –

"तेल की कर नीच तक कीच, एक आले के बीचों बीच,
जल रहा था जो मन्द प्रदीप, उसे उसकाया पहुँच समीप।
और फिर देखी मैंने पौर, लिपी थी सब गोबर से सब ठौर,
धोतियों के थानों के चित्र, भीत पर चिपके थे सुविचित्र।
अलगनी के ऊपर कुछ म्लान, सूखते थे गीले परिधान।
अंगीठी करके धूमोदगार, जनाती थी अपने में सार।
वहीं रखा था एक तुरंग, काठ का, सुन्दर शोभन रंग,
अरे किसने करूणा के साथ,फेरकर तुझ पर कोमल हाथ।
दिया है यह रोटी का कौर, यह तेरे मुँह में यह और।
धर दिया हुक्का भी तो पास, कि खा चुकने पर मुँह का ग्रास।
करेगा अभी धूम भी पान! जड़ों को भी ममत्व ला दान।
अरे तू क्या करूणा का लेश, कहीं है कुछ–कुछ अभी भी शेष।।" *

गुप्त जी के उपर्युक्त विवरण से सहज ही उनके समय की भारत की ग्रामीण संस्कृति के रहन सहन का स्तर ज्ञात हो जाता है। गांव में दीवाल में एक आला बना होता था जिसमें रात्रि को जलता हुआ दीपक रखा जाता था। पौर** घर के प्रवेश का पहला कक्ष भूमि तल का होता था उसके ऊपर के भाग को अटारी कहा जाता है। मिट्टी के *** घर को गोवर से लीपना, त्यौहारों आदि पर शुभ व मंगलमय माना गया है। गांव में जनता कैसे घरों में रहती थी तथा घरों में क्या कहाँ रखा होता था उससे कवि अच्छी तरह परिचित था। गांवों में कच्चे घर, छप्पर मकान एवं झोपड़ी, दुर्ग आदि भारतीय निवासियों के आवासों की मुख्य रीढ़ है। यह सभी अंग्रेजी शासन काल के समय के मुख्यतः गरीब जनता व किसानों के निवास स्थान थे जिनको सियारामशरण गुप्त जी ने अपने काव्य में चित्रित किया।

---

* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 : 161
** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 : 116
*** वही ———————— पृ0 69

14– यातायात के साधन :— किसी भी देश के राजा महाराजा या किसी शासक को देश की रक्षा के लिए उसकी यातायात की व्यवस्था और साधन अति महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं तभी उसकी संस्कृति अक्षुण्ण रह सकती है। पुरातन काल के अनेक दृष्टाँत प्राप्त होते है कि जिस राजा की यातायात व्यवस्था कमजोर रही उसको दूसरे लोगों ने गुलाम बना लिया। पुरातन काल में घोड़े और रथ एवं पहिया गाड़ी यातायात के प्रमुख साधन थे यदा–कदा गर्दभ (गधा) और अश्वतरी (खच्चर) का उपयोग होता था अंग्रेजों ने जब भारत में शासन स्थापित किया तो उन्होंने सम्पूर्ण भारत पर अधिकार बनाये रखने और भारतीय कच्चे माल को एकत्रित कर विदेश भेजनेके लिए 16 अप्रैल 1853 को भारत में यातयात के लिए पहली रेल सेवा आरम्भ हुई। उन्होंने रेल और सड़कों का जाल बिछा दिया। कवि गुप्त जी इसी युग में काव्य पर अपनी लेखनी चलाते हैं और अपनी पाथेय कृति को कवि ने अनेक यात्रा प्रतीकों द्वारा उसे पूर्ण किया है और 'यात्री' शीर्षक में तो कवि गुप्त जी मार्ग के टेड़े–मेडे और कटीली झाड़ियों से युक्त धरा पर कहीं गर्त, कहीं टीले को प्रतीको के रूप मे प्रयोग करके कविता का सौन्दर्य देखते ही बनता है। यथा –

''कैसे पैर बढ़ाऊँ मैं ?
इस घन–गहन–विजन के भीतर
मार्ग कहाँ जो जाऊँ मैं ?
कुटिल कटीले झखाड़ों में
उत्तरीय उड़कर मेरा
उलझ उलझ जाता है, इसको
कहाँ–कहाँ सुलझाऊँ मैं ?
कहीं धँसी है धरा गर्त में
कही चड़ी है टीलों पर ;
मुक्त विहग–सा उड़ जाऊँ जो
पंख कहाँ से लाऊँ मैं ?'' *

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (पाथेय) पृ0 265

'शान्ति लक्ष्मी' कविता में बैलगाड़ी की सवारी का उल्लेख इस प्रकार हुआ है –

" आरोहण हेतु हम थे अनेक

और थी सवारी बैलगाड़ी एक

x x x x x

बोल उठा मूक यान 'चर–मर'

x x x x x

यान वह मुक्त काल–कोठरी का घर था

एक– दूसरे से गँसे

अपने ही आप हम थे फँसे

गाड़ी के कठोर पहिए कभी

नीचे किसी ठौर जब पड़ते

एक दूसरे के सिर आपस में लड़ते," *

15– मुद्रा :–

पुरातन काल में विनिमय का माध्यम वस्तुयें थी। जब वस्तु विनिमय में कठिनाई हुई। तो मुद्रा का जन्म हुआ और राजा–महाराजें, व्यापारी अपनी–अपनी मुद्रायें छपवाने लगे। सियारामशरण गुप्त जी के समय अंग्रेजों का शासन था और अंग्रेजों ने मुगल सरकार की मुद्रा प्रणाली जो बिल्कुल अस्त–व्यस्त हालत में थी, प्राप्त किया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करने के लिए तथा व्यापार और वाणिज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए सोने और चाँदी के अपने सिक्के बनाने का फैसला किया** और सन् 1835 में मुद्रा कानून के अन्तर्गत मुद्रा प्रणाली का केन्द्रीयकरण हो गया*** और सारे भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य में रूपया एक मानक सिक्का बन गया। अंग्रेजों ने अपनी कुटिल नीतियों से भारत का धन इंग्लैण्ड भेजा और भारत को खोखला बना दिया। कवि

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (पाथेय) पृ0 295–296

** भारत का सामाजिक, संस्कृति और आर्थिक इतिहास – खण्ड 3 पी0एम0चौपड़ा,बी0एन0पुरी, एम0एन0दास – पृ0 213

*** वही पृ0 214

सियारामशरण गुप्त जी ने अपनी 'दैनिकी' कृति में 'दो पैसे' शीर्षक कविता में अप्रत्यक्ष रूप से यह चित्रित किया है कि एक दरिद्र भूखा व्यक्ति दो पैसे की चाह लगाये हुये बैठा है, परन्तु वह दो पैसा इस देश में रहा ही नहीं, वह तो स्वदेश की सीमाऐं लांघ गया है सारे देश में और सभी दिशाओं में जिसकी चर्चा है, राजभवनों की शोभा फीकी पड़ी हुई है और दो पैसे के विरह में व्याकुल हमारे देश में श्रीमन्तों के मन हैं कि जब तक वह उसे प्राप्त नहीं कर लेते तब तक वह एक निर्धन के समान है और कवि कहता है कि इस देश से बाहर ले जाने के लिए जल, थल और व्योम के पथ खुल गये हैं, कवि के शब्दों में कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है। –

" मैं बाजार कर आया, अपना देकर जो दो पैसे,
गये किसी बहु दूर की यात्रा पर वे जैसे।
प्रान्त पार करके स्वदेश की लांघ गये सीमा,
उन्हें लिए जाती है उत्थित उदधि–उर्मियाँ भीमा।
देश देश में, दिशा–दिशा में चर्चा एक उन्हीं की,
उनके बिना राजभवनों की श्री सुषमा सब फीकी।
उनके लिए विरह से व्याकुल श्रीमन्तों के मन हैं,
उन्हें नहीं पा लेते जब तक, धन उनके निर्धन हैं।
उनके लिए खुल गये अर्गल जल थल व्योम पथों के,
घर्घर करके घूम उठे हैं सौ–सौ चक्र रथों के।
राजनीतिकों के कौशल में ज्वार उमड़कर आए,
खुले कृपाणों के वीरों ने हाथ अनन्त बढाए।
सबके मुँह में पानी है जब, तृषित दृगों से कैसे,
ताक रहा भूखा दरिद्र वह मेरेवे दो पैसे।।" *

भारतीय मुद्रा का निष्कासन किस प्रकार अंग्रेजों ने किया, गुप्त जी ने यह बाखूबी चित्रित किया है और उसके महत्तव को अपने काव्य में स्थान दिया। करोड़,** लक्ष,***

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (दो पैसे) सं0 ललित शुक्ल पृ0 14

** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड पृ0 330

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड पृ0 332

निधि * स्वर्ण समूह ** आदि अभिधानों से यह स्पष्ट होता है कि कवि ने वर्तमान में प्रचलित सभी प्रकार की मुद्राओं के प्रचलन के संकेत दिए हैं।

16— मनोविनोद :—

कल्पसूत्र और कालिका पुराण में चौंसठ कलाओं की तालिका दी गयी है, चौंसठ कलाओं की परिगणना करने वाले ग्रन्थों में सर्वप्रथम वात्स्यान के कामसूत्र का नाम आता है ***इसके बाद कामन्दक के नीतिसार और क्षेमेन्द्र के कलाविलास का उल्लेख है। कामसूत्र की इन चौसठ कलाओं को पांच भागों में विभाजित किया गया है — ****

01. चारू (ललित)
02. कारू (उपयोगी)
03. औपनिषदिक (वशीकरण, वाजीकरण आदि)
04. बुद्धि—वैलक्षण्य
05. क्रीड़ा—कौतुक

चारू वर्ग के अन्तर्गत नृत्य, संगीत, वादन, चित्र रचना प्रसाधन और अल्पना आदि कलायें आती है इसी प्रकार चौथी प्रकार की कला में अन्त्याक्षरी, पहेली बुझाना, वाक् रचना, भाषा ज्ञान, भेड़, मुर्गा, तीतर, बटेर लड़ाना, तोता—मैना आदि की बोली सीखना है इसी प्रकार पांचवे प्रकार की कलायें धूत, शतरंज, चौपड़ खेलना और व्यायाम करना आदि है। पुरातन काल से भारतीय मानव मनोरंजन का अनुगामी रहा है। प्राचीन और मध्यकालीन कला, संगीत, धार्मिक संगीत, नृत्य संगील, नाट्य संगीत, बच्चों के सामूहिक खेल और बच्चों के खिलोने आधूनिक भारत में ज्यों के त्यौं पूरी विरासत में मिल गये, सामान्य जन जहां कृषि कार्य से वृत होकर रात्रि और अवकास के समय में नाट्य और लोक कलाओं से अपना मनोरंजन करते थे भारत पर अंग्रेजों का शासन होने के बाबजूद भी जहां कहीं भी राजा—रजवाडों का शासन स्थापित था वह अपने दरबार में अनेक मनोरंजक कलाओं को प्राश्रय दिये हुये थे। बच्चों के खेल खिलौने गरीब से लेकर राजा के घर तक लोकप्रिय थे अन्तर इतना था कि गरीब के बच्चे का खिलौना मिट्टी का होता था और राज महल के बच्चों के खिलोने स्वर्ण जटित होते थे। इसी का सजीव दृष्टांत सियारामशरण गुप्त जी ने 'मृण्मयी' में खिलौना नामक कविता में किया है — यथा

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड सं0 ललित शुक्ल पृ0 14

** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड सं0 ललित शुक्ल पृ0 14

*** वैदिक साहित्य और संस्कृति — डॉ0 वाचस्पति गैरोला पृ0 455

**** वैदिक साहित्य और संस्कृति — डॉ0 वाचस्पति गैरोला पृ0 456

" मैं तो वही खिलौना लूँगा '

मचल गया दीना का लाल,–

'खेल रहा था जिसको लेकर

राजकुमार उछाल–उछाल।'

व्यथित हो उठी माँ बेचारी–

'था सुवर्ण–निर्मित वह तो।

खेल इसी से लाल–नहीं है,

राजा के घर भी यह तो!

राजा के घर! नहीं नहीं माँ

तु मुझको बहकाती है;

इस मिट्टी से खेलेगा क्या

राजपुत्र तू ही कह तो।

फेंक दिया मिट्टी में उसने

मिट्टी का गुड्डा तत्काल,

मैं तो वही खिलौना लूँगा –

मचल गया दीना का लाल

* * * * *

'वह तो मिट्टी का ही होगा

खेलो तुम तो सोने से।

दौड़ पड़े सब दास–दासियाँ

राजपुत्र के रोने से।

'मिट्टी का हो या सोने का,

इनमें वैसा एक नहीं,

खेल रहा था उछल – उछल कर

वह तो उसी खिलौने से।'

राजहठी ने फेंक दिये सब

अपने रजत–हेम–उपहार ;

लूँगा वही, वही लूँगा मैं!"

मचल गया वह राजकुमार। *

गुप्त जी अपनी 'अचला' कृति में 'क्रीड़ा सहचर' शीर्षक कविता में एक गेंद जब मानव के हाथ में पड़ जाती है तो वह अचेतन से सचेतन प्राणमय बन जाती है और व्यक्ति के मन को उल्लास से भर देती है –

" था नितान्त अबोध यह मानव अभी,

हाथ जब इसके अचानक पड़ गयी

गेंद जो वह रंच इसके स्पर्श से

हो उठी जड़ से सचेतन प्राणमय

* * * *

रूचिर क्रीडा बढ़ चली, बढ़ती चली।

यह अभी इस क्षण यहाँ, उस क्षण वहाँ

खेलते ही खेलते प्राचीर निज" **

गुप्त जी ने बीसबी शताब्दी में अंग्रेजी शासकों द्वारा कुत्ते पाले जाने का वर्णन अपनी 'अनाथ' कृति में किया है जिससे विदित होता है कि सामान्यजन को पेट भरने के लिए अनाज नहीं मिलता है परन्तु अंग्रेज थानेदार ने मनोरंजन के लिए जो कुत्ता पाल रखा है वह भरपूर भोजन पाता है।

" कुत्ते तक भी सानन्द पेट भरते हैं

हैं हमी लोग जो अन्न बिना मरते हैं"

विदित होता है कि अंग्रेजों के लिए कुत्ता एक मनोरंजन के साधन के रूप में पाला जाता था। कवि की 'मौर्य विजय' नामक कृति में चन्द्रगुप्त अपने शिविर में संगीत तथा

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली – मृणमयी (प्रथम खण्ड), सं0 ललित शुक्ल पृ0 392

** सियारामशरण गुप्त रचनावली – अचला (द्वितीय खण्ड), सं0 ललित शुक्ल पृ0 309

साज–बाज के द्वारा अपना मनोरंजन इस प्रकार करते हैं :–

" यह पुनीत संगीत गूँज कर गगन–स्थल में
है वर्षण कर रहा, अमृत–सा अवनितल में
दीख रहे हैं साज–बाज सब ओर निराले"

17– कृषि संस्कृति :–

ऋग्वेद में उल्लिखित 'कृष्टि' शब्द से समस्त आर्यजनों के कृषक होने का प्रमाण मिलता है। आज की ही भांति तब भी कृषि–कार्य को बड़ा महत्व दिया जाता था। कृषि को अपनाना तब आर्यत्व एवं श्रेष्ठत्व की पहचान थी। समाज के सभी वर्गों के लोग प्राण रक्षिका एवं जीवन दायनी धरती के प्रति आदर–सम्मान का भाव रखते थे।

ऋग्वेद (1/1/64/13) की एक ऋचा में कहा गया है कि 'यह विशाल धरती हमारी माता है' (माता पृथिवी महियम्)। इसी प्रकार पृथिवी मेरी माता और मैं उसका पुत्र हूँ (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः) अथर्ववेद की यह ऋचा आज भी धरती के प्रति भारतीयों के असीम प्रेमभाव का द्योतन करती है। *

कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार मानी जाती थी, क्योंकि सारी ग्रामीण आबादी किसी न किसी रूप में भूमि के साथ सम्बद्ध थी प्राकृतिक स्थिति और मौसम के प्रभावों ने भारत को कृषि प्रधान देश बना दिया था। इसलिए अनादिकाल से ही कृषक या खेतिहर या किसान आर्थिक जीवन का मूलाधार बन चुका था। समाज के अन्य आर्थिक वर्ग जैसे बुनकर अथवा जुलाहे, बढ़ई और लोहार अपने–अपने उपयोगी काम करते हुए भी अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए कृषि पर निर्भर थे। **

कृषि के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण वेदों में देखने को मिलते हैं। वैदिक कवियों ने 'खेती करो' (कृषिमित कृषत्व–ऋग्वेद 10/34/13) यह अभियान चलाकर समाज को कृषि की ओर प्रेरित किया। वे अपने इस अभियान की सफलता 'प्रभूत अन्न वाली कृषि' (सुसस्याः कृष्वीष्कृधि–ऋग्वेद 4/10) के रूप में देखने के आकांक्षी हैं। कृषि जीवन की इस प्रगति ने तत्कालीन जनजीवन को जो आत्मनिर्भरता प्रदान की, उसके अतिरिक्त दुर्व्यसनों में

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – डॉ0 वाचस्पति गैरोला पृ0 421

** भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास – पी0एन0चौपड़ा पृ0 150

फसे हुये लोगों को अच्छे मार्ग पर लगाते हुये उनके लिये यह भी निर्देश किया कि "जुआ न खेलो खेती करो" (अक्षैर्मा दीव्याः, कृषिमित्कृषत्व) ऋग्वेद (10/34/3)।

ऋग्वेद (8/6/48) आदि और अथर्ववेद (6/91/1) आदि के अनेक स्थलों पर कृषि भूमि को 'उर्वरा' या 'क्षेत्र' कहा गया है और उसमें खाद (शकृन या करीष) का उपयोग करने तथा सिंचाई की व्यवस्था का निर्देश किया गया है। उपजाऊ कृषि भूमि के अतिरिक्त बंजर या अनुपजाऊ भूमि की अलग पहचान थी।

कृषि के साधन :– कृषि के लिये विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग होता था जैसे जुताई, बुबाई, हल, बैल, जुआ, हँसिया, गाड़ी, नाद, गोलाश, प्रस्तर, कुठार और लौहदात्र (वसूला) आदि विभिन्न प्रकार की सामग्री उपयोग में लायी जाती थी। * ऋग्वेद (10/101/2–11)।

खेती भी अपने आप बडी सीधी प्रक्रिया थी, हालाकि इसमें कड़ी मेहनत पडती थी एक अकेला आदमी चाहे वह दुबला–पतला और कमजोर ही क्यों न हो, कड़कती धूप में या मूसलाधार वर्षा में खेती–बाड़ी का काम सुरक्षापूर्वक कर सकता था। अलग–अलग फसलों के लिये खेती के अलग–अलग तरीके थे किसी एक फसल के विभिन्न चरण मौसम पर निर्भर करते थे और अगर ठीक समय पर ठीक मौसम न आये तो खेती का कार्यक्रम गड़बड़ा जाता था। भारतीय कृषि के लिये सबसे महत्वपूर्ण मौसम था मानसून ** लेकिन अन्य मौसमों में भी वर्षा, जिस पर चावल और कई अन्य फसलें निर्भर करती थी, बहुधा ठीक समय पर नहीं होती थी। जिसके कारण कोई फायदा नहीं होता था बल्कि नुकसान भी हो जाता था। कभी तो जरूरत से ज्यादा वर्षा हो सकती थी जिससे फसल नष्ट हो जाती थी और बाढ़ आने के कारण बेहद मुश्किलें खड़ी हो जाती थी या फिर वर्षा नहीं होती थी जिसके कारण फसल या तो पूरी नहीं निकलती थी या बहुत बड़े इलाके में उपज होती ही नहीं थी। कभी–कभी भयंकर तूफान आने से भी खडी फसल नष्ट हो जाया करती थी। लेकिन यह निश्चित है कि कई तरह से भारत में वर्षा कृषि की भाग्य विधात्री रही है। वर्षा न होने के कारण बड़े–बड़े अकाल भी पड़े हैं। भारत में कृषि और प्रकृति का आपस में इतना गहरा सम्बन्ध है कि यदि कोहरा अथवा पाला पड़ जाये या अचानक ही बिना मौसम की बूंदा–बांदी हो जाये तो कुछ छोटी फसलों के लिये भयंकर सिद्ध हो सकती है।

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – डॉ0 वाचस्पति गैरोला पृ0 422

** भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास – पी0एन0चौपड़ा पृ0 153

कवि सियारामशरण गुप्त अपनी कृति 'दूर्वादल' में 'बाढ़' शीर्षक नाम से कविता लिखते हैं जिसमें वह यमुना के शान्तरूप और बाढ़ के भयानक रूप को चित्रित करते हैं साथ ही वह लिखते हैं कि यमुना में जब बाढ़ आती है तो वह किनारों को तोड़–ताड़ कर ग्रामों को उजाड़ देती है झाड़–झांकर की बनी हुयी कुटियों में सोते हुये गरीब जन बाढ़ आ जाने पर अपने प्राण पखेरूओं को बचाने के लिये पेड़ों पर चढ़ जाते और वृद्धजन गृहणिओं और बच्चे प्राकृतिक आपदा के शिकार हो जाते हैं। कवि के एतत् सम्बन्धी विवरण निम्न प्रकार है।

'' यमुने हे! तेरा वह शान्तरूप सौम्याकार
जान पड़ता था नहीं अन्तस्तल का विकार,
चंचला की चंचलता–तुल्य है पयस्विनी!
तेरी यह लोक–लीला थी न आत्मघातिनी,

* * * *

भीषण दुरन्त इस बाढ़ में बिना विचार!
अपने ही ऊपर स्वयं प्रहार!
तुझको हुआ क्या ताप कोई कड़ा
जिससे उबल तुझे जाना पड़ा ?
जननी तू तारिणी!

* * * *

सोते थे कुटी के बीच दीन वे
शंका – सोच – हीन वे,
ऐसे में कराल यह तेरी बाढ़ आ गई,
चारों ओर आर्तध्वनि छा गई,
किसको बचावें कौन,
ऐसे में किसी के काम आवे कौन,
चढ़ सके भाग जो चढ़े वे किसी वृक्ष पर
प्राणों पर खेल कर,
प्राणी प्राणहीन – से

* * * *

बूढ़ा बाप उठ भी सका न खाट पर से
दब मरा हाय! वहीं अपने ही घर से।
गृहिणी न तैर सकी,
करके प्रयत्न थकी ;

* * * *

छूट गया एकाएक हाय अरे! बच्चा वह,
डाल छोड़ जननी भी जाती है,
प्राण के भी प्राण का पता न किन्तु पाती है!
कोसों तक कूल पर दोनों ओर
क्रूर दृश्य ऐसे ही महा कठोर।
जीवन ही त्रास हुआ दोनों का
धान्य – धन – गेह और आत्मजन हीनों का। " *

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कवि सियारामणशरण गुप्त जी ने उपर्युक्त 'बाढ़' शीर्षक कविता में जो अनाज, धन, घर और लोगो के प्राणों की हानि हुइ दर्शायी है। यह निःसंदेह कृषि संस्कृति के लिये घातक है।

बीसवीं शतावदी में बागवानी सभी के मन को हर्षित करने वाली थी कवि गुप्त जी ने भी बाग–बगीचों को पोषित करने वाले माली के प्रति एक कविता की रचना कर डाली और वह माली से शिकायत करते हुये कहते हैं –

"माली! देखो तो तुमने यह
कैसा वृक्ष लगाया है!
कितना समय हो गया, इसमें
नहीं फूल भी आया है।
निकल गये कितने बसन्त हैं,
बरसातें भी बीत गई
किन्तु प्रफुल्लित इसे किसी ने
अब तक नहीं बनाया है!"

गुप्त जी को पुष्प से लदे हुए पेड़—पौधे सहज ही मन को आकर्षित करते थे यह उनकी 'माली के प्रति' कविता से दृष्टव्य हुआ है। प्राचीन काल से ही भारत में अनाज की फसलों के रूप में चावल, गेहू, ज्वार, बाजरा, दालें और तिलहन का उत्पादन होता रहा। कई तरह की दालें चना, मूंग, मटर, अरहर और मसूर की दालें उगायी जाती थी। जिसे व्यक्ति चावल और रोटी के साथ बड़े चाव से खाता था। खाने पीने की चीजों फसलों में गन्ना मुख्य था और प्रत्येक घर में आवश्यक रूप से गुड़ का इस्तेमाल होता था। कवि सियारामशरण गुप्त जी भी इस कृषि

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (दूर्वादल) पृ0 208,209,210

उत्पादन के ज्ञान से अछूते नहीं थे। अपने काव्य में उन्होंने इस कृषि का यदा कदा वर्णन किया है।

18– लोक मान्यताएँ और सामान्य विश्वास, अभिशाप और वरदान :–

प्रत्येक देश की लोकमान्यतायें और विश्वास प्रथक्–प्रथक् होती है। जो चिरकाल से जन–मन में बसते चले आते हैं। सियारामशरण गुप्त जी के द्वारा भी यह गृहीत है भारतीय जीवन में गुरू, माता, पिता और बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करने का विशेष महत्व है।

"आशीर्वाद दीजिए हे माँ ! करने को स्वदेश का त्राण।
विचलित होऊँ नहीं युद्ध से निकल जाएँ चाहे ये प्राण।। "*

ईश्वर से क्षमा मांगने में विश्वास का एक उदाहरण इस प्रकार है :–

" हे प्रभो ! कर दो क्षमा, कर दो क्षमा।
जग उठा है आज, नर में गर्व जो।।" **

'आर्द्रा' कृति में 'नृशंस' कविता समाज में व्याप्त दहेज प्रथा के विराट रूप का दर्शन कराती है। एक पिता ऋण को विधाता का अभिशाप मानता है :–

"कौड़ी नहीं है पास।
ऋण ने किया है ग्रास।
तिल–तिल स्थान इस गेह का
रुधिर–प्रवाह तक अपनी ही देह का।
हो चुका है आज ऋणदाता का।
कैसा अभिशाप है विधाता का।।" ***

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली – द्वितीय खण्ड पृ0 375

** सियारामशरण गुप्त रचनावली – द्वितीय खण्ड पृ0 306

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली – प्रथम खण्ड (आर्द्रा) पृ0 102

'पति–पत्नी के बीच कन्या के विवाह संस्कार योग्य हो जाने पर वाद–प्रतिवाद का वर्णन –

''घर में ही बात सुनता हूँ यही
कन्या के विवाह की अवस्था चली जा रही।
बात की ही बात में
कर दूँ विवाह इसी रात में।
या कि बस रोओगी इस प्रकार ?
मरने की धमकी क्यों बार–बार
बार–बार मुझको खिझाओं नहीं।
किच–किच बन्द करो।।'' *

आगे का वर्णन गुप्त जी के शब्दों में –

''वय से भी है समृद्ध
जान पड़ता है वह मेरे पिता से भी वृद्ध।
करके दहेज का पिनाक – भंग।।
घातक – समाज – कंस,
सौंप दूँ स्वयं मैं तुझे कन्या यह रे नृशंस।
आप ही इसे मैं मार डालूँगा
तेरी यह आज्ञा मैं न पालूँगा।'' **

गुप्त जी ने 'आर्द्रा' कृति में ही 'एक फूल की चाह' कविता में अछूत प्रथा को उद्धृत किया जो समाज में उस समय एक अभिशाप के रूप में विद्यमान थी –

''मुझको देवी के प्रसाद का,
एक फूल ही दो लाकर।
बेटी बतला तो तू मुझको,
किसने तुझे बताया यह,
मैं अछूत हूँ, मुझे कौन हा!
मन्दिर मैं जाने देगा।।'' ***

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली – प्रथम खण्ड (आर्द्रा) पृ0 103

** सियारामशरण गुप्त रचनावली – प्रथम खण्ड (आर्द्रा) पृ0 109

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली – प्रथम खण्ड (आर्द्रा) पृ0 110

आगे पिता ईश्वर का स्मरण करते हुए कहता है –

''हे मातः हे शिवे, अम्बिके,
तप्त ताप यह शान्त करो।
निरपराध छोटी बच्ची यह।
हाय! न मुझसे इसे हरो।।'' *

अन्त में पिता मन्दिर में जाता है उसके बाद का वर्णन गुप्त जी के शब्दों में –

'' कुछ न सुना भक्तों ने झट से,
मुझे थोर कर पकड़ लिया।
मार–मार कर मुक्के–घूँसे
धम से नीचे गिरा दिया।
न्यायालय ले गये मुझे वे
सात दिवस का दण्ड–विधान।।
दण्ड भोगकर जब मैं छूटा,
हाय फूल–सी कोमल बच्ची।
हुई राख की थी ढेरी।।'' **

हमारे देश में अतिथि के स्वागत की परम्परा है। 'पाथेय' कृति में गुप्त जी कहते हैं –

''लूँगा प्रिय, आतिथ्य लौट कर,
रहा निमन्त्रण यह तेरा।
आज दूर जाना है मुझको,
जल्दी में मन है मेरा।'' ***

महाभारत के वन पर्व में नकुल कथा से गृहीत 'नकुल' काव्य कृति में कवि ने यक्ष के पूछने पर धर्मराज युधिष्ठिर नकुल को जीवन–वरदान देने की प्राथमिकता को उद्धृत किया है। जो यह स्पष्ट करती है कि प्रत्येक जननी के आत्मज का अस्तित्व बना रहना सत्य धर्म है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली – प्रथम खण्ड (आर्द्रा) पृ0 112

** सियारामशरण गुप्त रचनावली – प्रथम खण्ड (आर्द्रा) पृ0 118

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली – प्रथम खण्ड (पाथेय) पृ0 268

" मुझे मिला था वहाँ एक लघु संजीवन कण।
कहे किसे दूँ उसे यहाँ इस कठिन समय में।। *

(यक्ष कथन)

* * * *

"नकुल"! उसी क्षण अनायास कह गये युधिष्ठिर।

कवि के जीवन में व्याप्त कुछ अभिशापों के विषय में विष्णु प्रभाकर जी ने लिखा है –

" सियारामशरण जी ने अपने जीवन में बहुत कष्ट उठाये हैं। प्रियजनों के वियोग की मानसिक पीड़ा और चिरसंगी दमे की शारीरिक यातना ने उन्हें बरबस तपस्वी बना दिया है। परन्तु इस व्यथा के भार से दबकर वे इतने प्रेरणा और प्रोत्साहन से भर उठे हैं। निःसंदेह उनके ये अभिशाप जग के लिये वरदान बन गये हैं। " **

अतः सियाराम शरण गुप्त जी का आस्थावान संस्कारी तो परम्पराओं, लोकमान्यताओं के विश्वासी है परन्तु उनका सजग विचारक जन्मजात संस्कार पोषित विश्वासों के विचारों को अस्वीकार करता है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली – (नकुल) द्वितीय खण्ड पृ० 127

** सियारामशरण गुप्त – डॉ० नगेन्द्र पृ० 25
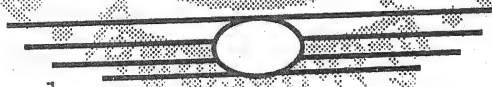
अध्याय—पंचम

सियारामशरण गुप्त के काव्य में राजनीतिक चित्रण

1. राज्य व्यवस्था।
2. न्याय व्यवस्था।
3. पूँजीवादी सभ्यता एवं सामन्ती प्रथायें।
4. मानवतावादी संस्कृति।
5. राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय भावना।
6. राजनीतिक चेतना।

अध्याय – पंचम

(सियारामशरण गुप्त के काव्य में राजनीतिक चित्रण)

1. राज्य व्यवस्था – समाज के उपरान्त राज्य और राज्य के उपरान्त राष्ट्र दोनों के प्रति किया गया त्याग उच्चस्तरीय भावभूमि पर आधारित है। इसमें जाति या धर्म आड़े नहीं आता। मानव–मन के सहज मनोवेगों की अबोध गति को नियन्त्रित करने के लिए किसी न किसी प्रकार की शासन प्रणाली की आवश्यकता तो स्वदेशी–विदेशी सभी विचारकों को स्वीकृत है। किन्तु भारतवर्ष में राजतन्त्र को विशेष प्रश्रय मिला है इसलिए हमारे यहाँ राजा का महत्त्व अप्रतिम है। राज्य के सप्तांग का विवरण प्रस्तुत करते हुए याज्ञवल्क्य राजा को प्रथम स्थान देते है :–

'' स्वाम्यमात्या जनो दुर्ग कोशो दण्डस्तथैव च ।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्तांगमुच्यते। ''*

नारदीय मनुस्मृति में प्रजा को विनाश से बचाने के लिए उसका अस्तित्व अनिवार्य बताया गया है **

और मनु ने तो राजा के अभाव में हाहाकर मचने तथा ब्रह्म द्वारा उसके सृजन की बात कही है –

'' अराजके हि लोकेऽस्मिनसर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानम सृजत्प्रभु ।। ''***

इस प्रकार राजा में अतिमानवीयता अथवा देवत्व तक का आरोपण कर दिया गया। मनु ने तो स्पष्ट शब्दों में उसे नरदेहधारी देवता माना है।

'' महती देवता ह्योषा नररूपेण तिष्ठति। '' ****

चाणक्य इससे भी आगे बढ़ते है तथा राजा को सबसे बड़ा देवता घोषित करते है –

'' न राज्ञः परं दैवतम्।'' *****

जनता की रूचि –अरूचि के प्रतीक काव्यकार भी राजतन्त्र के ही संस्तोता रहे है। बाल्मीकि और व्यास, भवभूति और वाण तथा कालिदास और तुलसीदास आदि सभी के प्रिय नायक राजा है। सियारामशरण गुप्त का भी वहीं दृष्टिकोण है –

---

*	यज्ञावल्क्य स्मृति	1/13/353
**	नारदीय मनुस्मृति	18/14
***	मनुस्मृति	7/3
****	मनुस्मृति	7/8
*****	चाणक्य प्रणीत सूत्र	372

" चन्द्रगुप्त सम्राट हमारे हैं बलधारी।

सिल्यूकस की सर्वशक्ति है जिनसे हारी।।"*

गुप्त जी ने जहाँ राजा के अद्वितीय गौरव का गान किया है वहाँ उसके असाधारण कर्त्तव्यों का भी निर्देश किया है –

" भारत–भूपति चन्द्रगुप्त थे तेजोधारी ।

शासन उनका प्रजावर्ग को था सुखकारी।।"**

सिकन्दर, सिल्यूकस तथा चन्द्रगुप्त का परिचय देने के लिए पुस्तक के मुख पृष्ठ पर मैथिलीशरण गुप्त जी की कृति " भारत भारती " से भी एक उद्धरण प्रस्तुत है जिसमें चन्द्रगुप्त को महाबली कहा गया है –

" जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकंदर की चली,

वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली।

जिससे कि सिल्यूकस समर में हार तो था ले गया,

कंधार आदिक देश देकर निजसुता था दे गया।।"

X X X X X

राजतंत्र के सभी पोषक मनीषियों ने राजा के महत्व के साथ उसके कर्त्तव्य कर्मो का व्याख्यान किया है। चाणक्य ने राजा के लिए नीतिशास्त्र का अनुगमन आवश्यक बताया है –

नीतिशास्त्रानुगो राजा ।। ***

तथा

लोके वर्तते पितृवन्नृषु।। ****

में मनु राजा को प्रजा के साथ पितृकल्प व्यवहार का आदेश देते है। कालिदास ने प्रजाओं के रक्षण पोषण तथा विनयाधान आदि के कारण राजा दिलीप को उनका पिता कहा है। ***** तुलसीदास भी प्रजा की पीड़ाओं का नाश न करने वाले राजा को नरकगामी मानते है।

" जासुराज प्रिय प्रजा दुखारी।

सो नृप अवसि नरक अधिकारी।। " ******

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (मौर्य विजय) पृ0 68

** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (मौर्य विजय) सं0 ललित शुक्ल पृ0 68

*** तुलसी ग्रंथावली पृ0 185

**** चाणक्य प्रणीत सूत्र पृ0 48

***** मनुस्मृति पृ0 7/80

****** रघुवंश पृ0 1/24

सियारामशरण जी का आदर्श राजा प्रजा पीड़क न होकर प्रजा पालक है, राज्य का भोक्ता न होकर उसका रक्षक और व्यवस्थापक है। गुप्त जी राजतन्त्र के साथ साथ प्रजातन्त्र के प्रयोक्ता तथा अंग्रेजों द्वारा भारत पर किये गये अत्याचारों का उल्लेख करते हैं –

" आ पहुँचा चौकीदार एक पीछे से,
मोहन की हुई पुकार एक पीछे से,
वह बोला – बस हो चुकाछोड़ ये बातें।
चलता है या दो– चार लगाऊँ लातें।" *

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य–धारा के युग में भौतिक प्रगति विकास पथ पर अग्रसर हो रही थी, जिससे मानव की व्यथा पर किसी का ध्यान नहीं था। एक ओर भौतिकता पल्लवित हो रही थी तो दूसरी ओर अन्नु वस्त्र एवं आवास जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से मानवता कुम्हला रही थी। भौतिक प्रगति पर ही सारा ध्यान केन्द्रित रखने के दुष्परिणामों से इस युग का कवि चिंताग्रस्त है। वह युगीन मानव को अन्न,वस्त्र एवं आवास जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चिंतित देखकर शोक व्यक्त करता है तथा प्रस्तुत चिंता से उसे मुक्त करना चाहता है।** शोषित पीड़ित दलित मानव का यातनामय रोगी–सा जीवन देखकर कवि तिलमिला उठता है। पेट की आग को मिटाने के लिए तनु –तारुण्य बेचने वाली अबलाओं को देखकर उसके कवि मन में ' विश्व–वेदना' भर जाती है। कवि सियारामशरण गुप्त जी की कृति ' अनाथ' में यही बिम्ब दृष्टिगोचर होता है–

" क्या– कोई भी नहीं हमें दो दाने देगा ?
क्या यों ही भगवान इन्हें मर जाने देगा ?
क्या बालक भी बच न सकेंगे जठरानल से ?
दया विदा हो गई, हाय! क्या अब भूतल से ?" ***

आज भारत में लोकतन्त्र प्रतिष्ठित है चक्रवर्ती राजा तो पहले ही उठ चुके थे अब मण्डलाधीश भी समाप्त हुए। लोकसभा और राज्यसभा को सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हुआ। फलस्वरूप अधुना भारतवर्ष चिरमुक्त राजतन्त्र का बहिष्कार कर प्रजातन्त्र का जय–जयकार कर रहा है।

" एक हमारा ऊँचा झण्डा एक हमारा देश।
इस झंडे की नीचे निश्चित एक अमिट उद्देश्य/।"****

---

*	सियाराम शरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड अनाथ	पृ0 75–76
**	मैथिलीशरण गुप्त , गांवों का सुधार, हिन्दु	पृ0 112
***	सियाराम शरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड अनाथ	पृ0 72
****	सियाराम शरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड अनाथ	पृ0 72

मिलों एवं कल–कारखानों में तन तोड़कर दिन–रात मेहनत करने के बाबजूद इस युग का मजदूर आर्थिक विपन्नता में मरणासन्न हो चुका है। * उसे आवास के रूप में झोपड़ी भी नसीब नहीं होती है, लेकिन उसी के श्रम बल पर पूँजीपति महल खड़े कर देता है। मजदूरों की इस आर्थिक दशा का अंकन करने में सियारामशरण गुप्त की कविता '' यन्त्रपुरी'' पूर्णतः सफल सिद्ध हुई है –

'' इस नगरी में जितने भी जन वे सब के सब है निपट मूक
तब भी सुन पड़ती है प्रतिक्षण यह कितनी भारी हूक–कूक
यह विस्मय से तू मूढ़ न बन नव यन्त्रपुरी यह है अपार
सब की रसनायें, श्रवण,नयन,वह लिए दूर है मन्त्र कार।।'' **

उन्होंने स्वार्थ–प्रवृत्ति की संकीर्ण मतवादों की साम्प्रदायिक विद्वेषों की, ऊँच–नीच के खोखले अप्राकृतिक भेद–भाव की गहरी आलोचना की है। विश्व बन्धुत्व उनका उदान्त आदर्श था और उनका काव्य इस अनुभूति से ग्रसित भी है। उदाहरणार्थ – कविवर गुप्त विश्व मानवता को संबोधित करते हुए उससे भारत की विजय का ज्ञान कराना चाहते है।*** इस कथन में आदर्श राज्य–व्यवस्था की ध्वनि है। इससे पूर्व भी कवि कह चुका है –

''रोम,मिश्र,चीनादी काँपते रहते सारे
यूनानी तो अभी–अभी हमसे हैं हारे। '' ****

स्वतन्त्रता से पर्याप्त पूर्व प्रकाशित सन 1914 की रचना ' मौर्य विजय' के एक सबल सदय राष्ट्र के रूप में भारत की प्रशस्ति है। राज्य–व्यवस्था में सदा–सर्वदा ऐश्वर्य ही नहीं दृष्टिगत होता , अपवाद स्वरूप कुछ न कुछ अप्रिय या व्यवस्था को चुनौती देने वाला प्रसंग भी दृष्टिगत होता है। ' अनाथ' (प्रकाशित सन 1917) में यह आर्तनाद है 15 अगस्त 1947 को भारत अंग्रेजी शासन से मुक्त होकर स्वतन्त्र हुआ, और इस आहलाद से प्रभावित होकर कवि ने ' जय हिन्द' नामक लघुकाय काव्यकृति की रचना, की जिसमें राष्ट्रीय भावना की मनोरम अभिव्यक्ति है, राज्य–व्यवस्था की आलोचना या प्रशंसा करने के लिए यहाँ कवि को अवकाश ही नहीं प्राप्त हो सका। कवि यह अवश्य अपेक्षा करता है कि वह स्वतन्त्र देश में गगन की पवित्रता ला सके –

'' ला सकूँ पवित्रता गगन की
तेरे पग धोते हुए सागर के तल से '' *****

---

*	मैथिलीशरण गुप्त , विश्व वेदना	पृ0 15
**	सियारामशरण गुप्ता रचनावली द्वितीय खण्ड	पृ0 24
***	सियारामशरण गुप्ता रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 67
****	सियारामशरण गुप्ता रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 67
*****	सियारामशरण गुप्ता की काव्य साधना– डा0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 117

इसके अनन्तर ' अमृतपुत्र' में कवि ने जिस करूणा वृत्ति की अभिव्यंजना की, वह एक आदर्श राज्य–व्यवस्था की शाश्वत प्रतीक है। मति–विपर्यय, अज्ञान आदि के वशीभूत होकर एक आदर्श देश के सर्वोच्च प्रतीक किस प्रकार विडंबित होते हैं; यह ईसा के इतिवृत्त द्वारा व्यंजित किया गया। * राज्य–व्यवस्था के सूत्रधारों में वे उन चारित्रिक गुणों को महत्व देते थे जो आदिकवि ने अपने काव्य ' रामायण' के आरम्भ में निर्दिष्ट किए है।

<u>2. न्याय व्यवस्था</u> – हमारे यहाँ चार विधाओं को राजविद्या के रूप में मान्यता दी गयी है।

'' आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।।''**

आन्वीक्षकी (दर्शन) त्रयी (वेद) वार्ता (कृषि,पशुपालन एवं व्यापार) इन तीन विधाओं का आधार दण्डनीति को माना गया है। दण्डनीति का मुख्य आधार राजा की दण्ड–प्रणाली है – अर्थात् न्याय व्यवस्था कौटिल्य के अनुसार दण्ड देने में मृदु राजा प्रजा द्वारा तिरस्कार प्राप्त करता है, जबकि कठोर दण्ड–प्रणाली प्रजा को उद्विग्न और भयभीत बना देती है। अतः यथोचित दण्ड विधि पर आधारित शासन व्यवस्था को ही प्रशस्त माना गया है। दूसरी ओर दण्ड का सर्वथा अभाव भी प्रजा को निरंकुश और उच्छृंखल अथवा स्वेच्छाचारी बना देता है एवं मात्स्य न्याय को जन्म देता है। ***

यह भारतीय न्याय व्यवस्था अपने प्रारम्भिक युग में सामन्तों, राजाओं और पंचों के हाथों में रही है। परन्तु अंग्रेजों के आगमन से इसमें परिवर्तन उत्पन्न हुए। इस जाति ने भारत की पवित्र भूमि पर अपने पैर जमते ही इस प्राचीन व्यवस्था में हस्तक्षेप कर, अपने यहाँ की लम्बी और तर्कों तथा साक्ष्यों पर आधारित न्याय व्यवस्था को लागू कर दिया। वकीलों के तर्कों पर चलने वाला यह न्याय जितना शिथिल गति से चलता है, उतनी ही आसानी से खरीदा और बेचा जा सकता है। अपराधी को अधिवक्ता तर्कों के आधार पर निरपराध सिद्ध कर दे तो कानून यह जानते हुए भी – व्यक्ति अपराधी है, उसे दण्ड नहीं दे सकता। न्याय के लिए गवाह चाहिए और गवाह रूपयों के लालच में गीता और कुरान की शपथें लेने में भी पीछे नहीं रहते। इसीलिए न्याय आज खरीदा और बेचा जा सकता है। ****

हमारे यहाँ अधर्मी राजा को निष्कासित करने अथवा दण्ड देने के भी प्रमाण मिलते है। अधर्म करने पर राजा बेन को ऋषियों ने मंत्री द्वारा पवित्र किये हुए कुशा से मार डाला था। इतना ही नहीं इन्द्र बने हुए '' नहुष को भी ऋषियों ने श्राप देकर

---

* सियारामशरण गुप्ता की काव्य साधना– डा0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 121

** अर्थशास्त्र प्रकरण एक अध्याय – 1–1.8

*** अर्थशास्त्र प्रकरण एक अध्याय – 3–5–13

**** वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन– डा0 भटनागर पृ0 166

उसके अभिमान को चूर–चूर कर डाला था। इस प्रकार राजा और प्रजा दोनों ही एक दूसरे को अधर्म से रोकते थे। " प्राचीन समय में राजकार्य चलाने के लिए अनेक प्रकार के कर्मचारी नियुक्त होते थे। न्याय के लिए प्रधान आधिकरणिक (न्यायाधीश)नियुक्त होता था उलझे हुए व्यवहारों के लिए धर्मशास्त्र के अधिकारी पण्डितों की राय ली जाती थी। *

कवि सियारामशरण गुप्त जी भारतीय सम्राट–चन्द्रगुप्त मौर्य के न्याय का वर्णन इस प्रकार करते है :–

" बन्दी है सम्राट आप,आप इस समय हमारे।
क्षमा किये पर दोष आपके हमने सारे।।"**

भारतीय सम्राट ने अपने शत्रु सिल्युकस से सन्धि कर उसकी पुत्री एथेना से विवाह कर लिया –

" चन्द्रगुप्त से सन्धि ग्रीक सम्राट करेंगे।
एथेना को जयी मौर्य्य सम्राट बरेंगे।।"***

किसानों की तरह ही इस युग का मजदूर भी दयनीय दशा में दम तोड़ रहा था। उसके रक्षक कहलाने वाले ही भक्षक बनकर उसका खून चूस रहे थे। उसका जीवन अभावों एवं आर्थिक विपन्नता से भरपूर था परन्तु न्याय की कोई व्यवस्था उनके लिए नहीं की गयी थी। मजदूरों की इस स्थिति का यथार्थ स्वरूप राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य–धारा की कविता में तीव्रता के साथ अंकित किया गया है। कर्मरत " मजूर" का चित्रण करते हुए कवि सियारामशरण गुप्त लिखते हैं :–

" यह मजूर जो जेठ मास के इस निर्धूम अनल में
कर्मरत है अविचल दग्ध हुआ पल–पल में,
यह मजूर, जिसके अंगों पर लिपटी एक लंगोटी;
यह मजूर, ज़र्जर कुटिया में जिसकी वसुधा छोटी,
किस तप में तल्लीन यहाँ है भूख–प्यास को जीते
किस कठोर साधन में इसके युग–युग हैं बीते।
कितने महा महाधिप आये, हुए विलीन क्षितिज मे,
नहीं दृष्टि तक डाली इसने, निर्विकार यहनिज में "। ****

---

* प्राचीन भारत का इतिहास – ओमप्रकाश — पृ0 310
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड — पृ0 63
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड — पृ0 66
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड — पृ0 5

मध्य युग में उससे भी पूर्व वैदिक युग में न्याय की सर्वोच्च इकाई शासक राजा या सामन्त थे , परन्तु उनके नीचे कार्यरत न्याय संस्थाएँ ग्राम के जागीरदार, पंच और जाति सभा कार्य करती थी। ये न्याय विभाग गवाहों की शपथों का पक्ष–विपक्ष के वकीलों के आधार पर न्याय नहीं करते थे। इनका न्यायिक आधार ठोस था। घटना स्थल की आवश्यकता पडने पर पंच निरीक्षण करते थे, उसके बाद ही न्याय देते थे। किसी कारणवश यदि पंच न्याय में गडबडी करते थे उस अवस्था में शासक या राजा गुप्त रूप से जानकारी एकत्रित कर पक्षों के द्वारा प्रश्नोत्तरी के माध्यम से सही निष्कर्ष तक पहुँचते थे और तुरन्त न्याय देते थे। इस व्यवस्था से जहाँ अपराधी समय पर दण्डित होता था वहाँ सताया हुआ पक्ष शीघ्र ही पक्ष द्वारा भरपाई पाकर कष्ट मुक्त भी हो जाता था। अंग्रेजी और मुगल न्याय व्यवस्था की बर्बरता भारतीय न्याय नीति में कभी नहीं रही।

गुप्त जी ने अंग्रेजी शासन काल की न्याय क्रूरता को भी अपने काव्य में समाहित किया है। यथा –

" बोला सिपाही गरजकर – क्या मौत आई है अरे।
क्यों आज मेरे हाथ से मरने चला है अधमरे।।" *

3. पूँजीवादी सभ्यता एवं सामन्ती प्रथाएँ :– जहाँ अंग्रेज भारत में अपने पैर जमाने की कोशिश में लगे हुए थे वहीं अन्य यूरोपीय देश भी अपने लिए वैसे ही अधि कार और विशेष सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अपने – अपने तरीके अपना रहे थे। एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ लग गई और अंत में अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों भारत में सर्वोच्च सत्ता प्राप्त करने के लिए एक–दूसरे से भिड़ गए। जिससे कि अन्त में अंग्रेजों की विजय हुई और फ्रांसीसियों का पतन हो गया।

भारत में अंग्रेजी शासन ब्रिटेन के पूँजीपति वर्ग का शासन था। इसीलिए एक उन्नत पूँजीवादी व्यवस्था के सीधे सम्पर्क में आने के कारण भारत में पूँजीवादी सभ्यता का जन्म हुआ। ब्रिटिश शासन के दौरान कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ, कृषि में पूँजीवादी सम्बन्ध स्थापित हुए तथा भारतीय सूदखोर उभरे। ब्रिटेन की औद्योगिक पूँजी के शासन के दौर में भारत से कच्चा माल खींचा गया और ब्रिटेन का तैयार माल भारतीय मंडी में धकेला गया। अंग्रेजों द्वारा भारत में लगाए गये उद्योगों और फिर भारतीयों द्वारा लगाये गए उद्योगों के द्वारा भारतीय उद्योगपतियों का जन्म हुआ और भारतीय पूँजीपति वर्ग उभरा। इस वर्ग में व्यापारी, सूदखोर, उद्योगपति, वित्तीय पूँजीपति,कृषि में लगे गैर– काश्तकार, जमींदार जो व्यापार एवं उद्योग में भी रूचि रखते थे। इस वर्ग ने भारतीय जनता का शोषण आरम्भ किया। कवि सियारामशरण गुप्त जी के काव्य में भी

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 87

अधिकारियों का क्रूर व्यवहार जमींदारों के अत्याचार एवं महाजनों का किसानों को ऋण न देना आदि दृश्यों का बिम्ब दिखायी पड़ता है। –

" मोहन भी है वहीं मौन बैठा मन मारे–
भीख मांगने जाय आज वह किसके द्वारे ?
है कोई भी नहीं उसे ऋण देने वाला –
महाजनों ने छार–खार उसको कर डाला।।" *

पराधीन भारत में पूँजीवादी व्यवस्था किस प्रकार शोषण करती रही है इसे कवि सियारामशरण गुप्त जी के 'दैनिकी','विषाद' इत्यादि काव्य संकलनों में देखा जा सकता है। पारिवारिक विघटन, छुआछूत हिंसा एवं साम्प्रदायिकता को इस बीच बड़ावा मिला है। इसे कवि ने बखूबी रेखांकित भी किया है –

" मिला जहाँ, कर दी हिन्दू ने
मुसलमान के ऊपर चोट,
मारा, त्यों ही मुसलमान ने
हिन्दू को भी लूट खसोट।
पागल–से, अंधे–से हो–हो,
अपनी–अपनी जय–जय कर,
हिन्दू मस्जिद पर चढ दौड़े,
मुसलमान देवालय पर।" **

इस युग का कवि शोषित, पीड़ित एवं दलित अस्पृश्य को अपनी कविता का विषय बनाकर उसी उपेक्षा का चित्रण करता है। इसका कारण है कि मानव जाति का जाति–पाँति को रूढ व्यवस्था में विभाजन हो गया है और वहीं जाति–व्यवस्था अस्पृश्यता की जड़ है।

वस्तुतः एशिया के सामान्तवाद की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ग्राम–व्यवस्था, जाति प्रथा एवं संयुक्त परिवार की दोष प्रणाली है, जिसका प्रतिपलन गरीबी, भुखमरी,बीमारी, मँहगाई,मुनाफाखोरी,चोर बाजारी,भ्रष्टाचार आदि रूपों में देखने को मिलता है। 'दैनिकी' रचना में कवि ने " दो पैसे" कविता में लिखा है –

" मैं बाजार कर आया अपना देकर जो दो पैसे,
गये किसी बहु दूर देश की यात्रा पर वे जैसे।
प्रान्त पार करके स्वदेश की लाँघ गये वे सीमा,
उन्हें लिये जाती है उत्थित उदधि–उर्मियाँ भीमा।।"***

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 70
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– आत्मोत्सर्ग पृ0 224,225
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– दैनिकी पृ0 14

'दैनिकी' में संकलित 'सीधापन' कविता की पंक्तियाँ –

" कुछ ग्रामीण बैलगाड़ी से कल की निशि के तम में,

कहीं जा रहे थे वन पथ से सम में और विषम में।

सहसा, किसी लट्ठधारी ने आकर उनको टोका,

वह कैसा था, नहीं किसी ने भय से उसे विलोका।।" *

सियारामशरण गुप्त जी की कृति ' अनाथ' में यमुना का बड़ा पुत्र बीमार अवस्था में खाट पर पड़ा हुआ है और उसकी दवा के लिए पैसा भी उसके पास नहीं है यथा –

" ज्येष्ठ पुत्र हो रूग्ण, खाट पर पड़ा हुआ है,

क्या जीवन के लिए रोग भी अड़ा हुआ है ?

द्रव्य बिना किस भाँति दवा उसकी की जावे ?

दवा कहाँ, जब नहीं पथ्य भी मिलने पावे ?" **

गरीबी का एक चित्रण कवि इस प्रकार करता है –

" तुम लोगों का–सा न यहाँ है पलग मसहरी,

टूटी–सी है खाट, बीच में है जो गहरी !

बिछा हुआ है वस्त्र मलिन अति फटा–पुराना,

है समान उसका न बिछौना और बिछाना !" ***

'भुखमरी' का भी चित्रण कवि ने रेखांकित किया है –

" माँ अब तो दे मुझे रोटी, खाने को,

भूख लगी है प्राण हो रहे हैं जाने को,

वह क्या देती ? हाय! सिसक कर वह फिर रोई

इन दुखियों का क्या न सहायक होगा कोई! " ****

' अत्मोत्सर्ग ' कविता में कवि ने कुछ इस प्रकार लिखा –

" पूर्ण अराजकता! सत्ता थी,

गुंडों हत्यारों के हाथ।

देख रही थी लूटमार वह,

पुलिस जघन्य हँसी के साथ।।" *****

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– दैनिकी पृ0 25

** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 70

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 70

**** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 71

***** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– आत्मोत्सर्ग पृ0 226

इन सब समस्याओं का मूल कारण था – भारत के तात्कालिक ढाँचे में पश्चिमी औद्यौगीकरण की शोषण धर्मी की कूटनीति। कवि की यह सामाजिक संचेतना उक्त समस्याओं से जूझती हुई राजनैतिक विषमता से टक्कर लेती रही है। भारतीय 'पूँजीपति' का उदय विश्व पूँजीवाद के ह्रासकाल में हुआ इसीलिए अवसरवादियों ने अनैतिक साधनों से स्वार्थ का पेट भरना अंधाधुंध शुरू कर दिया, परिणामत: अनेक बुराईयों का जन्म हुआ।

4.मानवतावादी संस्कृति – मानवता का विकास भारतीय संस्कृति के उन्मेषकाल में हुआ। उसकी भावना हिन्दू जाति के संस्कारों में समाई हुई है। भारतीयों के चारित्रिक गुणों में मानवतावादी आदर्श अनादि–काल से प्रतिष्ठित है कदाचित् यही कारण है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व धर्म शास्त्र के प्रणेता भगवान मनु ने संसार भर के लोगों को भारतवासियों से चारित्रिक गुण सीखने के लिए आह्वान किया था, यथा –

" एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा।।" *

आचार्य द्विवेदी जी मानव शरीर को ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मानते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हम मानव कुल में उत्पन्न हुए है। मानव देह पाना कोई सामान्य बात नहीं है इस अवसर को हमें आलस्य और मोह में ही नहीं बिता देना चाहिए। दूसरों के उपकार तथा मानवोत्थान मे सर्वस्व अर्पित कर देना ही मानव जन्म की सार्थकता है**

मनुष्य मे सांस्कृतिक समन्वय बुद्धि,अहिंसा और मैत्री पर आधारित धर्म–बुद्धि और सौन्दर्य के सम्मान पर आधारित कलात्मक अभिरूचि निरन्तर विकसित होती जा रही है युद्ध और शोषण के कोलाहलों के भीतर मानवता की देवी चुपचाप किन्तु निश्चित गति से विजय–यात्रा की ओर बढ़ रही है। *** इतिहास बतलाता है कि यह यात्रा चाहे अदृश्य शक्ति द्वारा सचालित है तथापि मनुष्य कभी–कभी मोह से, लोभ से , भय से, ग्रस्त होने लगता है। ऐसी स्थिति में भागवत कहता है कि तत्त्व चिन्तन से मुक्ति सम्भव है तत्त्व चिन्तन अर्थात् तत् का भाव।'तत् 'अर्थात् 'वह' और 'वह' के बारे में सन्तों का अनुभव है कि 'विकास की प्रक्रिया में संसार में जो नाना प्रकार की चीजें दिखाई देती हैं, वह वस्तुतः एक ही मूल सत्य का नाना रूपों में विकास है यही चिन्तन वस्तुतः जीव धर्म है, संक्षेप में इसको मानवता कहते है। ****

आधुनिक युग में अलौकिक शक्तियों पर मनुष्य का विश्वास नहीं रहा है बुद्धिवाद के

---

*	मनुस्मृति	2/20
**	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपान्यासों में सांस्कृतिक बोध– संजीव भानावत (उदधृत)	पृ0 51
***	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावाली	पृ0 383
****	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावाली	पृ0 415

इन सब समस्याओं का मूल कारण था – भारत के तात्कालिक ढाँचे में पश्चिमी औद्योगीकरण की शोषण धर्मी की कूटनीति। कवि की यह सामाजिक संचेतना उक्त समस्याओं से जूझती हुई राजनैतिक विषमता से टक्कर लेती रही है। भारतीय 'पूँजीपति' का उदय विश्व पूँजीवाद के ह्रासकाल में हुआ इसीलिए अवसरवादियों ने अनैतिक साधनों से स्वार्थ का पेट भरना अंधाधुंध शुरू कर दिया, परिणामतः अनेक बुराईयों का जन्म हुआ।

4.मानवतावादी संस्कृति – मानवता का विकास भारतीय संस्कृति के उन्मेषकाल में हुआ। उसकी भावना हिन्दू जाति के संस्कारों में समाई हुई है। भारतीयों के चारित्रिक गुणों में मानवतावादी आदर्श अनादि–काल से प्रतिष्ठित है कदाचित् यही कारण है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व धर्म शास्त्र के प्रणेता भगवान मनु ने संसार भर के लोगों को भारतवासियों से चारित्रिक गुण सीखने के लिए आह्वान किया था, यथा –

" एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा।।" *

आचार्य द्विवेदी जी मानव शरीर को ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मानते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हम मानव कुल में उत्पन्न हुए है। मानव देह पाना कोई सामान्य बात नहीं है इस अवसर को हमें आलस्य और मोह में ही नहीं बिता देना चाहिए। दूसरों के उपकार तथा मानवोत्थान में सर्वस्व अर्पित कर देना ही मानव जन्म की सार्थकता है**

मनुष्य मे सांस्कृतिक समन्वय बुद्धि,अहिंसा और मैत्री पर आधारित धर्म–बुद्धि और सौन्दर्य के सम्मान पर आधारित कलात्मक अभिरूचि निरन्तर विकसित होती जा रही है युद्ध और शोषण के कोलाहलों के भीतर मानवता की देवी चुपचाप किन्तु निश्चित गति से विजय–यात्रा की ओर बढ़ रही है। *** इतिहास बतलाता है कि यह यात्रा चाहे अदृश्य शक्ति द्वारा संचालित है तथापि मनुष्य कभी–कभी मोह से, लोभ से , भय से, ग्रस्त होने लगता है। ऐसी स्थिति में भागवत कहता है कि तत्त्व चिन्तन से मुक्ति सम्भव है तत्त्व चिन्तन अर्थात् तत् का भाव।'तत् 'अर्थात् 'वह' और 'वह' के बारे में सन्तों का अनुभव है कि 'विकास की प्रक्रिया में संसार में जो नाना प्रकार की चीजें दिखाई देती हैं, वह वस्तुतः एक ही मूल सत्य का नाना रूपों में विकास है यही चिन्तन वस्तुतः जीव धर्म है, संक्षेप में इसको मानवता कहते है। ****

आधुनिक युग में अलौकिक शक्तियों पर मनुष्य का विश्वास नहीं रहा है बुद्धिवाद के

---

* मनुस्मृति — 2/20
** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपान्यासों में सांस्कृतिक बोध– संजीव भानावत (उद्धृत) — पृ0 51
*** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावाली — पृ0 383
**** आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावाली — पृ0 415

आलोक में आज के विज्ञान ने उस शक्तियों की निस्सारता सिद्ध कर दी है। आस्था का केन्द्र आज स्वयं मनुष्य ही बन गया है। सम्भवतः यही कारण है कि महाभारतकार वेदव्यास ने मनुष्य से श्रेष्ठतर किसी को नहीं माना, यथा–

'' गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रबीमि।
न मानुषाच्श्रेष्ठतरं हि किंचित।।''*

श्रेष्ठ रचनाकार की अपनी जीवन दृष्टि और विचारधारा होती है। सियारामशरण जी की एक निश्चित जीवन दृष्टि है, इस विचारधारा का प्रेरणा स्रोत भारतीय संस्कार है। यदि हम किसी एक पारिभाषिक शब्द से उनकी विचारधारा को पहचानना चाहें तो उसे मानवतावाद कह सकते हैं। उन्होंने अपनी कृतियों में मानव–जीवन की गरिमा को प्रेम, सहानुभूति दया, करूणा, त्याग, सेवा–मैत्री और परोपकार को भीतर से पहचाना और उजागर किया है। वे मानव–कल्याण को सर्वोपरि मानते है। अमीर–गरीब,छोटे–बड़े, कुलीन –अकुलीन के भेद को उन्होंने कही महत्त्व नहीं दिया है। मनुष्य स्नेह, ममता, करूणा सदाशयता और सद्भाव से जुडकर बडा होता है। ऐसा उनका निशिचित मत या विचार है। सियारामशरण गुप्त जी ' अनाथ' कृति में यमुना के दुःख दारिद्रय का वर्णन करते हैं भूख का दारूण चित्र, मोहन की पीड़ा, चोरी का झूठा लांछन, पुलिस का अत्याचार, काबुली का ऋण, पुत्र मुरलीधर की अकाल मृत्यु आदि और फिर यह प्रश्न

'' पशु तुल्य हम लाखो मनुजहा ! जी रहे क्यों लोक में
जीते हुए भी मर रहे पड़ कर विषय दुःख शोक में।।'' **

पुलिस का अत्याचार –

'' मोहन तुरन्त रूक गया वहीं पर डर के-
यों बोला चौकीदार पास आकर के।
क्या कुछ घमण्ड हो गया तुझे रे साले।
छोडूँगा तुझको कसर बिना न निकाले।।'' ***

मोहन की पीड़ा – '' हो गई देह अवसन्न दीन मोहन की,
जड़–सी मूर्च्छित– सी हुई अवस्था मन की।
बस था मानो वह दुःख–शोक पाने को,
आखिर जाना ही पड़ा उसे थाने को।''****

काबुली का ऋण –'' दिया था जिसने ऋण का दान,
खड़ा था वह काबुली पठान।
हुई वह और धैर्य्य से हीन
देखकर यह आपत्ति नवीन।।'' *****

---

* महाभारत – मोक्षधर्म पर्व – 298 / 20
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 86
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 75
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 76
***** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– अनाथ पृ0 83

'मौर्य–विजय' हो या 'अमृत–पुत्र' 'उन्मुक्त' हो या 'नकुल' सभी काव्यों में उन्होंने मनुष्य की आंतरिक शुचिता और मांगल्य का उन्मुक्त वर्णन किया है।

" भारत–भाग्य का स्वच्छ था सु–प्रसन्न था,
था सर्वत्र सुकाल, विपुल–धन और अन्न था।
फैला था आलोक ज्ञान–रूपी दिनकर का,
हटा रहा था अन्धकार जो भूतल भर का।।" (मौर्य्य–विजय) *

ईसा में कवि गुप्त जी ने महात्मा गाँधी की अप्रत्यक्ष छाया देखी, तो यह कहा –

" राम वन–वन में तुम्हारा संचरण,
हो जहाँ, जिस रूप में नत हो सकूँ।
शूल वह जो भव–विभव पातक हरण
स्वेरित करके कंठ में टुक ढो सकूँ।।" (अमृत-पुत्र) **

" यहाँ सुश्रूषालय में
आकर जैसे पहुँच गया हूँ निजी निलय में।
सबके सब स्नेहार्द्र कर रहे सेवा मेरी।
चतुर चिकित्सक उगा रहे है फिर–फिर फेरी।।" (उन्मुक्त) ***

" कहा नकुल ने– " तात धन्य है मेरा जीवन,
सोच रहा हूँ, कौन अधिक मुझसे सुकृत जन ?
पीछे आकर नहीं किसी विधि से में वंचित,
मेरा भाग्य सुदीर्घ चार अंकों तक संचित।।" (नकुल) ****

यह औदार्य समस्त सदाशयता के साथ गुप्त जी के काव्य में विद्यमान है और इसी से वे मानवतावादी कवि है। उनकी वैष्णव भावना अपनी नैतिक अर्थवत्ता में मानवता की उच्चतम प्रतिष्ठा का द्योतक है।

'नकुल' काव्यकृति में मानवता की पूजा का स्वरूप सर्वत्र प्रेम का पूर्ण प्रसारण है, उसका अमृत ह्द, जिसमें नकुल की वीणा के स्वर साधन में युधिष्ठिर की त्यागोत्कर्ष मणिभद्र के हृदय को जीत लेता है। क्योंकि –

" लेना होगा निखिल क्षेमव्रत निर्भय हमको।
देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुतम को।। " *****

सियारामशरण गुप्त का मानवीय औदात्य मनुष्य–प्रेम और उसके सौहार्द्र का पक्षधर

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– मौर्य-विजय पृ० 44
** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– अमृत-पुत्र पृ० 145
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– उन्मुक्त पृ० 456
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– नकुल पृ० 102
***** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– नकुल पृ० 131

रहा है। आत्मोत्सर्ग में गणेश शंकर विद्यार्थी का आत्मोत्सर्ग और नौआखाली का रमजान इसके उदाहरण है –

विद्यार्थी जी के आत्मोत्सर्ग –

" एक–दूसरे को आदर से
गले लगा सकते जो हाथ,
धिक् है पत्थर लिए खड़े हो।
उनमें घोर घृणा के साथ!" *

मानवीय एकता का आधार ऊँच–नीच का भेद–भाव तोड़कर जिस गहरी संवेदना का प्रमाण बनता है, उसका चित्रण गुप्त जी ने " अमृत–पुत्र में ईसा मसीह के जीवन का दो प्रसंगों में किया है। निम्न वर्ग की सामरी से ईसा जल माँगते हैं, वह आश्चर्य में पड़ जाती है –

" कह रहे है कौन ये – 'जल दो मुझे'।
ग्राह्य होगा जल इन्हें इस हाथ का ।।
सामरी के नयन झर–झर–झर उठे।
तड़पती–सी लहरती मूर्च्छित पड़ी।।" **

मनुष्य की यह विकास यात्रा इसी प्रकार चलती रहेगी। क्षण भर को यदि अर्जुन घबरा भी उठेगा तब कृष्ण उसे आत्मबल प्रदान करेंगे। 'धूमकेतु' जैसे रास्ते का उल्कापिंड मनुष्य को सदा भयभीत नहीं कर पायेंगे। अतः निराश होने की कोई बात नहीं है जो लोग केतु को देखकर ही घबरा गए है उन्हें समझना चाहिए कि मनुष्य की बुद्धि को जिस शक्ति ने इतनी महिमा दी है, वह उसे केतु से हारने नहीं देगा'। ***

सामाजिक दायित्व, नारी भावना, करूणा के साथ–साथ सियारामशरण गुप्त जी का काव्य सांस्कृतिक निष्ठा और व्यक्ति की प्रतिष्ठा के आग्रह का काव्य है। उसे कवि ने नैतिक मूल्यों और मानवीय उच्चता के साथ सामान्य लोक जीवन की अवधारणाओं से पुष्ट किया है। इसीलिए डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने कवि के विषय में लिखा है – "नर की प्रतिष्ठा के वे भक्त हैं और मानवोचित गुणों की व्याख्या और जीवन में उसकी प्राप्ति को ही वे व्यक्ति और समष्टि का ध्येय मानते है। **** कवि का यह कथन उसकी मानवतावादी चेतना का सुष्ठु परिचायक है" मैं अनुभव करता हूँ, मुझे जो भंयकर पीड़ा होती है उससे भी अधिक पीड़ित जन यहाँ हैं, उनकी पीड़ा की अनुभूति निज की पीड़ा का शमन करती है। ***** पीड़ा के ऐसे व्यापक दर्शन की अनुभूति सम्भवतः कवि सियारामशरण को ही हो सकती है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– आत्मोत्सर्ग पृ0 222

** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– अमृत-पुत्र पृ0 148–150

*** हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग –9 पृ0 126

**** सियारामशरण गुप्त – डा0 नगेन्द्र पृ0 17

***** सियारामशरण गुप्त – डा0 नगेन्द्र पृ0 07

<u>5. राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय भावना</u> :– ' राष्ट्र' शब्द का सीधा अर्थ है राज्य, देश, प्रदेश आदि। ' वाद' शब्द जब 'राष्ट्र' के साथ जुड़ जाता है तब 'राष्ट्रवाद' शब्द 'देश विषयक विचार' का वाचक बन जाता है। ' विचार' बुद्धि का विषय है इस प्रकार जब देश के प्रति मस्तिष्क में विचार उठता है, तब उसे राष्ट्रवाद का नाम देते हैं। ' राष्ट्रीयता' शब्द का अर्थ है राष्ट्र से संबंध रखने वाला। राष्ट्र से संबध रखने वाली भावना को ' राष्ट्रीय भावना' कहते हैं। इस प्रकार ' राष्ट्रवाद' एक विचार है, जबकि राष्ट्रीयता की भावना ह्रदय से संबधित है।

'' राष्ट्री' शब्द ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु वहाँ उसका अर्थ है जनपद से। विद्वानों का कथन है कि प्राचीन आचार्यो ने भाव–विवेचन के अन्तेर्गत राष्ट्रीयता जैसे किसी भाव का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु विगत इतिहास से इस भाव की सर्वातिशयता या प्रबलता सुस्पष्ट हैं। क्योंकि अपने ही देश में हमने अनेक युवकों एवं महापुरूषों को राष्ट्रीयता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए देखा है। इतना महत्त्व रखने वाले इस भाव का स्थायी भावों के रूप में साहित्य में मान्यता इसलिए नहीं दी गयी, क्योंकि यह सर्वकालीन या सार्वकालिक भाव न होकर एक आगन्तुक भाव है, जो उस समय उत्पन्न होता है, जब किसी देश पर सामूहिक रूप से विदेशी सत्ता का दबाव या आधिपत्य होने लगता है या हो जाता है। वैसे 'राष्ट्रीयता' अंग्रेजी के नेशनिलिज्म का पर्याय है। जिसके लिए इनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका में कहा गया है– ।" ***a state of mind in which the supreme layalty of the indindinal in fell to be due to the nation-state*** " डॉ0 सियाराम तिवारी के अनुसार '' भारतीय जन–जीवन में आधुनिक अर्थ में राष्ट्रीय भावना का प्रथम विस्फोट 1857 ई0 में हुआ '' पर यह सफल नहीं हो सका। काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का प्रचार–प्रसार करने वाले वैतालिक के रूप में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र उल्लेखनीय हैं। इसी परम्परा में कविवर सियारामशरण गुप्त ने अपने काव्य में अनेकत्र राष्ट्रीय भावना का प्रचार–प्रसार किया है।

उन्हें इस देश की धरती से अनन्य ममत्व है। इसकी शस्य श्यामलता कवि के मन को सदैव मोहित करती है। अपने प्रारम्भिक काव्य ' मौर्य्य–विजय' में उन्होंने गया था। यथा –

'' पुण्यभूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी,
माता के सम मातृभूमि है यही हमारी।
हमको ही क्या सभी जगत को है यह प्यारी,
इतनी गुरूता और कहीं क्या गई निहारी ?

यह वसुधा सर्वोत्कृष्ट है,
क्यों न कहें फिर हम यही
जय–जय भारतवासी कृति
जय–जय–जय भारतमही।।'' *

उनहें धरती से अनुराग है और इसी से –

'' इस वसुधा को प्यार करूँगा तब भी
इस पर जो यह उन्मुक्त असीम गगन है।
छोड़ूँगा अंचल नहीं धरा का तब भी,
इसकी माटी निर्ज्वलन सिन्धु सुस्नाता।।

स्वाधीनता के अरूणोदय में कवि धरित्री माँ को ' कोटि–कोटि सन्तति का कोटि–कोटि नमस्कार' करता है। स्वतन्त्र देश में गुप्त जी कहते है।

'' मेरे घर में हो आज गंगा–जमुना का तीर
नव अभिषेक करूँ आज के सुदिन का।।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय भावना के गायक भारतेन्दु जी सन 1937 ई0 से पूर्व अंग्रेजी राज्य के समर्थक थे पर भारत–दुर्दशा के रचनाकाल से वे अंग्रेजों के विरोध पर उतर आये। उनकी राष्ट्रीयता की भावना में मुसलमानों की सहभागिता स्वीकृत नहीं थी क्योंकि वे मंदिरों को ढहाकर मस्जिद बनाने वाले मुसलमानों को कभी भी भारत का अंग नहीं मान सकते थे पर कवि सियारामशरण गुप्त अपनी काव्यकृति ' आत्मोत्सर्ग' में भी राष्ट्रीय भावना में दोनों के योगदान को दर्शाते हुए कहते हैं –

'' अब मत भोगो, अपने हाथों
और बहुत तुमने भोगा।
हिन्दु –मुसलमान दोनों का
यह संयुक्त राष्ट्र होगा।'' **

मातृभूमि के प्रति' कविता में भी कवि गुप्त जी की आत्मीयता अवलोकनीय है –

'' मातृभूमि तेरे अञ्चल में उड़ती है यह धूल,
बैठी है तू छिन्न– वसन यों खिन्न–वदन सुध भूल।
X X X X
मेरी माँ तू देख चुकी है वह दुकाल –भूचाल
कभी किसी भी भय–प्रसंग में झुका न तेरा भाल।'' ***

'नोआखाली' की ही एक और कविता 'एक हमारा देश ' भी अति लोकप्रिय सिद्ध हुई है –

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– मौर्य विजय पृ0 48
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– आत्मोत्सर्ग पृ0 250
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– नोआखाली में पृ0 50

" एक हमारा ऊँचा झण्डा एक हमारा देश,

इस झंडे के नीचे निश्चित एक अमिट उद्‌देश्य।। *

'जय हिन्द' कविता में कवि की विलक्षण आत्मीयता देश की महिमा, गरिमा से जुड़ी है क्योंकि उसका देश स्वतन्त्र हो चुका है। कवि ने इस कविता के माध्यम से देश को संबोधित किया है और पाठक के ह्रदय में उसके अतीत गौरव, वर्तमान हर्षोल्लास तथा भावी आशा का प्रभावशाली काव्यात्मक वर्णन किया है। **

इस कविता में कवि ने ' वसुधैव कुटुम्बकम्' की चर्चा करते हुए यह भी संकेत किया है कि यह नवोदित स्वतन्त्र भारत कभी भी किसी राष्ट्र या जाति की प्रगति में बाधक नहीं होगा और वह सर्वजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय का लक्ष्य ही अपनायेगा जायें। कवि की भावना का आस्वादन उसके ही शब्दों में करणीय है –

कवि के स्वतंत्र देश
तेरे लिए कौन नया गीत आज गाऊँ मैं ?
उमड़ हैं जो भाव अशेष
कैसे किस भाँति उन्हें स्वर में सजाऊँ मैं ?
क्षिति के किरीट रत्न तेरे हिमालय से,
ला सकूँ पवित्रता गगन की,
तेरे पग धोते हुए सागर के जल से
X X X
तेरे घट में हो आज गंगा –यमुना का नीर,
भावित हो संगम का तीर्थ, तीर;
छन्द में समुद्‌वेलित हो उठे प्रमोद भरी
रेवा, शोण वेत्रवती, पंचनद, गोदावरी
उल्लसित प्रेम–प्रेमी
शिप्रा, सिन्धु, सरयू, पवित्र कृष्णा, कावेरी
सबके पुनीत अभिमज्जन से
नव अभिषेक करूँ आज के सुदिन का, ***

'जयहिन्द' लघु काव्य में उसे विश्वास है कि 'प्रेममयी' श्रेष्ठ कविताएँ होंगी, अभिव्यक्त राष्ट्र आत्मबल से सशक्त होगा, उसकी निज की भाषा गौरवान्वित होगी, क्योंकि पराभव और पराधीनता का पाप पंक धुल गया है।

गंगा–यमुना के प्रवाह हे,

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– नोआखाली में पृ0 72

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डा0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 116

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डा0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 117

अमल अनिन्द्य हमारे हिन्द,
जय–जय भारतवर्ष हमारे
जय–जय हिन्द, हमारे हिन्द।। *

'वीर बालक' कविता में बालक अपनी माँ से आशीर्वाद लेकर देश की रक्षा के लिए जाता है और कहता है–कि मैं अपने पथ से विचलित नहीं होऊँगा।

" मातृभूमि के लिए मरेंगे"
यद्यपि उनको या यह हर्ष
उसकी भावी दशा सोचकर
थे परन्तु वे कम न विमर्ष।"**

'फुटकर कविताएँ' में संगृहीत रानी लक्ष्मीबाई कविता राष्ट्रवाद से ओत–प्रोत है –

" करके निज स्वातंत्र्य हेतु सर्वस्व निछावर
आहुत होकर मुक्ति यज्ञ की बलि वेदी पार,
श्री लक्ष्मीबाई ने लघु में लिया वृहत को,
निज झाँसी में अखिल प्रतीक दिया भारत को।।" ***

राष्ट्रप्रेम की इस मंजूषा में सियारामशरण गुप्त जी ने मानवीय उच्चता, नैतिकता व समानता के रत्न भी संजोकर रखे हैं। महात्मा गांधी जी के प्रभाव में अहिंसा के वे प्रबल समर्थक रहे। युद्ध लिप्सा से उन्हे जुगुप्सा भी है।

भारतीय राष्ट्रीय भावना का एक महत्त्वपूर्ण आयाम विश्व–कल्याण–भावना का रहा है। संकुचित राष्ट्रीय भावना राष्ट्रों को स्वार्थी और दम्भी बनाती है। उससे ग्रस्त होकर संसार के राष्ट्र अन्य राष्ट्रों का अहित करने से नहीं चूकते। गत दो विश्व युद्ध इस संकुचित भावनाओं के ही कुपरिणाम कहे जा सकते है।

ऐतिहासिक कथानकों पर आधृत रचनाओं में भी गुप्त जी ने अनेक पात्रों के मुख से स्वदेश के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना व्यक्त करायी है –

" बोल उठे तब शूरवीर यों उच्च स्वर से –
छोड़ेंगे हम नहीं धर्म प्राणों के डर से ।
ग्रीकों का बल–गर्व छुड़ा देंगे हम सारा ,
भारत के हम और हमारा भारत प्यारा।।" ****

साथ ही विदेशी आततायियों से देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए गांधी जी द्वारा–चलाये गये चरखा के समय चरखा–गीत द्वारा अपना संकल्प व्यक्त किया –

" सीधे–सच्चे इस तकुए का पक्का–पतलातार।

---

*	सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– (जय हिन्द)	पृ0 136
**	सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– (वीर बालक)	पृ0 378
***	सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड– (रानी लक्ष्मीबाई)	पृ0 381
****	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड– (मौर्य विजय)	पृ0 381

बढ़–बढ़ कर ले सकता है सात समुन्दर पार।।
लूट–पाट करके औरों में,
जलें फुँके उजड़ें ठौरो में,
बन बैठके जो सिरमौरों में,
भय उनका निस्सार।
यहाँ हमारे इस चरखे में सकल सुखी संसार।
सीधे–सच्चे इस तकुए का पक्का–पतला तार।। *

कवि सियारामशरण गुप्त जी उक्त आधार पर भारत की मानवतावादी संस्कृति के कुशल राष्ट्रीय चित्रकार कहे जा सकते हैं।

6. राजनीतिक चेतना – सांस्कृतिक दृष्टि से एक होने पर भी प्राचीन भारत राजनीतिक रूप से भिन्न–भिन्न राज्यों में विभक्त था। यद्यपि अनेक शक्तिशाली शासकों ने सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में आबद्ध करने का प्रयास किया पर केन्द्रीय शासन की शिथिलता के कारण सब बिखर जाता था। गृहयुद्ध और षड्यंत्रों से आतंकित जनता के हाथ सदैव निराशा ही आई। अंग्रेजों के आगमन से भारतीय जन–मानस में सोई हुई राष्ट्रीय चेतना ने करवट ली। यह चेतना निराशा से उत्पन्न नहीं हुई, वरन् यह तो विस्मृत आत्मशक्ति का बोध कराके, जनता को जागरण का संदेश देने वाली थी।

व्यापारियों के रूप में भारत आने वाले अंग्रेजों ने जब शासन सम्बन्धी कार्यों में भी अनुचित हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया तब भारतीय जनता का आक्रोश 1857 के विद्रोह के रूप में फूट पड़ा। यह इस तथ्य का प्रमाण था कि भारतवासी कम्पनी के शासन से उकता गये थे। ** लेकिन मेरठ से प्रारम्भ किया गया यह विस्फोट ग्रीष्मकालीन हवा के झोंके के समान क्षणिक और आकस्मिक ही रही। महारानी विक्टोरिया ने अंग्रेजी सरकार के प्रति भारतीय जनता में असन्तोष और अविश्वास को शान्त करने की उद्घोषणा की कि भारतीयों को उनकी योग्यतानुसार उचित पद प्रदान किया जायेगा तथा उनकी भलाई से ही अंग्रेजी सरकार की उन्नति हो सकेगी। यह क्रान्ति यद्यपि सफल न हो पायी थी, इसके परिणाम स्परूप भारतीय जनमानस में संगठित राष्ट्र–भावना का संचारण होने लगा। यद्यपि इस विद्रोह के दमन के पश्चात भारत अंग्रेजी साम्राज्य की बेड़ियों में जकड़ा गया। *** और उसका विधिवत उपनिवेश बन गया। पर अंग्रेजों को यह अनुभव होने लगा कि अगर अब कुछ कठोर कदम न उठाए गए तो निश्चय ही इस ज्वालामुखी का विस्फोट उन्हें भस्म कर देगा ****

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (फुटकर कवितायें) पृ0 382
** 1857 – सुरेन्द्र नाथ सैन पृ0 405
*** कांग्रेस का इतिहास– पट्टाभि सीतारमैया पृ0 5
**** आधुनिक भारत पृ0 218

पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और अंग्रेजों के शासन की एकविध प्रणाली के कारण भारतीय जनता में राजनीतिक सभाओं द्वारा परिवर्द्धित हुई जिनमें ' पूना सार्वजनिक सभा' और ' इण्डियन ऐशोसियन' आदि उल्लेखनीय है। * 1883 ई0 में इल्बर्ट बिल का वापिस लिया जाना भारतीय जनता के असन्तोष की वृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ। हूम साहब ने प्रमुख भारतीयों का समर्थन प्राप्त करके 'भारतीय राष्ट्रीय सभा' की स्थापना की।

बींसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्ष लार्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। बंगभंग के द्वारा उसके दुष्कृत्य शिखर पर पहुँच गए। इसके प्रति क्रियास्वरूप बंगाली जनता ने स्पष्ट रूप से सरकार को चुनौती दी। कलकत्ता अधिवेशन (1906) में कांग्रेस ने इतिहास में प्रथम बार ' स्वराज्य' को अपना लक्ष्य घोषित किया। मुस्लिम लीग का जन्म बंग–भंग की नीति का ही स्पष्ट परिणाम था। 1914 ई0 में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया, जिसमें टर्की ने अंग्रेजों के विरूद्ध जर्मनी का साथ दिया। यद्यपि कांग्रेस के नरम दल के नेताओं ने अंग्रेजों को अपना पूरा सहयोग दिया। ** परन्तु इससे राजभक्त मुसलमान अंग्रेज विरोधी हो गए। तिलक ने 1916 ई0 में 'होमरूल लीग बनाई जिसमें श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने भी अपना पूरा योगदान किया। 13 अप्रैल,1919 ई0 के दिन जलियांवाला बाग की अमानुषिक घटना हुई, जिसमें 400 व्यक्ति काल के ग्रास बन गए तथा 1200 घायल हुए।

महात्मा गांधी के राष्ट्रीय रंगमंच पर अवितरित होने से भारत की राष्ट्रीयता को एक नवीन मोड़ मिला। विरोधियों के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार था और कूटनीति से वे कोसों दूर थे। प्रारम्भ में वे सरकार के सहयोग द्वारा ही देश को स्वतन्त्रता की ओर ले जाना चाहते थे पर परिवर्तित परिस्थितियों में वे असहयोग के दृढ़ समर्थक हो गये। दिसम्बर, 1920 में हुये कांग्रेस के ' नागपुर अधिवेशन' के पश्चात कार्यक्रम के आधार पर राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। साम्प्रदायिक एकता , अस्पृश्यता–निवारण, मादक द्रव्य –निषेध, खादी का प्रयोग, गांवों की सफाई, बुनियादी शिक्षा प्रणाली, नारी जागरण, स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी शिक्षा, राष्ट्रभाषा का प्रचार और धार्मिक समानता के प्रयत्न इस आन्दोलन के प्रमुख कार्यक्रम थे। अहमदाबाद के अधिवेशन में इस आन्दोलन को तब तक चलाने का निश्चय किया गया, जब तक हिन्दुस्तान का 'शासन–प्रबन्ध ' गैर जिम्मेदार संस्था के हाथों से निकलकर जनता के हाथों में नहीं आ जाता।

1 फरवरी, 1922 ई0 को गाँधी जी ने बारडोली गाँव में सामूहिक अवज्ञा आन्दोलन की तैयारी की, लेकिन दुर्भाग्यवश 5 फरवरी को ही गोरखपुर जिले के चौरी चौरा गाँव में हुई हिंसात्मक घटना के कारण इस आन्दोलन को स्थगित कर देना पड़ा। 1926 ई0 में कांग्रेस ने सरकार को फिर से सहयोग देने का निश्चय किया, जिसका

---

* इन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया– आर0सी0 मजूमदार पृ0 889

** भारत का वैधानिका एवं राष्ट्रीय विकास – गुरूमुख निहाल सिंह पृ0 276

लाभ उठाते हुये सरकार ने फिर से साम्प्रदायिक वैमनस्य को उभार दिया। 1927 ई0 में लाला लाजपत राय के प्रस्ताव पर केन्द्रीय असेम्बली नें भी साइमन कमीशन के बहिष्कार –प्रस्ताव को पास कर दिया। उन्होंने सरकार की इस गैर–कानूनी कार्यवाही की निन्दा की। इसी वर्ष सरदार भगत सिंह द्वारा केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने की घटना हुई। 31 दिसम्बर 1929 की अर्द्ध–रात्रि को कांग्रेस अध्यक्ष पं0 जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय ध्वजारोहण किया। 26 जनवरी 1930 को सम्पूर्ण भारत में स्वतन्ता दिवस मनाया गया। स्वातन्त्र्य–संग्राम का लक्ष्य ' पूर्ण स्वराज्य' घोषित किया गया।

सियारामशरण के काव्य में निहित आदर्शों मूल्यों आदि को दृष्टि में रखकर यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनमें राजनीतिक चेतना नहीं थी। देश के तत्कालीन बड़े–बड़े राजनेताओं से उनका सम्पर्क एवं परिचय था। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, पं0 जवाहर लाल नेहरू, गणेश शकर विद्यार्थी ,आचार्य कृपलानी, पुरूषोत्तमदास टण्डन, सम्पूर्णा नन्द, किशोर लाल मश्रुवाला, महादेव देसाई, श्रीप्रकाश, श्री मन्नारायण आदि के नाम यहाँ गण्य है। सन् 1940 में चिरगाँव आये हुए सुभाष चन्द्र बोस के प्रति भी कवि का हार्दिक राग व्यक्त हुआ था। – 'थ्रू कांग्रेस आई' नामक पुस्तक पर कवि ने नेताजी के हस्ताक्षर भी प्राप्त किये थे, जिसे वे बहुत सहेज कर रखते थे। पं0 जवाहरलाल नेहरू के समक्ष कविवर ने बालको को रचनात्मक शिक्षा देने के लिए एक योजना प्रस्तुत की थीं जिस पर नेहरू जी मुस्कराकर रह गये थे।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि कविवर गुप्त की राजनीतिक चेतना का क्या स्वरूप है। इस विषय में सर्वप्रथम डॉ0 नगेन्द्र को उद्धृत करना समीचीन होग जिन्होंने कहा है –

'' हिन्दी में गाँधी जी के तत्त्व चिंतन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति केवल एक ही कवि में मिलती है और वास्तव में वही एक ऐसा कवि है जो अपनी सात्विक साधना के बल पर उसे अपनी चेतना का अंग बना सकता है। ये कवि है–''सियारामशरण गुप्त''।

गाँधी जी के तत्तवचिन्तन को नैतिक तथा राजनैतिक संर्दभों में देखा गया है, जैसा कि डा0 वी0पी0 वर्मा ने लिखा है –

'' गाँधीजी एक उच्च कोटि के राष्ट्रीय नेता पैगम्बर और शिक्षक थे। उन्होंने समाज के पुनर्निमाण और मनुष्य के उत्थान के लिए कुछ मौलिक विचारों पर बल दिया। इस रूप में उनको नैतिक और राजनीतिक विचारक माना जाता है।''

गाँधी जी की मान्यता थी कि राजनीति और धर्म दोनों एक ही वस्तु के दो पहलू है। उनके धर्म ने ही उन्हें राजनीति में खींच लिया था। उनके धर्म का आधार सत्य और अहिंसा था। वे राजनीति को सत्य और अहिंसा के अनुसार ही चलाना चाहते थे।

डॉ0 परमात्माशरण के मतानुसार – '' गाँधीजी की महत्ता इसी में है कि उन्होंने कुटिल राजनीति को शुद्ध किया तथा उसे वर्तमान युग की कूटनीति से ऊँचा उठाकर धर्मनीति के उच्च स्तर पर पहुँचा दिया।''*

स्वयं गाँधीजी ने यह स्वीकार किया था कि उन्हें धर्म ने ही राजनीति में धकेल दिया है। वे कहते थे– '' यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ, तो केवल इसलिए कि राजनीति हमें साँप की कुण्डली की तरह चारों ओर से घेरे हुए है। हम कोशिश करके भी उसके घेरे से बाहर नहीं आ सकते। इसलिए मैं साँप से लड़ना चाहता हूँ। '' हाबहाउस' ने किसी सीमा तक गाँधीजी की ऐसी राजनीतिक शिक्षाओं को सूचीबद्ध करने का यत्न किया। उनके मतानुसार '' अहिंसा (किसी को हानि न पहुँचाना) का अभिप्राय है – असीम प्रेम। यह सब से बड़ा नियम है। केवल इसी के द्वारा ही मानव–जाति को बचाया जा सकता है। अहिंसा और सत्य एक–दूसरे से अभिन्न है और दोनों एक –दूसरे की पूर्वकल्पना करते हैं। अहिंसा वीरों का शस्त्र है। अहिंसा का पालन करने वाला व्यक्ति तलवार की शक्ति रखता हुआ भी कभी तलवार नहीं उठाता। अहिंसा का पालन करने वाला व्यक्ति किसी भी अंग्रेज को मन, कर्म, और वाणी से हानि नहीं पहुँचाना चाहता। **

अहिंसा और सत्य के अतिरिक्त ' सत्याग्रह' का अर्थ उनके अनुसार – सत्य के चिपटे रहना था' इसे उन्होंने प्रेम–शक्ति या आत्मिक शक्ति कहा था। सत्याग्रह का व्यापक सन्दर्भों में प्रयोग उनके अनुसार किया जा सकता था विदेशी आक्रमण का मुकाबला करने के लिए सत्याग्रह, जातिवाद की समाप्ति के लिए सत्याग्रह, अत्याचारों को मिटाने और स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह। अपने इन्हीं विचारों के साथ उनकी सच्चे परिभाषा उनकी दृष्टि में यह थी ''स्वराज्य से मेरा अभिप्राय भारत की उस सरकार से है जो स्त्री,पुरूष, वासी, अधिवासी किसी का भेद किये बिना ऐसी बालिग जनता के बहुमत से बनी हो, जो राज्य को अपना श्रम देते हों और जिन्होंने मतदाता सूची में स्वयं अपना नाम दर्ज करा लिया हो। मुझे आशा है स्वराज्य थोड़े से लोगों के सत्याग्रह करने से नहीं आएंगा बल्कि स्वराज्य तब होगा जब सभी में इतनी सामर्थ्य आ जाये कि वे सत्ता का दुरूपयोग होने पर सत्ताधारियों का विरोध कर सकें। दूसरे शब्दों में – स्वराज्य की प्राप्ति तब होगी जब जनता को इतना शिक्षित कर दिया जाय कि वह सत्ता का संतुलन और नियंत्रण कर सके (यंग इंडिया)।
अहिंसात्मक राज्य की कल्पना भी गाँधी जी की राजनीति का लक्ष्य था। वे तो राज्य को जनता की अधिक से अधिक भलाई के लिए एक साधन–मात्र मानते थे। अत्याचारी कानूनों के विरूद्ध वे व्यक्ति को अहिंसात्मक ढंग से विरोध करने की आज्ञा भी देते थे।

---

* भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन – डा0 परमात्मा शरण पृ0 33

** भारत का संवैधानिक विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन पृ0 428.

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त आदर्श मानदण्ड वास्तव में गाँधी जी की राजनीति चेतना के आधार थे और इन्हीं आदर्शों को लेकर कविवर सियारामशरण गुप्त ने अपने काव्य का सृजन किया अब हमें देखना है कि कवि गुप्त ने कहाँ–कहाँ उपर्युक्त आदर्शों का विनियोग किया। राजनीतिक चेतना का आरंभिक लक्षण है अतीत के अविस्मरणीय गौरव, शौर्य आदि का गुणानुवाद। मौर्य–विजय (सन् 1914) नामक खण्डकाव्य में किया गया है। उल्लेखनीय है कि यह रचना गाँधी जी से संपर्क (सन् 1929) से पूर्व की है। चन्द्रगुप्त सम्राट के वीर्य–विक्रम ने भारत की कीर्ति की दिग्–दिगन्त तक विस्तीर्ण कर दिया इसीलिए कवि ने लिखा –

" चन्द्रगुप्त सम्राट हमारे है बलधारी ,
सिल्यूकस की सर्वशक्ति है जिनसे हारी।
जिनका वीर्य विलोक मुग्ध मन में हो भारी,
पहनाई जय–माल जयश्री ने सुखकारी।
हे हरि गुज्जित हो स्वर्ग तक
यह विजयध्वनि हर्षमय,
फिर एक बार हे विश्व! तुम
गाओ भारत की विजय। " *

' अनाथ' (सन् 1923) में ग्रामीण जीवन की उन विडंबनाओं (जमींदारी–प्रथा, बेगारी, शोषण, पुलिस के अत्याचार) का यथार्थवादी चित्रण है, जिनसे सहज ही तत्कालीन रूग्ण राजनीतिक, स्थिति व्यंग्य हो जाती है। '** दूर्वादल' (सन् 1929) के राष्ट्रीय प्रेम ' आर्द्रा' (सन् 1927) में दहेज प्रथा, अस्पृश्यता, आत्मोत्सर्ग (सन् 1933) में साम्प्रदायिकता, ' पाथेय' (सन् 1934) की कविता ' शुभागमन' में विप्लव की झाड़ूवाले, (गाँधी) का महत्त्व स्तवन, ' मृण्मयी' (सन् 1936) में 'साधन–साध्य विवेक' (व्यंग्य से गाँधीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन का संकेत) ' बापू' (सन् 1938) में राजनीति के पुरोधा गाँधी–वन्दन आदि विषयों के सन्निवेश से कवि की राजनीतिक चेतना का सुपरिचय प्रापत होता है। वस्तुतः कविवर सियारामशरण की राजनीतिक चेतना के अधिष्ठान गाँधी जी ही थे, जिनके विषय में कवि ने स्वयं 24 सितम्बर 1960 को आकाशवाणी, प्रयाग से प्रकाशित अपनी एक वार्ता में ' बापू' काव्य की रचना की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए कहा था –

" बात सन् 1929 की है गाँधीजी ने खादी कार्य के निमित्त भ्रमण के लिए दो महीने का समय उत्तर प्रदेश को दिया था। आगरे पहुँचकर किसी कारण से बापू लगभग एक सप्ताह का विश्राम ले रहे थे। सौभाग्य से आगरे में उन दिनों स्व0 अजमेरी जी भी थे। ...... तब अचानक मेरे मन में आया क्यों न उन्हीं के द्वारा बापू को चिरगाँव आने के लिए आमंत्रित किया जाय। विचार मन में उठा और तदनुसार पत्र भी लिख

---

* सियारामशशा गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड – (मौर्यविजय) पृ0 68
** सियारामशरण – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 58

या। सो इस प्रकार बापू का चिरगाँव आना निश्चित हुआ। .... मेरे आनन्द का क्या कहना !... थासमय बापू पधारे और ग्राम्य के सामान्य समारोह से ही विशेष प्रसन्न होकर लौग गये। ... बापू पास कुछ दिन वर्धा में रह चुका था। .... गर्मी के दिनों में जिस तरह आकाश पर मेघ उमड आते वैसे ही ' बापू' (काव्य) का निर्माण हुआ। जिस दिन यह लिखकर ' मेरे तीर्थ सलिल से प्रभु हैं री गगरी भरी–भरी' काव्य पूरा किया, उस दिन का आनन्द भूल नहीं सका। किसी भी रचना से आज तक वैसे आनन्द की अनुभूति न पहले हुई थी और न आज (तक) हो सकी हैं। *

इस प्रकार कविवर गुप्त की राजनीतिक चेतना के अधिष्ठान गाँधी जी थे, जो उन उदात्त मूल्यों–सत्य, अहिंसा आदि को राजनीति में ही नहीं समग्र क्षेत्रों में प्रतिफलित होते हुए देखना चाहते थे। ' बापू' कविता में ऐसे संकेत द्रष्टव्य हैं –

" बहुत युगों के बाद, पूर्व–पुण्य स्थल की
आशा, अहा! आशा वह झलकी
x x x x x x x
उर्जस्वित, सत्य के अहिंसा के अमृत से
मुक्त , छल–छद्म के अमृत से ।" **

इसी ' बापू' काव्य में कवि की व्यापक दृष्टि मानव मात्र का संभाव्य नाश देखकर मर्माहत है। यहाँ उसकी राजनीतिक चेतना बिश्व–चेतना में पर्यवसित होती है –

" दीख पड़ता है, सब संकट बिसार कर
मानव हैं नाश के कगार पर
x x x x x x
डूबने को हो रहा है, धृण्य मद में,
जागी उनमें हैं पाशविकता
क्रूरता वधिकता।" ***

उपर्युक्त कविता मे 18 वें गीत में व्यक्त देश–प्रेम के विषय में प्रो0 कन्हैयालाल ' सहल' ने लिखा है – " यह देश प्रेम सकुचित नहीं है। यह अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करने के लिए आकुल है। गाँधीजी महानता के प्रतीक हैं और गाँधी वाद इस महानता का पोषण करने वाला संगठन "। **** 'सहल' जी ने आगे भी कहा है – " देश में राजनीतिक चेतना जाग्रत कर निर्भयता का मंत्र फूंक देना बापू की सबसे बड़ी देन है। ***** " गाँधी जी के इसी प्रदेय को काव्य के माध्यम से व्यक्त कर कविवर सियारामशरण ने राजनीति को उपकृत करने साथ गाँधीवाद के दर्शनपक्ष को उजागर किया हैं। यह दर्शन पक्ष आगे चलकर ' उन्मुक्त' रूपक (प्रकाशन काल 1939 ई0) में यही अहिंसावादी दृष्टि विश्व–युद्ध की विर्भीषिका का समाधान प्रत्यक्ष करती है। जहाँ तक प्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन साम्राज्यवाद के विरूद्ध शंखनाद करने की माँसल राजनीतिक चेतना का

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 80
** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 89
*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 95
**** सियारामशरण–डॉ0 नगेन्द्र पृ0 189
***** सियारामशरण–डॉ0 नगेन्द्र पृ0 193

प्रश्न है, यह पंक्तियाँ इसे भी सिद्ध करने में समर्थ होंगी–

" जाती है समुद्र ग्रास करने को स्थल से,
और फिर छिप के अतल से
बढ़ती है ऊपर अनन्त शून्य पथ में
आरूढ़ा महाविनाश रथ में,
बरसा रही है प्रज्वलन्तांगार'
कैसा घोर हा हा कार !" *

यह 'हाहाकार' अंगेजी साम्राज्यवाद का ही किया हुआ तो है।

* सियारामशरण --डॉ0 नगेन्द्र पृ0 193

अध्याय—षष्ठ

कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य में धार्मिक एवं नैतिक प्रवृत्तियाँ

1. साहित्य।
2. धर्म एवं संस्कृति।
3. भक्ति का स्वरूप।
4. भक्ति के भेद –
   (i) निर्गुण भक्ति।
   (ii) सगुण भक्ति।
5. सियारामशरण गुप्त की भक्ति–भावना।
6. धार्मिक जीवन की आस्थायें एवं विश्वास।
7. धार्मिक ग्रन्थों की मान्यता।
8. तीर्थ स्थानों में आस्था।
9. पुनर्जन्म की मान्यता।
10. दान का महत्तव।
11. अवतार सम्बन्धी मान्यता।
12. आचार–नीति
13. सत्य।
14. अहिंसा।
15. परोपकार।
16. सत्संगति।
17. काम।
18. लोभ एवं अहंकार।
19. आदर्श और कर्त्तव्य।
20. प्रवृत्ति मार्ग।
21. निवृत्ति मार्ग।
22. कवि सियारामशरण का भागवत धर्म।

अध्याय षष्ठ

कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य में धार्मिक एवं नैतिक प्रवृत्तियां

1. साहित्य :– हिन्दी में साहित्य तथा अंग्रेजी के (Literature) ' लिटरेचर' शब्द के अर्थ में साहित्य व्यक्त किया गया है। 'साहित्य' शब्द हलायुध कोश के अनुसार ' सहित' शब्द में ' 'एयञ्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। जिसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ हुआ– 'साहितस्य' भावः साहित्यम्' अर्थात् सहित की भावात्मक संज्ञा ही साहित्य है। इस व्युत्पत्ति से दो अर्थ स्पष्ट होते हैं। – सहित अर्थात् हित से युक्त तथा सहभाव। इस प्रकार प्रथम तो साहित्य को मानव के मार्गदर्शन में सक्षम होना चाहिए, द्वितीय उसमें शब्द और अर्थ का सहभाव होना चाहिए।

दृष्टिगोचर सहित शब्द से साहित्य की उत्पत्ति हुई है अतएव धातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द में मिलन का एक भाव होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ भाषा का भाषा के साथ ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ मिलन है। यही नहीं वरन यह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का अतीत के साथ निकट का मिलन कैसे होता है * रवीन्द्र के मतानुसार साहित्य विरोधात्मक तत्त्वों में अविरोध स्थापित कर सब को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास करता है।

इन्साक्लोपीडिया ब्रिटेनिका :– में साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण इस प्रकार दिया गया है '' साहित्य एक व्यापक शब्द है जो यथार्थ परिभाषा के अभाव में सर्वोत्तम विचार उत्तमोत्तम लिपिवद्ध अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत हो सकता है।

मैथ्यू आर्नल्ड :– ने साहित्य को '' जीवन की व्याख्या' कहा है। **

महावीर प्रसाद द्विवेदी :– ने '' ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य कहा है। ***

मुंशी प्रेमचन्द्र :– ने '' साहित्य को जीवन की आलोचना कहा है। ****

जयशंकर प्रसाद :– काव्य या साहित्य को आत्मा की अनुभूतियों का नित्य नया रहस्य खोलने में प्रयत्नशील मानते है। *****

---

* कवीन्द्र रवीन्द्र (साहित्य) पृ0 8

** भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डॉ0 राजकिशोर सिंह (उद्धृत) पृ0 6

*** भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डॉ0 राजकिशोर सिंह (उद्धृत) पृ0 6

**** भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डॉ0 राजकिशोर सिंह (उद्धृत) पृ0 7

***** भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डॉ0 राजकिशोर सिंह (उद्धृत) पृ0 7

कुन्तक के अनुसार :– " साहित्य वह है जिसमें शब्द और अर्थ की न्यूनता और आधिक्य से रहित, परस्पर स्पर्द्धापूर्वक मनोहारिणी तथा श्लाधनीय स्थिति है। " *

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ के अनुसार :– " साहित्य का ' सहित' शब्द मिलन–भाव का सूचक है। वह केवल भाव और भाव का, भाषा और भाषा का, ग्रन्थ तथा ग्रन्थ का ही मिलन नहीं है।, अपितु मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का, अत्यन्त अंतरंग मिलन साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी के सम्भव नहीं है।" **

बाबू गुलाबराय के अनुसार :– "साहित्य शब्द अपने व्यापक अर्थ में सारे वाड्मय का द्योतक है वाणी का जितना प्रसार है वह साहित्य के अर्न्तगत है।" ***

नगेन्द्र के अनुसार :– " आत्माभिव्यक्ति ही वह मूल तत्त्व है जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसकी कृति साहित्य बन जाती है। साहित्य में पद्यवद्ध रचनाओं के साथ गद्यात्मक रचना का समावेश होता है। साहित्य ज्ञानराशि का कोश है। ****

साहित्य का उद्देश्य मात्र मनोरंजन या वाग्विलास नहीं है। मानव की सद्वृत्तियों का विकास करते हुए उसके व्यक्तित्त्व का सर्वांगीण विकास करना साहित्य का लक्ष्य है। साहित्य के अन्तर्गत सभी भावात्मक रचनाओं का समावेश होता है। जो सहृदय को आह्लादित करती है। साहित्य में अनुभूति और कल्पना के मिश्रण से निस्सृत जीवन–सत्य की सौन्दर्य सम्पन्न अभिव्यक्ति की जाती है।

साहित्य के जिस पक्ष पर जिसकी दृष्टि पड़ी उसने उसके उसी स्परूप की व्याख्या की हुई दिखाई देती है। डा0 त्रिगुणायत जी ने समस्त मतों को दृष्टिकोण में रखकर साहित्य की रूपरेखा इस प्रकार बताई है। कि " साहित्य जीवन और जगत के गत्यात्मक सौन्दर्य की वह भावमयी झाँकी है जिनके सहारे नित्य नवीन आनन्द और कल्याण का विधान होता है।***** साहित्य को कला भी माना गया है।

साहित्य में किसी भी विशेष प्रवृत्ति का आगमन यकायक नहीं हुआ करता ,उसकी एक पृष्ठभूमि होती है, एक परम्परा होती है जिसमें वह अदृश्य रहकर पलती रहती है और किसी तत्कालीन परिस्थिति अथवा प्रभाव से प्रेरित होकर अचानक

01 / 17

* कुन्तकः हिन्दी वक्रोक्ति जीवितं, सम्पादक – विश्वेश्वर

डॉ0 राजकिशोर सिंह (उदधृत) पृ0 18

** भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डॉ0 राजकिशोर सिंह (उदधृत) पृ0 14

*** भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डॉ0 राजकिशोर सिंह (उदधृत) पृ0 14

**** भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डॉ0 राजकिशोर सिंह (उदधृत) पृ0 06

***** शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग –1 – डॉ0 त्रिगुणायत गोविन्द

प्रस्फुटित हो जाती है। जहाँ तक सियारामशरण गुप्त जी के साहित्य का सवाल है वह काफी पुराना है, उन्होंने सन् 1912–13 से लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय देश परतन्त्र था, अंग्रेजी शासन, संस्कृति,भाषा और आदर्शो के टकराव से भारतीय जनजीवन अस्त–व्यस्त था। ऐसे समय में सत्य और प्रेम का नारा बुलन्द करने वाले गुप्त जी हाथ, में प्रेम की पताका लिए सत्य के समर में निर्भय और निरस्त्र आगे बढ़ते है। तथा उनकी वाणी '' वसुधैव कुटुम्बकं'' आपसी सदभाव, जातीय सौहार्द्र और राष्ट्रीय ऐक्य के द्वारा साहित्य को सार्थकता प्रदान करती है। गुप्त जी के काव्य में काव्य–कला के संयोजक उपकरणों का विविधता और समृद्धि से प्रयोग हुआ है। किन्तु भाषा, अलंकारादि के स्वरूप पर उनके विचार अत्यन्त विरल है। क्योंकि उन्होंने काव्य–सिद्धान्त संबधी किसी ग्रंथ की रचना नहीं की , बल्कि स्फुट विचारों के रूप में ही काव्य संबधी दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं उन्होंने काव्यांग चर्चा कवि का कर्म न मानकर यही मत प्रकट किया है – '' एक बात निश्चित है कि स्वयं कवि के काव्य –सिद्धान्त प्रायः विश्वसनीय नहीं होने चाहिए। कवि जब वैसी बात करता है तो समझना यही चाहिए कि वह अपनी तत्कालीन स्थिति की सफाई में कुछ कह रहा है। उसकी बात आंशिक रूप में ही सत्य हो सकती है। उपेक्षा आंशिक सत्य की भी नहीं होनी चाहिए। ''*

अन्यत्र वह कहते है , '' काव्य –सिद्धान्त पर कुछ लिखना अपने लिए मैनें कभी उचित नहीं समझा''।** इस कथन के बावजूद उनके काव्य संबधी विचारों के आधार पर साहित्य का काव्य के स्वरूप पर कुछ निष्कर्ष अवश्य निकाले जा सकते हैं। वस्तुतः कवि ने प्रचलित धारणा के अनुसार कवि को साधारण प्राणी मानव प्राणी से भिन्न माना है और 'सुधा' मासिक पत्रिका के अप्रैल 1935 के अंक में प्रकाशित अपने कविता का नामकरण, शीर्षक निबंध में यही लिखा है

''कवि विधाता की एक असाधारण सृष्टि है अथवा कहना यह चाहिए कि कवि सृष्टि न होकर सृष्टा के रूप में ही अपने आप प्रकट हुआ है। उसका गौरव उसी में है, उसे किसी बाहर के उपकरण की आवश्यकता नहीं।''

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य–साधना – सम्पादक– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 165

** रसवन्ती, जुलाई 1963, ' तीन साहित्यकार : तीन पत्र' शीर्षक लेख पृ0 56

''इस प्रकार सियारामशरण जी काव्य में कवि के मनोभावों की उच्छवास मानकर उसमें अन्तः सौन्दर्य की व्याप्ति पर बल देने के पक्ष में है।'' *

उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में भी संक्षिप्त विचार–कथन किया है काव्य–रूपों, अलंक़ार–योजना तथा छन्द विधान के विषय में वे मौन रहे हैं। उनका भाषादर्श निश्चय हीं उल्लेखनीय है। उन्होंने द्विवेदीयुगीन कवियों की अभिधामूलक भाषा के अन्धानुसरण का विरोध किया है और छायावादी काव्य की लक्षणा–व्यंजना–समृद्ध अभिव्यंजना शैली को जिसे क्लिष्ट मान लेने की परम्परा चल पड़ी थी, काव्यासन पर प्रतिष्ठित करने का अनुरोध किया है। यथा – '' साहित्य में प्रसाद गुण की सराहना के मूल में क्लिष्टता का विरोध पाया जाता है। ..... जहाँ वह उचित स्थान पर हैं, वहाँ भी वह आज सहन नहीं की जा सकती। हम उसका आनन्द तो लेना चाहते है पर लेना ही लेना चाहते है , कुछ देने के लिए तैयार नहीं है। लेने के लिए देना पहली शर्त है। इसे पूरा किये विना जो कुछ मिलता है, वह ' प्राप्ति' नहीं उसे भिक्षा कहते है।** इस उक्ति में प्रसाद गुण के प्रति अनास्था प्रकट नहीं की गयी है, किन्तु उसी को अलम् मान लेना उन्हें स्वीकार्य नहीं है। इसका कारण यह है कि वे काव्य में कला संस्कारों को उतना ही प्रयोजनीय मानते है। जितना कि भाव–प्रवाह को अर्थ (भावना) और गिरा (अभिव्यंजना) के संमजन को वे कवि का मूल धर्म मानले है, अन्यथा अभिव्यंजना की शिथिलता भावना को भी समृद्ध नहीं होने देती। उदाहरणार्थ उनकी यह उक्ति इस प्रकार है –

'' गिरा अर्थ से , अर्थ गिरा से
सादर समलंकृत है आज'' ***

सियारामशरण गुप्त जी नें महाकाव्य के अतिरिक्त सभी काव्य रूपों का प्रयोग किया है, अतः उनकी शैली में विविधता सहज–स्वाभाविक है। खण्डकाव्य (नकुल–मौर्य्य विजय) काव्य रूपक (उन्मुक्त) व्यक्ति काव्य अथवा चरित काव्य (बापू,आत्मोत्सर्ग) आख्यानबद्ध कविताओं (आर्द्रा,मृण्मयी,अनाथ) तथा स्फुट विचार–प्रधान कविताओं (पाथेय,दैनिकी,दूर्वादल,जयहिन्द,आदि) की रचना में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है।

(पूर्व मीमांसा)

'' अ ''

'धर्म' धर्मशास्त्र का विषय है। धरति विश्व वअधियते जनैः स धर्मः– अर्थात् जो

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य–साधना – सम्पादक– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 165

** झूंठ– सच, पृ0 117–118

*** बापू,नवम् संस्करण पृ0 9

विश्व को धारण करता है अथवा जो लोगों द्वारा धारण किया जाता है वह धर्म है धर्म की अनेक परिभाषाएँ की गई है। इनमें से कुछ इस प्रकार है :–

(1) वेद प्रणिहितं कर्म धर्मस्तन्मंगलं परम्।
प्रतिषिद्ध क्रिया साध्यः सगुणोऽधर्म उच्यते।

अर्थात् जो परम मंगलकारी कर्म, वेद विहित है,वह धर्म और वेद में जिसका निषेध किया है, वह अधर्म कहलाता है।

(2) प्राप्नुवन्ति यतः स्वर्गमोक्षौ धर्म परायण।
मानवा–मुनि भिर्नूनं स धर्म इति कथ्यते।।

अर्थात् जिस कर्म के द्वारा मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त होते है, पूज्यपाद महार्षियों ने उसे धर्म कहा है।

(3) सत्त्ववृद्धि करो योऽत्र पुरूषार्थोऽस्ति केवलः।
धर्म शीले तमेवाहुर्धर्मं के चिन्महर्षयः।।

अर्थात् जो पुरूषार्थ सत्त्वगुण को बढ़ाने वाला हो, कोई–कोई महर्षि उसको धर्म कहते है।

(4) यो [illegible] जगत्सार्वभौमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी।
[illegible]

अर्थात जो आलौकिकी [illegible] इस जगत् का धारण [illegible]

(5) वैशेषिक सूत्रकार के अनुसार –"धर्म वही है जिससे आनंद एवं निःश्रेयस की सिद्धि होती है।"**

उपर्युक्त सभी वचनों (मतों) का निष्कर्ष यह है कि जिन शारीरिक कायिक और मानसिक कर्मो के द्वारा सत्वगुण की वृद्धि हो, उनको धर्म कहते है। सामान्यतया मनु ने चारों वर्णो (ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य,शूद्र) या मनुष्य मात्र के लिए जो धर्म कहे है वे इस प्रकार है –

(पूर्व मीमांसा)

" ब "

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
एतत् सामासिक धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।।"

---

* मानस पीयूष – खण्ड 2 पृ० 9

** तुलसी साहित्य– विवेचन और मूल्यांकन–आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा व अन्य पृ० 56

अर्थात् प्राणिमात्र पर दया करना, (अहिंसा),सत्य बोलना, चोरी न करना, शुद्धता और इन्द्रियों को वश में रखना –ये संक्षेप में चारों वर्णो के (सभी के) धर्म मनु ने कहे है। * धर्म के जो आठ अंग बताये गये हैं, वे इस प्रकार है –

" इज्याध्ययन दानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अक्षोभ इति मार्गोऽडियं धर्मश्चास्टविधः स्मृतः।।" **

2. *धर्म एवं संस्कृति* :– धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है।*** धर्म ब्रह्म के सत्य स्वरूप की अभिव्यक्ति है, जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व की स्थिति में मिलता है। धर्म का साक्षात्कार परिवार के छोटे क्षेत्र से लेकर समस्त विश्व के भीतर फैला हुआ है। मानव कर्म क्षेत्र के विस्तार के साथ जैसे ही ब्रह्म की व्यापक सत्ता के विस्तार का अनुभव करता है। वैसे ही धर्म का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है। भक्त अखिल विश्व में ब्रह्म की सत्ता को देखता है। उसके भीतर का चित्त जब बाहर के क्षेत्र का साक्षात्कार करता है तभी आनन्द का अविर्भाव होता है।

धर्म एक ऐसा तत्त्व है जो जाति पंथ और सम्प्रदाय की सीमाओं के पार/परे है। यह सब में है कहीं हो, कोई हो और कभी हो सभी जन सभी समयों में इस धर्म की आराधना कर सकते है।, धर्माचरण से जुड़ सकते हैं।

जैसे नाव, नाव में बैठने वाले को पार कराती है केवल देखने और विचार करने वाले को नहीं, ठीक वैसे ही धर्म भी मात्र दर्शक और विचारक का नहीं है वह तो आस्था और आचरण वालों का है। इसीलिए धर्म की महिमा में कहा गया है

" धर्मो कामदुधा धेनुर्धर्मश्चिन्तामणिर्महान ।
धर्मः कल्पतरू स्थेयान धर्मो हि निधिरक्षयः।।"

धर्म कामधेनु है, धर्म महान, चिन्तामणि है, धर्म स्थिर रहने वाला कल्पवृक्ष है और धर्म अक्षय निधि है। सर्वप्रथम उनकी कविता में उर्पयुक्त लक्षणों में से अधिकांश उपलब्ध होते है। काव्यकृति ' आर्द्रा' में संकलित कविता ' एक फूल की चाह' में उनका धर्म के प्रति क्या रूख था। यह ध्वनित होता है ;

यथा –

---

* मानस पीयूष – खण्ड 2 पृ0 9
** मानस पीयूष – खण्ड 2 पृ0 9
*** चिन्तामणि भाग–1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (इण्डियन प्रेस प्रयाग) पृ0 167

" कुछ तो देवी के प्रसाद का,
एक फूल तो लाऊँगा,
हो तो प्रातः काल, शीघ्र ही,
मन्दिर को मैं जाऊँगा।
तुझ पर देवी की छाया है
और इष्ट है यही तुझे,
देखूँ देवी के मन्दिर में
रोक सकेगा कौन मुझे " *

स्पष्टतः यहाँ सतोगुण वृद्धि के लिए उक्त आकांक्षा व्यक्त हुई है। कवि गुप्त जो धर्म विग्रह भगवान श्री राम के अनन्य भक्त रहें है –

" अरे राम!
राम राम हरे राम!
लोक ने सुना है यह नाम मन्त्र
युग से युगान्तर में आते हुए,
जाते हुए एक भव में से अन्य भव में,
सम्भव असम्भव में
करके निनादित हृदय तंत्र
विश्व ने सुना है बार–बार यह राम मन्त्र।।" **

सारांशतः धर्म के बारे में यही कहा जा सकता है कि क्रोध,मान,माया,लोभ,भय,घृणा,हीन भावना, की मनोवृत्ति आदि अधर्म है। धर्म उनके मन में निवास करता है जो शक्तिशाली हैं पवित्र है, भय रहित है, अभय,समता,और क्षमाशीलता धर्म है। दूसरों की उन्नति देखकर सबके विकास की इच्छा करना धर्म है, मित्रता की भावना का विकास करना धर्म है, क्रोध न करना,ऋजुता,सरलता,संतोष, धर्म है। ये गुप्त जी के काव्य में इस प्रकार देखे जा सकते है :–

1. अहिंसा -- हिंसानल से शान्त नहीं हो होता हिंसानल

x x x x x x

हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर। ***

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (आर्द्रा)सं0ललित शुक्ल पृ0 114
** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीयखण्ड (फुटकर कवितायें) पृ0 402
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (उन्मुक्त) पृ0 495

2. सत्य – मिला हमें चिर सत्य आज वह नूतन होकर ।*

3. दान – (अ) हो अपराध भूलकर भी जब भी हमको किसी प्रकार
निर्दय बनकर हमें, दण्ड तब दो हे करूणागार।

x x x x x x

(आ) दान अभयता का दे तूने उसे उठाया नीचे से। **

4. तप – एक जप, एक तप, एक व्रत सर्वकाल।***

5. धैर्य – धीर वीर उस समय सभी थे भारतवासी। ****

6. दया – वह सैनिक भी न था और कुछ, वह था मानव,
ऐसा मानव लया उठा जिसकी शिशुता का
किसी इतर ने चढ़ा दिया था उस पशुता का

x x x x x

मैं उस पर रोष करूँ या दया। *****

' सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से संस्कृति शब्द बनता है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर ' संस्कृति– उस अर्थ का द्योतक है जो समस्त मानवता को विशेषता प्रदान करता है। व्युत्पत्ति के अनुसार – 'सम' उपसर्ग पूर्वक ' कृ' धातु से भूषण अर्थ में ' सुट' आगम और ' क्तिन' प्रत्यय योजित करके संस्कृति शब्द बनता है। भारतीय संस्कृति के जन्म व विकास में हड़प्पा सभ्यता की देन महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृति यदि आचार मूलक है, तो निश्चित ही उसका सम्बन्ध विचारों से है। शुद्धाचरण, शुद्ध विचारों के जनक है। साहित्य और उसकी शास्त्र, काव्य, नाटक,कथा, नाट्य,संगीत,कला, आदि विभिन्न वाङ्मय धारायें शुद्धाचार के ही फल है। इस दृष्टि से समस्त ज्ञान-विज्ञान और कला–कौशल संस्कृति के ही अंग है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (उन्मुक्त) पृ0 495
** (अ) सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (दूर्वादल) पृ0 178
(आ) सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (पाथेय) पृ0 306
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (बापू) पृ0 321
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (मौर्य-विजय) पृ0 44
***** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (अनाथ) पृ0 76

विश्व के किस राष्ट्र ने अपना कितना अधिक विकास किया, इसका मानदण्ड उसकी संस्कृति होती है। संस्कृति किसी देश या राष्ट्र का प्राण है। यदि उसको अपना कोई सांस्कृतिक स्तर नहीं , तो निश्चित ही वह निष्प्राण है। अपने राष्ट्रीय जीवन के उत्थान में उसका कोई योगदान नहीं रहा। संस्कृति ही किसी व्यक्ति जाति या राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है, क्योंकि उसमें व्यक्तियों जातियों और राष्ट्रों की अन्तश्चेतना समाहित होती है। आचार–विचार, शासन, शिक्षा,धर्म और साहित्य आदि उस अन्तश्चेतना के उपादान है।

छान्दोग्योपनिषद तथा प्रबन्ध प्रकाश से उद्धरण देते हुए डा0 मंगलदेव शास्त्री ने संस्कृति को इस प्रकार व्याख्यायित किया है '' किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदर्शो की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए। समस्त सामाजिक जीवन की समाप्ति संस्कृति में ही होती है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष तथा संस्कृति के द्वारा ही नापा जाता है। *

इस प्रकार धर्म और संस्कृति का आपस में चोली–दामन का साथ है। विश्व की विभिन्न संस्कृतियों का इतिहास प्रमाण है। सभी के साथ किसी न किसी धर्म का सम्बन्ध रहा है। इस अनिवार्य सम्बन्ध के ही कारण कुछ लोग दोनों को एक के ही भ्रम में पड जाते है। वस्तुतः धर्म और संस्कृति निश्चित रूप से भिन्न है दोनों का अन्तर स्पष्ट करते हुए बाबू गुलाबराय लिखते है–

'' धर्म में श्रुति, स्मृतियों और पुराण ग्रंथों का आधार रहता है,

किन्तु संस्कृति में परम्परा का आधार रहता है।'' **

परम्परा में सभी बातें शास्त्राविहित नहीं हुआ करती कुछ शास्त्रवाह्य ' लोक–लोक' भी बन जाया करती है। अंतः धर्म तो शास्त्र आधृत होता है। पर संस्कृति के अतर्गत और भी बहुत सी बातें आ जाती है।

प्रसिद्ध धर्मोपदेशक स्वामी करपात्री जी का भी यही विश्वास है –

धर्म और संस्कृति में इतना ही भेद है। कि धर्म शास्त्वैक समाधिगम्य है और संस्कृति में शास्त्र से अविरूद्ध लौकिक कर्म भी परिगणित हो सकता है'' ***

इस प्रकार संस्कृति धर्म की अपेक्षा व्यापक है परन्तु धर्म का व्यापक रूप भी होता है जब

---

* आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध — पृ0 4

** भारतीय संस्कृति की रूप रेखा– गुलाब राय — पृ0 1

*** कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक — पृ0 36

हम से सत्य, अहिंसा शुद्धाचरण आदि सर्वधर्म प्रंशंसित सार्वभौम, गुणों। की समष्टि रूप में स्वीकार करते है इस रूप में वह संस्कृति से व्यापकतर है क्योंकि संस्कृति तो फिर भी देश–सापेक्ष है पर धर्म अपने व्यापक रूप में सार्वभौम होता है। तात्पर्य यह कि संस्कृति और धर्म कर सापेक्षित संकोच अथवा व्यापकत्व धर्म के प्रति दृष्टिकोण पर आधृत है श्री टी0एस0इलियट ने भी इस विषय में यही विचार प्रकट किया हैं। *

धर्म अपने व्यापक अर्थ में मनुष्य को पशु से भिन्नता प्रदान करने वाला तत्त्व है। और इस रूप में वह संस्कृति का समानार्थी ही है। क्योंकि संस्कृति का चरम उद्‌देश्य मनुष्य को पशु धर्म से ऊँचा उठाकर मानव–धर्म की पूर्णता प्राप्त कराना है।

कवि श्री गुप्त का व्यक्तित्व संस्कृति (या भारतीय संस्कृति) के तत्त्वों से निर्मित था। यही कारण है कि एकांगी व्यक्ति निष्ठता, समाज से पार्थक्य या विराग उनका इष्ट नहीं है। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसलिए लिखा है " दूसरों के साथ गहरी आत्मीयता में बँधने की उनमें क्षमता है। "

X X X X X

" (वे) प्राचीनता के प्रति आस्थावान है साथ ही नूतन के प्रति उनके हृदय में स्वागत का भाव है।"

" (वे) नर की प्रतिष्ठा के भक्त है और मानवोचित गुणों की व्याख्या और जीवन में उनकी प्रप्ति का ही वे व्यक्ति और समष्टि का ध्येय मानते है।

" साहित्य ही उन्हें जीवित रखता है।"

गाँधी विचारधारा का उन पर प्रभाव पड़ा है। अथवा कहना चाहिए कि युग पुरूष की वाणी को भली प्रकार हृदयंगम करके उसे पल्लवित व्याख्या के साथ उन्होंने साहित्य में पिरोया है।

" भारतीय लोक जीवन की जो ...र प्रतिष्ठा है एवं इस देश की संस्कृति में जो उदान्त और तेजस्वी जीवन तत्त्व है उनमें सियारामशरण जी का मन रमता है। " **

डा0 सावित्री सिन्हा का भी संकेत है " 'गोपिका' एक उद्‌देश्य–प्रधान काव्य हैं, अपार्थिव,मधुर भाव जिसका प्रतिपाद्य विषय है। " .... 'गोपिका' में वह उज्ज्वलता, (तारा बाबू के बंगला उपन्यास ' राधा' के अध्ययन से अनुभूत) वह माधुर्य आदि से अन्त तक विद्यमान है। " ***

---

* According to the point of view of the doserver the culture will appear to be the product of the culture note towards the definition of culture. — Page 15

** सियारामशरण गुप्त–सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र — पृ0 18

*** सियारामशरण गुप्त–सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र — पृ0 238–239

'नकुल काव्य की अलोक सामान्यता के विषय में डा0 सत्येन्द्र का निष्कर्ष है --' ...... आत्मदान के भाव ने ही उन्हें (गुप्त जी को) ' नकुल' के जीवन की याचना के लिए प्रेरित किया और इस आत्मदान के साथ मानव--प्रतिष्ठा के साथ मानव--नव--निर्माण का सन्देश पूर्ण होता है। लघु को अपनी लघुता का क्षोभ नहीं होना चाहिए पर मानव के नव--निर्माण के लिए जो बड़े है उनका एक स्वाभाविक दायित्त्व है।''

उपर्युक्त विचारों, अभिमतों से स्पष्ट है कि कविवर सियारामशरण गुप्त भारतीय संस्कृति--विशेष रूप से मानव संस्कृति की सार्वभौम प्रतिष्ठा के लिए व्यग्र और कृत संकल्प है। उनकी स्वीकृत संस्कृति में व्यापकता समन्वयवादिता,प्राचीनता एवं नवीनता सत्य, अहिंसा त्याग,आत्मदान सार्वभौम निर्व्याज प्रेम आदि के जो अभिनव एवं अछूते चित्र है, वे उनकी संस्कृति के स्वरूप को अभिव्यक्ति देने में पूर्ण समर्थ हुए है।

3.भक्ति का स्वरूप यदि महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति का नाम श्रृद्धा है तब '' श्रृद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है''। * भक्ति का प्रस्फुटन श्रृद्धालू के हृदय में तभी होता है जब उसके हृदय में श्रृद्धेय के प्रति पूज्य भाव अत्यधिक बढ़ जाता है। वह उसका सामीप्य और सान्निकटता पाने के लिए आतुर हो उठता है। हृदय में भक्ति का संचरण तभी समझना चाहिए जबकि श्रृद्धेय के दर्शनों से नेत्र आनन्द विभोर हो उठें, उसके गुण श्रवण से हृदय वीणा झंकृत हो उठे। हृदय में उसकी मूर्ति अव्यवस्थित कर सुख--शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो तथा उसकी स्तुति वन्दना से मन मयूर नृत्य कर उठे। श्रृद्धेय मनुष्य जिस गुण को देखकर हृदय में स्थायी आनन्द की स्थापना करता है उन्ही को वह परमात्मा में देखता है और शील, शक्ति और सौन्दर्य के चरमोत्कर्ष की कल्पना कर भगवान की भक्ति में तन्मय हो जाता है। राम और कृष्ण में इन्हीं गुणों का चरमोत्कर्ष देखकर वह उनको ईश्वर कहता है। भक्ति--भावना के बीच वेदों मे ही प्राप्त होते है। ब्राह्मण काल में सगुण परमेश्वर का नारायण नाम प्रसिद्ध हो गया। तैत्तिरीयोपनिषद में हमें मिलता है कि ब्रह्म की उपासना [illegible] और आनन्द इन [illegible]। ** देव विषयक रति को भी भक्ति कहते है।*** अर्थात प्रेम भाव जब पूज्य बुद्धि समन्वित होता है। तब भक्ति--भावना का प्रादुर्भाव होता है।

---

*	चिन्तामणि-- रामचन्द्र शुक्ल --	पृ0 40
**	तैत्तिरी योपनिषद-- अनु0	2--5
***	गोस्वामी तुलसीदास -- डॉ0 राजेश्वर प्रसाद द्विवेदी (उदधृत)	पृ0 93

आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार :– '' धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है, धर्म है, ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व स्थिति में मिलता है। *

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भक्ति मार्ग को धर्म का हृदय कहा है।

'' श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संजुत विरति विवेक।'' **

तुलसी के उपर्युक्त मत के अनुसार वेदसम्मत हरि भक्ति में वैराग्य और विवेक का भी योग है। वस्तुतः भक्ति शब्द भज् सेवायाम धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर बना है। इस प्रकार अनेक प्रकार से प्रभु की सेवा करना भक्ति है। 'सा परानुशक्तिरीश्वरे' यह परिभाषा भी भक्ति के सन्दर्भ में दी गयी है। अर्थात् ईश्वर के पराकोटि की अनुरक्ति (आसक्ति) ही भक्ति है। इस दृष्टि से कविवर सियारामशरण भक्त स्पष्टतः सिद्ध होते है। व्यक्ति –दृष्टि से वे वैष्णव परिवार की उत्पाद है,जिसका लक्षण भक्ति ही है। उनकी कविता में यत्र–तत्र आदि मध्य अथवा अन्त में उनके भक्तिमय संबोधन दृष्टिगत होते है। 'मौर्य विजय' आदि कविता में वे अपनी पारम्परिक वैष्णव भक्ति का विज्ञापन राम की वन्दना (या मंगलाचरण) के माध्यम से कर देते है।

वे रावणारि रघुवंश रवि
विश्वेश्वर कल्याणमय,
दें इस जीवन संग्राम में,
हमें अभय करके विजय।।''***

इसी प्रकार आगे भी वे ' हे हरि'**** दयामय '***** परंपिता****** , करूणागार,******* प्राणेश्वर,******** घनश्याम ********* आदि संबोधनों से अपनी अन्तस्थ भक्ति का प्रकाशन करके विश्रान्ति लाभ करते है।

---

*	गोस्वामी तुलसीदास – डॉ0 राजेश्वर प्रसाद द्विवेदी (उद्धृत)	पृ0 93
**	गोस्वामी तुलसीदास – डॉ0 राजेश्वर प्रसाद द्विवेदी (उद्धृत)	पृ0 93
***	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 43
****	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 69
*****	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 179
******	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 178
*******	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 185
********	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 185
*********	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 186

बचपन में एक बार वे दीवार में बनी अल्मारी के भीतर तपस्या करने के लिए समाधि की मुद्रा में बैठ भी गये थे। पर आज भी उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो जीवन ने उनके हृदय की तरल ज्वाला को किसी बिल्लौरी परिवेश में बन्द कर दिया है जिसमें से आलोक सब पाते है पर जलना उन्हीं का अधिकार रह गया है। सच्चे अर्थ में उन्हें कुछं देना संभव नहीं है पर पाना सम्बन्ध की शपथ हो जाती है।

सारांशतः कविवर गुप्त अपने कुल के ठाकुर जी की पूजा करने वाले * श्रद्धावान ** मंत्र बल के विश्वासी*** तपस्वी**** रामानन्दी तिलक धारणकर्ता *****वीसवीं सदी में वैदिक युग के माडल****** धर्मिक ******* स्वाध्याय परायण ******** आत्मतत्वज्ञ से सबंद्ध आदि अनेक विशेषताओं के माध्यम से उदार भक्ति भावना से परिपूर्ण सिद्ध होते है। जीवन के अवसान के समय उनके मुख से श्रीराम का निकलना उनकी इसी दृढ़ भावना का परिचायक है।*********

<u>4.भक्ति के भेद</u> :– गुप्त जी की भक्ति–भावना का विवेचन करने के पश्चात यह प्रासांगिक होगा कि भक्ति के विभिन्न भेदों को समझ लिया जाय।

भक्ति भेद
- निर्गुण भक्ति
  - ज्ञानाश्रयी
  - प्रेमाश्रयी
- सगुण भक्ति
  - राम भक्ति
  - कृष्ण भक्ति

स्वरूप भेद के अनुसार भक्ति के दो भेद माने जाते है–

1– निर्गुण भक्ति 2– सगुण भक्ति

(1) <u>निर्गुण भक्ति</u> :– निर्गुण भक्ति में केवल निराकार ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। न तो उससे प्रेम–प्रीति की जा सकती है और न उसकी सेवा ही की जा सकती है कबीरदास जी का ब्रह्म निर्गुण निराकार है –

---

*	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 5
**	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 26
***	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 3
****	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 12
*****	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 23
******	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 25
*******	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 25
********	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 26
*********	सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 52

'' निराकार निज रूप है प्रेम प्रतीत से सेव '' *

निर्गुण ब्रह्म की उपासना को गीता में भी अत्यंत कष्टकर बताया है '' अव्यक्त में चित्त की एकाग्रता करने वाले को बहुत कष्ट होते है, क्योंकि इस अव्यक्त की गति देहेन्द्रिय धारी मनुष्य के लिए कठिन है।** निर्गुण भक्ति के दो भेद ज्ञान मार्ग व प्रेम मार्ग है। इसमें तीर्थ व्रत उपवासादि को भी व्यर्थ समझा गया है। क्योंकि इनके द्वारा ब्रह्म प्राप्ति असम्भव है। ब्रह्म का स्वरूप —

जाके मुँह माथा नहीं ,नाहीं रूप अरूप।

पुहुप वास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप।।

इसलिए ऐसे ब्रह्म की उपासना घट के भीतर ही हो सकती है, उससे बाहर नहीं। ईश्वर सदैव हमारे हृदय में निवास करता है, इसलिए उसे खोजने के लिए इधर–उधर भटकना अज्ञानता का सूचक है। इस प्रकार कबीर ज्ञान मार्गी एवं जायसी को प्रेममार्गी कहा गया है।

(2) सगुण भक्ति — सगुण भक्ति में साकार भगवान के नाम, रूप गुण, लीला धाम आदि आते है —

'' निरमल निरमल राम गुण गावे,

सो भागता मेरे मन भावे। ***

(गुण भक्ति)

'' कन्द्रप कोटि जाके लावन धरे,

घट–घट भीतर मन्सा हरे। ****

(रूपा भक्ति)

समस्त वैष्णाचार्य सगुण भक्ति के पक्षधर है, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य एवं मध्वाचार्य आदि ने इसे ही अपनाया है। सगुण भक्ति के दो भेद रामभक्ति तथा कृष्ण भक्ति है। सगुण भक्ति के पुनः दो भेद किये गये है। साधन रूपा भक्ति और साध्य रूपा भक्ति। प्रथम के पुनः दो भेद हो जाते है — नाम साधना और बीज साधना। नाम साधना भक्ति में भगवान नाम महिमा का गान होता है। नाम के साथ–साथ

---

* कबीर — राजनाथ शर्मा (उद्धृत) पृ0 100

** क्लोशो ऽधिकतरस्तेषाम व्यक्ता सक्त चेतसाम्
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवार्द्भरव्याप्यते।। (गीता) 12.5

*** कबीर — राजनाथ शर्मा (उद्धृत) पृ0 97

**** कबीर — राजनाथ शर्मा (उद्धृत) पृ0 97

भगवान के स्वरूप का भी सम्बन्ध है। नाम जपते जपते साधक का चित्त उत्तरोत्तर शुद्ध होता जाता है और भाव शरीर का विकास होने लगता है। गुरू द्वारा दिया मन्त्र या भगवान नाम जाग्रत होकर बीज बन जाता है। बीज साधना से भाव देह जाग्रत हो जाता है। भाव देह प्राप्त करने के पश्चात भक्त को फिर किसी बाह्‌य शिक्षा की आवश्यकता नहीं रह जाती है उसकी चित्त वृत्ति स्वतः विषय–विलास से विरक्त हो जाती है।

भक्ति हृदय का पवित्रतम् भाव है यह सर्वप्रथम श्रृद्धा के रूप में अंकुरित होता है। श्रृद्धा तीन प्रकार की होती है। सात्विकी, राजसी, तथा तामसी * श्रृद्धा के इन रूपों के आधार पर भक्ति की तीन कोटियाँ होती है।
1– सात्विकी भक्ति 2– राजसी भक्ति 3– तामसी भक्ति गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन तीनों प्रकार की भक्तियों का वर्णन रामचरितमानस में किया है। सत्व राजस और तामस ** भक्त था पर गोस्वामी जी को स्वयं सात्विक भक्ति प्रिय थी। *** उपाधि भेद से भी भक्ति के दो रूप कहे गये है – शुद्ध भक्ति और मिश्रिता भक्ति। भगवान की महिमा के श्रवण कीर्तन गान आदि में लीन अनुपाधि भक्ति शुद्ध भक्ति है। सुतीक्ष्ण अंगस्त्य, बाल्मीकि आदि इसी प्रकार के भक्त है। मिश्रिता भक्ति के तीन उपभेद है – कामजा, सम्बन्धजा तथा भायजा, श्रृंगार मिश्रित भक्ति का मजा है। गोपियों की भक्ति इसी प्रकार की है। किसी सम्बन्ध से भक्ति होना सम्बन्धजा है। दशरथ राम के पिता है अतः उनकी वत्सल रति सम्बन्धजा भक्ति है। भय के कारण भक्ति भावना उत्पन्न हो भय भक्ति है।

शास्त्रों में वर्णित भक्ति में नवधा भक्ति का विशेष महत्त्व है। नवधा भक्ति के प्रकार :–

" श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सरव्यमात्मनिवेदम्।।" ****

सगुण भक्ति के दो भेद राम भक्ति एवं कृष्ण भक्ति में तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के है। तुलसी जी की राम के प्रति भक्ति भवना का एक चित्र –

---

*	गीता	17.2
**	श्रीराम चरित मानस	3.22–5
***	श्रीराम चरित मानस	7/2/6
****	श्रीमद्‌भागवत्	7.5–23

" कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ?

श्री रघुनाथ–कृपाल कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो।

परिहरि देह–जनित चिन्ता दुःख सुख समबुद्धि सहौंगो।

तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि–भक्त लहौंगो।।*"(विनय पत्रिका)

सूरदास जी कृष्ण भक्ति शाखा के हैं उनकी कृष्ण के प्रति भक्ति–भावना निम्न प्रकार से दृष्टव्य है।

" हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे।

सुनि मन, कहौं पुकारि तो सौं हौं, भजि गोपालहि मेरे।

यह संसार–विषम–विष सागर रहत सदा बस घेरे।

सूर स्याम बिन अन्तकाल में कोउ न आवत नेरे।"**

<u>5.सियारामशरण गुप्त जी की भक्ति–भावना</u> – भारतीय पुनरुत्थान की नयी वैचारिक चेतना, बुद्धि स्वातंत्र्य प्रवृत्ति गामिता वेदोपनिषद् परकता और देश भक्ति एवं राष्ट्रीयता आदि रूपों में उद्भासित हुई। पुनरुत्थान के मनीषियों ने भारतीयता की रक्षा के उद्देश्य से वेद और वेदान्त का प्रबल समर्थन किया, किन्तु पौराणिकता और अवताराश्रित भक्ति को उन्होंने अपने विचार क्षेत्र में कोई विशेष स्थान नहीं दिया। किन्तु सियारामशरण गुप्त जी को इस प्रकार की भक्ति चेतना गहन संस्कार के रूप में अपने माता और पिता दोनों से समान रूप से प्राप्त राम भक्ति का यह संस्कार गुप्त जी की चेतना में बद्धमूल रहा और अपने सन्दर्भ की वैष्णव भावना के साथ उनकी सम्पूर्ण कवि कल्पना का किसी न किसी रूप में सम्बल बना रहा। सियारामशरण जी ने अपने प्रथम काव्य ग्रन्थ मौर्य विजय के प्रथम को राम के स्मरण के साथ शुरू किया है। उदाहरणार्थ मौर्य–विजय की आरम्भिक पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

" भक्त जनों के हृदय–कमल विकसित करने को,

अनुपम धर्मालोक भुवन भर में भरने को।

जिन प्रभु ने अवतार स्वयं ही धारण करके,

मारे निशिचर–वृन्द भार भूतल का हरके।

* तुलसीदास – डॉ0 राजेश्वर प्रसाद द्विवेदी (उद्धृत) पृ0 94

** सूरदास – वासुदेव शर्मा शास्त्री (उद्धृत) पृ0 79

वे रावणारि रघुवंश–रवि
विश्वेश्वर कल्याणं यह,
दें इस जीवन संग्राम में,
हमें अभय करके विजय।।*

कवि सियारामशरण गुप्त जी की धारणा है कि भगवान मनुष्य रूप धारण करके बार–बार अवतार लेते है। गुप्त जी के अधिकतर ग्रन्थ मंगलाचरण रूप में राम के स्मरण के साथ आरम्भ होते हैं। अमृतपुत्र काव्य में मंगलाचरण की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :–

'' राम, वन–वन में तुम्हारा संचरण,
हो जहाँ जिस रूप में नत हो सकूँ।
शूल वह जो भव–विभव पातक–हरण
स्वरित करके कण्ठ में टुक ढो सकूँ।। **

सियारामशरण गुप्त जी की अवतार –निष्ठा राम तक ही सीमित नहीं है। बुद्ध,ईसा,हजरत,मुहम्मद,तुलसीदास को भी उन्होंने बहुत कुछ उन्हीं उद्देश्यों से राम प्रेरित अवतार माना है। जिन उद्देश्यों से राम प्रेरित हैं बुद्ध के सम्बन्ध में वे कहते है

''झेलकर सब दुःख कष्ट शरीर पर।
उस तथागत श्रेष्ठ मानव ने किये,
दूर तक गुंजित गिरा उसकी सुनी। '' ***

ईसु के सम्बन्ध में गुप्त जी ने कहा है –

'ईसु ने जानी विकलिनी की व्यथा,
सामरी ने वर वचन उनके सुने –
'' दान ईश्वर का नहीं तू जानती,
जानती होती कही यह कौन हैं
सामने जो माँग जल तुझसे रहा।।' ****

हजरत मुहम्मद के सम्बन्ध में गुप्त जी कहते हैं –

---

*	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (मौर्य्य–विजय)	पृ0 43
**	सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत–पुत्र)	पृ0 145
***	सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला)	पृ0 321
****	सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (अमृत–पुत्र)	पृ0 148

" सफल श्रम उसका यहाँ इस भूमि पर,

विचरते हजरत मुहम्मद है जहाँ।

जन्म स्थल मक्का मग़र उनका यहीं।।

प्रेममूर्ति मनुष्य सिरजा प्रेम से,

ज्ञानदाता एक मात्र अनन्य जो।। " *

सियारामशरण गुप्त जी की तुलसीदास जी के सम्बन्ध में भावना है –

" रम्य रामचरितामृत से यह,

मानस तुमने भर कर,

किया पुनीत प्रेममय इसको।

पाप–ताप सब हर कर।

अपने छोटे से उस पुर को,

राजापुर कहलाया।।

ऐसे श्रेष्ठ शब्द सुमनों को

देव! कहाँ हम पावें।

जिन्हें समर्पित कर हम तुमको,

अपनी प्रीति जनावें।।**

सियारामशरण गुप्त जी सर्व धर्म समन्वय की भावना से ओत–प्रोत है और उन्होनें ईश्वर के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाया–

" हिन्दू मुसलमान दोनों ही

एक डाल के दो फूल,

और एक ही है दोनों को,

बड़ा बनाने वाला मूल।।***

<u>6.धार्मिक जीवन की आस्थाएं एवं विश्वास</u> :– कविवर गुप्त के द्वारा स्वीकृत धर्म साधना का किंचित् उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। ' आस्था' शब्द का निर्माण आङ उपसर्ग पूर्वक स्था धातु से आङ प्रत्यय की योजना करने पर हुआ है, जिसका अर्थ

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) .पृ0 334

** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (दूर्वादल) पृ0 194–195

*** सियारामशरण गुप्त रचना एवं चिन्तन –स0–ललित शुक्ल पृ0 281

है श्रृद्धा, आदर,आशा,भरोसा,आदि।* विश्वास शब्द वि उपसर्ग पूर्वक 'श्वस' धातु से घञ् प्रत्यय करने पर सम्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है भरोसा प्रत्यय,निष्ठा आदि।** इस प्रकार 'आस्था' भाव में 'विश्वास' को सन्निहित मानना उचित प्रतीत होता है।

कवि सियारामशरण गुप्त का धार्मिक जीवन उन्हें जो शक्ति प्रदान करता है वह अप्रतिम, अलोक सामान्य एवं अभिनन्दनीय है। कवि की विभिन्न कविता पंक्तियों के माध्यम से उनकी ऐसी आस्था पदे–पदे अभिव्यक्त होती चलती है –

" वे रावणारि रघुवंश–रवि
विश्वेश्र, कल्याणमय,
दे इस जीवन–संग्राम में
हमें अभय करके विजय।"***

कवि अत्यन्त कठिन कविता–कर्म में प्रवृत्त होने के लिए उद्यत है, उसे यह आशा ही नहीं, विश्वास है कि इस कवि कर्म के संग्राम में विजयी होगा, उसका काव्य प्रशंसित होगा। कवि को पूर्ण विश्वास है कि प्रभु राम का अवतार भक्तजनों के हृदय–कमल को विकसित एवं अनुपम धर्म के आलोक को भूमण्डल में भरने के लिए होता है, अतः वे उसके हृदय–कमल को भी विकसित करेंगे, यह अर्थ व्यंग्य है और कवि के सन्दर्भ में घटित होता है। हृदय–कमल को विकसित करके मात्र संवेदना–पक्ष को पुष्ट करने की प्रार्थना करना मात्र कवि का काम्य नहीं है, वह यह भी परोक्ष अपेक्षा रखता है कि उसे संतुलित बुद्धि का वरदान भी प्राप्त होगा, जिसका उल्लेख गीता में भगवान वासुदेव द्वारा हो चुका है –

" तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।" ****

भारतीय संस्कृति के जिन मूल्यों में कवि की आस्था है, उनमें एक 'तप' भी है। कवि का सम्पूर्ण पार्थिव जीवन करूणा के समष्टि तत्त्व से निर्मित है। संभवतः इसीलिए उसे ' तप' में विश्वास है। यह विश्वास युग–युगों से आयातित विश्वास है।

कवि की दृढ़ आस्था ' तप' में थी। इस ' तप' की व्याख्या कवि को अभीष्ट नहीं थी,

---

*	संस्कृत–हिन्दी कोश–वामन शिवराम आप्टे	पृ0 168
**	संस्कृत–हिन्दी कोश–वामन शिवराम आप्टे	पृ0 959
***	सियारामशरण गुप्त रचनावली (मौर्य–विजय)	पृ0 43
****	गीता	10.10

पर आर्षग्रन्थों से इस का प्रयोजन खोजा जा सकता है। समान्यतया भूख–प्यास सरदी–गरमी, वर्षा आदि सहना भी एक तप है ; पर इस तप में भूख–प्यास आदि को जानकर सहते है। वास्तव में साधन करते हुए अथवा जीवन–निर्वाह करते हुए देश, काल, परिस्थिति आदि को लेकर जो कष्ट विघ्न आदि आते है उनको प्रसन्नतापूर्वक सहना ही तप है, जैसा कि 'बोधसार' में उल्लेख है :–

" आगते स्वागतं कुर्माद गन्छन्तं न निवारयेतं।

यथाप्राप्तं सहेत्सर्वं सां तपस्योत्तमोत्तमा। " *

(प्रारब्धवश परिस्थिति रूप से जो कुछ आ जाय उसका स्वागत करे, जाने वाले को रोके नहीं और जो जैसे प्राप्त हो उसे वैसे ही सहन करे, यही उत्तम से उत्तम तप हैं) तप से इच्छित प्रयोजन की प्राप्ति होती है, यह तुलसी के मानसार्न्तगत, 'मनु शतरूप' तप प्रसंग से स्पष्ट है उनके तप के परिणामस्वरूप स्वयं परम ब्रह्म उनके पुत्र के रूप में अवतरित हो गए थे। निश्चित रूप में कविवर गुप्त के मानस में इस तत्त्व के स्वीकार का ऐसा ही कोई लोकोत्तर प्रयोजन रहा होगा। वैसे उनका कवि–कर्म निश्चित रूप से एक स्वीकृत वाड्मय तप है।** सामान्यतः तप में प्रवृत्ति का संकल्प इसलिए किया जाता है, ताकि शरीर के अन्तः बाहय दोष, और दुःख दूर हो जाये और सुख की प्राप्ति हो।***

कवि की धार्मिक भावना में प्रार्थना अपना महत्त्व रखती है। प्रार्थना एक तरफ तो कवि की आस्था की सूचक है तो दूसरी ओर उसके माध्यम से वह आश्वस्त हो जाता है कि अपेक्षित प्रतिकार उसे प्राप्त होगा।' सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा, जैसी कामना कविवर गुप्त की नहीं हो सकती। वे अपनी आस्था के अनुरूप अपने करूणागार से यह चाहते हैं –

हो अपराध भूल कर जब भी
हमसे किसी प्रकार !
निर्दय बन कर हमें दण्ड तब
दो हे करूणागार।। ****

---

*	गीता–साधक संजीवनी	पृ0 991
**	गीता	17–15
***	रामचरित मानस	1–73–2
****	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 178

अपनी धार्मिक भावना को लौकिक जीवन एवं जड़ प्रकृति तक व्याप्त कर देना और तज्जन्य संवेदना का आस्वादन करना कवि का इष्ट है। वह अपनी अनुभूति की सत्यता की सामर्थ्य से जड़–चेतन सभी को पल्लवित हर्षित देखना चाहता है। फूल की परिणति के प्रति कवि वेदना सिक्त है।

हुआ क्यों हाय! यह चिर दुःख भोगी,

दयामय! क्या दया इस पर न होगी ? *

इसी प्रकार कवि अपने को शरणागत के रूप में प्रस्तुत कर अपनी आस्था के अनुरूप विश्वास रखता है कि शरण्य अपने शरणागत का उद्धार करेगा –

" किसको पुकारें यहाँ रोकर अरण्य बीच

चाहे जो करो शरण्य! शरण हम तुम्हारे हैं।" **

सच्चा वैष्णव शरण की याचना करके इसी विधान के अन्तर्गत यह विश्वास रखता है कि शरण्य उसे अपनी शरण में लेकर उसकी रक्षा करेगा। षड्विधाशरणागति विधान के भेद अवलोकनीय है।

" आनुकूलस्य संकल्प प्रातिकूलस्य वर्जनम्।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्त्वरणं तथा।

आत्मनिक्षेप कार्पण्यं षडविधाशरणागतिः। " ***

' अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, रक्षा में विश्वास, गोप्तृत्त्व वर्णन, आत्मनिक्षेप , कार्पण्य ये षड्विधशरणागति के भेद है। कवि की यह शरणागति मात्र वाचिक न होकर आन्तरिक और अनन्यनिष्ठा की उत्पाद है, इसीलिए जीवन के अवसान की बेला में कवि 'राम मंत्र' का पुनः–पुनः उच्चारण करने में समर्थ हो सका है यद्यपि ऐसा उच्चारण अत्यन्त कठिन या कष्टसाध्य है –

" जनम जनम मुनि जतन कराही।

अंत राम कहि आवत नाहीं।। " ****

उक्त प्रकार कवि पराकोटि का आस्थावान् एवं ईश्वर का विश्वासी या धार्मिक सिद्ध होता है। जिसे लोक यश तो सुलभ हुआ ही मुक्ति भी प्राप्त हुई होगी, जैसा कि गीता में उल्लेख है –

---

*	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 179
**	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 180
***	मानस पीयूष – गीता प्रेस, गोरखपुर, पाँचवा खण्ड	पृ0 90
****	श्री रामचरितमानस	4–10–3

" अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।" *

श्लोक निष्कर्ष यह है कि जो मनुष्य शरीर के रहते-रहते अपना उद्धार नहीं कर सका, वह यदि अन्तकाल में भी भगवान का स्मरण करते हुए शरीर छोड़े तो वह भगवान को ही प्राप्त होता है – इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर जो सब समय भगवान का स्मरण करता है वह अन्तकाल में भगवान का स्मरण करके भगवान को प्राप्त हो जाय-इसमें तो कहना ही क्या हैं ! कवि का यदि दूसरा प्रयोजन सिद्ध न हो सका होगा तो प्रथम का सिद्ध होना प्रमाणित है।

7.धार्मिक ग्रंथों की मान्यता :– कविवर गुप्त ने श्रीमदभगवत्‌गीता का समश्लोकी अनुवाद किया था, इससे सिद्ध होता है कि गीता के अध्यात्म ने उन्हें प्रभावित किया था। यह कृति 'गीता संवाद' के नाम में प्रकाशित हुई थी। गीता के 'मा फलेषु' कदाचन' से कवि अन्तर्मन से प्रभावित था।

उपनिषद-साहित्य की गणना भी अध्यात्म या धर्म ग्रंथों के अन्तर्गत ही होती है। कवि की वैष्णवता ने उसे उपनिषदों के अध्ययन के लिए विवश कर दिया था। ईशावारस्योपनिषद का तो कवि में पद्यानुवाद भी किया था जो प्रातःकालीन प्रार्थना में प्रयुक्त होता था।** रामायण कवि-कुटुम्ब का वरेण्य धर्मग्रंथ रहा है, अतः इसमें भी कवि की आस्था थी*** महाभारत भारत का सर्वाधिक वरेण्य धर्म-नीति आचार का ग्रंथ है। सियारामशरण जी ने इसी के एक पाण्डव नकुल को लेकर ' नकुल' काव्य का प्रणयन किया, जिसे आधुनिक संदर्भ दिए गये है। यह प्रमाणित है कि महाभारत गुप्त बन्धुओं का प्रिय ग्रंथ रहा है। **** पालि भाषा के सुविख्यात धर्मग्रंथ (धम्मपद) भी कविप्रवर से अछूता नहीं रहा है। कवि ने तथागत की 25 वीं परिनिर्वाण शताब्दी के अवसर पर इसका समश्लोकी हिन्दी अनुवाद करके अपनी व्यापक धर्मबुद्धि का सुपरिचय दिया है। ईसा पर लिखे किशोरीलाला मश्रूवाला के ग्रंथ 'ईसू –रिव्रस्त' के आधार पर सियारामशरण ने 'अमृत पुत्र' काव्य रचना की है। यह आधार ग्रंथ भी धर्मग्रंथ के रूप में ही स्वीकार्य है।

---

* गीता 8--5

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 मिश्र पृ0 24

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 मिश्र पृ0 212

**** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 मिश्र पृ0 71

पुराण–साहित्य अनेक आर्ष कथाओं, आख्यानों, वृत्तान्तों के लिए प्रसिद्ध है। कविवर गुप्त ने 'अमृत मंथन' कविता के आधार के लिए अवश्यमेव पुराण साहित्य का अध्ययन किया होगा।

8.तीर्थ स्थानों में आस्था :– भारतीय धर्म और संस्कृति में तीर्थो का अमिट स्थान है। वैष्णवमात्र की उदात्त और उदार भावना तीर्थो–से पराड़्मुख हो ही नहीं सकती। कविवर सियारामशरण निः सन्देह सच्चे अर्थो में धर्मनिष्ठ थे; पर आजीवन रूग्णता ने उन्हें इस संदर्भ में अधिक कुछ करने में असमर्थ कर दिया था। जो उदार और व्यापक अन्तःकरण वाला व्यक्ति अपने जनपद की सड़कों के प्रति पूज्यभाव रखता हो,* उसके तीर्थ प्रेम पर प्रश्न चिन्ह नहीं उपस्थित किया जा सकता। फिर भी उनके तीर्थ प्रेम के अनेक प्रमाण प्राप्त हो जाते है उनकी पत्नी ने वृन्दावन की तीर्थ–यात्रा की थी। ** भारतवर्ष के विशिष्ट प्रदेश बंगाल को कवि भारत के मानस का तीर्थ –यात्रा मानते थे।*** बनारस में एक सप्ताह व्यतीत कर वहाँ माघी पूर्णिमा को गंगा स्नान करना उनकी ऐसी ही भक्ति का परिचायक है। इसके पश्चात वे अयोध्या–दर्शन के लिए भी आतुर थे, पर स्वास्थ्य कारणों से ऐसा न कर सके। **** अपने अग्रज की मृत्यु पर समुद्र तट पर जाकर अर्ध्य देना उनके ऐसी ही आस्था का सूचक है। इलाहाबाद जाकर गाँधी जी की भस्मी का दर्शन उनके लिए तीर्थ सदृश बन गया था। 'गोपिका' काव्य की रचना करते समय वे वृन्दावन गये थे और इसकी समाप्ति पर रंगनाथ जी का दर्शन किया था। सं0 1992 वि0में राम नवमी के दिन वे गाँधीजी का लिखित आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते थे। इस प्रकार रामनवमी की तिथि मानो उनके लिए तीर्थ बन गयी थी।

9.पुनर्जन्म की मान्यता :– पुनर्जन्म दर्शन का विषय है। वैदिक साहित्य में पूनर्जन्म की स्पष्ट अवधारणा दृष्टिगत होती है। मृत्यु के पश्चात जीव के मार्ग का निदर्शन यम करता है। यह जीव को उस मार्ग से ले जाता है, जहाँ से उसके पूर्वज गये थे। यह स्थान आनन्दों से परिपूर्ण है –

'' प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्योभिर्यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वध्या मदन्ता यमं पश्यासि वरूणं चन्देवम्।''*****

---

*	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 28
**	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 20
***	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 23
****	सियारामशशण गुप्त की काव्य साधना –डॉ0 मिश्र	पृ0 31
*****	ऋग्वेद	10–14–7

(जिस स्थान पर हमारे प्राचीन पितामह आदि गये है, पूर्वकाल में बने हुए मार्गो से शीघ्र जाओ और जाकर अन्न से तृप्त होने वाले दीप्तिमान शरीर वाले (दोनों) यम को और वरूण देवों को देखो)

ऋग्वेद के इसी प्रकार के मंत्रों के आधार पर पुराणों में पितृलोक की कल्पना की गयी है– यम को मृत्यु का देवता कहा गया है। पुनर्जन्म की स्पष्ट पुष्टि के लिए ऋग्वेद का यह मंत्र अवलोकनीय है–

" असु नीते पुनरस्यासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्त मनुमत्ते मृलया न स्वास्ति।" *

(यह परमेश्वर पुनः प्राणों की प्रतिष्ठा करता है। पुनः यक्षु आदि इन्द्रियों को, प्राणों को और भोगों को धारण करता है।) ऋग्वेद के परवर्ती साहित्य में अन्य वेदों और वैदिक साहित्य के पुनर्जन्म का विवेचन अधिक विस्तार से किया गया है।

आगे चलकर गीता में भी पुनर्जन्म का स्पष्ट प्रतिपादन है। भगवान् वासुदेव अर्जुन से कहते हैं

" जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। " **

" मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति का जन्म निश्चित है " इस सिद्धान्त से पुनर्जन्म सिद्ध है। गीता में अनेकत्र इसी तथ्य की अनेकधा व्याख्या की गयी है।

कविवर वैष्णव होने के नाते स्वभावतः आस्तिक एवं धर्म के विषय में परम्परावादी है। बहुश्रुत और बहुपठित होने के कारण उन्हें पुनर्जन्म का बोध भी है और उसकी अवश्यंभाविता से वे अवगत भी है। उनके लक्ष्य साहित्य में भी यही तथ्य व्यंजित हुआ है। ' विषाद' प्रकरण के अन्तर्गत उनकी पुनर्जन्म विषयक मान्यता अपने काव्य रूप में भी सुष्ठु रूप से प्रतिपादित हुई है –

" चली गई हे शुभे कहाँ तू हमसे कितनी दूर ;

X X X X X X X X X

---

* ऋग्वेद 8–126–6
** गीता 2–27

किस निर्जन, उपवन में तेरा हुआ नवीन निवास,

वह झाँडियाँ है, अथवा है नव–नव सुमन विकास ?

धूल उडाता हुआ वायु है अथवा सरस समीर,

मरू है या कि किसी तटिनी का कल–कल मुखरित तीर ?

जागृत उषा वहाँ आती क्या ऐसी ही सविलास ,

सन्ध्या–समय तारकाओं का, झिलमिल–झिलमिल हास? "*

पत्नि के दारूण देहावसान पर उक्त अनुभूतियों का जो मार्मिक प्रकाशन हुआ है, उससे स्पष्टतः उनके मानस में निहित पुनर्जन्म की अवधारणा स्पष्ट हो जाती है। दिवंगता पत्नी के प्रति कवि स्वर्ग प्राप्त की कल्पना भी की है। ** स्वर्ग प्राप्ति भी एक प्रकार का पुनर्जन्म ही है क्योंकि स्वर्ग से सूक्ष्म शरीर का पुनः इस मृत्यु लोक में पुनरागमन होता है–देव शरीर के लिए मोक्ष सुलभ नहीं है–

" ते तं मुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं।

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशान्ति।।" ***

अततः कवि 'जननी' कविता के माध्यम से यह अपेक्षा करता है कि वह पुनः–पुनः मातृ –सुख प्राप्त करने के लिए जन्म ले– इससे भी पुनर्जन्म उसका दृढ विश्वास सिद्ध हो जाता है–

मै बार–बार फिर जन्म लूँ

वह सुख पाने के लिए।

तो भी हे जननी तनिक भी

तृप्ति नहीं होगी, हिए। ****

<u>10.दान का महत्त्व</u> :– पुरातन काल से लेकर अब तक प्रायः सभी युगों के जन–जीवन में तप,दान और यज्ञ का महत्त्व समान रूप से स्वीकार किया गया है। तप और यज्ञ की अपेक्षा दान का महत्त्व अधिक सार्वजनीन तथा व्यापक रहा है। विश्व के समस्त मानव समाज में किसी न किसी रूप में दान की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है। किसी वर्ग,वर्ण आश्रम अथवा छोटे–बड़े,ऊँच–नीच आदि विषमताओं की अपेक्षा न करके दान के क्षेत्र में सबको समान अधिकार है। उसको लेने या ग्रहण करने के कुछ

---

*	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 165
**	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 165
***	गीता	9–21
****	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 192

नियम तथा प्रतिबन्ध हो सकते है किन्तु देने को सबको समान अधिकार हैं। भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम के लिए तो दान का अनिवार्य विधान है। 'दानमेकं गृहस्थानाम।' मनुस्मृति (1/86) में लिखा है कि ' सत्ये युग में तप, तेत्रा में ज्ञान , द्वापर में यज्ञ और कलियुग में केवल दान को महर्षियों ने प्रधान धर्म के रूप में स्वीकार किया है।

" तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुदनिमेकं कलौ युगे।। " *

यह दान शब्द अति सूक्ष्म तथा व्यापक है। दान पर दृष्टि डालने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि प्रथमतः इनके अर्थ को समझ लें। दान एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ दूसरों को ' दिये जाने से' अर्थ रखता है। इसके अन्तः अर्थ से अपरिचित या परिचित व्यक्ति के लिए किसी भी वस्तु को निःस्वार्थ भाव से देना 'दान' शब्द की सार्थकता पूरी करता है।

मनुष्य में नैतिक आभूषण अनेक है। उनमें से एक अमूल्य आभूषण ' दान' भी है दान करने की शक्ति बिरले मनुष्यों में ही होती है। लोभी तथा स्वार्थी पुरूष किसी वस्तु को अपनी आँखों के सामने नष्ट तथा विसर्जित होते हुए तो देख सकते है परन्तु स्व-हाथों से उसको दान करने की शक्ति से परे होते है। दान करने में उन्हें अपार कष्ट होता है। यदि परिस्थिति किसी कारण ऐसा विरुद्ध आचरण हो भी गया तो [illegible] क्लेशमय तथा अशान्त हो जाता है। परन्तु संसार में लोभी और स्वार्थी मनुष्यों के होते हुए भी दानियों की सूची अल्प नहीं है। संसार में दानी-परमार्थी जीव अनन्त है। उनको अपना सर्वस्व दान करने की प्रतीक्षा-सी बनी रहती है।

दान के अनेक प्रकार है :-

कोई धन दान करता है, कोई स्वर्ण दान, कोई विद्या दान करता है, तो कोई भूमि दान। किसी को अन्न दान, वस्त्र दान तथा अन्य खाद्यान्न दान करने की आदत-सी होती है। वेदों में दान और दानदाता की बड़ी प्रशस्ति गायी गयी है। दोनों में गोदान को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। गोदान के अतिरिक्त रथ,अश्व,ऊँट आदि पशु, अन्न,वस्त्र,नारी(दासी) स्वर्ण, रौप्य आदि दानों का भी वेद मंत्रों में उल्लेख है। पूर्वकाल (वैदिक काल) में शरीर तथा शरीर के अंग दान के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है। किसी ने तो ईश्वर तथा जगत लाभ के लिए अपने पुत्र को भी दान कर दिया। राजा दशरथ ने ऋषियों के

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गैरोला। पृ0 306

माँगने पर 14 वर्ष के लिए राम लक्ष्मण को राक्षसों के संहार हेतु दान कर दिया था। राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य पालन के लिए समस्त भूमि दान में दे दी थी। महर्षि परशुराम ने क्रूर क्षत्रिय राजाओं से पृथ्वी छीनकर ब्राह्मणों को दान कर दी थी। ऋषि दधीचि ने अपने शरीर की सभी हड्डियों को लोकहित में दान दिया था। दानी कर्ण को कौन नहीं जानता। महाराजा शिवि ने अपनी शरण में आये कबूतर की प्राण रक्षा हेतु बाज को अपने शरीर का माँस दान किया। * बल्कि यह संसार दानियों की गाथाओं से भरा पड़ा है। ऋग्वेद में लिखा है कि जो गोदान करता है वह स्वर्ग में उच्च स्थान पाता है, जो अश्वदान करता है वह सूर्यलोक में निवास करता है, जो स्वर्णदान करता है वह देवता होता है जो परिधान दान करता है वह दीर्घ जीवन लाभ करता है। राजा पृथुश्रवा ने सत्तर हजार अश्व दो हजार ऊँट, एक हजार काली घोड़ियाँ और दस हजार गायें दान में दी थी। **

छन्दोग्योपनिषद में लिखा है कि जनश्रुति पौत्रायण ने संवर्ग विद्या के अध्ययन हेतु आचार्य रैक्व को एक सहस्र गायें, एक सोने की सिकड़ी, एक रथ जिसमें खच्चर जुते थे, अपनी कन्या (परिणय रूप में) और कुछ गाँव दान में दिये थे।

समस्त प्रकार के दानों मे स्वर्ण, अश्व,तिल,हाथी,दासी,रथ,भूमि,घर,कन्या,और कपिला गाय–ये दस प्रकार के दान सर्वोत्कृष्ट कहे गये है। इन्हें 'महादान' की संज्ञा दी गयी है। *** आज भी दान की महिमा है। रक्षा क्षेत्र में हमारे वीर सैनिक शरीर को भी दान कर देते है। लोग दूसरों की प्राण रक्षा हेतु नेत्रदान,गुर्दा दान तथा रक्त दान करते हैं। ऐसी स्थितियाँ भी है कि लोग स्वयं भूखे रहकर दूसरे अधिक भूखों को अपनी रोटियाँ दान करते है। प्रत्येक मनुष्य इस संसार में अलग–अलग ढंग से जीने की चेष्टा करता है।

दान के महत्त्व पर अन्य कई ग्रन्थों में प्रकाश डाला गया है। ' वृहदारण्यकोपनिषद, में मनुष्य के तीन विशिष्ट गुणों का उल्लेख हुआ है। जिनके नाम है। दम दान और दया। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में स्वर्ण, पृथ्वी, और पशुदान का उल्लेख हुआ है। ' शतपथ ' ब्राह्मण में मानव देव (अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मण को यज्ञ में दक्षिणा दिये जाने का महत्त्व प्रतिपादित है)

---

* नैतिक शिक्षा शिक्षण – श्रीमती आर0के0शर्मा पृ0 50

** वैदिक साहित्य और संस्कृति– वाचस्पति गैरोला पृ0 367

*** वैदिक साहित्य और संस्कृति– वाचस्पति गैरोला पृ0 367

इसी प्रकार श्रुतियों स्मृतियों पुराणों और ' महाभारत' आदि में दान के महत्त्व एवं प्रचलन पर अनेक तरह के उल्लेख देखने को मिलते है। वहाँ दान की श्रेष्ठता को बताते हुए उसे मानवता और चारित्रिक उच्चता का गुण बताया गया है। दान का फल धार्मिक दृष्टि से जो कुछ भी हो भौतिक दृष्टि से भी कुछ कम नहीं है। भारतीय समाज में यह परोपकारिता एवं उदात्त भावना प्रायः सभी युगों और सम्पूर्ण वर्गो के लोगों में देखने को मिलती है।

दान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अपरकि ने कहा है–कि 'शास्त्र द्वारा उचित ठहराये गये व्यक्ति को शास्त्रानुमोदित विधि से प्रदत्त धन को दान कहा जाता है। *

कुछ ऐसे भी आधुनिक दानी है, जो गरीबो का शोषण कर दान करने की घोषणा करवाते है तथा ढोंग रचाते है। यह अर्थ हीन है दान देने की गरिमा स्वयं के अभाव के होने पर मूल्यवान है तथा वही परीक्षित है।

किन्तु यह सर्वविदित है कि निःस्वार्थ दान करने वाले प्राणी आत्मबल के धनी होते है। धर्माचरण कर मोक्ष को प्राप्त करते है। ऐसे पुरूष इस लोक तथा परलोक दोनों में आनन्द प्राप्त करते है।

इस प्रकार दान एक प्रकार की उदात्त मानसिक प्रवृत्ति है। उससे हर हालत में पुण्य की उपलब्धि तो होती ही है किन्तु केवल पुण्य को लक्ष्य करके दान नहीं दिया जाता। उदात्त चित्त सात्विक प्रवृत्ति वाले लोगों के अन्तःकरण में यह वृत्ति अधिक सक्रिय रहती है। दान में ' वस्तु की बहूमूल्यता एवं असाधारणता की अपेक्षा नहीं होती। किसी सुपात्र को समय पर दी गयी साधारण वस्तु भी असाधारण पुण्यफल का कारण हो सकती है। इसी लिएं तुलसी ने लिखा है –

'' प्रगट चारिपद धर्म के कलि महँ एक प्रधान।

येन केन विधि दीन्हें दान करइ कल्यान।। '' **

महाभारत (शान्ति पर्व) के अनुसार दान धर्म है, यदि पात्र को दिया जाय। उत्तम देश और काल में साधु पुरूषों को प्रार्थना और सत्कारपूर्वक दान दें। शुभ कर्मो द्वारा प्राप्त हुआ धन सत्पात्र को दें। देने के बाद पश्चाताप या दान का बखान न करें....।

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति– वाचस्पति गैरोला — पृ0 368

** रामचरित मानस — 7–103

दयालु,पवित्र,सत्यवादी,जितेन्द्रिय,सरल,योनि और कर्म से शुद्ध यजन–याजन, अध्ययन–अध्यापन,दान और प्रतिग्रह इन छह कर्मो का सदा अनुष्ठान करने वाला ब्राह्मण दान का उत्तम पात्र है। ऐसे दान से धर्म होता है। देशकालादि का विचार न करने पर पात्र और क्रिया की विशेषता से वही दानदाता के लिए अर्धम के रूप में परिणत हो जाता है।* पुनः विद्वान्मत है कि विधिपूर्वक चाहे न भी हो, चाहे मन से इच्छा भी न हो जबरदस्ती भी किसी के डर से किया हो, सकाम या निष्काम हो, कैसे ही क्यों न किया जाय, वह कल्याण ही करेगा।** दान के पाँच अधिष्ठान है (1) धर्मदान– जो केवल धर्म बुद्धि से दिया जाय,(2) काम दान –स्त्री समागम,सुरापान आदि के प्रसंग में जो अनधिकारी को दिया जाय,(3) लज्जादान –लज्जावश जो दिया जाय,(4) हर्ष–दान प्रियकार्य देखकर , प्रिय समाचार सुनकर जो दिया जाय, (5) भयदान – भय से विवश होकर जो दिया जाय)

कविवर गुप्त के उदार व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व में वर्तमान युग की यह वरेण्य विशेषता विद्यमान है। उनके दान की प्रकृति अनेकरूपा है। 'खाडी की चादर' को चम्पा के लिए द्विज द्वारा दिया जाने वाला दान अस्वीकार्य है।' विषाद' में विरह [illegible] शोकावस्था में दिवंगता पत्नी को स्मरण करता हुआ कहता है [illegible] तादृश पत्नी का दान न करता तो उसका अनुग्रह होता; कवि विभिन्न [illegible] सर्वविद्यभाव संपन्नता का दान प्राप्त करने से संतुष्ट है ; विप्लव की झाडूवाले गाँधी जी का अभयदान सार्वजन संबद्ध है; कवि अकिंचन दान से भी हीन है। वीर, कवि के लिए महादानी है, तो विधाता भी दान करने से नहीं विरत होता, अकिंचन कवि का अक्षत दान भी सर्वश्रेष्ठ दान का सम्मान प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार कवि ने दान के विभिन्न रूपों को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है।

अपने सामाजिक–व्यवहारिक जीवन में कवि की दृष्टि सम्प्रदान की ओर रही है। इसी के संदर्भ में पुरस्कार योजनाओं की संकल्पना हुई थी। प्रथम रू0 20,000.00 का पुरस्कार गोस्वामी तुलसीदास के नाम से संकल्पित था। [illegible] 20,000.00 का दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) के नाम से दिया जाना था।

---

* मानस पीयूष– खण्ड 7 पृ0 509

** मानस पीयूष– खण्ड 7 पृ0 509

<u>11.अवतार संबंधी मान्यता</u> :– अवतार शब्द का अर्थ है– देवता का भूमि पर पदार्पण अन्य शब्दों में निगुण–अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप में आना ही अवतार है। भगवान् या ईश्वर का यह व्यक्त रूप अपने कर्मो के साथ ' दिव्य ' कहा गया है।* ब्रह्म या अव्यक्त सत्ता अपने जन्म का भाव दिखलाती है। पर वस्तुतः जन्म नहीं ग्रहण करती। इस विषय में तुलसी के मानस में स्पष्टीकरण है–

" जथा अनेक बेष धरि नृत्य–करइ नट कोइ।
सोइ–सोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोइ।।" **

' अवतार ' क्यों होता है, इस विषय में आर्षग्रंथ मौन नहीं है। गीता में स्पष्ट उल्लेख है –

" यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत
अभ्युत्थानम धर्मस्य, तनात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे। " ***

(हे भरतवंशी ! जब–जब धर्म का पतन होता है और अर्धम की प्रधानता होने लगती है तब–तब मैं अवतार लेता हूँ। भक्तो का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने तथा धर्म की फिर से स्थापना करने के लिए मैं हर युग में प्रकट होता हूँ) श्रीमद्‌भगवत में स्पष्ट उल्लेख है कि अवतार का हेतु है– कृपा, करूणा, अनुग्रह **** तुलसी के अनुसार भगवान का अवतार –विप्र ,धेनु,सुर तथा सन्तों के कल्याण के लिए होता है।***** यह अवतार प्रभु की स्वेच्छा से ही होता है ****** भगवान के प्रमुख अवतारों की संख्या दस बताई गयी है –

" मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश।।" *******

अवतार केवल निर्गुण या अव्यक्त तत्त्व से ही नहीं होता, कारक है। कारक पुरुष और

---

*	जन्म च कर्म में दिव्यम् – गीता	4–9
**	श्रीरामचरितमानस– उ0	72 (ख)
***	गीता– अ	4–7–8
****	श्रीमद् भागवत	10–33–37
*****	मानस– बाल	पृ0 192
******	श्रीमद् भागवत	11–11–28
*******	संस्कृत हिन्दीकोश (उदघृत) – आप्टे	पृ0 108

सन्त महात्माओं के रूप में भी अवतार होता है। कारक पुरूष का अवतार नैमित्तिक होता है ; पर संतो का नित्य होता है। कारक पुरूष वे हैं जो (महापुरूष) भगवान् को प्राप्त हो चुके है और भगवद्धाम में विराजते है। यहाँ उल्लेख्य है सन्त कोटि में ही योगभ्रष्ट का परिगणन होता है जैसा कि गीता (6–41) में कहा गया है। अवतार चार प्रकार के हैं– (1) आवेश (2) प्रवेश (3) स्फूर्ति (4) अविर्भाव। आवेशावतार कुछ दिनों के लिए होता है। लोहे के गोले में अग्नि प्रवेशवत् प्रवेशावतार होता है। बिजली की चमक की भाँति स्फूर्ति अवतार भी क्षणभर के लिए होता है। आविर्भाव में तो पत्थर की टाँकी की चोट से साक्षात अग्नि के प्राकट्य की भाँति प्रभु का अवतार होता है।

कविवर सियारामशरण परम्परागत वैष्णव कुल में जन्मे है, अतः उनके हृदय में विभिन्न अवतारों के प्रति अमिट आस्था है। अवतारों में उनके विशेष आलंबन राम और कृष्ण है। उनका काव्य जगत में प्रवेश राम के मंगलाचरण या वंदना के साथ होता है। (मौर्य विजय)* इसके साथ ही वे अवतार की शक्ति स्वरूपिणी देवियों का भी स्वरूप–वन्दन करना नहीं भूलते –

हे मातः! हे शिवे, अम्बिके तप्त ताप यह शान्त करो

उनके मान्य अवतारों में हरि भगवान आदि भी है जो राम या कृष्ण किसी के भी वाच्य हो सकते हैं –

"हे हरि, सुख संयुत ही हो वह तेरे लिए सदैव ।**

X X X X X

वस्तु क्यों दी ऐसी भगवन्त। ***

X X X X X

निर्दय बनकर हमें दण्ड तब

दो हे करूणागार ****

दयामय! क्या दया इस पर न होगी " *****

उल्लेखनीय है कि सभी अभिधान अवतार धारण करने वाले सगुण तत्त्व के ही है, यद्यपि ये निर्गुण–अव्यक्त तत्व के लिए भी कबीर आदि कवियों के द्वारा प्रयुक्त हुए हैं।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 16
** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 165
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 164
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 178
***** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 179

12.आचार–नीति :– 'आचार' शब्द आङ् उपसर्ग पूर्वक चर धातु से धञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, जिसके अर्थ है – आचरण व्यवहार प्रथा, लोकाचार आदि।*व्यवहार शब्द की व्युत्पत्ति वि = विविध, अब =सन्देह, हार = हरण के योग से बने व्यवहार का तात्पर्य उस कर्म से है। जिससे नाना प्रकार के सन्देह दूर किये जाते है। **कालमान के अनुसार देशाचार, कुलाचार और जाति धर्म का भी विचार करना पड़ता है। क्योंकि आचार ही सब धर्मों की जड़ है ; तथापि आचारों में बहुत भिन्नता हुआ करती है। महाभारत में पितामह भीष्म का कथन है " ऐसा आचार नहीं मिलता जो हमेशा सब लोगों का समान हितकारक हो। यदि किसी एक आचार को स्वीकार किया जाय तो दूसरा उससे बढ़कर मिलता है। यदि इस दूसरे आचार को स्वीकार किया जाये तो वह किसी तीसरे आचार का विरोध करता है। ***

आचार या सदाचार के अनेक लाभ है – व्यक्ति दीर्घ आयु, मनोवांछित सन्तान तथा अक्षय धन की प्राप्ति करता है और सदाचार से ही अकल्याणकारी बुरे लक्षणों का नाश होता है। ****

आचार दो प्रकार का है – मानसिक और कायिक/मानसिक आचार को ही शील,स्वभाव, आत्मगुण आदि नामो से अभिधानित किया जाता है। शारीरिक का ही उल्लेख ' आचार' के रूप में किया जाता है। शील नामक आचार के तेरह भेद है, ऐसा हारीत का कहना है। ये तेरह भेद इस प्रकार है– (1) ब्राह्मण्यता (2) देव–पितृभक्ति (3) सौम्यता (4) अवरोतापिता (5) अनसूयता (6) मृदुता (7) अपारूष्य (8) मैत्र्य (9) प्रियवादिता (10) कृतज्ञता (11) शरण्यता (12) कारूण्य तथा (13) प्रशान्ति। गौतम के अनुसार आत्मगुण आठ हैं – (1) दया (2) क्षान्ति (3) अनसूया (4) शौच (5) अनायास (6) मंगल (7) कार्पण्य (8) एवं अस्पृहा । ***** यम, नियम शरीर–आचार के ही अन्तर्गत स्वीकार लिए गये हैं। यम, नियम ये दोनों दशधा विभाजित किए गये है। यम के अन्तर्गत सत्य,क्षमा, आर्जव, ध्यान, अनृशंसता, अहिंसा, दम, प्रसाद, माधुर्य, मृदुता– आते है। नियमों में शौच, स्नान,तप,दान मौन, इज्या, अध्ययन, व्रत, उपासना, उपस्थ निग्रह परिगणित है। ******

---

*	संस्कृत हिन्दी कोश – आप्टे	पृ0 141
**	नीतिसार अंक – कल्याण	पृ0 253
***	महाभारत– शान्ति पर्व	259–17–18
****	मनु स्मृति	4–156
*****	संस्कृति निबंधावलि– डॉ0 रामजी उपाध्याय	पृ0 94
******	संस्कृति निबंधावलि– डॉ0 रामजी उपाध्याय	पृ0 94

12.आचार–नीति :– 'आचार' शब्द आङ् उपसर्ग पूर्वक चर धातु से धञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, जिसके अर्थ है – आचरण व्यवहार प्रथा, लोकाचार आदि।*व्यवहार शब्द की व्युत्पत्ति वि = विविध, अब =सन्देह, हार = हरण के योग से बने व्यवहार का तात्पर्य उस कर्म से है। जिससे नाना प्रकार के सन्देह दूर किये जाते है। **कालमान के अनुसार देशाचार, कुलाचार और जाति धर्म का भी विचार करना पड़ता है। क्योंकि आचार ही सब धर्मों की जड़ है ; तथापि आचारों में बहुत भिन्नता हुआ करती है। महाभारत में पितामह भीष्म का कथन है '' ऐसा आचार नहीं मिलता जो हमेशा सब लोगों का समान हितकारक हो। यदि किसी एक आचार को स्वीकार किया जाय तो दूसरा उससे बढ़कर मिलता है। यदि इस दूसरे आचार को स्वीकार किया जाये तो वह किसी तीसरे आचार का विरोध करता है। ***

आचार या सदाचार के अनेक लाभ है – व्यक्ति दीर्घ आयु , मनोवांछित सन्तान तथा अक्षय धन की प्राप्ति करता है और सदाचार से ही अकल्याणकारी बुरे लक्षणों का नाश होता है। ****

आचार दो प्रकार का है :– मानसिक और कायिक/मानसिक आचार को ही शील,स्वभाव, आत्मगुण आदि नामों से अभिधानिल किया जाला है। शारीरिक का ही उल्लेख ' आचार' के रूप में किया जाता है। शील नामक आचार के तेरह भेद है, ऐसा हारीत का कहना है। ये तेरह भेद इस प्रकार है– (1) ब्राह्मण्यता (2) देव–पितृभक्ति (3) सौम्यता (4) अवरोतापिता (5) अनसूयता (6) मृदुता (7) अपारूष्य (8) मैत्र्य (9) प्रियवादिता (10) कृतज्ञता (11) शरण्यता (12) कारूण्य तथा (13) प्रशान्ति। गौतम के अनुसार आत्मगुण आठ हैं – (1) दया (2) क्षान्ति (3) अनसूया (4) शौच (5) अनायास (6) मंगल (7) कार्पण्य (8) एवं अस्पृहा । ***** यम, नियम शरीर–आचार के ही अन्तर्गत स्वीकार लिए गये हैं। यम, नियम ये दोनों दशधा विभाजित किए गये है। यम के अन्तर्गत सत्य,क्षमा, आर्जव, ध्यान, अनृशंसता, अहिंसा, दम, प्रसाद, माधुर्य, मृदुता– आते है। नियमों में शौच, स्नान,तप,दान मौन, इज्या, अध्ययन, व्रत, उपासना, उपस्थ निग्रह परिगणित है। ******

---

* संस्कृत हिन्दी कोश – आप्टे पृ0 141

** नीतिसार अंक – कल्याण पृ0 253

*** महाभारत– शान्ति पर्व 259–17–18

**** मनु स्मृति 4–156

***** संस्कृति निबंधावलि– डॉ0 रामजी उपाध्याय पृ0 94

****** संस्कृति निबंधावलि– डॉ0 रामजी उपाध्याय पृ0 94

'नीति' शब्द नी धातु से क्तिन् (ति) प्रत्यय करने पर बना है। जिसका अर्थ है– अभीष्ट को प्राप्त करने वाली, बतलाने वाली या लक्ष्य तक पहुँचाने वाली पद्धति अथवा प्रकार। कोश ग्रंथों में ' नीति' का अर्थ निर्देशन योजना प्रबन्धन व्यवहार, आचरण, औचित्य, कौशल, बुद्धिमत्ता आदि किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ' नीति' शब्द प्रयोग के अनुसार ही भिन्न–भिन्न अर्थ व्यंजित करता है– फिर भी नीति का आचार शास्त्र जो जीवन में सर्वविध सफलता के लिए उत्कृष्ट दिशा –निर्देश करता है। सूक्ष्म रूप से देखें तो नीति धर्म एवं आचार शब्द प्रायः समानार्थक हैं। भारतीय साहित्य में जहाँ भी 'नीति' शब्द का प्रयोग हुआ है उसका अर्थ ' आचार' धर्म या कर्त्तव्य के रूप में गृहीत हुआ है। नीति के अन्तर्गत देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार प्रयोग की कसौटी पर खरे उतरे सिद्धान्तों तथा अनुभवों का निर्देश होता है। नीति में जीवन एवं जगत के सर्वांगीण सार्वजनीन व्यापक अनुभवों और विषयों का बोधगम्य, बुद्धिसम्मत, सारभूत, सूक्ष्म तथा सूत्रबद्ध विवेचन होता है। इसमें धर्म, आचार आदि सभी समाहित होते है तथा सार्वभौमिक जीवन के कल्याणकारी अनुभवों की व्याप्ति होती है।* उल्लेखनीय है कि गीता में भगवान वासुदेव ने नीति को अपनी विभूति कहा है। कि विजयाकांक्षियों में नीति में ही हूँ। ** इस प्रकार नीतिरत व्यक्ति वीर पुरुष की कोटि में परिगणित हो जाता है। ***

कविप्रवर गुप्त उपर्युक्त नीति तथा आचार के सिद्धान्तों को अपने काव्य में पूर्णतः अपनाया है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कोई भी कवि इन तत्त्वों से पराङ्मुख नहीं रह सकता क्योंकि काव्य का प्रयोजन मात्र रसास्वादन नहीं है शिवेतरक्षति **** भी है यहाँ कवि के कुछ नैतिक मानदण्डों को प्रस्तुत किया जाता है –

1– अहिंसा – हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर *****

2– तप – व्यर्थ गया सारा तप–त्याग इतना। ******

3– देवभक्ति – मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर। *******

---

*	नीतिसार– अंक– कल्याण	पृ0 224
**	गीता अं0	10–38
***	श्रीरामचरित मानस	6
****	काव्य प्रकाश–(सम्पादक विश्वेश्वर) आचार्य मम्मट	पृ0 10
*****	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 495
******	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 449
*******	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 111

4– अस्पृहा – हे निष्पृह! निज धन्य भूमि का
प्रेम तुम्हें भी भाया
अपने छोटे–से उस पुर को
राजापुर कहलाया। *

5– पितृ (मातृ) भक्ति – आकर अब मुझ पर फेर दे
हे माँ ! तू निज हाथ ही
तो पड़ जावे हृदयाग्नि पर
पानी उसके साथ ही।**

6– दया – पशु–तुल्य हम लाखों मनुज हां ! जी रहे क्यों लोक में,
जीते हुए भी मर रहे पड़ कर विषम दुः,ख शोक में।
हा दैव ! क्यों निस्सार यों जीवन हमारा है किया ?
दुःख भोगने के लिए क्या जन्म है हमने लिया ,? ***

7– शरण्यता – किसको पुकारें यहाँ रोकर अरण्य बीच
चाहे जो करो शरण्य! शरण तुम्हारे हैं। ****

8– प्रशान्ति – गया हुतात्मा अमर लोक को
उसके लिए अशान्त न हो।
जीवन भर के बाद आज ही
पाई है उसने यह शान्ति। *****

9– उपासना – तैठे एक निर्जन कुटीर में
सुर–सरिता के तट पर
भक्ति तत्व लिख गये असंख्यक
मनुजों के हृत्पट पर। ******

10– दान – बेटी, यह दान तुम ले लो इस दीना का। *******

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 195
** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 192
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 86
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 180
***** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 254
****** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 194
******* सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 449

11– मंगल – हाथ जोड़ मैने कहा– '' जाओ बन्धु मंगल के यात्री तुम, नित्य नवमंगल तुम्हारा हो। *

कवि गुप्त के व्यक्तित्त्व में उपर्युक्त नैतिक एवं आचारविषयक मानदण्ड प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके है; यह कहना नितान्त प्रासंगिक है। सर्वप्रथम हिन्दी के शीर्ष विद्वानों के मत यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

(1) '' मैं उनकी आश्चर्यजनक सहजता और सादगी की भव्यता से अभिभूत निर्निमेष खड़ी रह गयी। अभिवादन के लिए मेरे हाथ उठे उसके पहले ही बापू (कवि) हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। '' **

(2) '' (अंग्रेजी में नर्स से बातचीत न कर पाने के कारण हुई अपनी अवहेलना जैसी घटना का) बापू पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, उनकी सहज मुस्कान में कहीं वक्रता नहीं आई।'' ***

(3) '' .... मेरे आत्मगोपनशक्ति की जो अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा बापू करते, उससे उनकी महानता सरलता और ऋजुता के अनुभव से मैं मन ही मन विभोर हो उठती।'' ****

(4) '' बापू गाड़ी से उतरे हाथ जोडकर ड्राईवर से बोले–''अच्छा नमस्ते ड्राइवर जी ! आपको बड़ा कष्ट हुआ। मैं उनका (कवि का) मुँह देखती रह गयी। '' *****

(5) '' गोपिका ' पूरी हो गयी है आप इसकी पाण्डुलिपि ले जाइए और पढ़कर बताइए इसमें कुछ दोष तो नहीं है।'' ******

(6) '' आज भी चिरगाँव में दद्दा का घर, बापू की दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए बापू की ही गीता के स्वर से गूँज रहा होगा –

'' सर्वकाम परित्यागी विचरे नर निःस्पृह
अहंता– ममतामुक्त पाता परम शान्ति सो !
ब्राहमीस्थिति यही पार्थ इसे पाके न मोह है।
टिकती अन्त में भी है ब्रह्मनिर्वाणदायिनी। '' *******

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 436
** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 49
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 50
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 51
***** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 51
****** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 51
******* सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 53

(प्रख्यात आलोचक डा0 सावित्री सिन्हा)

(7) " (वे) प्रथम दर्शन में टकसाली साहित्यिक की अपेक्षा परिचित आत्मीय से अधिक जान पडते है।" *

(8) "वे वार्तालाप में रस लेते हैं , कवि और उपन्यासकार का भावुक हृदय सफाई से मित्रों के सामने उढ़ेल देते है।" **

(9) " प्राचीन के प्रति वे आस्थावान हैं, साथ ही नूतन के प्रति उनके हृदय में स्वागत का भाव है।" ***

(10) " नर की प्रतिष्ठा के वे भक्त हैं और मानवोचित गुणों की व्याख्या और जीवन में उनकी प्राप्ति को ही वे व्यवित और समष्टि का ध्येय मानते है। ****

(11) (ऐसा लगता है कि श्वास–रोग का) अवसाद उनकी बलवती प्राणधारा से पराजित होकर ही उनके अनुभव तक पहुँचता है। " *****

(12) " भारतीय लोक जीवन की जो चिर प्रतिष्ठा है उसको अनुप्राणित करने वाले जो चरित्र के गुण है .... एवं इस देश की संस्कृति में जो उदात्त और तेजस्वी जीवन तत्त्व है, उनमें सियारामशरण जी का मन रमता है। ******

(प्रख्यात रचनाकार आलोचक डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल)

(13) " अत्यन्त सरल स्वभाव और अत्यन्त मर्मभेदिनी तीक्ष्ण दृष्टि– प्रथम दर्शन में ये दो बातें ही दर्शक पर अपना प्रभाव डालती है।" *******

(14) " श्रद्धा और समीक्षण शक्ति उनके सहजात गुण है। " ********

(15) " वस्तुतः भैया (कवि) सहज है। सरल नहीं । (सहजता) तपस्या से प्राप्त होती है। " *********

(16) " ज्ञान के प्रति इतनी सजग जिज्ञासा थोड़े ही साहित्यिकों को में होगी। ... . इस प्रकार को निस्पृह निर्मान सत्यनिष्ठ साधक मिलना सौभाग्य की बात है।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 17

** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 17

*** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 17

**** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 17

***** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 17

****** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 18

******* सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 20

******** सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 20

********* सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 20

वे विज्ञापनों के चक्कर में नहीं पड़ते। सरस्वती की उपासना में इस प्रकार की एकान्त निष्ठा आजकल दुर्लभ है। *

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

(17) '' बातें की, उन्हें देखा तब गाना कि यह जो व्यक्ति सियारामशरण इतना झुका हुआ लगता है। यह निर्बल का झुकना नहीं है। बल्कि यह उस शक्तिशाली का झुकना है जो अपनी शक्ति से बराबर इनकार किये जा रहा है। '' **

(18) '' परन्तु अपने में उन्हें जितना अविश्वास जान पडता है, दूसरे में उतना ही विश्वास है। यह प्रकृति आत्मदान से उपजी है। इसी से उनका अपने में इतना घोर अविश्वास अखरता नहीं है और दूसरों में विश्वास उनके प्रति श्रृद्धा पैदा कर देता है। ***

(19) '' उनकी प्रवृत्ति भी धार्मिक है। '' ****

(20) '' ....चिरसंगी दमें की शारीरिक यातना ने उन्हें बरबस तपस्वी बना लिया है।'' *****

(21) '' इतनी निश्छलता ...... इतना आत्मदान लेकिन इतना कुछ देकर भी वे स्वयं छूंछे रहते है। '' ******

(22) '' सियारामशरण जी की ज्ञान–पिपासा बड़ी तीव्र है। जन्मजात प्रतिभा न होने पर भी इतने बड़े कवि बन गये है। वे कोश के सहारे ही अंग्रेजी के बड़े–बड़े कवियों की रचनाएँ पढ़ लेते है। *******

(23) (वे) क्रोध से अछूते हैं। वे अखण्ड विद्रोही है, पर दासकता से रिक्त है। .... उनका हृदय सौजन्य और सौहार्द्र से परिपूर्ण है। उनके नेत्र पीले पड गये है। पर अनुभूति और अनुराग उनसे बराबर छलकते रहते है। ********

13. सत्य – सामान्यतः ' सत्य' वाक् से संबद्ध किया गया है ; प्रसिद्ध साहित्यकार

---

*	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 22
**	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 24
***	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 24
****	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 25
*****	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 25
******	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 25
*******	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 25
********	सियारामशरण गुप्त रचनावली – डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 26

विष्णु प्रभाकर पर दर्शन इसे तत्त्व की दृष्टि से व्याख्यायित करता है। वेदान्त में मूल द्रव्य (अविनाशी तत्त्व) को 'सत्य' या 'अमृत' कहते है। सामान्यजन 'सत्य' की व्याख्या इस प्रकार करते है। कि चक्षुर्वै सत्यम् अर्थात् जो आँखों से दीख पड़े वही सत्य है; परन्तु यह लौकिक लक्षण है। उदाहरणार्थ मिट्टी से निर्मित पात्र को ' घट' कह देते है। जो सत्य नहीं है। – सत्य मिट्टी है। इस प्रकार सत्य की परिभाषा यह दी गयी है कि सत्य वही है जो अविनाशी है अर्थात् जिसका अन्य बातों के नाश हो जाने पर भी कभी नाश नहीं होता।*

उपनिषदों में बार–बार यह बतलाया गया है कि नित्य बदलते रहने वाले अर्थात् नाशवान नामरूप सत्य नहीं है। जिसे सत्य अर्थात् नित्य, स्थिर तत्त्व को देखना हो उसे अपनी दृष्टि को इन नाम रूपों से परे पहुँचाना चाहिए। इस प्रकार जगत् में अदृश्य पर एकमात्र सत्य तत्त्व परमात्मा है।

' सत्य' शब्द को ' वचन' के साथ भी जोड़ा गया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। यह कहा गया है कि प्रधान धर्मबीज हितकारी पवित्र, गंभीर,मधुर,सदा एक रस बोलना ही –'सत्य' है ** यह लोभी,धूर्त,मूर्ख,खल और छली आदि के लिए असंभव है जो इन अवगुणों से रहित है, वही सत्य कह सकता है। सत्य की परिभाषा इस प्रकार कही गयी है। ''जो बात जैसी हो, जैसे देखे, सुने वैसे ही माने और कहे ***सही सत्य है।

सत्य को परम धर्म के रूप में माना गया है। एकाक्षर ब्रह्म भी सत्य ही है। सत्य में ही समस्त धर्म प्रतिष्ठित है। लोक में धर्म की पूर्ति सत्य से ही होती है। दान, यज्ञ, होम, तप, वेद सबका मूल सत्य ही है। यही तुलसी की भी मान्यता है।**** जब तक सत्य बना रहता है तब तक सब होते रहते है; सबकी स्थिति इसी पर निर्भर है। इसके नाश से समस्त सुकृतों का नाश हो जाता है।

पुराण साहित्य में सत्य भाषण को परिस्थिति सापेक्ष मानकर कहा गया है कि जहाँ असत्य बोलने से प्राणियों की प्राण रक्षा होती हो वह असत्य भी सत्य है और सत्य भी असत्य है।***** सामान्यतः असत्य के समान पापों का समूह नहीं है। सत्य कहने में

---

*	महाभारत – शान्ति पर्व – 162–10 (उदघृत गीता रहस्य)	पृ0 145
**	भगवदगुण दर्पण – उदघृत – मानस पीयूष– खण्ड 6	पृ0 420
***	मानस पीयूष– खण्ड 6	पृ0 421
****	सत्य मूल सब सुकृत सुहाये। मानस– अयोध्या	28–6
*****	पद्मपुराण– सृष्टिखण्ड	18–392

भी दोष लग जाता है। एक प्रसिद्ध नीति श्लोक है '' सत्य'' ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् , न ब्रूयात सत्यामाप्रियम '' * अर्थात् वह सत्य बोलना चाहिए जो प्रिय हो जो दूसरों को अप्रिय लगे वह दूषित सत्य है। अतः त्योज्यं है! गीतकार के अनुसार जो किसी को भी उद्विग्न न करने वाला सत्य और प्रिय तथा हितकारक भाषण है, तथा स्वाध्याय और अभ्यास (नापजप आदि) भी वाणी संबधी तप कहा जाता है।** यतः कविवर गुप्त महात्मा गाँधी के द्वारा प्रतिपादित ' सत्य' की अवधारणा से प्रभावित और परिचालित है; अतः यहाँ गाँधी जी के ' सत्य' के विचार पक्ष का किंचित् संकेत आवश्यक होगा। गाँधी जी के लिए सत्य ईश्वर है और जो व्यक्ति दूसरे को आघात पहुँचाता है, वह सत्य का उल्लंघन करता है। हिंसा असत्य है, क्योंकि वह जीवन की एकता और पवित्रता के विरूद्ध है। इसलिये जीवन में अहिंसा का पालन सत्य के उपासक का सबसे बड़ा कर्तव्य है। गाँधीजी की देन यह है कि उन्होंने सत्य और अहिंसा को एक व्यापक अर्थ दिया और एक व्यापक स्तर पर उसका प्रयोग किया। जहाँ तक सत्य की परिभाषा का प्रश्न है गाँधीजी का कथन है –'' तुम्हारी अन्तरात्मा जो कहती है'' वही सत्य है। *** यह परिभाषा उपर्युक्त तात्त्विक विवेचन से कहाँ तक मेल खाती है, यह निर्णय करना किचिंत मात्र भी कठिन नहीं है।

कवि सियारामशरण ' सत्य' से समग्रतः अनुप्राणित और परिचालित है, परन्तु यह 'सत्य' मात्र वचन से संबद्ध न होकर उसी प्रकार व्यापक है जैसा गाँधी जी की अवधारणा में था। ' सत्य' की ऐसी ही दीप्ति से कविवर का सम्पूर्ण काव्य ज्योतित है। ' बापू' कविता में सूत्र रूप में कवि ने संकेतित किया कि गाँधीजी जीवन के आरोह–अवरोह में एक समान सत्य के प्रति समर्पित बने रहे। कहना न होगा कि कवि भी तद्वत ही रहा है। ऐसा लगता है मानो उसने जो कुछ इस संदर्भ गाँधी जी के लिए लिखा है वह स्वयं उसकी भी अवधारणा है।

'' आरोहावरोह में समानोदार
सत्य का विशुद्धोंच्चार।''****

संक्षेप में इसी कसौटी पर कवि का काव्य खरा उतर सकता है।

---

*	मनु स्मृति	4–138
**	गीता	17–15
***	आधुनिक राजनीतिक विचारधारायें –डॉ0 पुखराज जैन	पृ0 263
****	सियारामशरण गुप्त रचनावली	पृ0 422

14.अहिंसा – अहिंसा परम धर्म है, परम तप है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है, यथा– '' अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा परमं तपः।'' * अहिंसा का समान्य अर्थ है शरीर ,मन,वाणी,भाव आदि के द्वारा किसी का भी किसी प्रकार से अनिष्ट न करने को तथा अनिष्ठ न चाहने को ' अहिंसा' कहते है। ** वास्तव में सर्वथा अहिंसा तब होती है जब मनुष्य संसार की तरफ से विमुख होकर परमात्मा की तरफ ही चलता है उसके द्वारा अहिंसा का पालन स्वतः होता है। परन्तु जो रागपूर्वक भोग बुद्धि से भोगों का सेवन करता है, वह कभी सर्वथा अहिंसक नहीं हो सकता। वह अपना पतन तो करता ही है जिन पदार्थो आदि को भोगता है, उनका भी नाश करता है *** जो संसार के सीमित पदार्थो को व्यक्तिगत (अपने) न होने पर भी व्यक्तिगत मानकर सुखबुद्धि से भोगता है वह हिंसा ही करता है कारण कि समष्टि संसार से सेवा के लिए मिले हुए पदार्थ,वस्तु,व्यक्ति आदि में किसी को भी अपने भोग के लिए व्यक्तिगत मानना हिंसा ही है। यदि मनुष्य समष्टि संसार से मिली हुई वस्तु पदार्थ व्यक्ति आदि को ही संसार की ही मानकर निर्ममता पूर्वक संसार की सेवा में लगा दे तो वह हिंसा से बच सकता है और वही अहिंसक हो सकता है।****

''अहिंसा'' के संदर्भ में विचार करते हुए भगवद्–गीता यथारूप के व्याख्याकार श्री मद् ए.सी. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद कहते है '' अहिंसा का अर्थ है किसी जीव के प्रगतिशील जीवन को न रोकना। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि शरीर के वध किये जाने के बाद भी आत्मा स्फुलिंग नहीं मरता, इसलिए इन्द्रिय तृप्ति के लिए पशुवध करने में कोई हानि नही है। प्रचुर अन्न, फल तथा दुग्ध की पूर्ति होते हुए भी आजकल लोगों को पशुओं का माँस खाने की लत पड़ी हुई है, लेकिन पशुओं के वध की कोई आवश्यकता नहीं है। जब कोई विकल्प न रहे, तभी पशु वध किया जाय। जो भी हो जो मानवता के लिए प्रचुर भोजन न हो तो जो लोग आध्यात्मिक साक्षात्कार में प्रगति करने के इच्छुक है। उन्हें पशु–हिंसा नहीं करनी चाहिए। पशु भी अपने विकास काल मे एक पशु योनि से दूसरी पशु योनि में देहान्तरण करके प्रगति करते है। यदि

---

*	उदधृत – मानस पीयूष – षष्ठ–7	पृ0 670
**	गीता–साधक संजीवनी (म0भा0आ011–13)	पृ0 992
***	गीता–साधक संजीवनी (म0भा0आ011–13)	पृ0 992
****	गीता–साधक संजीवनी (म0भा0आ011–13)	पृ0 992

किसी विशेष पशु का वध कर दिया जाता है तो उसकी प्रगति रूक जाती है। यदि कोई पशु किसी शरीर में बहुत दिनों या वर्षो से रह रहा हो और उसे असमय ही मार दिया जाय तो उसे पुनः उसी जीवन में वापस आकर शेष दिन पूरे करने के बाद ही दूसरी योनिं में जाना पड़ता है। अतएव अपने स्वाद की तुष्टि के लिए किसी की प्रगति को नहीं रोकना चाहिए। यही अहिंसा है।*

बौद्ध तथा ईसाई धर्मग्रंथों में जो आज्ञाएँ है उनमें अहिंसा को मनु की आज्ञा के समान पहला स्थान दिया गया है। सिर्फ किसी की जान ले लेना ही हिंसा नहीं है, उसमें किसी के मन अथवा शरीर को दुःख देने का भी समावेश किया जाता है अर्थात् किसी सचेतन प्राणी को किसी प्रकार दुःखित न करना ही अहिंसा है। पितृ वध, मातृ वध और मनुष्य वध ये हिंसा के भयानक प्रकार हैं। अतः इस संसार में सब लोगों की सम्मति के अनुसार अहिंसा धर्म सब धर्मो में श्रेष्ठ माना गया है। ** परन्तु इस अहिंसा धर्म के अपवाद भी है। अन्य शब्दों में अहिंसा धर्म कभी कभी अधर्म या पाप की श्रेणी में भी परिगणित हो जाता है। मनुस्मृति का स्पष्ट आदेश है कि ऐसे आततायी या दुष्ट मनुष्य को अवश्य मार डाले और उस समय यह विचार न करें कि वह गुप्त है। वृद्ध है, बालक है, या विद्वान ब्राह्मण है।*** शास्त्रकार मनु का कथन (मनु 8.350) है कि ऐसे समय हत्या करने का पाप हत्या करने वाले को नहीं लगता, किन्तु आततायी मनुष्य अपने अधर्म ही से मारा जाता है।**** आत्मरक्षा का यह हक कुछ मर्यादा के भीतर आधुनिक फौजदारी कानून में भी स्वीकृत किया गया है। ऐसे प्रसंगों पर अहिंसा से आत्मरक्षा की योग्यता अधिक मानी जाती है। भ्रूण हत्या सबसे अधिक निदंनीय मानी गयी है परन्तु जब बच्चा पेट में टेढ़ा होकर अटक जाता है तब क्या उसको काट कर नहीं निकाल देना चाहिए ? यज्ञ मे पशुवध करना वेद में प्रशस्त माना है।***** परन्तु पिष्टपशु के द्वारा वह टल भी सकता है। ****** तथापि हवा, पानी,फल इत्यादि में जो सैकड़ों सूक्ष्म जीव–जन्तु हैं उसकी हत्या कैसे टाली जा सकती है। ******* महाभारत के वनपर्व में एक कथा के अन्तर्गत माँस का व्यवसाय करने वाला एक

*	गीता–साधक संजीवनी (म0भा0आ011–13)	पृ0 992
**	भगवत् गीता	पृ0 488–89
***	गीता रहस्य– लोकमान्य तिलक	पृ0 20
****	मानस– लंका0	110–4
*****	मनु स्मृति	5–31
******	म0भा0–शांति 337 (अनु0 115–56)	
*******	म0भा0–शांति 337 (अनु0 15–26)	

ब्याध तो यहाँ तक कह देता है। कि इस जगत में कौन किसको नहीं खाता ? '' जीव का भोजन जीव है '' यह नियम भागवत में उल्लखित है। * प्राणरक्षा के लिए हिंसा की विधेयता स्मृतिकारों ने ही नहीं उपनिषदों ने भी न्याय्य घोषित की है।** गीता रहस्यकार ने ठीक ही कहा है कि यदि सब लोग हिंसा छोड़ दें तो क्षात्रधर्म कैसे शेष रहेगा ? यदि क्षात्रधर्म नष्ट हो जाय तो प्रजा की रक्षा कैसे होगी? इस प्रकार नीतिशास्त्र के प्रधान नियम अहिंसा में भी कर्तव्य–अकर्तव्य का सूक्ष्म विचार करना ही पड़ता है। ***

कविवर गुप्त की अहिंसा विषयक अवधारणा पर महात्मा गाँधी का प्रभूत प्रभाव पड़ता है, अतः यहाँ संक्षेप में उसे प्रस्तुत किया जाता है। 9 मार्च 1920 के यंग इंडिया के अंक में गाँधी जी ने लिखा था कि '' पूर्ण अहिंसा सभी प्राणियों के प्रति दुर्भावना के अभाव का नाम है।...... यह तो विशुद्ध प्रेम है।**** पुनः बुराई को न रोकना या बुराई के सामने झुक जाना अहिंसा नहीं है, बल्कि अहिंसा के द्वारा बुराई का आध्यात्मिक बल के आधार पर प्रतिरोध का आदेश दिया जाता है। स्वयं गाँधीजी के शब्द है। '' अहिंसा का तात्पर्य अत्याचारी के प्रति नम्रतापूर्ण समर्पण नहीं है वरन् इसका तात्पर्य अत्याचारी की मनमानी इच्छा का आत्मिक बल के आधार पर प्रतिरोध करना है। *****

'बापू' कविता में कविवर गुप्त अहिंसा के इसी स्वरूप का संकेत इस प्रकार करते है –

'' काम– क्रोध–लोम युता
बैर की दुरन्त हिंस्र पशुता
दीक्षित हुई है यहाँ प्रेम मन्त्र दीक्षा में
प्रयत अहिंसा की परीक्षा में।'' ******

<u>15.परोपकार</u> :– '' अहा! वही उदार है, परोपकार जो करे।
वही मनुष्य है कि जो, मनुष्य के लिए मरे।।

किसी तरह बदले की आसान रखकर अपना कर्त्तव्य समझते हुए दूसरे के दुःख दूर करने की इच्छा या चेष्टा का नाम ही परोपकार है।*******

---

*	भागवत्	1–13–46
**	छन्दोग्य0	5–2–8
***	गीता रहस्य– लोकमान्य तिलक	पृ0 21
****	उद्धृत– आधुनिक राजनीतिक विचार धारायें–डॉ0पुखराज जैन	पृ0 263
*****	उद्धृत– आधुनिक राजनीतिक विचार धारायें–डॉ0पुखराज जैन	पृ0 263
******	सियारामशरण गुप्त रचनावली (बापू)	पृ0 421–422
*******	भाषा पीयूष – डॉ0 देवराज यादव	पृ0 23

परोपकार मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धर्म है नीति ग्रन्थों में परोपकार की बड़ी गाथा गायी गई है। ईश्वर की इस सृष्टि में प्रायः सभी उत्पादन परोपकार की भावना से अनुप्राणित है

" परोपकारार्थ फलन्ति वृक्षाः परोपकारार्थ प्रवहन्ति नद्याः।

परोपकारार्थ दुहन्ति गावः परोपकारार्थ मनुष्याणां शरीरः।।"

प्रत्येक धर्म से परोपकार की महत्ता को स्वीकारा है। परोपकार एक उत्तम आदर्श का प्रतीक है। पर पीड़ा के समान कुछ भी अधम एवं निकृष्ट नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास ने परोपकार की गरिमा को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है।

" परहित सरिस धर्म नहि भाई।

पर पीड़ा सम नहि अधमाई। " *

यह मानव जीवन का आभूषण है। इसमें जीवन की सार्थकता निहित है। परोपकार पीड़ा की ज्वाला से झुलसे हुए प्राणी के लिए शीतल जल का अजस्र स्त्रोत है। यही धर्म है, यही पुण्य है। यह परोपकार शब्द ' पर' एवं ' उपकार' दो शब्दों के मेल से बना है पर का आशय है दूसरा एवं उपकार का अर्थ है भलाई इस प्रकार परोपकार का अर्थ है दूसरों की भलाई करना। परोपकार की भावना मानव को इन्सान से फरिश्ता बना देती है। यथार्थ में सज्जन दूसरों के हित साधन में अपनी सम्पूर्ण जिन्दगी को समर्पित कर देते है। परोपकार से सम्बन्धित अनेक गाथायें संसार के अनेक ग्रंथों में विद्यमान है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो परोपकार को ही संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया है।जिससे वे अन्य किसी कर्म को इसके समान स्वीकार नहीं करते है मानव परोपकार तीन प्रकार से कर सकता है तन, मन, तथा धन से। यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक है; तो समाज में दुराचार फैलाने वाले व्यक्तियों को सुधार कर दुर्बल एवं सदाचारी व्यक्तियों की रक्षा कर सकते है। तन सेवा सम्बन्धी कार्यो में रोगियों को अस्पताल पहुँचाना, प्यासे को पानी पिलाना तथा असहाय व्यक्तियों को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाना आदि हो सकते हैं। मन से परोपकार किया जा सकता है जैसे कुसंगति में पड़े व्यक्तियों को अच्छे मार्ग पर लाना तथा दुःखी व्यक्ति को सान्त्वना देना आदि इसी प्रकार हम कह सकते है कि धन,सम्बन्धी परोपकार हो सकता है जैसे विभिन्न संस्थाओं – अनाथालयों, विद्यालयों, औषधालयों आदि में आर्थिक सहायता देकर असहाय लोगों की सहायता कर सकते है।

* रामचरित मानस 7/41/1

परोपकारी सभी जीवों को समान समझता हैं उसकी आँखों में जाति धर्म और सम्प्रदाय का भेद नहीं रह जाता। वास्तव में दूसरों का उपकार करने वाला ही सच्चा मनुष्य है और वही पृथ्वी का श्रृंगार है। परोपकार करने वाले को अपनी चिन्ता करने का अवसर ही नहीं मिलता है। उसको तो रात–दिन दूसरों के दुःख की चिन्ता बनी रहती है। उसे मनुष्य ही नहीं वरन् सृष्टि के सभी जीवों के सुख–दुख और उनके उद्धार एवं कल्याण की चिन्ता बनी रहती है वास्तव में वही पुरूष धन्य है जो दूसरों का उपकार करना ही अपने जीवन का मन्त्र और व्रत समझता है। संसार में यदि उपकार करने वाले व्यक्ति न रहें तो दुःख,शोक,रोग और भय की आँच में सारे प्राणी झुलसकर मर जाँय। कुँए, तालाब, खुदवाना, सराय धर्म शालायें बनबाना। विद्यालय स्थापित करना ये सभी कार्य परोपकार की भावना से प्रेरित होकर किये जाते है।

अपने भाई, बन्धु स्त्री, पुरूष, पुत्र और परिवार का उपकार करना परोपकार नहीं हो सकता। अपने गाँव समाज देश तथा मातृभूमि के प्रत्येक मनुष्य क्या प्रत्येक प्राणी के सुख–दुख का ध्यान रखना उन्हें सब तरह से सहायता पहुँचाना उनकी भलाई की चेष्ठा करना यही सब उपकार के कार्य है। बचपन से ही इस गुण को अपनाने और इसकी वृद्धि तथा विकास की चेष्टा करनी चाहिए।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने परोपकार करने की प्रेरणा दी है –

" निज हेतु बरसता नही व्योम से पानी।
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।" *

इस प्रकार परोपकार मानव का धर्म है। परोपकारी व्यक्तियों की कीर्ति संसार में अमर रहती है। परोपकार राष्ट्र के चरित्र का संस्थापक है। जिस देश में जितने अधिक परोपकारी होंगे वह देश उतना ही उन्नतशील एवं महान माना जायेगा। " सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः" के द्वारा हमारे महापुरूषों ने यही सन्देश दिया है परोपकार के महत्व की पुष्टि करते हुए मैथिलीशरण गुप्त जी ने एक और अन्य स्थान पर लिखा है।

" यही पशु प्रवृत्ति है कि आप–आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।" **

महर्षि भतृहरि ने परहित को ध्यान में रख कर तीन प्रकार के मनुष्यों का वर्गीकरण

---

* साकेत – मैथिलीशरण गुप्त पृ0 126

** साकेत – मैथिलीशरण गुप्त पृ0 128

किया है। एक सत्पुरूष के है जो अपना स्वार्थ त्याग कर निःस्वार्थ भाव से दूसरों के कार्य सम्पादित करते है।जो अपना स्वार्थ रखते हुए भी दूसरों के कार्य में उद्यम करते हैं वे सामान्य पुरूष है ओर जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, कष्ट देते है, दूसरों का काम बिगाडते है, वे मनुष्य रूप में राक्षस ही है। * यह भी कहा गया है कि मन, वचन और कर्म से परोपकार करना संतो का स्वभाव ही है। ** परोपकार निरत व्यक्ति को सांसारिक ऐश्वर्य स्वतः सुलभ हो जाते है। साथ ही पारलौकिक ऋद्धि भी प्राप्त हो जाती है।*** इस संबध में किस इतिहास पुरूष ने किस प्रकार परोपकार किया। यह भी उपलब्ध हो जाता है महाभारत के कर्ण ने अपनी त्वचा, शिवि ने अपना माँस,दधीची ने अपनी हड्डियाँ और जीभूत वाहन ने अपना जीवन (शरीर) दे दिया। महात्माओं की परहित की भावना के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। ****

कविवर सियारामशरण गुप्त का काव्य–परोपकार की भावना से ही रचा गया है। जो कहीं तो अभिधेय है तो कहीं व्यंग्य रूप में परिलक्षित होती है। अभिधेय रूप में ' बन्दी' कविता का बन्दी एक असमाजिक व्यक्ति होकर के भी ऐसा कुछ नहीं करता जिससे उसके अन्य साथी तथा उनकी माताओं को रोना पड़े –

'' आज रो रही है एक मेरी माँ,
कैसे मैं रूला दूँ अब और बहुतेरी माँ ?
दुःख एक माँ का है असह्य मुझे इतना,
–अन्य साथियों का गला।
कैसे जानबूझ के फँसा दूं भला।
होगा शत माओं का कराल क्लेश कितना *****

कवि की ' आत्मोत्सर्ग' कविता की मूल भावना परोपकार की ही है, जिसमें अहं वृत्ति जैसी कोई चीज नहीं है। गणेश शंकर विद्यार्थी का व्यापक और उदार ह्रदय हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव के लिए समर्पित था। इस साम्प्रदायिता की अग्नि में अपने को समिधा बनाने वाले विद्यार्थी जी की परोपकार भावना निर्विवाद सिद्ध है। जो कल्पना की वस्तु न होकर

---

* भतृहरि नीति शतक – श्लोक –75

** पर उपकार वचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया।। मानस उत्तर 121.14

*** परहित वश जिनके मन माही। तिन्ह कहूँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।। मानस – 3.31

**** भगवत गीता – साधक संजीवनी पृ0 994

***** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड–स0ललित शुक्ल पृ0 157

यथार्थ की भूमि की उत्पाद है। सूक्ष्म दृष्टि से कवि गुप्त का अधिकांश काव्य परान्तः सुखाय ही है।

16.सत्संगति – मनुष्य के लिए सत्संगति परमावश्यक है मानव जिस प्रकार के वातावरण में साँस लेता है, जिन लोगों के साथ अपना समय बिताता है, जाने–अनजाने में उनका प्रभाव वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करता है। यदि मानव को सुन्दर तथा उपयुक्त वातावरण मिलता है। तो वह उन्नति के सोपानों पर आरूढ़ हो जाता है। इसके विपरीत बुरे वातावरण में पलने वाला इन्सान कुपथगामी बनता है।

सत्संगति का आशय उत्तम संगति से है। सत्संगति शब्द दो शब्दों के योग से निर्मित हुआ है– सत् एवं संगति अर्थात उत्तम (अच्छी) संगति। अच्छी संगति का आशय ऐसे इन्सानों के साथ माना जाता है जो अच्छे संस्कारों तथा चरित्र वाले हो जिनका जीवन सदाचारमय हो जो सदैव अच्छे विचार रखते हैं, जिनकी भावनाएँ उन्नत तथा मानवीय भावनाओं से पूरित हों। *

महाकवि तुलसीदास के शब्दों में

" सठ सुधरहिं सत्संगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई। "**

सत्संगति से मनुष्य को अगणित लाभ होते है। जिन मानवों ने सत्संगति की है वे जिन्दगी में उन्नति के पथ पर लगातार बढ़ते गये हैं। इतिहास साक्षी है कि अच्छी संगति वाले महापुरुषो ने देश का इतिहास रचा है, समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। अँगुलिमाल जैसा डाकू जो मानवों का वध करके उनकी उँगलियों की माला पहना करता था। महात्मा बुद्ध के सम्पर्क से पुण्यात्मा तथा श्रेष्ठ पुरुष बन गया।

सत्संगति का प्रभाव जादू के समान होता है। अविवेकी विवेकी बन जाते है, डाकू आदर्श मानव बन जाता है। महाकवि तुलसीदास का निम्नलिखित कथन सत्संगति की महिमा का प्रतिपादन कर रहा है।

" एक घड़ी आधी घड़ी
आधी से भी आध।
तुलसी संगत साधु की , हरै कोटि अपराध।। "

जहाँ अच्छी संगति कल्याण–पथ की निर्देशिका है। बुरी संगति मानव के जीवन को

---

* सरल अध्ययन हिन्दी – शिवलाल अग्रवाल पृ0 350

** रामचरित मानस 1–3–9

कष्टप्रद तथा पीड़ादायक प्रमाणित होती है। कुसंगति मानव के विवेक का लोप करने वाली है। इससे मानव मन में अनेक दोषों का बीजारोपण हो जाता है। अनेक बुरे व्यसनों की लत पड़ जाती है। बुरी आदतें मानव को नरकगामी बनाती है। मानव अपने हित तथा अनहित के मध्य भी भेद नहीं कर पाता है। प्रायः देखा गया है कि विद्यार्थी जीवन में जो छात्र अच्छे तथा आदर्श छात्रों के मध्य पठन–पाठन करते है वे उन्नति के चरम बिन्दु को स्पर्श करते हैं। बुरी संगति में रहने वाले छात्र मौज–मस्ती करते रहते है। माता–पिता के धन का दुरूपयोग करते हैं। खुद तो डूबते ही है तथा साथी को भी डुबो देते है।

सत्संगति की महत्ता का प्रतिपादन करने से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि सत्संगति करना परमावश्यक है। चौरासी लाख योनियों में मानव जीवन श्रेष्ठ है। मानव की जिन्दगी बड़े भाग्य से मिलती है। महाकवि तुलसी ने भी कहा है।

" बड़े भाग मानुस तनु पावा।"

इसलिए छोटी सी जिन्दगी में सत्संगति करके अपने उद्धार के साथ ही मानव जीवन के पथ को कल्याणमय बनाने की भरसक चेष्टा करनी चाहिए। स्वर्ग अथवा नरक अन्यत्र न होकर इस पृथ्वी पर ही है।

वास्तव में सत्संगति मानव जीवन के लिए वरदान स्वरूप है। यह बुरे से बुरे इन्सान को आदर्श मानव बनाने की क्षमता रखती है। धूल भरा हीरा अपनी चमक दिखाने लगता है। मानव सत्संग करके अच्छे भावों तथा विचारों को ग्रहण करते हैं। उन शुभ भावों के बीजों को समाज के धरातल पर बो देते हैं। इससे इन्सानियत के उदात्त भावों की फसल लहराती है। समाज तथा देश उन्नत तथा सुखी होता है। अतः सत्संगत से लाभान्वित होना चाहिए तथा कुसंग से बचना चाहिए। कहाकवि तुलसी के शब्दों में –

" बरू भल वास नरक कर ताता।

दुष्ट संग जनि देइ विधाता।।*

तुलसी से पर्याप्त पूर्ववर्ती संस्कृत कवि भवभूति का कथन है कि सतसंग की प्राप्ति पुण्य का परिणाम है। यह ऐसा वरदान है जो मृत्यु से परवर्ती जीवन को भी मंगलमय बना देता है। उत्तर रामचरितमानस में शम्बूक नामक शूद्र राम से सत्संग की महिमा के संन्दर्भ में कहता है– सत्संगजानि निधानान्यपि तारयान्ति। **

17. काम – वैदिक संस्कृति में काम के महत्त्व पर बड़ा बल दिया गया है। भौतिक

---

* सरल अध्ययन हिन्दी – शिवलाल अग्रवाल पृ0 351

** उत्तर रामचरितम्– भवभूति – अंक 2.11

और आध्यात्मिक द्विविध जीवन– सिद्धि एवं श्रेय–कल्याण के लिए कर्म को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। वेदों की यह काम भावना प्रत्येक व्यक्ति और समस्त मानव समाज को कर्तव्य निष्ठ होने तथा दायित्त्व वहन करने की ओर प्रवृत्त करती है। परवर्ती साहित्य विशेष रूप से ' गीता' तथा दर्शनों और शाक्त,वैष्णव जैन एवं बौद्ध आदि धर्मों में कर्म की विशद व्याख्या और उसका महत्त्व स्वीकार करने का आधार वेदाक्त कर्म भावना ही है।

वैदिक संस्कृति में श्रम शील और कर्मनिष्ठ जीवन को बड़ा महत्त्व दिया गया है कि 'मनुष्य अपने लक्ष्य को श्रम और तप से ही प्राप्त कर सकता' है ऋग्वेद के एक मंत्र में यह तक कहा गया है कि जो मनुष्य श्रम नहीं करता देवता भी उससे मित्रता नहीं करते, अर्थात् उसके अनुकूल नहीं होते (न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः) अथर्ववेद के एक मंत्र में श्रम को राष्ट्रीय उन्नति से संबद्ध करते हुए लिखा गया है कि तपपूत श्रमशीलता न केवल आत्मोन्नति के लिए अपितु राष्ट्रीय उत्थान के लिए भी सहायक है, (श्रमेण लोकास्तपसा पिपर्ति) *

ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्म को वैदिक कवियों की वरीयता दी है । 'शतपथ ब्राह्मण' (2/1/3/9)के एक संदर्भ में कहा गया है कि 'कल करूँगा', 'कल करूँगा', ऐसा नहीं सोचना चाहिए। मनुष्य के कल को कौन जानता है ? (न श्वःश्वमुपासीत्/को हि मनुष्यस्य श्वो वेद)। इसी प्रकार एक अन्य सन्दर्भ में कहा गया हैं, ' जो हो चुका है वहीं निश्चित एवं सत्य है। जो होने वाला है, वह अनिश्चित एवं संदिग्ध है।

'अद्धा हि तद् यद् भूतम्
अनद्धा हि तद्यद् भविष्यत्।'

किसी भी कार्य को करने से पहले उसके लिए मन में दृढ़ संकल्प होना चाहिए कि मैं जिस कार्य का मन से ध्यान करूँगा वह अवश्य सिद्ध होगा।

गीता का कर्मयोग भारतीय साहित्य और जनजीवन की प्रेरणा का स्रोत रहा है। लोकमान्य तिलक ने इसीलिए ' गीता' को 'कर्मयोग शास्त्र की संज्ञा दी है। श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं ही कहा है – कि 'प्रतिसिद्ध' काम्य या विहित (नित्य) सभी कर्मो को जो भी व्यक्ति सर्वदा मुझ में आश्रित होकर करता है, वह मेरी कृपा से शाश्वत और अव्यय पद को प्राप्त होता है। उन्होने अर्जुन को सम्बोधित करके एक स्थान पर

---

* वैदिक साहित्य और संस्कृति – वाचस्पति गैरोला पृ0 319

कहा है कि " सब कर्मो का फल मुझमें संन्यस्त करके अनन्य योग से मेरा ही ध्यान करते हुए जो मेरी उपासना करते है, हे पार्थ! अपने में आश्रित उन भक्तों को मैं शीघ्र ही इस मरणशीलता संसार –सागर से पार कर देता हूँ। "

अपने गुरूजन, स्वजन और आत्मीयों को हिंसा से तथा सुख–दुख , लाभ–हानि, जय –पराजय , की चिन्ता से कर्त्तव्यच्युत अर्जन को जब श्रीकृष्ण ने कर्मयोग का रहस्य समझाया, तब उसने स्वयं स्वीकार किया कि मेरी विपरीत बुद्धि अब नष्ट हो गयी है , पूर्व स्मृति जग चुकी है। और अब मैं यह स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारे आदेश के अनुसार ही कर्म मार्ग में प्रवृत्त होऊँगा।

' गीता ' का कर्मयोग बताता है कि जब तक मनुष्य में जीवन है, तब तक उसको आसक्ति का परित्याग करके कर्म करते रहना चाहिए। वह व्यक्ति के लिए तो परम लाभकारी है ही, इसके साथ ही लोक–कल्याण कारी भी है। ' गीता' के कर्मयोग का परार्थ दृष्टिकोण यह भी है कि अपने लिए न सही लोक कल्याण के लिए कर्म करने चाहिए। स्वाभाविक रूप से सभी अवस्थाओं में सभी कार्यो का उक्त रीति से अनुष्ठान करते रहना ही वास्तविक कर्म योग है। यदि व्यवहारिक दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि कर्म के बिना जीवन– यापन सम्भव नहीं है। इसलिए ' गीता' का कर्मयोग जन–सामान्य के लिए यह निर्देश करता है कि अपने–अपने कर्म में अभिरत होकर मनुष्य सफलता को प्राप्त करता है।

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।' *

'काम' शब्द का एक अर्थ विषयोपभोग प्राप्त होता है, जो हेय तथा त्याज्य है, क्योंकि वह नरक का द्वार है। काम का एक अन्य अर्थ ग्रहस्थ धर्म का आचरण भी है, जैसा कि गीता का उद्‌घोष है कि मैं प्राणियों में धर्म के अनुकूल काम में ही हूँ। ** पुरुषार्थ – चतुष्ट्य में एक काम भी हैं जो कामना या इच्छा का पर्याय है। यह कामना या इच्छा ही सर्ग की कारणीभूता है– इसे ही अन्य शब्दों में कर्म कह सकते है। सम्भवतः इसीलिए महाकवि प्रसाद ने अपनी कामायनी में काम को उदात्त या परिष्कृत रूप में देखा है। उनके अनुसार ' काम' मंगल से मंडित श्रेय है।*** इस प्रकार सामान्य रूप से काम के दो मुख्य अर्थ है विषयोपभोग रूप काम और उदात्त कामना या कर्म के लिए

---

*	गीता	18–45
**	गीता	18–45
***	कामयनी – श्रद्धा सर्ग	पृ0 61

प्रयुक्त ' काम' । इन दोनों ही अर्थो में कविवर गुप्त ने काम का उपयोग किया है या ध्वनित किया है। सर्वप्रथम ' मौर्य–विजय' में एथेना के अनिंध सौंदर्य को देखकर सम्राट चन्द्रगुप्त के मन में प्रणय–कामना उत्पन्न होती है –

'' देव सुन्दरी सदृश लिए शोभा मन भाई
एथेना भी उन्हें उसी क्षण दी दिखलाई।
तब बाला का आलोकमय
अनुपम रूप निहार के
वे मुग्ध हो गये चित्त में
अपनी दशा बिसार के।। '' *

इसी प्रणय भाव से एथेना भी भावित है, ऐसा सिल्यूकस को इन शब्दों से व्यक्त है –

''एथेना भी–है चाहती
उसे चित्त से सर्वथा ?
क्या पहुँचा सकते है कभी
हम उसके मन को व्यथा ? '' **

' काम' का इस रूप में पर्यवसान धर्माविरूद्ध है। कविवर गुप्त ने आजीवन रूग्ण रहकर भी कवि कर्म का सफल निर्वहन किया जो उनके हृदय में स्थित दुर्निवार्य ' काम' का ही परिणाम था। अपने जीवन में तो इस मनीषी ने पत्नी की असामायिक मृत्यु के पश्चात भी धर्माविरूद्ध काम का आश्रय नहीं ग्रहण किया। काव्य में व्यक्त उसका श्रृंगार भी तुलसी की तरह मर्यादित रहा है।

<u>18.लोभ एवं अहंकार</u> – यदि कोई वस्तु हमें अत्यधिक प्रिय लगती है और हम उसे प्राप्त करने की चेष्ठा करते है तब हमारे मन में लोभ की अवस्थिति होती है।

लोभ की परिभाषा देते हुए आचार्य <u>रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा</u> है – '' कि लोभ किसी प्रकार का सुख या आनन्द देने वाली वस्तु के सम्बन्ध में मन की ऐसी स्थिति है जिसमें उस वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति सान्निध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जग पड़े यही लोभ है।'' ***

धन के लोभ की अत्यधिक वृद्धि मानसिक व्याधि तथा प्रवृत्तियों की कुण्ठा के रूप में

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 63
** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 66
*** चिन्तामणि – श्री राकेश पृ0 100

परिलक्षित होती है।

किसी वस्तु का प्रिय लगना तथा उससे आनन्द प्राप्त होना लोभ का प्रथम संवेदनात्मक अवयव है। लोभी शब्द को सामान्य बोल–चाल में रूपये–पैसे के लोभी के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। अधिकांश लोगों की मनोवृत्ति धन को संचित करने की होती है। उसे व्यय करने की नहीं। इस रूप में धन साधन का तिरोभाव कर साध्य के पद पर अवस्थित हो जाता है। प्रिय या अच्छी लगने वाली वस्तु दो प्रकार की इच्छाओं को संचालित करती है। प्रथम उसे प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा तथा द्वितीय उनको दूर न करने और नष्ट न होने देने की इच्छा। सान्निध्य की इच्छा भी दो प्रकार की होती है पहली तो यह कि उस वस्तु पर इतना अधिक अधिकार प्राप्त करना चाहते है। जितना किसी समय बहुत से व्यक्ति साथ रख सकते है। लोभ के विषय भी सामान्य और विशेष रूप में हो सकते है। सामान्य लोभ की वस्तु का विरोध विशेष लाभ की विषय की अपेक्षा अधिक होती है। यदि सभी लोगों के लोभ की वस्तु विभिन्न होती है तो लोभ को मोहित न समझा जाता लक्ष्य को समानता समाज में विद्वेष करने में सहायक होतीहै। धन की लोभ भावना की बुद्धि से ही आधुनिक काल में ब्राह्मण एवं क्षात्र धर्म का लोप हो गया है तथा वणिक धर्म को सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली है। जिसने विश्व में घृणा एवं पारस्परिक द्वेष की भावना का अत्यधिक प्रसार किया है। इसके निराकरण से ही विश्व की सुख शान्ति की पुनर्स्थापना सम्भव है। यदि सामान्य विषयभूत लोभ की दृष्टि संकुचित हुई तो उसका दोष भी अपेक्षाकृत कम हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति का लोभ दूसरे की सुख और शान्ति में बाधक हो तो वह निंध समझा जाता है किन्तु यदि एक व्यक्ति की इच्छा दूसरे की सुख–समृद्धि का विरोध नहीं करती तो एक ही वस्तु पर लोभ रखने वाले व्यक्ति भी सद्भावनापूर्ण जीवन व्यतीत करते है।

विश्व में लोग धन का संग्रह विभिन्न मनोवृत्तियों से प्रेरित होकर करते है। जो लोग किसी घोर कष्ट में निवारणार्थ धन का संचय करते है उन्हें लोभी नहीं कहा जा सकता, जो व्यक्ति धन का संचय बिना किसी उद्देश्य के करते है वे विशुद्ध रूप में लोभी हैं। धन संग्रह की वह उच्चतम सीमा ही लोभ का रूप धारण करती है। वहाँ अन्य मनोवृत्तियों से शिथिल पड़ जाती है। लोभ के आधिक्य से अन्य मनोवृत्तियों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। किन्तु अन्य मनोविकारों के आधिक्य से इस प्रकार का घातक प्रभाव नहीं पड़ता। उद्धत लोभ मन में असन्तोष की अवतारणा करता है तथा अन्य मनोवृत्तियों का दमन करता है। मानसिक व्याधि के रूप में, व्यसन के रूप में लोभ का उत्कर्ष अन्तःकरण की अन्यान्य प्रवृत्तियों को कुण्ठित कर देता है। किन्तु लोभी अपने

मनोभावों पर योगियों के समान ही विजय प्राप्त कर लेते है। पक्के लोभी लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होते किन्तु कच्चे हो जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार वह लोभ धन्य है जिससे किसी के लोभ का विरोध नहीं और लोभ की जो वस्तु अपने सभी लोभियों को एक–दूसरे का लोभी बनाये रहती है, वह भी परम पूज्य है। घर का प्रेम, पुर या ग्राम का प्रेम, देश का प्रेम इसी पवित्र लोभ के विस्तृत रूप है। * अहंकार की उत्पत्ति महत्त्व से और महत्त्व की उत्पत्ति प्रकृति से हुई है। अहंकार का अर्थ है घमंड,दर्प, अभिमान का भाव जिसे आत्म श्लाद्या भी कहते है। वेदान्त दर्शन में इसे अविद्या या अज्ञान का सूचक माना जाता है।** गीता में ही इसे आसुरी सम्पत्ति के अन्तर्गत रखा गया है। *** सृष्टि के आठ उत्पादकों में यह आठवाँ है। व्यष्टि रूप में यह व्यक्तित्व की एकदेशीयता का नाम है। जो कि कर्ता रूप है अर्थात् अपने आपको क्रियाओं का करने वाला मानता है।**** गोस्वामी तुलसी अहंकार के इस व्यष्टिरूप को 'अति दुखद' मानते है। ***** यह वह 'डमरूआ' नाम का रोग है जो शरीर के तमाम जोड़ों में भरकर अपार कष्ट देता है। भक्ति साधना से ही अहंकार छूट जाता है ओर तब दुर्लभ अध्यात्म ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

अहंकार लौकिक जीवन के लिए अपने मृदुल रूप में बाछनीय है। इसके माध्यम से ही लौकिक उन्नति संभव होती है और व्यक्ति आगे बढ़कर लोकोत्तर उपलब्धियों का धारक बन जाता है। इसी के अन्तर्गत साहित्य, कला, विज्ञान,तकनीकी आदि क्षेत्रों में व्यक्ति का विरल प्रवेश होता है। यह प्रवेश कथमपि हानिकारक नहीं होता है और अन्ततोगत्वा व्यक्ति को समष्टि चेतना के साथ संबद्ध कर उसे अकल्पितपूर्व आनंद का आस्वादक बना देता है। ऐसा उपनिषद मत है।

कविवर गुप्त के काव्य में अहंकार के दोनों रूपो को प्रत्यक्ष किया जा सकता है। विकृत अहंकार के प्रतीक के रूप में मौर्य–विजय में सिल्यूकस का उद्भव हुआ है।

---

*	चिन्तामणि – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	पृ0 64
**	गीता	2–71
***	गीता	16–8
****	गीता– साधक संजीवनी	पृ0 476
*****	मानस उत्तर काण्ड – 121 (क) 35	

"जब चन्द्र तुल्य नृप चन्द्र ने
जहाँ सुधा की वृष्टि की,
तब सिल्यूकस ने राहु–सम,
उन पर अपनी दृष्टि की। " *

अन्ततः विकृत अहंकार के प्रतीक सिल्यूकस का पराभव होता है और वह अपनी कन्या को चन्द्रगुप्त के प्रति समर्पित कर स्वदेश लौट जाता है। चन्द्रगुप्त का उपकारी अहंकार उसे विजय श्री प्रदान करता है इसी प्रकार के अनेक उदाहरण कवि के काव्य में उपलब्ध है।

कवि का व्यक्तित्व क्षुद्र या आसुरी वृत्ति से संबद्ध अहंकार से सर्वथा विरहित है वह जन्मजात कवि होने के कारण अहंकार विशेष से युक्त हैं; पर अपने आपको जन्मजात रोगी या रूग्ण ** कहकर ऐसे सात्विक अहंकार का भी निषेध कर अपनी उदात्तता की अभिव्यंजना करता है। अपनी रूग्णता को भी वरदान के रूप में मानने वाला यह कवि *** किस कोटि के अहंकार से ग्रस्त होगा यह सहजता विचारणीय है।

19.आदर्श और कर्त्तव्य :– आदर्श का सामान्य अर्थ आईना या दर्पण है।**** रूढ़ अर्थ में इसे नमूना भी कहा जाता है। आदर्श एक ऐसा मानदण्ड है जिसके आधार पर व्यक्ति का जीवन वरेण्य और उदात्त बनता है। आदर्श या उदात्तता को अपना कर जीवनक्रम में अग्रसर होने वाले लोग ही यश प्राप्त कर सकते है। यश, सहज,सुलभ,नहीं। महाकवि कालिदास जैसे विश्वकवि भी आदर्श को अगीकार करके यश की कामना करते हुए दृष्टिगत होते है। *****काव्य रचना इसी प्रकार का आदर्श है जिसके प्रयोजन तो आदर्श है ही, जीवन के मूल्यों की स्थापना भी आदर्श है।

आदर्श के विषय में प्रकाश डालते हुए महादेवी जी ने यथार्थ को भी उसके पूर्णरूप में रखा है। वे लिखती है –" जीवन प्रत्यक्ष जैसा है और हमारी परिपूर्ण कल्पना में जैसा है यही हमारा यथार्थ और आदर्श है।****** " दोनों में से कोई एक जीवन को आवृत्त भले ही कर ले, उसे सफलता की सीमा तक पहुँचा सकने में असमर्थ ही होगा।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड पृ0 45
** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड पृ0 32
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली–प्रथम खण्ड पृ0 32
**** संस्कृत हिन्दी कोश – वा0शि0आप्टे पृ0 146
***** मन्दः कवि यशः प्रार्थी0 – रघुवंश (कालिदास ग्रंथावली गत) 1–3
****** साहित्यिक निबंध संग्रह – कमला प्रकाशन कानपुर पृ0 36

इस प्रकार जब यथार्थ से विरहित आदर्श की बात कही जाती है, तब यही समझना वाछिनीय होगा कि एकांगी आदर्श की पृष्ठभूमि के रूप में यथार्थ अवश्य विराजमान और आदर्श भी वांछनीय होकर कर्त्तव्य से समन्वित भी है। प्रस्तुत प्रसंग में यही समझना युक्तियुक्त होगा।

कविवर गुप्त के काव्य का समाष्टिभूत आदर्श था स्वान्तः सुख। अन्य शब्दों में काव्य के माध्यम से वे आत्मानन्द की उपलब्धि चाहते थे। उन्होंने इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि कविता आत्मसंतोष का ही दूसरा नाम है।* इस प्रकार का आनंद वस्तुतः ऐन्द्रिय सुख से नितान्त भिन्न है। इस प्रकार के आनंद में सूक्ष्म सत्ता है। जिसकी अनुभूति कवि का सर्वस्व रही है। अपने एक निबन्ध में कविवर ने यही लिखा है। '' अपनी रचना मुझे प्रिय जान पड़ती है। कभी कभी उसे पाकर ऐसा हुआ है जैसे इसके आगे अब और कुछ नहीं रह गया। ** इसी प्रकार उन्होंने आश्विन कृष्ण 1 संवत 1998 वि0 को ' हंस' के सम्पादक को लिखे गये एक पत्र में कहा है – '' कविता मेरे मन से स्वान्तः सुखाय लिखी जानी चाहिए। कवि में कवित्व है तो उसका स्वान्तः सुख बहुजन सुखाय हो उठेगा। साथ ही वे ज्ञान से आनन्द अथवा आनन्द से और भी अधिक ज्ञान–प्राप्ति की प्रेरणा काव्य का उच्चतर आदर्श या लक्ष्य मानते थे तथा उन्होंने माधुरी के सितम्बर 1924 के अंक मे प्रकाशित तुलसीदास कविता में यही कहा है।

'' सुख के गीत तुम्हारे गाकर सुख विशेष हम पाते।
दुख में हमें सान्त्वना देने वाक्य तुम्हारे आते।। ''***

उर्पयुक्त संदर्भ से स्पष्ट है कि कविवर गुप्त का आदर्श यह भी था कि काव्य के द्वारा लोकमानस को सान्त्वना प्राप्त होती है। अथवा उसका ज्ञान संवर्द्धन होता है। '; कविश्री' की संयोजना में उनका ऐसा ही मत व्यक्त हुआ है। '' हमारा प्रयत्न है कि ' कवि श्री ' जिनके हाथों में हो वह उनकी संस्कारशील रूचि का ही परिचय न दे वरन, उनकी भावनाओं का उन्नयन भी कर सके।**** नीति का निर्देश भी उनका आदर्श रहा है और वे यह भी चाहते थे कि उनकी रचना शाश्वत हो पर कवि यशोलिप्सा से मुक्त रहे। उन्हें काव्य के माध्यम से धनार्जन काम्य नहीं था और न आश्रय । शारीरिक श्रम और

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 167
** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 167
*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 167
**** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 167

भावात्मक–वैचारिक कविता का श्रम साथ–साथ चलें, ऐसा उनका आदर्श था। उनके अनुसार श्रम के पसीने से निखरकर कविता में निर्मलता का नया सौन्दर्य झलक उठता है। *

<u>20.प्रवृत्ति मार्ग</u> – हिन्दी शब्दसागर के अनुसार प्रवृत्ति के अर्थ है प्रवाह, झुकाव, वार्ता, यज्ञादि व्यापार। विशेषतः वाणी,बुद्धि और शरीर के कार्य के आरंभ को प्रवृत्ति कहते है। इष्टसाधनता ज्ञान प्रवृत्ति का और द्विष्टसाधनता ज्ञान निवृत्ति का कारण होता है। ** सामान्यतः प्रवृत्ति का तात्पर्य है– करणीय को करना कविवर गुप्त की प्रवृत्ति सामान्य मनुष्य की न होकर एक सुकवि की है। अतः यहाँ कवि ने देश के प्राचीन वीरों और विशेषकर क्षत्रिय राजपूत राजाओं का उल्लेख और वर्णन इसलिए किया है। कि उनके चारित्रिक गुणों–त्याग,वीरत्त्व, देशप्रेम रणकौशल आदि से प्रभावित होकर नयी नैतिक प्रेरणा और उत्साह का व्यापक प्रचार–प्रसार हो। ये गुण 'मौर्य विजय' में व्यक्त है। गुप्तजी की द्वितीय कृति की प्रवृत्ति 'मौर्य विजय' से नितान्त भिन्न है और इसमें समकालीन विगलित सामजिक जीवन का चित्रण हुआ है। सामन्ती व्यवस्था के दुःखद परिणाम जमींदारी प्रथा, बेगारी, शोषण एवं पुलिस के हृदयहीन अत्याचारों की कथा वर्णित है। ' दूर्वादल' कविता–संग्रह में वैष्णव भक्ति भावना, हृदय की निर्मलता और पवित्रता में कवि ने अपना विश्वास व्यक्त किया है। श्रद्धा एवं परहित की प्रवृत्ति का आख्यान इस संग्रह में उपलब्ध है कवि जीवन का करूण और मर्मान्तक प्रसंग,विषाद, संग्रह में दृष्टिगत होता है। 'आर्द्रा' संग्रह में अनूठी भावात्मकता है जो असहयोग आन्दोलन समाप्त हो जाने के कारण शैथिल्य निराशा और करूणा की पीठिका पर आधारित मातृभूमि प्रेम, हिन्दु मुस्लिम ऐक्य एवं पारस्परिक संगठन की उदात्त भावनाओं को बलवती करना, आत्मोत्सर्ग संग्रह की प्रवृत्ति है। ' पाथेय' संग्रह की कविताएँ आस्तिकता एवं रहस्यवादी चेतना से समन्वित है। धरती की शस्य श्यामल सुन्दरता विविध रसान्विति, मृण्मयी में अभिव्यक्त है। ' बापू' कृति में कवि की वैष्णवता गाँधी जी की प्रशस्ति करती है। राष्ट्रीय भावना यहाँ भी समाविष्ट है। ' उन्मुक्त ' विश्वयुद्ध के दुष्परिणामों का मर्मस्पर्शी विवेचन है। स्फुट कविताओं की कृति ' दैनिकी' में भी विश्वयुद्ध जन्य करूण परिस्थितियाँ चित्रित है। 'नोआखोली' में साम्प्रदायिता की आग से उत्पन्न कवि का क्रन्दन है। महाभारत की पृष्ठभूमि से अवतरित ' नकुल' में

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 168

** शब्द सागर– षष्ठ भाग पृ0 3200

आत्मदान का स्वारस्य है। ' जयहिन्द' में स्वाधीनता को प्राप्त भारत के प्रति राष्ट्रीय भावना का विज्ञापन है। ' अमृतपुत्र' में ईसा का करूणा दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। खण्ड काव्य ' सुनन्दा' आदर्श की उदात्तता से सवंलित है। ' गोपिका' अपार्थिव श्रृंगारिकता से अपनी लोकोत्तरता या अभूतपूर्वता सिद्ध करने में सक्षम है। इस प्रकार कवि की प्रवृत्ति अनेक रूपा होकर भी समाजोन्मुखी है, प्रेरक है तथा स्वीकार्य भी। कवि का सम्पूर्ण जीवन इस प्रवृत्ति समष्टि का जीवन्त प्रतीक भी है।

21.निवृत्ति मार्ग – आचार्य मम्मट ने अपने ' काव्य प्रकाश' में काव्य का प्रयोजन ' 'शिवेतरक्षति' स्वीकार की है। * इस – क्षति' की निवृत्ति करना ही निवृत्ति मार्ग है। उर्पयुक्त प्रवृत्तियों के विपर्यय को हम निवृत्ति मार्ग के रूप में रेखांकित कर सकते है। कवि की अपेक्षा है कि व्यष्टि जीवन के त्याग पूर्वक व्यक्ति राष्ट्र का बने कि वह कठोरता क्रूरता, निर्दयता, परूषता, दानवता, हिंसात्मकता, स्वार्थपरता, प्रदर्शन,प्रियता, छद्माशिष्टता, साम्प्रदायिकता आदि से निवृत्त होकर मानवता की उस भावभूमि का प्रत्यक्ष करे जहाँ सब एक हो जाते है स्वपर के भेद समाप्त हो जाते है। कहना न होगा कि स्वयं कविवर गुप्त एक ऐसी मानवता से मंडित थे जो कथमपि एतादृश विभेद को नही प्रोत्साहित करती।

22.कवि सियारामशरण का भागवत धर्म –' भागवत' शब्द का लोक–प्रचलित अर्थ है– व्यासप्रणीत 'श्रीमद्‌भागवत' । परन्तु ' भागवत' शब्द ' भक्त' का वाचक है– भक्त चाहे विष्णु का हो अथवा कृष्ण आदि का। कविवर सियारामशरण के कविव्यक्तित्व के साथ भागवत का व्यक्तित्व भी समाहित है, यह तथ्य उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व से सहजता सिद्ध है। कवि वस्तुतः वैष्णव भावना से सबंलित भागवत है। वैष्णव भावना के सन्दर्भ में डॉ0 नगेन्द्र का कवि गुप्त के विषय में यह कथन उल्लेखनीय है। कि '' अप्रत्यक्ष रूप से तो आज के अधिकांश साहित्य पर गाँधीदर्शन का गहरा और अन्तर्व्यापी प्रभाव है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से उससे सीधी प्रेरणा लेने वाला तथा उसे समग्र रूप में स्वीकार करने वाला साहित्य परिमाण में अत्यल्प है। हिन्दी कविता में इसके प्रतिनिधि है– सियारामशरण गुप्त जिन्होंने गाँधीदर्शन को प्रथम और समग्र रूप में ग्रहण किया है। **

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड — पृ0 150

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र — पृ0 159

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि गाँधी–दर्शन और वैष्णव–भावना में क्या संबध है? उत्तर है– गाँधीजी स्वयं वैष्णव थे– वैष्णव परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके समग्र जीवन में वैष्णव संस्कारों की छाप भी थी। श्रीराम दयाल तिवारी ने इसी संदर्भ में लिखा है.गाँधीजी को रामायण की रूचि भी कुछ कुछ जाग्रत हो चुकी थी। स्नेहमयी माता की धर्म निष्ठा, उपवास–व्रत, तथा सहिष्णुता का प्रभाव उनके ह्रदय में था ही अतः वे अटल सनातनी हिन्दू हो गये। '' इसी क्रम में श्री गोपीनाथ धवन का कथन है '' गाँधीजी सच्चे वैष्णव हैं और सोते–जागते जीवन के प्रतिक्षण उन्हें भगवान का ध्यान रहता है। * ऐसे परम वैष्णव गाँधीजी की वैष्णवता को कवि ने स्वीकार कर लिया तो क्या आश्चर्य ?

गाँधीजी के उपर्युक्त वैचारिक पक्ष को आत्मार्पित करने से पूर्व ही कविवर गुप्त परिवार के आस्तिक संस्कारों से विलग होने का साहस ही नहीं कर सकते थे। इन संस्कारों ने उनके ह्रदय में ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास उत्पन्न कर दिया था। यदि कवि की भक्ति को वैष्णव भावना के आलंबन कृष्ण से संबद्ध माने तो उनका ' गोपिका' काव्य इस भावना का मधुर निदर्शन है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे राम आदि अन्य आलंबनों के प्रति श्रद्धालु नहीं थे। सर्वप्रथम ' अमृत पुत्र' नामक काव्य कृति में वे राम के प्रति इस प्रकार प्रणत होते है–

"राम, वन–वन में तुम्हारा संचरण
हो जहाँ जिस रूप में नत हो सकूँ।
शूल वह जो भव–विभव पातक हरण
स्वरित करके कंठ में टुक ढो सकूँ।।" **

राम काव्य के अमर गायक तुलसीदास के द्वारा प्रचारित–प्रसारित राममंत्र के प्रति भी कवि का अटूट विश्वास है।

'' अन्तर्बाह्य प्रकाशक तुमने, दिव्य दीप दिखलाया –
तुमने हमें मुक्त होने का राममंत्र सिखलाया ।।"***

कवि की ' शरणागत' कविता उसके भागवत रूप की सुष्ठु परिचायक है–

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 159
** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 160
*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 160

क्षुद्र–सी हमारी नाव चारों ओर है समुद्र
वायु के झकोरे उग्र रूद्र रूप धारे हैं।

x x x x x

किसको पुकारें यहाँ रोक कर अरण्य बीच
चाहे जो करो शरण्य, शरण हम तुम्हारे है। *

भगवान् राम के अवतार रूप का मंगलाचरण 'मौर्य–विजय' में करके कविवर अपने भागवत धर्म का ही प्रकाशन करते हैं –

" भक्तजनों के हृदय कमल विकसित करने को
अनुपम धर्मालोक भुवन भर में भरने को
जिन प्रभु ने अवतार स्वयं ही धारण करके –
मारे निशिचर वृन्द भार भूतल का हर के,
वे रावणारि रघुवंश–रवि
विश्वेश्वर, कल्याणमय ,
दे इस जीवन सग्राम में
हमें अभय करके विजय। " **

कवि प्रवर का भागवत धर्म संकीर्ण न होकर व्यापक है – सार्वभौमिक और सार्वदेशिक है। इससे सिद्ध होता है कि वे व्यापक विश्वधर्म के विश्वासी थे। इसी विचार को अनुधावन में वे मान्य अवतार बुद्ध के वचनों का अनुवाद प्रस्तुत करते है। तो दूसरी ओर ' अमृत पुत्र' नामक काव्य में ईसा की प्रशस्ति में संकोच नहीं करते। कवि के धर्म का स्वरूप उसके ही शब्दों में इस प्रकार है।

"धर्म समझना है मनुजों का
तो अपने कवि से सुन जा ,
धर्म–धर्म रटते है जो वे
धर्म बहाना है उनका।"***

' बापू' नामक कविता में कवि ने गाँधीजी के उदात्त गुणों में जिन इतिहास महापुरूषों

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 161
** सियारामशरण गुप्त रचनावली पृ0 43
*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना – डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 161

की छाया देखी है उनमें भगवत –भागवत दोनों ही हैं। ' गोपिका' कृति में शिव–पार्वती को भी पूजनीय के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भागवत में सन्तगुणों की स्थिति भी देखी जाती है। इस दृष्टि से कवि गुप्त सम्पन्न है। कवि गुप्त को मंत्र बल * विद्याबल, ** बुद्धिबल, *** स्वाध्याय बल **** अर्न्तर्मुखता का बल ***** का वरदान तो प्राप्त ही था। ठाकुर जी की पूजा का भार भी उन पर था। कष्ट सहिष्णुता ****** परहित,******* परायणता,******** विनीतता,********* साहसिकता,********** लोभहीनता,*********** काम पराड़्मुखता ************ तपोनिरतता ************* आदि सन्त गुण उनके आप्तकाम व्यक्तित्त्व में समाहित थे।

इस प्रकार उनमें एक शीर्षकोटिक भागवत प्रतिष्ठिता था जिसका विद्वानों ने बहुशः किया है।

---

* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 3

** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 2

*** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 161

**** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 161

***** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 161

****** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 161

******* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 161

******** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 9

********* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 10

********** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 11

*********** सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 12

************ सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 12

************* सियारामशरण गुप्त – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 12

अध्याय—सप्तम्

सियारामशरण गुप्त के काव्य में दार्शनिक पृष्ठभूमि

1. काव्य।
2. दर्शन एवं संस्कृति का सम्बन्ध।
3. गीता—दर्शन।
4. रवीन्द्र—दर्शन।
5. गाँधी दर्शन।
6. विनोबा—दर्शन।
7. अन्य—दर्शन।

अध्याय सप्तम

सियाराम शरण गुप्त के काव्य में दार्शनिक पृष्ठभूमि

1. काव्य :— कवि के कर्म को काव्य कहते हैं। मेदिनी कोष में काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है — "कवेरिदं कार्यभावोवा" (ष्यञ्)। *

अर्थात् कवि के द्वारा जो कार्य सम्पन्न हो, वह काव्य है।

आचार्य अभिनव गुप्त ने ध्वन्यालोकलोचन में लिखा है कि 'कविनीर्यं काव्यं'। इन दोनों ही व्युत्पत्तियों में कवि के कर्म को काव्य कहा गया है 'कु' धातु में 'अच्' प्रत्यय 'इ' जोड़कर 'कवि' शब्द की व्युत्पत्ति बतलायी गयी है और 'कु' का अर्थ है व्याप्ति आकाश अथवा सर्वज्ञता। फलतः कवि सर्वज्ञ है, दृष्टा है। श्रुति कहती है — " कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः परिभूः " अर्थात् जो अपनी अनुभूति के क्षेत्र में अथवा दृष्टिकोण में सब कुछ समेट ले। और स्वयम्भूः जो अपनी अनुभूति के लिये किसी का भी ऋणी न हो। अर्थात् काव्य उसी मनीषी की सृष्टि है जो स्वयं सम्पूर्ण और सर्वज्ञ हो।

हलायुध कोश में 'कवि' शब्द 'कृ' धातु में 'अच ई' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न बताकर उसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ इस प्रकार किया गया है —

" कवते सर्वं जानाति सर्व वर्णयति,
सर्वं सर्व तो गच्छति। " **

राजशेखर ने कवि शब्द का कवृवर्णं धातु से निष्पन्न माना है। भट्ट गोपाल ने कवि शब्द की व्याख्या —

" कौति शब्दायते विमृशति रसभावन इति कविः।" ***

अर्थात रस और भावों के विमर्शकर्ता को कवि कहते है, काव्य—प्रकाशकार 'मम्मट' ने लिखा है कि "लोकोत्तरवर्णनानिपुण — कविकर्म। " ****

कवि के कर्म को काव्य और काव्य संसार कहा गया है तथा कवि को इस संसार का रचयिता —

" अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापति ,
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते। " *****

इस विस्तृत एवं अनन्तव्यापी काव्य रूपी संसार का विधाता कवि है, वह अपनी रूचि—विशेष के अनुसार इस विश्व (काव्य) का सृजन करता है। लौकिक साहित्य में कवि उसे कहते हैं, जो

---

* भारतीय काव्य शास्त्र — डॉ0 रामानन्द शर्मा (उदधृत) पृ0 2

** भारतीय काव्य शास्त्र — डॉ0 रामानन्द शर्मा (उदधृत) पृ0 2

*** भारतीय काव्य शास्त्र — डॉ0 रामानन्द शर्मा (उदधृत) पृ0 2

**** भारतीय काव्य शास्त्र — डॉ0 रामानन्द शर्मा (उदधृत) पृ0 2

***** अग्नि पुराण 339 / 10

विशिष्ट रमणीय शैली में काव्य का रचयिता है। वैसे कवि को क्रान्तदर्शी कहा जाता है। क्योंकि वह अपनी नवनवोन्मेषिनी प्रतिभा से भूत भविष्य और वर्तमान को हस्तामलकवत् साक्षात् कर लेता है।

प्रत्यक्ष चित्र के रूप में तीनों कालों को देखा जा सकता है –

''कवयः क्रान्तदर्शिन :। '' *

क्रान्तदर्शी स्रष्टा की सर्वदा नवीन एवं अमर रचना का नाम काव्य हैं –

'' पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्याति।। '' **

भारतीय कवियों ने काव्य को अपने–अपने दृष्टिकोणों से व्यक्त किया है।

तुलसी ने उसी काव्य को श्रेष्ठ माना है जिसमें श्रेय और प्रेय का समन्वय हो तथा जो सुरसरिता की तरह लोक मंगलकारी हो –

'' कीरति भनिति भूति भलि सोई।

सुरसरि–सम सब कहँ हित होई।।'' ***

महाकवि जयशंकर प्रसाद –'' ने काव्य को आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति कहा है।'' ****

प्रेमचन्द – '' काव्य को जीवन, की आलोचना कहते है।'' *****

बाबू गुलाबराय के अनुसार – '' काव्य संसार के प्रति कवि को भाव–प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की कल्पना के ढाँचे में ढली हुई श्रेय की प्रेय–रूपा प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति है।'' ******

नन्ददुलारे बाजपेयी जी के अनुसार – '' काव्य तो प्रकृत–मानवअनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौंदर्यमय चित्रण है जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छवास और सौन्दर्य–संवेदना उत्पन्न करता है। '' *******

भामह के अनुसार – '' शब्दार्थो सहितौ काव्यम्।। '' ********

अग्निपुराण के अनुसार – '' संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।

काव्यं स्फुरदलंकार गुणव द्वोष वर्जितम्।।'' **** *****

---

* भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त– डॉ0 राजकिशोर सिंह (उदधृत) पृ0 3

** ——— वही ——— पृ0 3

*** ——— वही ——— पृ0 12

**** ——— वही ——— पृ0 24

***** ——— वही ——— पृ0 24

****** ——— वही ——— पृ0 24

******* ——— वही ——— पृ0 24

******** ——— वही ——— पृ0 25

********* ——— वही ——— पृ0 18

आचार्य मम्मट के अनुसार – '' तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'' * इस लक्षण में सभी आवश्यक काव्य–तत्त्वों का समाहार है। अपेक्षित सन्तुलन और महत्त्व का भी प्रतिपादन है।

हडसन के अनुसार – '' काव्य जीवन की व्याख्या कल्पना और मनोयोग तीनों का ही योग है।'' **

केशवदास के अनुसार :– '' काव्य की आत्मा अलंकार है ''। ***

विश्वनाथ के अनुसार :– '' वाक्यं रसात्मकं काव्यं''। **** (रसात्मक वाक्य की काव्य है)

पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार :– '' रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् '' *****

कविता या काव्य की आवश्यकता के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन नितान्त प्रासंगिक है –''मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य–असभ्य सभी जातियों में किसी न किसी रूप में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो विज्ञान न हो; दर्शन न हो; पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा। बात यह है कि मनुष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा सघन और जटिल मण्डल बाँधता चला आ रहा है, जिसके भीतर बँधा–बँधा वह शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय का सम्बन्ध भूला–सा रहता है। इस परिस्थिति में मनुष्य को अपनी मनुष्यता खोने का डर बराबर रहता है। इसी से अन्तः प्रकृति में मनुष्यता को समय–समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य–जाति के साथ लगी चली आ रही है और चली चलेगी। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं। ****** पर काव्य में दर्शन और संस्कृति के तत्त्व न हों, ऐसा संभव नहीं।

यहाँ काव्य एवं दर्शन में परस्पर सम्बन्ध पर विचार किया जा सकता है। काव्य शास्त्र दर्शन के सिद्धान्तों का आश्रय पाकर ही खड़ा होता है। उसके मुख्य सिद्धान्त रस एवं ध्वनि दार्शनिक भित्ति पर ही प्रतिष्ठित हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अलंकार दार्शनिक कार्य–कारण संबंध पर आधारित हैं। हेतु उदाहरण , काव्यलिंग, विषम, विभावना एवं असंगति आदि अनेक अलंकारों का जन्म ही दर्शन के कार्य–कारण सम्बन्ध ज्ञान से ही हुआ है। .... काव्य ने अपने को अधिक आकर्षक बनाने के लिए दर्शन से ही चमक दमक ली है। काव्य की प्राण प्रतिष्ठा से लेकर उसकी कमनीय कलेवरता तक दर्शन ही उसे आधार प्रदान करता है। ******* वैचारिक रूप या दर्शन के अभाव में काव्य बुद्धिग्राह्य नहीं हो पाता – इसीलिए उसका एक बौद्धिक या विचारपक्ष भी है।

---

* भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त– डॉ० राजकिशोर सिंह (उद्धृत) पृ० 19

** —————— वही —————— पृ० 22

*** —————— वही —————— पृ० 23

**** —————— वही —————— पृ० 23

***** —————— वही —————— पृ० 31

****** चिन्तामणि, कविता क्या है (निबन्ध)– डॉ० रामचन्द्र शुक्ल पृ० 149

******* भारतीय दर्शन का इतिहास– डॉ० नरेन्द्रसिंह देवशास्त्री पृ० 23

इस प्रकार कवियों को बहुज्ञ होना चाहिए तभी वह लोक कल्याणकारी काव्य का सृजन कर सकता है। कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य की संगति युगव्यापी प्रश्नों के रेखांकन में ही अन्तर्मुक्त हैं। काव्य जीवन के आरम्भ से ही गुप्त जी की बृहत्तर अर्थवृत्तीय पकड़ युगीन विसंगतियों एवं जीवन की जटिल–गलत कुरीतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करती दिखाई देती है। वे अमानवीय सूत्रों में उलझे हुए यथार्थ को सतहदर–सतह उद्घाटित करने के लिए उद्यत रहे हैं। कवि ने अटूट आस्था के साथ हिंसा पर अहिंसा की, असत्य पर सत्य की, वैमनस्य पर सौहार्द्र की विजय प्रदर्शित की है।

2– दर्शन एवं संस्कृति का सम्बन्ध :– मानव की अन्तर चेतना तथा प्रेरणा का आधार धर्म रहा हैं। धर्म ने सभ्यता तथा संस्कृति के उन्नयन में मानव समाज का पथ–प्रदर्शन किया। धर्म एक मर्यादा है, जिससे मनुष्य में विवेकाविवेक का बोध होता है। इस विवेकाविवेक का निश्चय करने वाली विद्या का नाम दर्शन है। दर्शन अर्थात् ('' जिसके द्वारा देखा जाय'') सत्य के दर्शन किये जायें (दृश्यते अनेन इति दर्शनम्) सब धर्मो मतों सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करके उनको एक ही रूप में देखना दर्शन है। मैं क्या हूँ यह संसार क्या है, ये जीवन मृत्यु के बन्धन क्या हैं, इन सभी के मूल में निहित रहस्य को समझ लेना ही ' दर्शन' है। दर्शन का मूल उत्स वेद है वेदों के ऋषि दिव्यदृष्टि सम्पन्न थे। उन्होंने सृष्टि और लय दोनों के निसर्ग प्रवाह का पता लगाया। जगत की तह में दुःख प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है। दुःख से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने उपाय खोज निकाला ' ज्ञान–आत्मज्ञान। आत्मज्ञान के लिए देवर्षि नारद साधारण दुःखी मनुष्य की भाँति सनत कुमार के पास गये। इसर उद्देश्य से बालक, नचिकेता यमराज के पास गया। यही उपाय याज्ञवल्क्य ने अपनी सहधर्मिणी मैत्रेयी को बताया। जीवन मृत्यु के अबाध चक्र की दुःखमयता के कारण तथागत बुद्ध ने घर छोड़ा। इसी कारण महावीर स्वामी ने वैराग्य और परामर्श को अपनाया।

व्यक्ति के विकास के लिए जो सांस्कृतिक मान्यताएँ है उसमें दर्शन प्रमुख है अर्थात् दर्शन को संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता है; क्योंकि संस्कृति का मूल उद्देश्य जीवन का परिष्कार करना है। उस पर विशुद्ध बौद्धिक दृष्टि से विचार हुआ दर्शनों में। दर्शनों की विचार–प्रधान संस्कृति का सम्यक् रूप गीता में मिलता है।

<u>डा0 सत्यकेतु के अनुसार</u> :– '' चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो यत्न करता है उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है।'' *

दर्शन (ज्ञान) व संस्कृति का घनिष्ठ संबंध मैथ्यू आर्नल्ड की संस्कृति की परिभाषा में निहित है उनके अनुसार

'' अपने से सम्बद्ध सभी विषयों तथा सृष्टि में कथित और विचारित सर्वोत्तम के ज्ञान द्वारा पूर्ण सिद्धि–सम्पादन एवं इस ज्ञान द्वारा अपनी पूर्व संचित कल्पनाओं और अभ्यासों पर जिनका आज हम विश्वास पूर्वक– किन्तु यन्त्रवत अनुसरण करते है; नूतन और स्वतन्त्र चिन्ताधारा का प्रवाह ही संस्कृति है।

---

* भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास – डॉ0 सत्यकेतु पृ0 19

दार्शनिक विचारों का स्वर भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। जीवन को अनेक भौतिक विसंगतियों से बचाने के लिए उसे व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए सत्य, अहिंसा, परोपकार, तप, परलोक आदि भावनाओं की स्थापना की।'' कवि सियारामशरण गुप्त के काव्य में आज की चिर–परिचित भौतिक कुंठाओं की करूणा न होकर भारतीय अध्यात्म की मानव–करूणा भगवान बुद्ध की मैत्री करूणा है। सियारामशरण जी में आस्तिक संस्कार अपने अग्रज मैथिलीशरण गुप्त की भाँति ही वर्तमान हैं; परन्तु उनकी आस्तिकता का विकास शास्त्र धर्म के अनुसार न होकर युग धर्म के अनुसार हुआ। उन्होंने गाँधी दर्शन को समग्रतः ग्रहण किया।

3– गीता दर्शन :– भगवद्गीता मूलतः संस्कृत के महाकाव्य महाभारत का अंश है। वह मानव–जीवन की करीब–करीब सभी महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक,दार्शनिक,धार्मिक तथा नैतिक समस्याओं के संबंध में श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच किया गया आत्मीय संवाद है। उस संवाद का तुरन्त और तत्काल परिणाम यह था कि करीब आज से 2000 वर्ष पूर्व आधुनिक दिल्ली के समीप, कुरूक्षेत्र की युद्ध भूमि पर कौरवों –पाण्डवों के बीच हुए युद्ध में सम्मिलित होने से इंकार करने वाला निराश और शंकालु अर्जुन सभी शकाओं को त्याग, महान् क्षत्रिय के लिए शोभनीय लेकिन युद्ध रूप कर्म के फल के प्रति अनासक्त रहकर उस धर्मयुद्ध से संबद्ध हो गया। उसने ईश्वरेच्छा के प्रति प्रणत होकर निर्मल विवेक बुद्धि से वीरोचित कार्य किया। इस प्रकार यह मात्र धर्म का बोध कराने वाला गुंथन होकर विचार की भूमि पर प्रतिष्ठित एक दार्शनिक ग्रंथ है।

पूर्व पृष्ठों में यद्यपि ' दर्शन' विषय पर किंचित् विचार किया जा चुका है, फिर भी यहाँ ' दर्शन' का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ करते हुए उसे गीता के साथ संबद्ध करने का प्रयास किया जाता है। ' दर्शन' शब्द संस्कृत की दृशिरपेक्षणे धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। यह ल्युट् प्रत्यय भाव (शब्द धात्वर्थ) करण एवं अधिकरण कारकों के अर्थ में होता है। * अतएव दर्शन शब्द का अर्थ ' दृष्टि' या 'देखना' जिसके द्वारा देखा जाय या जिसमें देखा जाय होगा। भावार्थक प्रत्यय को मानकर केवल ' देखना' जो दृष्टि का पर्यायवाची होकर सिद्धान्त (दर्शन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त) का अर्थ देगा। कारणार्थक प्रत्यय को मानकर जिसके द्वारा देखा जाय यह अर्थ देगा, जो आपाततः प्रक्रिया पद्धति के लिए प्रयोग में आएगा और प्रत्यय को अधि करणार्थक मानने पर वह ग्रन्थ–विशेष के अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि ' दर्शन' का शब्दार्थ केवल देखना या सामान्य देखना नहीं है। केवल चर्मचक्षुओं द्वारा देखना दर्शन नहीं है; अपितु प्रकृष्ट ईक्षण– जिसमें अन्तश्चक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोपत्तिक निष्कर्ष निकालना ही दर्शन का अभिधेय है। इस प्रकार दर्शन के साधन और फल दोनों को ही ' दर्शन' शब्द से अभिहित किया जाता है।** दर्शन ग्रंथों को दर्शनशास्त्र भी कहते है।

उपर्युक्त अर्थ में गीता का परिगणन दर्शन शास्त्र में न कर उसे मात्र 'शास्त्र' माना गया है। ' शास्त्र' शब्द शास् अनुशिष्टौ से बना है, अतः गीताशास्त्र मानवमात्र को अनुशासित करने के

---

* नपुसंके भावे कतः .... ल्युट्च .... करणाधिकारणयोश्चः .... ।

** भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास – डॉ0 सिंह एवं हरीदत्त शास्त्री पृ01

लिए रचा गया है– उसे पुण्यश्लोक बनाने के लिए उपदिष्ट है, अतः यह दर्शनशास्त्र या दर्शन के प्रयोजन को भी सिद्ध करता हैं। गीता के अन्त में अर्जुन का मोह नष्ट होता है* और जागतिक मोह को नष्ट करना या करने में सहायक होना, दर्शन का प्रयोजन है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि गीता में दर्शनविषयक क्या है ? इस विषय में यह कहा गया है क़ि हमारे पूर्वज स्वात्माराम महर्षियों ने अनुभव करके यह बतलाया है कि समस्त वेद, वेदांग और वेदवेदांगविद् महर्षि भक्ति या ज्ञान आदि द्वारा प्राप्य ब्रह्म उपाय द्वारा ब्रंह्म को प्राप्त करने वालों जीव, ब्रह्म–प्राप्ति के उपाय, ब्रह्म प्राप्ति से जीव को प्राप्य फल और ब्रह्म–प्राप्ति में बाधक स्वरूपों –इन्हीं पाँच अर्थो को कहते हैं –

प्राप्यस्य ब्रह्मणों रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।

प्राप्त्युपायं फलं चैव तथा प्राप्तिविरोधि च।।

वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः।

मुनयश्च महात्मानो वेदवेदांगवेदिनः।। ** (महर्षि हारीत)

इतिहास–पुराणादि में अनेक कथाएँ कहकर उपर्युक्त पाँचों बातें ही समझाई गयी हैं। इस प्रकार महाभारत पुराण का अंश होने के कारण गीता भी इस कथन के अन्तर्गत परिगणित हो जाती है और उसका प्रयोजन भी दार्शनिक हो जाता है। उपर्युक्त अर्थपंचक गीता में भलीभाँति विवेचित है, जैसा कि आगे स्पष्ट होगा।

गीता के प्रारंभ में अर्जुन मोह ग्रस्त के रूप में दिखाया गया है, जैसा कि उसने ग्रंथ के अन्त में कहा है –

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वान्प्रसादात मयाच्युत।' ***

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भगवान् श्री कृष्ण का पार्षद होने के कारण अर्जुन समस्त अज्ञान (अविद्या रूप विरोधि रूप) से मुक्त था, लेकिन कुरूक्षेत्र के युद्धस्थल में वह अज्ञानी बनकर भगवान् कृष्ण से जीवन की समस्याओं के विषय में प्रश्न करने लगा, जिससे भगवान् उनकी व्याख्या भावी पीढ़ियों के मनुष्यों के लाभ के लिए कर दें और जीवन की योजना का निर्धारण कर दें। ****

भगवान् वासुदेव ने ऐसा ही किया।

कृष्ण के उपदेशों में पाँच मूल सत्यों का ज्ञान निहित है। सर्वप्रथम ईश्वर या ब्रह्म ***** (प्राप्य रूप) के विज्ञान की और फिर जीवों ****** की (प्रत्यगात्मन रूप) स्वरूप स्थिति की विवेचना की गयी है। ईश्वर का अर्थ नियन्ता है और जीव या जीवों का अर्थ है नियंत्रित। जीव सभी प्रकार से कम से कम बद्ध जीवन में तो नियंत्रित है ही। इन तत्त्वों के

---

*	गीता	18/73
**	मानस पीयूष (बाल काण्ड एक भाग)	पृ0 40
***	गीता	18/73
****	श्रीमद् भगवद् गीता– यथारूप	पृ0 06
*****	श्रीमद् भगवद् गीता– यथारूप	18/6
******	श्रीमद् भगवद् गीता– यथारूप	15/07

अतिरिक्त गीता में प्रकृति * (विरोधि रूप) तथा कर्म ** (उपाय रूप) और अन्ततः फल (निष्काम कर्म का परिणाम मुक्ति) *** का भी विवेचन है।

उपर्युक्त दार्शनिक तत्त्वों के संकेत कविवर गुप्त के काव्य में यत्र–तत्र परिलक्षित होते हैं। कविवर गुप्त जिन गाँधी जी से सर्वाधिक प्रभावित रहे हैं वे गाँधीजी स्वयं अपने जीवन में गीता को अंगीकार करते हुए सक्रिय रहे। गाँधी जी ने गीता की टीका ' अनासक्ति योग' के रूप में की थी। गाँधीजी के जीवन में निष्कामता कूट–कूट कर भरी हुई थी। गाँधी जी के प्रमुख सिद्धान्त सत्य और अहिंसा का एक साथ दैवी सम्पद् के रूप में प्रतिपादन गीता में ही हुआ है। गीता का ' निष्काम कर्म योग' गाँधी जी का 'अनासक्ति योग' है।

आलोचकों में वरेण्य डॉ0 सत्येन्द्र ने गुप्त जी की काव्य कृति ' नकुल' की आलोचना 'नकुल' शीर्षक से ही लिखी है। इस लेख में उन्होंने लिखा है .... '' यह अनुमान करने में तो कोई कठिनाई ही नहीं हो सकती कि चिरगाँव के इस कवि–कुटुम्ब में इतिहास से अधिक महाभारत–रामायण आदि का विशेष गौरव रहा है। सियारामशरण जी का कुटुम्ब ही कवि है और स्वाध्यायी भी है। महाभारत का पठन–पाठन होना अस्वाभाविक नहीं।'' .... तो सियारामशरण जी ने महाभारत पढ़ा होगा '' .... **** महाभारत का ही अंश गीता का भी स्वाध्याय उन्होंने किया था। यह नीचे के अंशों की तुलना कवि के कथनों,शब्दों से करने पर स्पष्ट हो जायेगा।

गीतांश	'' बापू'' कृति से
(1) आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् तद्वंत्तकामां यं प्रविशन्ति सर्वे सं शान्तिमाप्नोति न कामकामी। (2.70)	अचल, प्रतिष्ठ हे तुम्हारे पुण्य सागर में शान्ति के समस्त प्रभुमित श्रोत आकर है पूर्यमाण, पूर्ण काम, ओत-प्रोत *****
(2) स्वधर्मे निधनं श्रेयः	किसी लोभवश हम स्वधर्म का करते नहीं कभी अपघात। ******
(3) या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी	सुप्त सर्वभूत निशा हो रही जागृति की पूर्वदिशा। *******
(4) वीतरागमय क्रोधः स्थितिधीर्मुनिरूच्चते	वीतराग, वीत क्रोध ********

---

* श्रीमद् भगवद् गीता– यथारूप 13/20

** श्रीमद् भगवद् गीता– यथारूप 2/47

*** श्रीमद् भगवद् गीता– यथारूप 18/65

**** सियारामशण, डॉ0 नगेन्द्र पृ0 212

***** सियारामशण गुप्त रचनावली पृ0 422

****** सियारामशण गुप्त रचनावली पृ0 223

******* सियारामशण गुप्त रचनावली पृ0 421

******** सियारामशण गुप्त रचनावली पृ0 401

गीता–दर्शन में दैवी–सम्पद् के अन्तर्गत गिनाये गये सभी छब्बीस गुणों की स्थिति कविवर गुप्त में देखी जा सकती है ये गुण है – अभय, शुद्ध सात्विक वृत्ति (आत्मशुद्धि), आध्यात्म ज्ञान, दान,आत्म,संयम,यज्ञ परायणता,स्वाध्याय,तप,सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग,मनः शान्ति, छिद्रान्वेषण हीनता, दया, लोभविहीनता, भद्रता, लज्जा, शान्त, संकल्पशीलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, स्वल्पाभिमान। * महात्मा गाँधी जैसे व्यक्तित्त्व पर ' हिन्दुस्तानी' को लेकर कटाक्ष करने का साहस या अभय उनमें था।** पुनः उनमें अपनी बात कहने का साहस या अभय भी है। *** सत्त्वसंशुद्धि के अन्तर्गत उनकी सात्विकता परिगणनीय है। सन्त व्यक्ति **** में सात्विकता का स्थायी निवास रहता ही है। उनकी पुस्तक–रचना में यही शान्ति दायिनी सात्विकता सक्रिय रहती है। ***** अध्यात्मज्ञान की स्थिति ने उन्हें भक्त, पूजापादी, ईश्वरवादी, सतत् कर्मण्य, दार्शनिक ****** अमरता–बोध युक्त बनाया। मृत्यु से पूर्व ही रू0 20,000 का पुरस्कार दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) के नाम पर करना, छोटे बालकों को रचनात्मक शिक्षा देने के लिए संस्था चलाने की बलवती आकांक्षा उनकी दान–वृत्ति के परिचायक हैं। क्रोध, काम,लोभ, आदि दुष्ट–प्रवृत्तियों को लेकर उनमें आत्मसंयम था सात्विक वृत्ति के कारण वे क्रोधाभाव से युक्त थे; काम–सेवन धर्मानुकूल था, अतः पत्नी के निधन पर पुनः विवाह बन्धन में नहीं बँधे। ******* निस्पृहता ने उन्हें लोभी नहीं बनाया। उनका यज्ञ स्वाध्याय रहा है, जिसके साहाय्य से वे अंग्रेजी, बॉग्ला आदि में रचित साहित्य ग्रंथों का आस्वादन करते थे। यह स्वाध्याय उनका वाड्मय तप भी है, जिसका गीता में प्रतिपादन है आर्जव (सरलता–सहजता) के विषय में अनेक गण्य साहित्यिकों–जैनेन्द्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामकिशोर द्विवेदी–के विचार में वे सरल,सहज और विनम्र हैं। अहिंसा,सत्य तो उनके आराध्य देव महात्मा गाँधी की विभूतियाँ है, जिनके विषय में इस शोध ग्रन्थ में अन्यत्र विवेचन किया गया है। त्याग की वृत्ति ने उन्हें शांति दी है। ******** छिद्रान्वेषण हीनता के परिणामस्वरूप ही वे परिवार में बड़ों से स्नेह तथा लघुजनों से चिर–सम्मान प्राप्त कर सके। उनकी दया की व्यापकता उनके बाल्य जीवन के पशु–प्रेम से आँकी जा सकती है। ********* भद्रता के संदर्भ में एक ड्राइवर के लिए उनका अभिवादन करना पर्याप्त प्रमाण होगा। ********** अपनी रचना की प्रशंसा सुनने पर उन्हें लज्जा होती थी। *********** तप के प्रति रूचि रखने वाले मनीषी मे तेज

---

*	गीता	16/1/3
**	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 8
***	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 9–10
****	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 30
*****	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 32
******	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 28
*******	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 9
*******	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 22
*********	गीता	17/15
**********	गीता	16/2
***********	सियारामशरण– डॉ0 नगेन्द्र	पृ0 2

स्वाभाविक है। * क्षमा संभवतः उनके मानव से मेल नहीं खाती थी, अतः वे व्यापक करूणा से आर्द्र थे। घोर व्यथा के बीच से छनकर आई अद्भुत धैर्य निष्ठा का ही तो यह प्रसाद है कि अस्वास्थ्य से लगातार जूझते हुए भी वे ' मृण्मयी' ' बापू ' उन्मुक्त' आदि अमर काव्यों 'गोद' 'अंतिम आकांक्षा' और ' नारी' जैसे उपन्यासों 'झूँठ–सच', ' मनुष्य की आयु सौ वर्ष' ' अन्य भाषा का मोह' ' घूँघट सरीखे तीखे व्यंग्य भरे निबन्धों और अनेक कहानियों के प्रणयन द्वारा निरन्तर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे है।** वैष्णव सच्चे आस्तिक और स्थितप्रज्ञ में अन्तः–बाह्य सुचिता की अनिवार्यता न हो, ऐसा कथमपि संभव नहीं। अद्रोह और स्वल्प अभिमान से वे मुक्त थे। स्वाभिमान हत न हो, इसलिए वे राज्याश्रय ग्रहण के पक्ष में नहीं थे।*** सामान्यतः वे निरभिमानी थे। **** गीता – दर्शन से प्रभावित व अभिभूत इस कवि ने इसीलिए ' गीता–संवाद' की रचना की थी। गीता–दर्शन के अनुगामी गाँधी का भक्तकवि सियारामशरण गीता सें पराड़मुख कैसे हो सकता था ?

4–रवीन्द्र–दर्शन :– रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म बंगाल के प्रसिद्ध टैगोर वंश में 8 मई 1891 ई० में कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर थे। टैगोर–परिवार अपनी समृद्धि,कला,विद्या एवं संगीत के लिए सम्पूर्ण बंगाल में प्रसिद्ध था। टैगोर को अपने पिता से देशभक्ति,विद्वता, धर्म प्रियता,साधना,आदि गुण उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए। वह अपने सभी भाई– बहनों में सबसे छोटे थे, परन्तु उन्होंने अपने यश से न केवल टैगोर परिवार वरन् सम्पूर्ण देश को गौरव प्रदान किया। नाटक,कविता,कहानी,अनुवाद आदि विधाओं को धन्य करने वाले इस मनीषी आदर्श शिक्षा–संस्था के रूप में 'शान्ति–निकेतन' की स्थापना की, जो कि आज ' विश्व भारती' विश्वविद्यालय के नाम से प्रख्यात है।

रवीन्द्र जी का ' सत्यम् शिवम् अद्वैतम्' की धारणा में दृढ़ विश्वास था। उन्होंने ईश्वर को 'सर्वोच्च मानव' के रूप में माना है, वे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते थे।

" रवीन्द्रनाथ ने किसी भौतिक दर्शन को उत्पन्न करने का दावा नहीं किया। उनका ध्येय भारतीय परम्परा का विश्लेषण करना या उस पर चिन्तन करना नहीं था। उन्होंने इसको अपनी स्वयं की शैली, आलंकारिक भाषा में व्यक्त किया और आधुनिक जीवन में उसका औचित्य बताया।***** " विश्व कवि रवीन्द्र ब्रह्मज्ञान को पृथ्वी का धर्म मानने के पक्षपाती थे। उन्होंने कहा है –" चक्षु सम्पन्न व्यक्ति देखेंगे कि भारत का ब्रह्मज्ञान समस्त पृथ्वी का धर्म बनने लगा है। प्रातःकालीन सूर्य की अरूण किरणों से पूर्व दिशा आलोकित होने लगी है, परन्तु जब वह सूर्य मध्याह्न गगन में प्रकाशित होगा,उस समय उसकी दीप्ति से समग्र भूमण्डल दीप्तिमय हो उठेगा। ****** (पृष्ठ 105 उपनिषद् अंक गीता प्रेस, गोरखपुर) ब्रह्मज्ञान शुद्ध दर्शन का

* सियारामशरण– डॉ० नगेन्द्र — पृ० 51
** सियारामशरण– डॉ० नगेन्द्र — पृ० 25
*** सियारामशरण– डॉ० नगेन्द्र — पृ० 12
**** सियारामशरण– डॉ० नगेन्द्र — पृ० 29
***** शिक्षा के सिद्धान्त– पाठक एवं त्यागी (उदधृत) — पृ० 264
****** उर्पयुक्त उपनिषद् अंक गीता प्रेस, गोरखपुर — पृ० 105

विषय है। कवि होने के नाते गुरू प्रवर उपनिषद् साहित्य के तत्त्व चिन्तन को अपने साहित्य या काव्य के माध्यम से व्यक्त करने में समर्थ हुए थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को गुरूदेव के सान्निध्य में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था, अतः वे उनके महान् व्यक्तित्व को समझने में कृतकार्य हो सके थे। आचार्य द्विवेदी जी ने ही लिखा है कि यदि कालिदास से कोई यह पूछता कि " यदि तुम बीसवीं सदी में पैदा होते को कैसी कविता लिखते; तो कदाचित् वे रवीन्द्रनाथ का नाम लेकर छुट्टी पा जाते।* इस सटीक प्रशस्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि महनीयता और लोकोत्तर रचनाधर्मिता की दृष्टि से कविवर रवीन्द्र और कालिदास में समतुल्यता थी। इसका कारण यह है कि दोनों ही महान् कवियों ने अपने साहित्य में देश और काल की संकीर्ण सीमाओं को भेदकर विराट् मानव सत्य का साक्षात्कार करवाया है। समूची भारतीय संस्कृति का मंथन करके जिस प्रकार कालिदास उसका नवनीत देने में निपुण थे, उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ भी। वे बीसवीं सदी के उन नर–रत्नों में से थे जिन्होंने मनुष्य के अन्तस्तल में निस्तब्ध देवता को प्रत्यक्ष करवाया है। ** उनके निकट जाने वाले को सदा यह अनुभव होता है कि वह पहले से अधिक परिष्कृत और बड़ा होकर लौट रहा है, अतः वे विधाता के भेजे हुए परिपूर्ण मनुष्य थे। वे सच्चे अर्थो में गुरू थे।***

" न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् " (महाभारत) के संदर्भ में गुरुदेव का सारा जीवन मनुष्य को उसकी महिमा के प्रति सचेत करने का प्रयास है। लोकसामान्य को संकीर्ण राष्ट्रीयता और धार्मिकता से निकाल कर उसके व्यापक रूप के दर्शन कराने का प्रयास है। मनुष्य में प्रेम और भ्रातृत्व जगाने का प्रयत्न है। उनका विश्वास है कि इस सम्पूर्ण विश्व में एक ही आत्मा का वास है, उसी एक आत्मा को हम भिन्न–भिन्न करके देखते हैं; जो सत्य नहीं है। वे एक समष्टि मानव में विश्वास रखते थे। यह समष्टि मानव सब मनुष्यों का आश्रय हैं, सबको मिलाकर विराजमान होने के कारण ही वह 'एकमेवाद्वितीयम्' है। इस समष्टि मानव को हम अपनी भावनाओं और कार्यो के द्वारा अनुभव करते हैं या अनुभवगम्य बनाते हैं।**** इसी से प्रेम करना वास्तविकता है और यह तभी संभव है जब हम मानवमात्र से प्रेम करें। इसीलिए उनके काव्यों,नाटकों,कहानियों, गानों,निबन्धों,व्याख्यानों और प्रवचनों के माध्यम से नाना विचित्र सुरों और नाना विचित्र भावों में यह मानव प्रेम उद्वेलित हो उठा है। ***** यही उनका मंगल के प्रति दृष्टिकोण है और यही उनके साहित्य का सौन्दर्य इसके निष्कर्ष स्वरूप आचार्य विनयमोहन शर्मा ने लिखा है – " रवीन्द्रनाथ ने मंगल और सौन्दर्य की साथ–साथ अवस्थिति मानी है – दूसरे शब्दों में वे सत्यं, शिवं, और सुन्दरम में भेद नहीं देखते।****** गुरूदेव की स्वकीय उक्ति है " जगत् में हमारे लिए जो कुछ भी प्रिय है, सुन्दर है वहीं से हमारे ईश्वर हमें पुकारते हैं, वहीं उनका और हमारा मिलन परिपूर्ण होता है। *******

* हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– भाग 8 पृ0 453

** हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– भाग 8 पृ0 312

*** हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– भाग 8 पृ0 271

**** हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– भाग 8 पृ0 431

***** हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– भाग 8 पृ0 300

****** साहित्य नया और पुराना– विनय मोहन शर्मा पृ0 81

******* वैष्णव धर्म का मूल तत्व खण्ड – 4 विश्व भारती पत्रिका अंक 1

कवीन्द्र रवीन्द्र –कबीर की तरह–अपने काव्य में सहजभाव को महत्त्व देते हैं। सहजभाव क्या है, इसके उत्तर में उनका भाव है कि मनुष्य,मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखे यही सहज भाव है। प्रश्न है कि इस सहजभाव को समष्टि मनुष्य की चेतना में कैसे उद्भासित किया जाय ? इस विषय में भी उनकी अन्तश्चेतना सक्रिय रही है। उनका अपने एक निबन्ध ' तथ्य और सत्य' में कहना है – '' साहित्य और ललित कला का काम ही है प्रकाश करना, – इसलिए तथ्य के पात्र को आश्रय करके हमारे मन को सत्य का स्वाद देना ही उसका मुख्य काम है। यह स्वाद है ' एक' का स्वाद असीम का स्वाद। ' मैं व्यक्तिगत मैं हूँ '' यह ' तो हुई मेरी सीमा की तरफ की बात यहाँ मैं व्यापक ' एक' से विच्छिन्न हूँ। और '' मैं मनुष्य हूँ '' यह हुई मेरी असीम अभिमुखी दिशा। यहाँ मैं उस विराट से युक्त होकर प्रकाशमान हूँ।* '' इसी शाश्वत सत्य का प्रकाशन साहित्य का लक्ष्य है। ऐसा उनकी निश्चित मान्यता थी और यही कारण है कि उन्हें विश्व में एक ही संगीत सुनाई पड़ता था एक ही सौन्दर्य परिलक्षित होता था। इसी तथ्य अथवा सत्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से मनुष्य मात्र को उसके ऐसे लक्ष्य का बोध कराया है ; उसके मिथ्याचारों पर आघात किया है और उसके पुराने बहुमानित जीवन मूल्यों में जो उपयोगी है जो सनातन है, उसे खोज निकाला है और अनास्था जर्जर मानवता को आशा और विश्वास का मंत्र दिया है।** विश्व कवि ने उपनिषद् के शब्दों में सम्पूर्ण विश्व में मात्र एक सत्ता का प्रतिबिंबन ही नहीं देखा बल्कि एक संगीत की मधुरता का दर्शन और आस्वादन किया है। उनकी ' गीतांजलि' विश्व भर में व्याप्त एक ही वीणा भिन्न–भिन्न तार हैं, जिन्हें झंकृत करने से मानवता के, अध्यात्म के, प्रेम के अनेक रसयुक्त गीत झरने लगते हैं, जिन्हें वे विराट परमात्मा के चरणों में अर्पित करके ऐसी उदात्त कामना करते है कि '' मुझे दान नहीं, दाता चाहिए'' *** इस प्रकार उनका दर्शन अद्वैत दर्शन है जिसका व्यक्त प्रचार–प्रसार उन्होंने सम्पूर्ण मानव और मानवता में प्रत्यक्ष किया है – इसी महनीय, कमनीय और नमनीय चिन्ता दृष्टि के ही कारण तो वे विश्ववंद्य हैं, विश्वकवि के अभिधान को प्राप्त कर सके हैं।

''महादेवी वर्मा के अनुसार ''कवि सियारामशरण गुप्त जी का साहित्य पढ़कर ऐसा लगता है कि यदि उन्हें महात्मा गांधी का निकट सम्पर्क कुछ कम प्राप्त होता तो वे इससे अच्छे कवि होते और यदि उन्हें कवीन्द्र के साहित्य का परिचय नहीं मिला होता तो वे इससे बड़े साधक होते।'****

कवि सियारामशरण गुप्त जी का काव्य सामाजिक दायित्त्व, नारी जीवन की करूणा के साथ–साथ सांस्कृतिक निष्ठा और व्यक्ति की प्रतिष्ठा के आग्रह का काव्य है। उसे कवि ने नैतिक मूल्यों और मानवीय उच्चता के साथ सामान्य लोक जीवन की अवधारणाओं से पुष्ट किया है। इस दृष्टि से गुप्त जी पर रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी का प्रभाव स्पष्ट है। रामधारी सिंह

---

* रवीन्द्र साहित्य – भाग 24 पृ0 40

** हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली– भाग 8 पृ0 428

*** हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृति चेतना– डॉ0 संजीव भानावत पृ0 97

**** सियारामशरण गुप्त रचना एवं चिन्तन–सम्पादक ललित शुक्ल पृ0 3

दिनकर जी ने गुप्त जी के ' दैनिकी' कृति की तुलना रवीन्द्रनाथ की 'कणिका' से की है। सियारामशरण गुप्त जी ने अपनी ' अचला' कृति में ' कविदेव' शीर्षक से कविता लिखकर रवीन्द्र के प्रति अपना स्नेह व्यक्त किया है –

" कवि ठाकुर–कविदेव – तात,

आनन्द–शिखर गत

जनगणमन के नमस्कार तुम लो ये शत–शत !

अन्तरिक्ष में शत परिक्रमाएँ रवि की कर

बहु भक्ति यह दिवस आज उतरा भूतल पर।

प्रसरित इसकी काल–दीर्घिका के शतदल–से

अभिवादन प्राणिपात हमारे नव निर्मल–ये

आमोदित हैं दूर–दूर तक ।" *

" काव्य ग्रन्थ, कविदेव,तुम्हारा कर में लेकर

बैठा हूँ मैं आज यहाँ, तब अपने भीतर

मुझे हो रही यह प्रतीति, मैं ही हूँ वह जन,

जिसे उस दिवस बहुत पूर्व कर रहे अध्ययन

देखा था तुमने सुदूर से विस्मयपूर्वक।

करता हूँ अनुभूति प्रबल यह आज अचानक :।" **

रवीन्द्रनाथ टैगोर का प्रभाव सियारामशरण जी के कवि व्यक्तित्त्व पर पड़ा था। गुप्त जी के पिता जी ने बंगला सीखी थी। उन्हीं पुस्तकों से सियारामशरण गुप्त जी ने भी बंगला सीखी। धीरे–धीरे रवीन्द्रनाथ की पुस्तकों का अध्ययन उन्होने बंगला में ही किया। वे हिन्दी और बंगला को एक ही भाषा के दो रूप मानते रहे हैं।

'रवीन्द्रनाथ जी के वह प्रत्यक्ष दर्शन नही कर सके थे, इस बात का खेद उन्हें जीवन भर रहा। उन्होंने कहानियों पर आधारित लम्बी कविताएँ लिखी हैं, वैसे कविताएँ रवीन्द्रनाथ टैगोर की पुस्तक ' कथाओं कहानी में संग्रहीत हैं।'

<u>5. गांधी दर्शन</u> :– महान व्यवहारिक दार्शनिक, राजनीतिज्ञ एवं शिक्षा–शास्त्री मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म काठियाबाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान पर 2 अक्टूबर, 1869 को हुआ। उनके पिता करमचन्द गांधी पोरबन्दर राज्य मे दीवान थे। उनकी माता का नाम पुतलीबाई था जो एक साध्वी एवं निष्ठावान स्त्री थीं। उनकी व्रत,उपासना आदि में दृढ़ आस्था थी।

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 357

** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (अचला) पृ0 358

"राष्ट्र के लिए गांधी जी की अनेक देनों में से नवीन शिक्षा के प्रयोग की देन सबसे महान है। यह तरूण व्यक्तियों को सहयोग,प्रेम और सत्य के आधार पर एक समुदाय के रूप में रहने की शिक्षा देकर नये समाज के लिए नागरिकों को तैयार करने का प्रयत्न करती है।"*

" महात्मा गांधी वे मनुष्य थे, जिन्होंने 30 करोड़ व्यक्तियों को विद्रोह करने के लिए उत्तेजित किया, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें हिला दी और जिन्होंने पिछले 2,000 वर्षो की मानव राजनीति में सबसे शक्तिशाली धार्मिक पुट दिया।"

अहिंसा जिसे गांधी जी ने सत्य का ही दूसरा पहलू माना था और जिसका अभिनव स्वरूप उन्होंने बौद्ध अथवा जैन दर्शन के बैर–त्याग, वैष्णवों के चराचर प्रेम और गीता के पूर्ण निष्काम भाव इन तीन स्रोतों से प्राप्त प्रेरणाओं के आधार पर निर्मित किया था। किसी भी परिस्थिति में छोड़ी नहीं जा सकती थी। इसीलिए साधन की पवित्रता पर वह इतना अधिक जोर देते थे। कि आने वाली पीढ़ियाँ गाँधी जी का मूल्यांकन किस तरह करेंगी। राष्ट्रपिता अथवा देश को आजादी दिलाने वाले महान नेता के रूप में बेशक उन्हें याद किया जाता रहेगा। पर शायद उनकी सबसे बड़ी देन वह चरित्र–बल है जो उनके विलक्षण नेतृत्व की आभाम में समूचे देश ने अर्जित किया था। गांधी जी की इस नैष्ठिक दृढ़ता से जैसा भावपूर्व तादात्म्य सियारामशरण जी की रचनाओं में मिलता है वैसा हिन्दी ही क्या सम्भवतः भारत की किसी भाषा के साहित्य में दुर्लभ है। इनका प्रेम–मूलक अहिंसा–धर्म सत्याग्रह और असहयोग के सामान्य सिपाहियों के लिए कितना कठिन, रहस्यमय और दुःसाध्य रहा होगा। पर सियारामशरण जी स्वातंत्र्य संघर्ष के वैतालिकों के बीच अपवाद हैं। उनकी वाणी कही भी स्खलित नहीं होती, उनका हृदय कभी म्लान नहीं होता और पलभर के लिए भी सात्विकता उनकी प्रकृति का साथ नहीं छोड़ती।

सियारामशरण की प्रारंभिक रचनाओं में राष्ट्रीय काव्यधारा के अन्य कवियों के समान ही देश के विगत गौरव का स्मरण, तत्कालीन ' वर्तमान' दुरःवस्था पर क्षोभ, देश के भौगोलिक सौन्दर्य के चित्र और उनमें देवस्वरूपों का आरोप, स्वातंत्र्य कामना, शासकों की दमन नीति के प्रतिरोध का संकल्प किसानों और मजदूरों की कष्ट–कथा, वीर पूजा इत्यादि वस्तुगत प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। उनका ' मौर्य–विजय' हमारे उसी गौरवशाली अतीत के एक स्वर्णिम पृष्ठ पर आधारित है। इस प्रकार की रचनाओं से विदेशी दासता से दबी पिसी और हीनता से ग्रस्त जनता को बहुत आत्मतुष्टि मिली होगी, किन्तु इनमें किसी विशिष्ट मौलिकता अथवा नवीनता का आकर्षण नहीं है। उनके अग्रज की रचनाओं में इन सारी प्रवृत्तियों की विवृत्ति पहले ही पर्याप्त प्रभविष्णुता से हो चुकी थी।

स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीय भावना के पुनरूत्थान काल को महात्मा गाँधी जी ने नेतृत्व प्रदान कर आन्दोलन को नये आयाम प्रदान किये, इसे व्यापक जन–जागरण, समाज–सुधार,आर्थिक स्वावलम्बन एवं नैतिकता तथा आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ा। अतः अहिंसा, सत्याग्रह, अछूतोद्धार, मानवीय साम्यवाद एवं चरखा आन्दोलन उनके विचार दर्शन के प्रमुख आयाम बने।

---

* शिक्षा के सिद्धान्त – पाठक एवं त्यागी पृ0 257

सियारामशरण गुप्त जी ने गाँधी जी के प्रति आस्था प्रकट करते हुए अपने काव्य में गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्य,अहिंसा ,प्रेम,सेवा, त्याग,तितिक्षा जैसे नैतिक आदर्शो की व्याख्यात्मक प्रस्तुति की। अपने देश पर यदि उन्हें गर्व है तो वह भी इस कारण कि उसके पास उच्चकोटि के नैतिक मूल्यों की विरासत है –

'' भारत हे, तेरा यह आज का अतुलयोग
केवल नहीं संयोग
विगत सहस्राधिक वर्षकाल
निरवाच्छिन्न साधना को ज्वाला–जाल
अन्तराल में है अहा!''*

अपने देश के स्वातंत्रय–संघर्ष पर इसलिए अभिमान करते हैं कि वह पवित्र साधनों को लेकर संचालित किया गया है–

'' तेरा युद्ध
लक्ष्य और साधन में एक–सा रहा विशुद्ध,
जिसमें विराम न था तुझको।'' **

अपने नेता पर उनकी दृढ़ आस्था इसलिए है कि वह आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत है –

'' आत्म–बलिदानी
वह तेरा महा सेनानी,
जिसके महात्मय–बल का सुगन्ध
दूर तक फैला तोड़ काल का, दिशा का बन्ध,
तुलना कहाँ है भला उसकी ?'' ***

और अंत में देश को मिली हुई चिर अभिलाषित स्वतन्त्रता का महत्त्व उनकी दृष्टि में इसलिए अधिक है कि वह राष्ट्रीय हितों से आगे बढ़कर विश्वहित–साधन के उद्देश्य की ओर उन्मुख हैं।

'' सर्वहित पालन के पथ में
मांगलिक यात्रा है स्वतन्त्र जय–रथ में
भय है किसी को नहीं भारत की जय से
भीत न हो कोई नवोदय से,
भारत स्वतन्त्र है स्वतन्त्र सभी जब हों।''****

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 135
** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 139
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 140
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (जय हिन्द) पृ0 141

परमात्मा के अभय की छाया में आश्वस्त कवि सियारामशरण का ह्दय जन्म देने वाली धरती माता और संकीर्णता, पापाहरण, वैर, कुंठा,हिंसा,कलह और लोभ से पराभूत संतान–दोंनों ही के साथ हैं –

'' इतना यह चारों ओर संकुचित पन है,
कितना यह चारों ओर पापाहरण है।
संपूर्ण अरक्षित आज यहाँ जीवन है,
किस नये प्रेम से वैर–विराध–वरण है।
इस वसुधा को मैं प्यार करूंगा तब भी।
इस पर जो यह उन्मुक्त असीम गगन है। ''*

गाँधी जी पर उनकी असीम श्रृद्धा का कारण यह है कि गाँधी जी ने मानव के विवेक में उसकी सद्शक्तियों में अपना विश्वास डिगने नहीं दिया था। सियारामशरण जी अपनी ' बापू' नामक रचना में वह महात्मा गांधी जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि –

'' मानव है नाश के कगार पर
चूर हो रहा है ध्वंस–मद में
डूबने को हो रहा है घृण्य रक्त–नद में ,
जागी उनमें है पाशविकता
क्रूरता विधकता,
देखता नहीं है, कुछ वृद्ध –बाल
सबके लिए है काल ।। '' **

गुप्त जी आगे कहते हैं कि सहज परिणति वह पवित्र प्रेम ज्योति ही है, जो हिंसा के किसी भी अन्धकार को विनष्ट करने में समर्थ है क्योंकि

'' प्रेम की ही अन्त में विजय है,
प्रेम रत्न नित्य ज्योतिर्मय है।
फैला दो उसी का मृदुदीप्ति–हास,
हिंसा के तमिस्त्र का स्वयं को ह्रास।।''***

'नोआखाली में ' कविता में कवि गुप्त जी के ह्रदय की करूणा का उच्छवसित आवेग

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (दैनिकी) पृ0 37
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (बापू) पृ0 405
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (बापू) पृ0 408

सैकड़ों निरपराध स्त्री–पुरूषों और शिशुओं की हत्या की मात्र सहानुभूति से नहीं वरन् सच्ची सह अनुभूति से प्रकट हुआ है –

" ये घर बुझी चिताओं से है
गाँव नहीं मरघट यह है,
जीवित देख रहे जो उनकी
मरण वेदना दुस्सह है।
मृत स्वजनों के अस्थि चयन में,
उठते हाथ नहीं उनके,
उर का स्पन्दन रूका–रूका सा
मुख पर बात नहीं उनके।
उनके बैठे हुए कंठ का
रोदन उनकी चुप्पी है
देखेंगे इन आँखों से क्या
सायं प्रात नहीं उनके
आता जाता नहीं तिमिर में
ठिठक रह गया अहरह है। " *

कवि मातृभूमि के उस कष्ट की कल्पना करता है जिसकी सन्तानों ने हत्या और बलात्कार के घिनौने कृत्यों से देश की मर्यादा नष्ट कर दी– जननी जन्मभूमि के मुख पर अपने ही हाथों से कालिख पोत दी –

" पोसा जिनको पिला–पिला कर छाती का निज दुग्ध
आँगन में जिनकी क्रीड़ा से थी तू अहरह मुग्ध
कालिख पोत गये हैं वे ही तेरे मुख पर हाय!
जान न् पाये निज को पर वो थे ऐसे विक्षुब्ध!
छलक गया नयनों तक वह दुःख तोड़ हृदय का कूल,
मातृभूमि, तेरे अंचल में उड़ती है यह धूल।। " **

मानवीय मूल्यों में अडिग आस्था का स्वर सियारामशरण गुप्त जी की सभी कृतियों में सुनाई पड़ता है। हिंसा के क्रूरतम ताण्डव के बीच भी अहिंसा और प्रेम की अमोघ शक्ति का उन्हें भरोसा है।

उन्मुक्त (गीति नाट्य) जिसकी रचना द्वितीय विश्व युद्ध के समय हुई, में कुसुमद्वीप के निवासियों की पराजय एक प्रश्न अवश्य उपस्थित करती है पराजय के बाद ही

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 62

** सियारामशरण गुप्त रचनावली द्वितीय खण्ड (नोआखाली में) पृ0 50

पुष्पदत्त की समझ में आता है कि यह अधर्म पथ पर जाने का परिणाम था और तब वह अहिंसा मार्ग के द्वारा शेष के खोये हुए पुरूषार्थ को जगाने का संकल्प करता है –

'' भंयकर हिंसा नवल में,
यह तो हत्याकाण्ड गगन में, जल में , थल में।
परिवर्द्धित इस भाँति, नहीं यह भी है निष्फल।।
जीर्ण–ज्वलन में और मरण धारा में निर्मल।
पुनरूज्जीवित मनुष्यत्व हो उठा हमारा।।
हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल।
जो सबका है वही हमारा भी है मंगल।।
मिला हमें चिरसत्य आज यह नूतन होकर।
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।।
रक्तपात हम, नहीं करेंगे।
झेलेंगे सब स्वयं अहिंसक मरण बरेंगे।
हिंसक भी है नहीं निरा दानव ही दानव
सोया है अज्ञान–दशा में उसका मानव।। '' *

इस प्रकार सियारामशरण जी की काव्य गंगा का नीर मीठा तो है ही शीतल स्वास्थ्यप्रद और आनन्द दायक भी है। जिसमें गाँधी दर्शन की छवि पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है और उसमें भले ही आंनद का मादक रस न मिले पर एक विलक्षण संजीवनी शक्ति निहित है।

6. विनोबा दर्शन – कवि सियारामशरण गुप्त जी को विनोबा जी का सान्निध्य प्राप्त करने के अनेक अवसर मिले। सन् 1959 से 16 अक्टूबर को भूदान यात्रा करते हुए विनोबा जी चिरगाँव गये थे एवं गुप्त जी के अतिथि हुए थे। इस समय विनोबा जी भूदान के कार्य से उत्तर प्रदेश की पदयात्रा कर रहे थे। उनके इस अथक परिश्रम और उदार–चेतना से सियारामशरण गुप्त जी अत्यन्त प्रभावित हुय थे। तभी सोचा था कि ' अचला' नाम की एक काव्यकृति तैयार की जाए। यही अचला बाद में 'अमृत पुत्र' नाम से प्रकाशित हुई।**

गुप्त जी विनोबा के सर्वोदयी दर्शन के मानने वालों में से थे। इन्होंने सिर्फ रचनात्मक व व्यावहारिक पक्ष को ही अपनाया। कवि विनोबा जी के दार्शनिक पक्ष को ग्रहण नहीं करता। गुप्त जी के अनुसार विनोबा जी के कार्य में ईसा मसीह की शिक्षा प्रकट हुई है। उनका विश्वास था कि संत विनोबा दरिद्र नारायण के तीर्थ यात्री हैं।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (उन्मुक्त) पृ0 494
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 35

विनोबा जी भी कवि के शुभाभिलाषी रहे हैं। सन्त, विनोबा जी ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है–

" सियाराम शरण जी नम्रता की मूर्ति है , नाम उनका सार्थक है, सब नरों को सीताराम स्वरूप देखकर वे सबकी भक्ति करते हैं। उनकी कविता में जो रस होगा, वह इसी गुण का परिपाक होगा।" *

मैथिलीशरण गुप्त के निधन पर 12 दिसम्बर 1964 पर शोक व्यक्त करते हुये विनोवा जी ने कहा था कि " श्री मैथिलीशरण और श्री सियारामशरण गुप्त दो भाई आधुनिक हिन्दी के कालिदास व भवभूति जैसे थे। दोनों से मेरा परिचय था। दोनों ने भूदान यज्ञ और सर्वोदय विचारधारा को बल दिया था।"

7. अन्य दर्शन :– उपर्युक्त दर्शनों से भिन्न कविवर गुप्त के काव्य में अन्य दर्शनों के भी संकेत प्राप्त हो जाते हैं। यह अवश्य सिद्ध है कि उन्हें चार्वाक दर्शन स्वीकार नहीं था, जिसमें मात्र इहलौकिक पक्ष को ही मान्यता प्राप्त है। वैष्णव परिवार में इस दर्शन को कभी मान्यता नहीं प्राप्त हो सकती।

जैन दर्शन में अहिंसा पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसके अनुसार मनुष्य–मात्र के लिए हिंसक सर्पादि कीट भी अवध्य हैं। उनकी भी हिंसा सर्वथा वर्जित है। महावीर स्वामी ने तो हिंसा के भय से अपने अनुयायियों के लिए कृषि कर्म का भी निषेध कर दिया। यही कारण है कि जैन लोग कृषि कभी नहीं करते। कविवर सियारामशरण गुप्त यद्यपि प्रत्यक्षतः गाँधी जी की अहिंसा से प्रभावित थे, तथापि इस मूल्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म् विवेचन जैन दर्शन में है, अतः आदि कारण के रूप में कवि जैन दर्शन की अहिंसा से प्रभावित माना जा सकता है। इस दर्शन के दस धार्मो में संयम,शौच,आकिंचनता,शान्ति,मार्दव,ऋजुता, उन्हें स्वीकृत हैं। महादेवी वर्मा का संयम के संदर्भ में कहना था– " किशोर होते ही इन्हें पत्नी मिल गयी थी और तरूणाई में श्वास रोग प्राप्त हो गया था। थोड़े–थोड़े समय के अन्तर से दो बालक नहीं रहे ,असमय ही पत्नी ने बिदा ली पर भाभियाँ कहती हैं कि उन्होनें अदभुत संयम से यह वियोग–व्यथा झेली।"**

निःसंदेह, कवि की रूचि तपश्चरण *** में थी, जो बौद्ध दर्शन का काम्य नहीं है, तो भी कवि 'मध्यमप्रतिपदा' सिद्धान्त के अनुसार गृहस्थ जीवन बिताता हुआ भोगैश्वर्य के प्रति उपराम रहा। इस आधार पर वह बौद्ध दर्शन से प्रभावित माना जा सकता है।

अद्वैत सिद्धान्त आद्य शंकराचार्य से संबद्ध है, जो उपनिषद् आदि को प्रमाण मानकर 'ब्रहम सत्यं जगन्मिथ्या' के समर्थक थे। उनकी दृष्टि में व्यष्टि आत्मा और विविध व्यापारमय जगत् का ब्रहम से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं है। शंकराचार्य की मान्यता है। मनुष्य जब तक माया के इन्द्रजाल में फँसा रहता है तब तक वह वस्तुओं की वास्तविक

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 71

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 मिश्र पृ0 18

*** सियारामशरण गुप्त की रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 373

प्रकृति से अनभिज्ञ रहता है। वह इस जगत को यथार्थ मानता है – उसे ईश्वर की सृष्टि समझता है। किन्तु जब वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह समझ जाता है कि वास्तव में किसी चीज की सृष्टि नहीं की गयी है और जीव स्वयं ब्रहम है। "* कविवर गुप्त यद्यपि वैष्णव कुल की प्रसूति हैं; पर उन्हें ज्ञान तथा तज्जन्य मुक्ति इन दोनों में विश्वास है –

" होती है समष्टि जब मोहाच्छन्न
रूद्ध बद्ध चेतन–विहीन रूढ़
ज्ञान तभी–हो के मुक्ति भावापन्न
............भरता प्रकाश–सा अमित है। " **

अद्वैत सिद्धान्त (दर्शन) के विरोध में विभिन्न वैष्णवदर्शनों की उद्भावना की गयी। इनमें सर्वप्रथम गण्य विशिष्टाद्वैत दर्शन है। ग्यारहवीं शती के मध्य दक्षिण भारत में ही जन्मे रामानुजाचार्य ने यह प्रतिपादित किया कि जगत केवल भ्रम नहीं है। ब्रहम, जीवात्माएँ और भौतिक जगत् सभी यथार्थ है और एक–दूसरे से भिन्न है। समष्टि चेतन तत्त्व ब्रहम समस्त जीवात्माओं की भी आत्मा या परमात्मा है और वह पार्थिव जगत् की भी आत्मा है। इस प्रकार चित् रूप व्यष्टि आत्माएँ और अचित् रूप जड़ तत्त्व यद्यपि परमात्मा या ब्रहम से भिन्न है, पर उससे स्वतन्त्र नहीं है। वे उसके द्वारा पोषित और नियंत्रित हैं। परम ब्रहम स्वयं अपने अन्दर समस्त भौतिक वस्तुओं, साथ ही इस जगत की सभी परिचित आत्माओं को समाहित किये हुए है। दूसरे शब्दों में चित् और अचित् ब्रहम के अभिन्न अंग है। *** इस प्रकार रामानुज का ब्रहम निर्गुण न होकर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। उनका कहना है कि ज्ञान ईश्वर की भक्ति से प्राप्त होता है और यह भक्ति योग इसीलिए सर्वश्रेष्ठ है। निष्काम कर्म सच्ची भक्ति का प्रारम्भ है। **** कविवर गुप्त की काव्य–रचना का प्रारंभ ही 'भक्त' शब्द से होता है।***** अतः उसे भक्ति का पक्षधर स्वीकार करना ही होगा। कवि के आराध्य राम हैं जिनसे वह अपेक्षा करता है कि वे उसके जीवन–संग्राम में अभय करके विजयश्री का वरदान प्रदान करेंगें। द्वैताद्वैतवाद तथा द्वैतवाद इन दोनों वैष्णव दर्शनों में भी भक्ति को मान्यता प्राप्त है; परन्तु इनकी अपेक्षा रामानुजाचार्य के विचार को अत्यधिक श्रेय प्राप्त है।

शुद्धाद्वैतवाद के प्रर्वतक के रूप मे आचार्य बल्लभ प्रख्यात हैं। इनका समय 15 वीं शती है। बल्लभ के अनुसार श्रीकृष्ण परब्रहम और रसरूप हैं। वे धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेते है और उनकी माधुर्य–ऐश्वर्यमयी लीलाएँ ब्रजमण्डल ,कुरूक्षेत्र तथा

---

* भारतीय चिन्तन परम्परा– के0 दामोदरन — पृ0 268

** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (बापू) — पृ0 409

*** रामानुज के मत की व्याख्या– उद्धृत भारतीय चिन्तन परम्परा — पृ0 274

**** रामानुज के मत की व्याख्या– उद्धृत भारतीय चिन्तन परम्परा — पृ0 270

***** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड — पृ0 43

द्वारका में होती हैं। बल्लभ के दर्शन में पुष्टि (पोषण=अनुग्रह) की विशिष्टता है। यहाँ भक्त अपने अन्य प्रयासों से विरत होकर भगवान् कृष्ण की कृपा पर ही आश्रित हो जाता है। इसमें आराध्य के बालरूप, किशोर रूप, प्रौढ़ रूप की सेवा विहित है, जिसमें सर्वसमर्पण है। आत्मनिवेदन है। इसके विभिन्न भावों में मधुर भावजन्य प्रेम को शीर्ष स्थान प्राप्त है।

कविवर गुप्त ने अपनी कृति ' गोपिका' में ही कृष्ण के चरित्र का अंकन किया है। यह कृति सोद्देश्य है–जैसा कि डॉ0 सावित्री सिन्हा का निष्कर्ष है – '' गोपिका एक उद्देश्य प्रधान काव्य है; अपार्थिव मधुर भाव जिसका प्रतिपाद्य विषय है।'' * आगे डा0 सिन्हा का कथन है – ''गोपिका में वह उज्ज्वलता, वह माधुर्य आरम्भ से अंत तक विद्यमान है। मध्यकालीन भक्त कवियों ने जिस मधुर भाव की उज्ज्वलता को स्थूल श्रृंगारिक क्रीड़ाओं के आवरण में लपेट कर प्रच्छन्न कर दिया था, सियारामशरण गुप्त ने उसके अपार्थिव माधुर्य को अपनी विमल भावनाओं और कल्पनाओं द्वारा निखार दिया। ''** यही अपार्थिव माधुर्य कवि के दर्शन का सार–सर्वस्व है, जो भक्ति की उस सीमा पर पहुँच गया है, जहाँ कामनाएँ द्वन्द्व और संघर्ष की स्थिति से परे स्निग्ध, सात्विक परन्तु तीव्र हो गयी हैं। इसीलिए डा0 सिन्हा का निष्कर्ष है कि ' गोपिका' में ब्रहम और जीव के अंश–अंशी सम्बन्ध तथा अद्वैत की स्थापना भी की गयी है। *** इस आधार पर यहाँ बल्लभ के दर्शन की आभा का प्रत्यक्ष किया जा सकता है – शंकराचार्य का अद्वैत कवि का चरम काव्य नहीं।

वैष्णव वातावरण में पुष्ट और तुष्ट कवि का अन्तर अन्य दर्शनों में विश्राम पा ही नहीं सकता था।

8. निष्कर्ष :– कवि सियारामशरण गुप्त जी के सम्पूर्ण काव्य का अवलोकन करने के पश्चात हम बहुत विश्वास से यह कह सकते हैं कि गुप्त जी का समस्त काव्य भारतीय संस्कृति का एक वृहद कोष है। हमारे देश के दीर्घ सास्कृतिक इतिहास की परम्परा में जो कुछ भी उदात्त,शुभ ,जीवन्त प्रेरणादायी और रक्षणीय है। उस सबका सार–संचय, गुप्त जी के काव्य में प्रतिध्वनित है। भारतीय समाज के क्रमिक विकास से गुप्त जी बहुविध परिचित थे। प्राचीन समाज की आत्मनिर्भरता,धर्मानुशासित जीवन, संयुक्त परिवार ग्रामीण जीवन पर आधृत कृषिगत अर्थव्यवस्था और उस पर अवलम्बित व्यक्ति के विकास को जानकर ही उन्हेंने अपने युग की समस्याओं पर विचार किया। ब्रिटिश शासन अर्थात् पराधीन भारत में पूँजीवादी व्यवस्था किस प्रकार शोषण करती रही है, इसे गुप्त जी के दैनिकी,विषाद इत्यादि काव्य संकलनों में सोदाहरण प्राप्त होता है। पारिवारिक विघटन,छुआछूत, हिंसा एवं साम्प्रदायिकता को इस बीच बढ़ावा मिला है , इसे गुप्त जी ने बखूबी रेखांकित किया है। वस्तुतः एशिया के सामन्तवाद की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ग्राम्य–व्यवस्था की जाति प्रथा एवं संयुक्त परिवार की दोषपूर्ण प्रणाली

* सियारामशरण – डॉ0 नगेन्द पृ0 238
** सियारामशरण – डॉ0 नगेन्द पृ0 239
*** सियारामशरण – डॉ0 नगेन्द्र पृ0 245

है। जिसका प्रतिफलन गरीबी,भुखमरी,बीमारी, मंहगाई,मुनाफाखोरी,चोर बाजारी,भ्रष्टाचार आदि रूपों में देखने को मिलता है। इसका मूल कारण थी भारत के तात्कालिक ढाँचे में पश्चिमी औद्योगीकरण की शोषण धर्मी की कूटनीति। कवि गुप्त जी यह सामाजिक संचेतना उक्त समस्याओं से जूझती हुई राजनैतिक विषमता से टक्कर लेती रही है, जिससे उसके संवदेन का परिविस्तार होता रहा है।

सियारामशरण गुप्त जी अधिपत्य के जरिये सांस्कृतिक विरासत को टूटते हुऐ नहीं देख पाते। वे जन जागृति के प्रेरक परिर्वतनों के समर्थन हैं, जो अपने देश की भूमि एवं मिट्टी में रंगकर विश्वात्मक होने की चुनौती देता है। वैष्णवी विचारधारा से ओत–प्रोत होने के कारण कवि निरन्तर सांस्कृतिक विरासत की सार्थकता को परखता चला है, साथ ही उसे भरसक नई अर्थवत्ता भी प्रदान करता रहा है।

कवि गुप्त जी की आस्था सर्वाधिक 'गांधी–दर्शन' पर रही है जो उसके सात्विक सरल,व्यक्तित्त्व के सर्वथा अनुकूल है। सत्याग्रह,अहिंसा ब्रह्मचर्य और ग्राम स्वराज्य के सहारे सत्य को ही वे ईश्वर के रूप में स्वीकार करते हैं। विदेशी शासन से भारतीय जनता को मुक्त करना, मानव सेवा हेतु सर्वस्व का विसर्जन करना आर्थिक एवं मानसिक निर्धनता को दूर करना, कुटीर एवं लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना, वस्तुतः उनके आत्मनिर्भर स्वराज्य के हेतु है। जिसे गुप्त जी ने अपना प्रतिपाद्य बनाया है।

समेकित जन–जागृति के आधार पर प्रचण्ड ब्रिटिश साम्राज्य को हिला देने वाले गांधी दर्शन पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। ' उन्मुक्त एवं नोआखाली में' इसी विचारधारा का विनियोग किया गया है। उनके अनुसार नैतिकला पूर्ण जनशक्ति ब्रिटिश साम्राज्य को चूर–चूर कर देती है।

भारतीय लोक जीवन की युग चेतनायें कवि ने गांधीवादी विचारधारा से अनुप्राणित होकर हिंसा पर अहिंसा एवं असत्य पर सत्य के व्यापक बितान ताने हैं –

'' मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर।
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।। '' *

'आत्मोत्सर्ग' कृति राष्ट्रीय–भावना की अमर निधि है। गुप्त जी ने विद्यार्थी जी की नृशंस हत्या पर भर्त्सना करते हुए प्रबल स्वरों में उनकी राष्ट्रीयता,निर्भीकता साहस एवं बलिदान भाव का प्रशस्तिगान किया है।

आज लौह यंत्रण में दानवता द्वारा निगली जा रही मानवता के कारण विश्वमात्र अचेत हो गया है ऐसी स्थिति को देखकर कवि का हृदय हुंकार उठता है –

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (उन्मुक्त) पृ0 495

" मृत्युंजय इस घट में अपना,
कालकूट तू भर दे आज।
ओ मंगलमय पूर्ण, सदाशिव
रूद्र रूप धर ले तू आज।। " *

गुप्त जी कवि विद्रोही प्रवृत्ति का न होते हुए भी विषय परिस्थितियों को देखते हुए यहाँ क्रान्ति का आवाह्न करता है। कवि की सांस्कृतिक मनोभमि राष्ट्रीय जागरण से एकमेक होकर गुंजित हुई है।

" जय जय भारतवासी कृती।
जय जय भारत मही।। " **

सियारामशरण गुप्त जी ने जीवन में सार्थक बनाने वाले मूल्यों जैसे– परोपकार,दान,दया,सेवा,सहयोग,कर्त्तव्य निष्ठा,क्षमा, धैर्य उत्साह आदि को अपने काव्य में स्थान दिया। इसके बाद आत्मबल को मानव जीवन की कुंजी मानने वाले गुप्त जी ने कठिन साधना द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करने का मार्ग भी सुझाया –

" रात–दिन मग्न रह मौन आत्म–तम में।। "

समस्त जगती के कल्याण की कामना करते हुए स्व और पर का भेद–भाव मिटाते हुए वह कहते है –

" आत्मलीन सर्वकाल सर्वात्मीय, कौन तब परकीय।।"

इसी तरह साम्प्रदायिकता के वातावरण को देखकर उन्होंने भाईचारे का सन्देश दिया। मानव–मानव में पारस्परिक प्रेम की भावना को सुख–शान्ति के लिए आवश्यक माना । सर्वधर्म समन्वय की भावना से ओत–प्रोत हो धार्मिक रूढ़िवादिता का खण्डन करते हुए ईश्वर के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाया। –

" हिन्दु मुसलमान दोनों ही एक डाल के हैं दो फूल।
और एक ही हैं दोनों को बड़ा बनाने वाला मूल।। "

राष्ट्रीयता का विकासशील रूप गुप्त जी का ' बापू' नामक कृति में मिलता है।

" बुद्ध से मिला है परमार्थ भाग,
ईसा से नरानुराग
हिंसा –त्याग धीर महावीर से वरद से
दृढ़ता मुहम्मद से,
धौत तुलसी के मानस से।
लाया है परायी पीर नरसी के घर से,

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (पाथेय) पृ0 309

** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (मौर्य विजय) पृ0 49

टालस्टाय से अधीत,

प्रेम–प्रतिरोध का समर–गीत।

शाश्वत गिरा ने दिया राम–नाम,

अपना विराम–धाम।। " *

सर्वधर्म समभाव के साथ ऐतिहासिक महापुरूषों से ग्राह, अनुभव–सार तथा कथित कृत्रिम धर्म निरपेक्षता से ऊपर दिखायी देती है।गांधी जी के रूप में देश की व्यापक, विशाल,कर्मयोगी जीवन–दृष्टि उन्हें एक नया मानव–मूल्य देती है। आस्था से आस्था उपजती है, अनास्था से अनास्था, इस तत्त्व को भारतीय सांस्कृतिक युगीन बनाते हुए गुप्त जी ने गहराई से आत्मसात कर लिया था।

सियारामशरण जी ने सन् 1912–13 से लिखना प्रारम्भ किया था। उस समय देश परतन्त्र था। ऐसे समय में सत्य और प्रेम का नारा बुलन्द करने वाले गुप्त जी हाथ में प्रेम की पताका लिये सत्य के समर में निर्भय और निरस्त्र आगे बढ़ते है। तथा उनकी वाणी 'वसुधैव कुटुम्बकं' आपसी सद्भाव,जातीय सौहार्द और राष्ट्रीय ऐक्य के द्वारा साहित्य को सार्थकता प्रदान करती है।

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड (बापू) पृ0 417

अध्याय अष्टम

उपसंहार
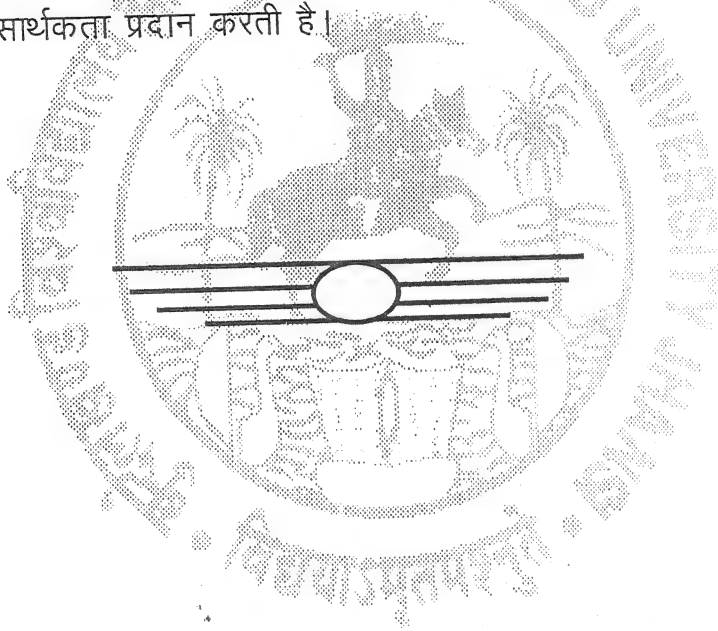
सियारामशरण गुप्त की देन,साहित्यिक महत्त्व एवं मूल्यांकन

पूर्ववर्ती अध्यायों के अन्तर्गत कृत अध्ययन एवं विवेचन से कविवर सियारामशरण के काव्य में निहित सांस्कृतिक दृष्टि का सुपरिचय प्राप्त हो जाता है। इस अध्याय में हम उनके एतादृश व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व को साररूप में प्रस्तुत करके उनकी सांस्कृतिक चेतना को प्रस्तुत करेंगें। वस्तुतः व्यक्ति,परिवार,समाज एवं राष्ट्र के आत्मिक सद्‌गुणों का वह आलोक जिससे सबका मंगलमय विकास–पथ प्रशस्त होता है, चेतना की उसी प्रवृत्ति को संस्कृति के नाम से जाना जा सकता है। भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों का समन्वय करती हुई भी अपने मूलरूप में विछिन्न नहीं हो सकी, इसका मुख्य कारण आद्य वैदिक सांस्कृतिक चेतना की पूर्णता ही है। वास्तव में भारतीय संस्कृति के मूल वेद ही है। जिनकी विचार दृष्टि एवं आचार–निष्ठा सर्वथा सार्वभौमिक तथा सार्वजनीन है। *

वैदिक संस्कृति में आधिभौलिकता के साथ आध्यात्मिकता भी दृष्टिगत होती है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य में से अर्थ और काम की आसक्ति मानव चेतना के लौकिक पक्ष को पुष्ट करती है, इन दोनों उद्‌देश्यों को सिद्ध करने के लिए जिन साधनों की अपेक्षा होती है वे तप और श्रम हैं। इन दोनों की सिद्धि के लिए वेद, ब्रह्मा आदि ग्रन्थों में यत्र–तत्र निर्देश प्राप्त होते है। तप के विषय में शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि तपस्या से ही लोग इस लोक एवं परलोक दोनों पर विजय प्राप्त करते है।** महाभारत के अंशभूत गीता में भी तप के तीन भेदों–शारीरिक वाचिक तथा मानसिक का वर्णन किया गया है।*** परमेश्वर ब्राह्मणों,गुरू, विद्वानों की पूजा करना तथा पवित्रता , सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा ही शारीरिक तपस्या है। वाचिक तप के अन्तर्गत सत्य,प्रिय और हितकारी वचन बोलना तथा स्वाध्याय का अभ्यास आते हैं। मानसिक तप में मन,प्रसादन,सौम्यता,मौन,मनोनिग्रह आत्म सयम एवं जीवन की शुद्धि परिगणित होते हैं। कविवर सियारामशरण प्रायः इन सभी सांस्कृतिक तत्वों से युक्त थे। कवि ने राम **** कृष्ण***** , बुद्ध******, ईसा*******, आदि के प्रति अपनी हार्दिक आस्था व्यक्त की है। गुप्त परिवार की पारंपरिक ठाकुर–पूजा का भार कवि पर ही था। 'मौर्य विजय' का चाणक्य विप्र ,गुरू, तथा विद्वान की कोटि में गण्य है।******** ' बापू' में कवि ने गंगा के पुनीत पयोद्‌गम का सुपावन अनादि स्रोत देखा है।********* कवि अपने सरल व्यक्तित्त्व से मानो सहृदय पाठकों को तदवत निर्मित करने का आकांक्षी है।

---

*	वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति – पं0 गंगाधर मिश्र	पृ0 3
**	शतपथ ब्राह्मण –	3.4/4/27
***	गीता	17/14–16
****	सियारामशण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 43
*****	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 मिश्र	पृ0 162
******	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 मिश्र	पृ0 129
*******	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 मिश्र	पृ0 121
********	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 50
*********	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 408

<u>डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है</u> –''उनकी बाल सुलभ सरलता, हँसतामुखी रहन–सहन बहुमुखी रूचि एवं दूसरों के साथ गहरी आत्मीयता में बाँधने की क्षमता ने आरम्भ से ही मेरे मन पर बहुत प्रभाव डाला।'' * अनुकूल अवस्था के होते हुए भी दूसरा विवाह न करके कवि ने ब्रह्मचर्य का कठिन पालन किया।** अहिंसा की आभा तो कवि के काव्य में स्थल–स्थल पर देखी जा सकती है। अहिंसा के सिद्धान्त का अन्तर्निहित भाव यह है कि कोई बदले की भावना नहीं होती, और कोई क्षुब्ध होने की भावना नहीं होती और षड्यंत्र नहीं, कोई प्रतिकार नहीं, कोई संगठित युद्ध या गुप्त हत्या नहीं, एक शब्द में मनसा, वाचा और काया (कर्मणा) कोई हिंसा नहीं होती और कोई (किसी) षड्यंत्र का सर्वथा अभाव होता है। 'अनाथ' का मोहन उपर्युक्त कथन को ही अपने जीवन में चरितार्थ करता है। उसके सहन में मूकता है, आक्रोश नहीं। वह अपने आँसुओं के निरन्तर प्रवाह में ही अपने मन की व्यथा को बहा देता है। उसका आद्यन्त आचरण अहिंसा की भावना से प्रेरित है। अत्याचारियों के प्रति हिंसात्मक विद्रोह करते उसे नहीं दिखाया गया है। यद्यपि इस खण्डकाव्य में सामाजिक विषमता का चित्रण हुआ है, किन्तु वर्ग संघर्ष दिखाना कवि का अभिप्रेत नहीं रहा है। अन्याय और अत्याचार की समाप्ति के लिए हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त को ही अपनाया है, जो गांधीवादी जीवन दर्शन के अनुकूल है।*** 'उन्मुक्त' नामक कृति में अहिंसा सम्बन्धी गाँधीवादी सिद्धान्त का समर्थन करते हुए युद्ध को त्याज्य बताया गया है और सियारामशरण जी का कहना है कि शांति स्थापना के लिए युद्ध करना मूर्खता है और युद्ध से शान्ति स्थापित नहीं होती। स्वयं गाँधी जी युद्ध के विरूद्ध थे और <u>डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार</u>– '' महात्मा गांधी ने देख लिया कि जैसे कीचड़ को कीचड से धोने का प्रयत्न व्यर्थ है उसी प्रकार युद्ध को युद्ध के द्वारा समाप्त करने का प्रयास व्यर्थ है।'' कविवर गुप्त ने 'उन्मुक्त' में कुछ ऐसा ही लिखा है –

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल
जो सबका है वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर –
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर। ****

<u>गाँधी जी के कथनानुसार –</u> ''अहिंसा के बिना सत्य की खोज और प्राप्ति असंभव है।'' ***** सच तो यह है कि अहिंसा गाँधी–दर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है और <u>श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की दृष्टि में</u>– '' अहिंसा यह शब्द ही गाँधी–धर्म का निचोड़ है तथा हिंसा से पूरित विश्व में एक शब्द गाँधी जी का जितना व्यापक प्रतिनिधित्व करता है उतना उनके और सारे उपदेश मिलकर भी नहीं कर पाते।'****** यद्यपि अहिंसा की परंपरा भारत ही नहीं अन्य देशों में भी अत्यंत प्राचीन है और इस दिशा में अनेक महापुरुषों एवं

---

* सियारामशरण गुप्त– डॉ0 नगेन्द्र पृ0 17

** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 20

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 [illegible]

**** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 495

***** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 141

****** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 142

विचारकों के नाम लिए जाते, हैं पर डा0बी0पट्टाभि सीतारमैय्या के शब्दों – ....'' में इसे खोज निकालने और फिर रगड़ कर चमकाने एवं लोभ, क्रोध,प्रतिशोध और विनाश के दलदल में डूबे हुए राष्ट्रों और महाद्वीपों तथा आगे आने वाली पीढ़ियों के स्त्री,पुरूषों को एक प्रकाश के रूप में भेंट करने का श्रेय महात्मा गाँधी को है। '' वास्तव में गाँधी जी के पूर्व अहिंसा केवल वैयक्तिक अनुशासन का एक साधन मात्र और निषेधात्मक ही थी। पर गाँधी जी ने उसे एक विधेयात्मक शक्ति का रूप प्रदान कर सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में सफलतापूर्वक अपनाया। इस प्रकार उनकी अहिंसा व्यापक प्रतीत होती है और गांधी जी की दृष्टि में यह एक सामाजिक गुण के रूप में मान्य थी। * गाँधी जी के इन्हीं विचारों से अभिभूत कविवर सियारामशरण गुप्त ' दैनिकी' संकलन की एक कविता ' विकलांग' में युद्ध जन्य संहार से विक्षुब्ध मन का चित्रण इस प्रकार करते हैं–

''एक सहस्र हताहत। –सहसा जाग उठी जिज्ञासा –
धरती पर उनका जीवन था क्या कृमि–कीटों का–सा ?
उनके लिए किसी के उर में उठी न करूणा लहरी।
उनकी मरण–यातना में भी बोध शक्ति है बहरी।''**

चतुर्दिक् रक्तपात से क्षुब्ध गाँधी जी की तरह कवि भी नर संहार पर अपना क्षोभ इस प्रकार व्यक्त करता है –

''कविता के रूप में सुनता हूँ जब विस्फोटित है चहुँ ओर भयंकर महानाश, मैं रोक नहीं रखने पाता यह लघुतम अथवा दीर्घश्वास'' *** अहिंसा–वृत्ति से सम्बद्ध तत्त्व प्रेम है। और इस प्रेम में गाँधी जी का सम्पूर्ण विश्वास था। वधिक भी यदि हिंसा जन्य पीड़ा से आर्द्र होता है, तो उसमें भी प्रेम की स्थिति अनिवार्य है ऐसा कवि का अभिमत है –

''फन्दा प्रथम बार जब नर का उसने सींचा होगा।
मस्तक आप किसी लज्जा से उसका नीचा होगा।
खान-पान उस दिवस हो गये होंगे विष–से उसको,
फिर–फिर सम्मुख पाता होगा उस हत हुए पुरूष को।''****

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि उक्त अहिंसा में कायरता अथवा भय के लिए किंचित् मात्र भी अवकाश नहीं है। यही विचार गाँधी–सम्मत था उनकी अहिंसा कायरता से नितान्त भिन्न है। कवि प्रवर भी इसी के पोषण में लिखते है –

''दान अभयता का दे तूने

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 142
** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 142
*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 143
**** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 143

उसे उठाया नीचे से,
फिर से झलक उठी है उसमें
जागृत–जीवन की नवता।''*

वाचिक तप के अन्तर्गत आने वाले सांस्कृतिक तत्त्व हैं प्रियकर सत्य भाषण तथा स्वाध्याय। गाँधीजी ने सत्य को सर्वोपरि सिद्धान्त मानते हुए कहा है। '' सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों–ज्यों उसकी सेवा की जाती है, त्यों–त्यों उसमें अनेक फल पैदा होते दिखाई पड़ते हैं। उसका अन्त ही नहीं होता, हम जैसे जैसे उसकी गहराई में उतरते हैं वैसे–वैसे उसमें से अधिक रत्न मिलते जाते है।** गाँधी जी ने 'सत्य' की व्याख्या में कहा है – ''सत्य शब्द सत् से बना है। सत् का अर्थ है– अस्ति, सत्य–अर्थात् अस्तित्व। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती ही नहीं है। परमेश्वर का सच्चा नाम ही 'सत' अर्थात् सत्य है, इसलिए परमेश्वर सत्य है। यह कहने की अपेक्षा सत्य ही परमेश्वर है,*** कहना अधिक योग्य है। कवि सियारामशरण 'बापू' कृति में उपर्युक्त अहिंसा के साथ 'सत्य' के सिद्धान्त को अमृत के रूप में भारत का उद्धार करने वाला माना है –

'' ऊर्जस्वित,सत्य के अहिंसा के अमृत से
मुक्त छल–छद्म के अनृत से
बोला, यह कोई मन्त्रद्रष्टा ऋषि नूतन में। '' ****

सत्य और अहिंसा को संयुक्त कर गाँधीजी ने एक सुन्दर व तेजस्वी नाम ' सत्याग्रह' दे दिया है, जिसका अर्थ–'सत्य की शोध के लिए सत्य का आग्रह है।'

रामनाथ सुमन के अनुसार – तात्विक दृष्टि से जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा करने का नाम ही सत्याग्रह है। व्यावहारिक तथा सामाजिक दृष्टि से अपने अन्दर सत्य की प्रबल प्यास उगने पर और अहिंसा को जीवन–धर्म रूप में अंगीकार कर लेने के बाद अधर्म व अन्याय(जो एक असत्य स्थिति है या सत्य पर असत्य का आरोप है) के अहिंसात्मक विरोध को सत्याग्रह कहते हैं। गाँधीजी ने इस सत्याग्रह के सिद्धान्त को स्थापित करके उसे अपने व्यक्तित्त्व का अंग बना लिया था। जिसके कारण वे अपने विरोधियों के हृदय पर भी विजय प्राप्त कर सके।***** 'बापू' कृति में कविवर गुप्त ने यही लिखा है –

'' जाग–जाग उठती तरलता
पर को स्वकीय कर लेने की
निज को विकीर्ण कर देने की
नीचे और ऊपर दिशाओं विदिशाओं में तामस दिशाओं में। ''******

गाँधीजी का यह सत्य निरपेक्ष न होकर सापेक्ष है और उसमें प्रेम एवं श्रृद्धा को विशेष महत्त्व प्राप्त

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र — पृ0 144

** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र — पृ0 141

*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र — पृ0 141

**** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड — पृ0 400

***** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र — पृ0 141

****** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र — पृ0 144–145

है। हिंसा के विरूद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध के लिए सद्भावना एवं प्राणिमात्र में एकता के प्रति विश्वास की भावना भी आवश्यक मानी गयी है।

श्री गोपीनाथ धवन के अनुसार– '' गाँधीजी के तत्त्वदर्शन में साध्य और साधन में कोई अभेद्य दीवार नहीं है। साध्य और साधन दोनों अलग नहीं किये जा सकते और दोनों को बराबर शुद्ध होना चाहिए। उनके लिये यह काफी नहीं है कि साध्य ही उच्च और श्लाध्य है यह भी आवश्यक है कि साधन नीति संगत हो। वास्तव में उनके निकट साधन सब कुछ है।'' * यह कारण है कि गाँधीजी ने प्रेम एवं अहिंसा के साधन से ही महान उद्दश्यों की प्राप्ति में विश्वास प्रकट किया है और अपने ऐसे व्यवहार से चतुर्दिक् विजय प्राप्त की है। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत वे अपने विरोधियों के प्रति भी उदार रहे है। कविवर गुप्त ' बापू' कृति में प्रेम और निरस्त्रता जैसे पवित्र साधनों को इस प्रकार वाणी देते हैं –

'' प्रेम की पताका लिये कर में ,
निर्भय निरस्त्र बढ़ा सत्य के समर में।'' **

अपनी संस्कृति के अन्तर्गत गाँधी जी ने व्यक्ति सुधार पर भी जोर दिया है और व्यक्तिगत हिंसा को एक प्रकार का अपराध मानते हुए पवित्रता और आत्मानुशासन को आवश्यक माना है। इस विचार की प्रतिच्छाया कविवर गुप्त के द्वारा कृत ' नकुल' के इस अंश के अन्तर्गत देखी जा सकती है –

''सोच रहे है आर्य कि गांडीवी के खर शर
कर सकते है शांति प्रतिष्ठित इस धरती पर।
मुझको तो विश्वास नहीं है रंचक इसमें,
देगें कैसे अमृत, बुझे स्वयमपि जो विष में।''

सत्य तत्त्व के अनन्तर हितकर और प्रियकर वचनों का प्रयोग वाचिक तप के अन्तर्गत आता है। जैसा कि उपर्युक्त निष्कर्षो से स्पष्ट है कविवर गुप्त का अन्तर करूणा तथा वेदना के योग से बना है। अतः वह कठोर और अप्रिय वचनों के लिए अवकाश नहीं है। ' मृण्मयी' की रचना 'मंजु घोष' की इन पंक्तियों में वाणी का प्रियकर माधुर्य सहज रूप से व्यंजित है –

'' गुरूवर, पदाब्जों में विनम्र–भक्ति–श्रद्धा सह
राजाधिय भूरसेन–सुनु यह
वीरभद्र नत है।'' ***

इससे आगे की पंक्तियाँ भी उक्त माधुर्यमय एवं प्रिय कर गुण से रहित नहीं है।

---

* सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र — पृ0 145
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड — पृ0 412
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड — पृ0 339

" स्वस्ति वत्स स्वागत है।

राजपरिवार में है मंगल तो ?

धर्म का विधान है अचल तो ?"

" राज–गुरू आप–से जहाँ है देव

होना ही पड़ेगा वहाँ मंगल अवश्मेव " *

'स्वाध्याय' के प्रति रागानुराग संस्कृति का अपरिहार्य तत्त्व है। इस स्वाध्याय का ही यह प्रसाद था कि कविवर गुप्त हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, बंगला,संस्कृत,पालि आदि में रचित साहित्यिक कृतियों का अस्वादन करके उनके ग्राह्य तत्त्व को अपने सृजन में आयातित कर सके। यहाँ प्रसिद्ध विद्वान रोम्याँ रोलाँ ने गाँधीजी की जीवनी में जो कुछ अंग्रेजी में इस प्रकार कहा है उसी का स्वाध्याय करके कविवर गुप्त ने प्रकारान्तर से अपनी सर्जना की –

"His principal of Ahimsa (Non-violence) has been inscribed in the spirit of India for more then Two thousand years. Mahaveera,Buddha & the call of Vishnu have made it the substance of millions of souls. Gandhi has merely trens fused heroic blood in to it. He called upon the great shadows, the force of the past, plunged in mortal lenthargy and at the sound of his voice. They come to life in him. They found them selves. He incar-nates the sprit of his people. Blassed the man who is a people his people entombed and the resusciated in him. " **

" श्री प्रह्लाद की अनन्त भक्ति समुज्ज्वलता

x x x x x x

भीष्म की अनूठी ब्रह्मचरता

बुद्ध से मिला है परमार्थ भाग

ईसा से नरानुराग

हिंसा–त्याग धीर महावीर से वरद से

दृढ़ता मुहम्मद से

धौत तुलसी के मानसर से

लाया है पराई पीर नरसी के घर से

टाल्सटाय से अधीत

प्रेम–प्रतिरोध का समर–गीत।

शाश्वत गिरा ने दिया राम–नाम।। " ***

मानसिक तप के लक्षण हैं – मनः प्रसादन, सौम्यता, मौन आदि। कवि के आराध्य और आदर्श

---

* उद्धृत सियारामशरण – डॉ० नगेन्द्र पृ० 193

** उद्धृत सियारामशरण – डॉ० नगेन्द्र पृ० 193

*** उद्धृत सियारामशरण – डॉ० नगेन्द्र पृ० 417

गाँधी जी में मुक्त महोल्लास * माह पर्यन्त वाणी विराम,** मानस में संयत अमलता,*** वीतरागता,**** अग्निज्वलनवत् शुद्धि ***** आदि। अब इन मूल्यों का विनियोग– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ****** कवि ने स्वयं इस प्रकार अपनी कविता 'पाथेय' में किया है –

" ओ दुःसह तेरी दुःसहता सहज सहज हमको हो जाय।
तेरे प्रलय घनों की धारा निर्मल कर हमको धो जाय।
अशनि –पात में निर्धोषित हो
विजय–घोष इस जीवन का;
तडित्तेज में चिर ज्योतिर्मय
हो उत्थान –पतन तन का।

x x x x x

निजता की संकीर्ण क्षुद्रता तेरे सुविपुल में खो जाय, *******

अब विशेष रूप से मनः प्रसादन आदि विशेषताएँ इस प्रकार रेखांकित की जाती है–

मनः प्रसादन – सदा अम्लान, सदा प्रशान्त , सहज रूप में दिखाई पड़ने वाले **** ****

सौम्यता – सरल सौम्य व्यक्ति,********* सौम्य तपस्वी **********

मौन – मौन रहकर विचार करके उत्तर देने वाले ***********

जीवन की शुद्धि – सतयुग के पुरूष के साथ साक्षात्कार करने वाले ************

मनोनिग्रह एवं आत्म संयम की बात ऊपर आ चुकी है। कविवर गुप्त मूलतः मानव मात्र को संस्कृत करने वाले उसकी भावनाओं का उन्नयन करने वाले कवि है। सामान्य को महत्व देकर प्रतिष्ठापित करने वाले रचनाकार है। इसलिए वे सामान्य के चित्रण से ऊपर ही ऊपर उठते हैं।

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 416
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 21
*** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 410
**** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 401
***** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 399
****** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 19
******* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 310
******** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 19
********* सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 20
********** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 21
*********** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 33
************ सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 33

वेदना के आवेग से अपने में डूबकर वे चित्र अंकित करते है, जिनमें रोज का जीवन है, उपेक्षा है, पीड़ा है, वेदना है, कसक है, पर आरोप कहीं नहीं है चेतावनी भी नहीं। मात्र संकेत है जो सीधा हृदय में जा बैठता है, क्योंकि उसके पीछे स्वयं कवि का अनुभव मूर्तिमान हो उठा है। ...... जीवन या साहित्य सब जगह के विशुद्ध मानवतावादी है यही तथ्य उनकी सार्वभौम संस्कृति का बोधक बन जाता है। यह संस्कृति उनकी गाँधीवादी चेतना के माध्यम से व्यापक रूप में मुखरित हुई है।

भारतीय संस्कृति से और आगे जाकर मानव संस्कृति को सच्चे अर्थों में उद्‌भासित करने में कुछ बाधक तत्त्वों का भी उल्लेख गाँधी–दर्शन में हुआ है। युद्ध, साम्प्रदायिकता, असहिष्णुता, धर्मान्धता,संकीर्णता,रूढ़िवादिता, अस्पृश्यता, नारी उपेक्षा आदि इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। कविवर गुप्त ने अपने काव्यों में इन सब तत्त्वों को प्रस्तुत करके उनके अपनयन की व्यंजना की है। गाँधी जी शान्ति की स्थापना के लिए युद्ध को त्याज्य मानते थे और उन्हें आत्मरक्षा के लिए भी युद्ध करना पसन्द न था। उनका तो यही कहना था कि हिंसा पर आधारित युद्ध मानव संस्कृति के लिए श्रेयस्कर नहीं हो सकता। गाँधी जी अवधारणा का अनुधवन करते हुए कवि सियारामशरण ने अहिंसा त्याग भावना का समर्थन करते हुए लिखा –

> '' इसका भय क्या ?–रक्त पात हम नही करेंगे,
> झेलेंगे सब स्वयं , अहिंसक मरण वरेंगे।
> हिंसक भी है नहीं निरा दानव ही दानव
> सोया है अज्ञान दशा मे उसका मानव। '' *

साम्प्रदायिकता मानव संस्कृति को ध्वस्त करने वाली दूसरी समस्या है इस संदर्भ में गाँधी जी के द्वारा अठारह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया था – इसमें सर्वप्रथम साम्प्रदायिकता को स्थान प्राप्त हुआ है। उनका कहना था '' सब धर्मो के प्रति समभाव आने पर ही हमारे दिव्य चक्षु खुल सकते हैं। धर्मांधता और दिव्य दर्शन (मानव संस्कृति) में उत्तर–दक्षिण जितना अन्तर है।''** इसी अवधारणा के अनुगमन में कवि ने 'आत्मोत्सर्ग एवं 'नोआखाली' नामक काव्य कृतियों के माध्यम से साम्प्रदायिकता पर प्रहार करते हुए हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य संबधी विचार प्रकट किये।

– 'आत्मोत्सर्ग ' में उनका उद्‌बोधन है –

> '' अरे भाइयों, कुछ तो सोचो यह क्या करने जाते हो।
> शत्रु नहीं, सम्मुख है भाई, किन पर हाथ उठाते हो।। '' ***

गाँधीजी की दृष्टि में पूर्ण धर्म एक ही है। उनका कथन है– '' सभी मजहब अच्छे है। ...... धर्म

---

*	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 495
**	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 146
***	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 221

में कसर नहीं है।कसर है तो उनके आदमियों में है। '' कविवर गुप्त इसी के समर्थन में लिखते हैं–

'' कोई दीन नहीं सिखलाता इस प्रकार का पापाचार
हानि धर्म की ही करते है; ऐसे पारस्परिक प्रहार।'' *

धार्मिक औदार्य का ही समर्थन करते हुए कवि ने गाँधी जी की विचारधारा के अनुरूप भारतीय संस्कृति को सम्पूर्णतः निर्दुष्ट करने का प्रयास किया –

'' नहीं दूसरा है वह कोई, उसे रहीम कहो या राम,
भिन्न उसे कर सकते हो क्या देकर भिन्न-भिन्न कुछ नाम।'' **

गाँधीजी एक पेड़ की डाली की दो तरह की पंत्तियों की समता हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमानों से दी थी। उनकी इसी भावना को कवि ने अपनी ' नोआखाली में' इस प्रकार रूपायित किया –

'' हिन्दू मुसलमान दोनों ही एक डाल के हैं दो फूल,
और एक ही हैं दोनों को बड़ा बनाने वाला मूल।''***

अस्पृश्यता निवारण भारतीय संस्कृति की महनीय समस्या है। गाँधीजी को यह कदापि स्वीकार न था। जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति या समूह को सामाजिक संस्तरण में सबसे नीचे स्थान दिया जाय। उन्होंने कहा था – '' कोई जन्म से अछूता नहीं हो सकता, क्योंकि सभी उस एक आग की चिनगारियाँ है; कुछ मनुष्यों को जन्म से ही अस्पृश्य समझना गलत है।''**** गाँधी जी को ' अछूत' संबोधन भी रूचिकर न था इसीलिए उन्होंने उन्हें 'हरिजन 'का अभिधान दे दिया था। सियारामशरण ने इस आदान को स्वीकार करते हुए ' एक फूल की चाह ' कविता में हरिजनों के मंदिर–प्रवेश की समस्या को चित्रित किया है। कवि गुप्त हरिजनों का मंदिर में प्रवेश करना अनुचित नहीं समझते तथा मंदिर–प्रवेश के लिए हरिजनों में आत्मविश्वास एवं नैतिक साहस का आवाहन भी करते है। वे उनकी पवित्रता का समर्थन करते हुए एक हरिजन के द्वारा यह उद्‌गार व्यक्त कराते हैं –

'' ऐ क्या मेरा कलुष बडा है देवी की गरिमा से भी
किसी बात में हूँ मैं आंगे माता कि महिमा के भी '' *****

वैदिक संस्कृति में नारी के प्रति इस प्रकार सद्भावना व्यक्त की गयी है – '' तुम सौम्य दृष्टिवाली, पति के जीवन को बढ़ाने वाली, पशुओं के लिए कल्याणकारी, स्वच्छ मनवाली, अच्छी कान्तिवाली, वीर संतति जनयित्री, ईश्वरभक्ति सम्पन्ना तथा सबको सुखदात्री हो। तुम हमारे

---

* सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 222
** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 222
*** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 148
**** सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र पृ0 149
****** सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड पृ0 116

मनुष्यों तथा पशुओं के लिए सुख दायिनी हो।"* दुर्भाग्यवश यह स्थिति दुःखद परिणति को प्राप्त हो गयी और नारी पुरूषों की तुलना में हेय मानी जाने लगी। गाँधी की संस्कृत दृष्टि इस ओर भी पड़ी और उन्होंने इस प्रकार कहा है– " मैं स्त्री–पुरूष की समानता में विश्वास रखता हूँ। इसलिए स्त्रियों के लिए उन्हीं अधिकारों की कल्पना कर सकता हूँ जो पुरूष को प्राप्त है" ** उन्होने तो यहाँ तक कहा – *" I passionately desire the at most for our women..... women must have votes and an eqhal lehal status. "* ***

इससे और आगे बढ़कर गाँधी जी का कहना था " स्त्री–पुरूष में चारित्रय की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा ऊँचा है क्योंकि आज भी वह त्याग,मूक तपस्या, नम्रता,श्रृद्धा, और ज्ञान का प्रतीक है।**** इस संस्कृति को भी वाणी देने में कविवर गुप्त पीछे नहीं रहे। ' आर्द्रा' नामक कृति इस दृष्टि से उल्लेखनीय है इसमें हिन्दू नारी की विभिन्न समस्याओं की चर्चा की गयी है। " खादी की चादर' नामक कविता में हिन्दू विधवा के दुःखों का करूण चित्रण है। ' नृशंस' कविता में दहेज प्रथा की बिडंबना का दारूण दृश्य प्रस्तुत किया गया है। ' अग्नि परीक्षा' नामक कविता में हिन्दू नारी के सतीत्त्व की अभ्यर्थना है। दंगाइयों के यहाँ से अपने को सुरक्षित लौटाने वाली इस कविता की सुभद्रा अपने पति की क्रूरता पाशविकता के समक्ष जल समाधि ले लेती है। पर इससे पूर्व वह भारतीय पुरूष के प्रति इस प्रकार आक्रामक होती है

" मुझ पर जैसा क्रूर–तुमने प्रहार किया
नारकियों ने भी नहीं वैसा घोर वार किया।" *****

' खादी की चादर' में विधवा का करूण क्रन्दन कवि ने इस प्रकार उद्घाटित किया–

" सबके लिए अशुभ–सी दुस्सह विधि काशाप हुई घर में,
मरणेच्छा ही हुई शुभेच्छा उसके लिए भुवन–भर में,
रात–रात भर रोती रहती तनिक विराम न लेती थी।
x x x x x x x
घर के लोग कोसते जब–जब उसे राक्षसी कह–कहकर " ******

ऐसी हिन्दू–विधवा भी गाँधी–संस्कृति के व्यवहारिक रूप (चरखा कातना) को अपना कर अपने क्षत–विक्षत शरीर का उपचार करती है –

" देखा आगे चरखा रखकर चम्पा कात रही है सूत

---

*	ऋगवेद	10/85/44
**	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 150
***	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 150
****	सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना–डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र	पृ0 150
******	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 123
*******	सियारामशरण गुप्त रचनावली प्रथम खण्ड	पृ0 137

सौंदर्यांकन में इससे सात्विक भाव का जो रंग चढ़ता है वह अनुपमेय है। आत्मबल को दृढ़ करने वाला है और रूचि का परिमार्जक है।* यह भाव नितान्त मौलिक है और मानव को संस्कृत बनाने में इसका विनियोग विलक्षण और आलोक सामान्य है। संदर्भित प्रकरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा – द्रोपदी का विचार है –

'' तेरे तट पर इधर–उधर इन तरूपुंजों में,
मृदु मारूत – मर्मरित–विहग कूजित कुंजों में,
बैठी –बैठी दूर देखती हुई दिगन्तर
पाया जब तक, भरा–भरा है मेरा अन्तर। ''
सुख था अथवा दुःख न निर्णय कर पाई वह,
अनुभव भर कर सकी अनिश्चित वह, निश्चित वह
कह लो कुछ भी उसे भले उसके पल दो पल
इस जीवन के अमृत बिन्दु बन कर है। झलमल।

x x x x x

पल दो पल के वे , पता नहीं किस ऊर्ध्व धरा से
टपके थे ज्यों कालवृक्ष के सुफल त्वरा से। '' **

इस प्रकार के अमृत भाव सम्प्रदान के सक्षम कविवर गुप्त की ही प्रकृति है।

'ऊर्ध्वधरा के उर्पयुक्त सम्प्रदान को लेकर डॉ0 सत्येन्द्र ने लिखा है – '' प्रकृति के इस वर्णन में कलाकार का उत्कर्ष स्पष्ट जगमगा उठा है। (परम्परागत प्रकृति –वर्णन से भिन्न) सियारामशरण के कलाकार कवि ने प्रकृति को मनुष्य और पशु से अभिन्न कर कौटुम्बिक स्नेह और सहानुभूति के रस से ही अभिमंडित नहीं किया उसके द्वारा उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित होने की शक्ति का भी उद्घाटन किया है जो अभिनव है। प्रकृति के सौंदर्यांकन में इससे सात्विक भाव का जो रंग चढ़ता है वह अनुपमेय है। आत्मबल को दृढ़ करने वाला है और रूचि का परिमार्जक है। .... यही भाव मौलिक है और कवि के साथ यही यथार्थ है। ***

आगे भी विद्वान आलोचक ने स्पष्ट किया है –''पर ऊर्ध्वधरा के उल्लेख से यह भ्रम नहीं हो जाना चाहिए कि कवि किसी ऊर्ध्व से बहुत प्रभावित है। भावों के ऊर्ध्व धरातल में विश्वास करते हुए कला में वह मानव और मानव में भी ' न–कुल' दीनहीन किंकर की प्रतिष्ठा प्रस्तुत करता है। कवि और कलाकार ने अब तक मनुष्य से अधिक देव

---

* सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 219

** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 220

*** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 220

सौंदर्यांकन में इससे सात्विक भाव का जो रंग चढ़ता है वह अनुपमेय है। आत्मबल को दृढ़ करने वाला है और रूचि का परिमार्जक है।* यह भाव नितान्त मौलिक है और मानव को संस्कृत बनाने में इसका विनियोग विलक्षण और आलोक सामान्य है। संदर्भित प्रकरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा – द्रोपदी का विचार है –

" तेरे तट पर इधर–उधर इन तरूपुंजों में,
मृदु मारूत – मर्मरित–विहग कूजित कुंजों में,
बैठी –बैठी दूर देखती हुई दिगन्तर
पाया जब तक, भरा–भरा है मेरा अन्तर। "
सुख था अथवा दुःख न निर्णय कर पाई वह,
अनुभव भर कर सकी अनिश्चित वह, निश्चित वह
कह लो कुछ भी उसे भले उसके पल दो पल
इस जीवन के अमृत बिन्दु बन कर है। झलमल।

x x x x x

पल दो पल के वे , पता नही किस ऊर्ध्व धरा से
टपके थे ज्यों कालवृक्ष के सुफल त्वरा से। " **

इस प्रकार के अमृत भाव सम्प्रदान के सक्षम कविवर गुप्त की ही प्रकृति है। 'ऊर्ध्वधरा के उर्पयुक्त सम्प्रदान को लेकर डॉ0 सत्येन्द्र ने लिखा है – " प्रकृति के इस वर्णन में कलाकार का उत्कर्ष स्पष्ट जगमगा उठा है। (परम्परागत प्रकृति –वर्णन से भिन्न) सियारामशरण के कलाकार कवि ने प्रकृति को मनुष्य और पशु से अभिन्न कर कौटुम्बिक स्नेह और सहानुभूति के रस से ही अभिमंडित नहीं किया उसके द्वारा उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित होने की शक्ति का भी उद्घाटन किया है जो अभिनव है। प्रकृति के सौंदर्यांकन में इससे सात्विक भाव का जो रंग चढ़ता है वह अनुपमेय है। आत्मबल को दृढ़ करने वाला है और रूचि का परिमार्जक है। .... यही भाव मौलिक है और कवि के साथ यही यथार्थ है। ***

आगे भी विद्वान आलोचक ने स्पष्ट किया है –"पर ऊर्ध्वधरा के उल्लेख से यह भ्रम नहीं हो जाना चाहिए कि कवि किसी ऊर्ध्व से बहुत प्रभावित है। भावों के ऊर्ध्व धरातल में विश्वास करते हुए कला में वह मानव और मानव में भी ' न–कुल' दीनहीन किंकर की प्रतिष्ठा प्रस्तुत करता है। कवि और कलाकार ने अब तक मनुष्य से अधिक देव

---

* सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 219
** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 220
*** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 220

और भूमि से अधिक स्वर्ग को महत्त्व प्रदान किया था। .... स्वर्ग प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य था। गीता में कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि जीतने पर पृथ्वी भोगोगे, युद्ध में काम आने पर स्वर्ग भोगोगे। मनुष्य–देव का यह भेद जहाँ देवताओं को उत्कर्ष प्रदान करता था वहाँ मनुष्य हीनता –बुद्धि और अकर्मण्यता को जन्म देता था। यद्यपि ऐसे स्वर साहित्य में विद्यमान रहे हैं जिनमें भारतभूमि की प्रशंसा की गयी है और

'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

ऐसा भी कहा गया है। पर ये स्वर अत्यन्त मन्द और अस्पष्ट रहे। मानव और धरा में श्रद्धा का लोप और देवताओं तथा स्वर्ग– अपवर्ग में विश्वास – यह अब तक के समस्त भारतीय धर्मो का ध्येय रहा। अवतारवाद ने कुछ संशोधन तो किया पर इससे भूमि का महत्त्व तो बढ़ा भूमिपुत्र, पृथ्वीपुत्र का महत्त्व नहीं बढ़ा। इस परम्परा ने तो मानव आस्था नष्ट कर दी थी और इधर आधुनिक वैज्ञानिक युग के बुद्धिवाद ने अमर और स्वर्ग से आस्था नष्ट कर दी। फलतः मनुष्य की पूर्ण मृत्यु हो गयी, न उसे इस लोक में विश्वास रहा, न उस लोक में। वह छाया और प्रेतों में भ्रमने लगा। उसकी नीति का पेंदा फूट गया। टॉलस्टाय और गाँधीजी ने मानव के इस पतन को देखा– ये दोनों महान कवि और द्रष्टा थे जिसे न स्वर्ग का सहारा न मृत्यु का, वह अतल होकर कहाँ जायगा। तभी मानव की पुनः प्रतिष्ठा की बात कही जाने लगी – मैथिलीशरणगुप्त ने पहले तो यह कहा कि मैं मनुष्यत्व को सुरत्व की जननी कह सकता हूँ। फिर राम को पृथ्वी पर अवतीर्ण करके कहा कि मैं मनुष्यों को स्वर्ग ले जाने के लिए नहीं आया वरन यहीं स्वर्ग स्थापित करने आया हूँ। इसी कवि ने पहली बार स्वर्ग को मनुष्य का मुक्तोच्छिष्ट भोग करके त्यागा हुआ जूठन कहा था। और तब उन्होंने पहली बार खोये मानव को पुनः प्रतिष्ठित करने का एक उद्योग किया था। इस युग का खोया मानव कैसे पुनः पाया जा सकता है, यह एक प्रश्न है ? सियारामशरण गुप्त जी ने कहा कि उसका साधन यही है कि मानव और भूमि में पुनः आस्था स्थापित की जाय। तभी उनका कवि अर्जुन के साथ दो बार दिव्यलोक गया है– एक बार इन्द्रपुरी में देवताओं के राजा के यहाँ दूसरी बार कैलास पर माता भवानी के पास। और प्रत्येक बार वह ' मानव की प्रतिष्ठा' के भाव में पुष्ट होकर लौटा है। पृथ्वी को वह स्वर्ग ले गया है और वहाँ से पृथ्वी अपने गौरव के साथ गौरव की छाप छोड़कर अपने में पूर्ण आश्वस्त लौटी है।(नकुल में) मणिभद्र ने अर्जुन की उस स्वर्ग–यात्रा का वर्णन किया है उस देवलोक में अलकापुरी का यह यक्ष भी हीनताभाव अनुभव कर रहा था– मणिभद्र ने उस

अद्‌भुत दृश्य का वर्णन यों किया है। '' *

बढ़कर आता गया पार्थवाही गज ज्यों–ज्यों,
तर–तर होता गया तरंगित मानस त्यों–त्यों!
अब समीप से देख धनंजय को मैं पाया,
नर तो पहली बार कहीं दर्शन में आया।
मुख में थी मुस्कान कि थी मुस्कान समुखमय ,
उलझ गये उस एक सत्य में संकल्प द्वय।
वह दिव–वैभव, प्रभामयी मणियों का मेला,
सुरपुर की सौन्दर्य तरंगों की वह खेला।
चकित नहीं कर सकी पार्थ को जैसे कण भर,
दमित न था ज्यों किसी हीनता में वह क्षण भर
समासीन उस देव द्विरद पर ऐसे वह था।
मानों उसके लिए सतत साधारण वह था।'' **

अर्जुन के रूप में यहाँ मनुष्य का पृथ्वीपुत्र का यथार्थ महत्त्व सिद्ध हुआ है। इससे और आगे बढ़कर उसके इस उत्कर्ष में मानव के 'निजत्व' का आदर है और इस निजत्व में मानव की अडिग आस्था सिद्ध हुई है। स्वर्गस्थ देवताओं को भी कवि ने गिराया नहीं है। उनके निजत्व को खंडित नहीं होने दिया है। मानवों के प्रतिनिधि के रूप में अर्जुन को प्रस्तुत करके कवि ने मानव मात्र की अनुभूति के स्पष्ट होने में बाधा के रूप में हीनता की भावना का उल्लेख किया है। सचमुच यह भावना संस्कृत मानव मात्र के निर्माण एक दुर्निवार्य बाधा के रूप में प्रस्तुत होती है। अब हम यहाँ कतिपय अभिमतों को प्रस्तुत करके यह प्रतिपादित करने की चेष्टा करेंगे कि कविवर सियारामशरण का सांस्कृतिक व्यक्तित्त्व किन आधारों पर बना और इस सन्दर्भ वे क्या कुछ कर सके जो परम्परा से नितान्त पृथक होकर भी संस्कृति का पोषक और उन्नायक था ;

(1)" रामचरण जी (कवि के पिता) संस्कारी व्यक्ति थे।'' '' सियारामशरण जी को अपने पिता से अनुशासन और हरिभक्ति के संस्कार मिले थे।

x x x x x x x x x

''सियारामशरण जी अपनी मौलिकता और शैली के लिए ख्यातनाम हो चुके थे। ''

'' वे अपनी बात जन–जन के बीच से उठाते है। जहाँ वेदना है, करूणा है, पीड़ा है, वहाँ उनकी लेखनी बड़े भाव से चित्र आंकने लगती है।

---

* सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 220–21

** सियारामशरण –डॉ0 नगेन्द्र पृ0 221–22

" द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका पर आधारित गीतिनाट्य ' उन्मुक्त' इस सत्य का प्रमाण है, कि वर्तमान चित्रित करने में वे अपने हमजोली कवियों में सबसे आगे थे। "

डा0 ललित शुक्ल

x x x x x x x

"'बुद्धवचन' से सियारामशरण जी का प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम ही झलकता है "

डा0 दुर्गाशंकर मिश्र

x x x x x x x

" (बापू' में) कवि का देश–प्रेम .....संकुचित नहीं है यह अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करने के लिए आकुल है।

प्रो0 कन्हैयालाल सहल

" (कविवर सियारामशरण के काव्य में) हर एक स्थान पर आपको तपःपूत आत्मा का छना हुआ विशुद्ध रस मिलेगा (जिसमें) शान्ति अनिवार्य है।"

डा0 नगेन्द्र

" छोटे की रक्षा; उसके लिए बड़े का बड़े में बड़ा त्याग ही वह मार्ग है, जिससे संसार में कभी अशान्ति नहीं हो सकती।

डा0 सत्येन्द्र

" मध्यकालीन भक्त कवियों ने जिस मधुरभाव की उज्ज्वलता को श्रृंगारिक क्रीडाओं के आवरण में लपेट कर प्रच्छन्न कर दिया था। सियारामशरण गुप्त ने उसके अपार्थिव माधुर्य को अपनी विमल भावनाओं और कल्पनाओं द्वारा निखार दिया। इस दृष्टि से ' गोपिका' का स्थान हिन्दी साहित्य में अन्यतम है।"

डा0 सावित्री सिन्हा

उपर्युक्त समीक्षा परीक्षा के अनन्तर यह स्पष्ट हो जाता है कि कविवर सियारामशरण अपने ज्येष्ठ भ्राता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से भिन्न प्रकार की काव्य रचना करके अपने को सांस्कृतिक दृष्टि से स्थापित करने में पूर्ण सफल हुए है। भारतीय संस्कृति के वे तत्त्व जिन्हें महात्मा गाँधी द्वारा व्यापकत्व दिया गया था।– उन्हें अपने जीवन एवं काव्य में उतार कर सच्चे अर्थो में वे गाँधीवादी कवि और दार्शनिक का स्पृहणीय स्थान प्राप्त कर सके है। सत्य,अहिंसा,करूणा क्षमा,दया,निर्वैरता, आर्जव, त्याग,बलिदान,संयम तितिक्षा,शुचिता,उदारता, लोक संग्रह आदि सांस्कृतिक तत्त्वों का विभिन्न आख्यानों के माध्यम से प्रचार,प्रसार करने में वे सफल हुए है। युगधर्म की विडंबनाओं को उदघाटित करते हुए मूल्यवान् उपस्थापनाओं के प्रति उनकी दृष्टिसार ग्राहिणी रही है। अपने समकालीन कवियों के पर्याप्त आगे बढकर मानव ही नहीं, हीनभावना ग्रसित कुलहीन मानव को उच्च स्थान प्रदान करने में वे कृत–कार्य हुए हैं। यही उनका व्यापक सांस्कृतिक योगदान है। जो उनके साहित्य का प्रमुख प्रयोजन भी प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

क- सियारामशरण गुप्त के मौलिक काव्य ग्रन्थों की सूची।

ख- सियारामशरण गुप्त विषयक आलोचना-साहित्य।

ग- सहायक ग्रन्थ -

(1) संस्कृत पुस्तकें।

(2) हिन्दी पुस्तकें।

(3) अंग्रेजी पुस्तकें।

घ- कोश- साहित्य।

ङ- पत्र-पत्रिकाऐं।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

क- सियारामशरण गुप्त के मौलिक काव्य ग्रन्थों की सूची।

ख- सियारामशरण गुप्त विषयक आलोचना-साहित्य।

ग- सहायक ग्रन्थ -

(1) संस्कृत पुस्तकें।

(2) हिन्दी पुस्तकें।

(3) अंग्रेजी पुस्तकें।

घ- कोश- साहित्य।

ङ- पत्र-पत्रिकाऐं।

क- सियारामशरण गुप्त के मौलिक काव्य ग्रन्थों की सूची –

मूल ग्रन्थ –

सियारामशरण गुप्त रचनावली (पाँच खण्डों में)
सम्पादक – ललित शुक्ल
किताब घर – 24/4866, शीलतारा हाउस,अंसारी रोड,
दरियागज, नई दिल्ली से 1992 में प्रकाशित।

खण्ड – एक		पृष्ठ
1.	मौर्य्य–विजय	45–68
2.	अनाथ	69–88
3.	आर्द्रा	89–157
4.	विषाद	158–174
5.	दूर्वादल	175–218
6.	आत्मोत्सर्ग	219–257
7.	पाथेय	258–332
8.	मृण्मयी	323–392
9.	बापू	393–423
10.	उन्मुक्त	424–496

खण्ड – दो		पृष्ठ
1.	दैनिकी	13–48
2.	नोआखाली में	49–72
3.	नकुल	73–135
4.	जयहिन्द	136–144
5.	अमृत–पुत्र	145–171
6.	सुनन्दा	172–219
7.	गोपिका	220–303
8	अचला	304–359
9	फुटकर कवितायें	360–415

क- सियारामशरण गुप्त के मौलिक काव्य ग्रन्थों की सूची –

मूल ग्रन्थ –

सियारामशरण गुप्त रचनावली (पाँच खण्डों में)
सम्पादक – ललित शुक्ल
किताब घर – 24/4866, शीलतारा हाऊस,अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली से 1992 में प्रकाशित।

खण्ड – एक		पृष्ठ
1.	मौर्य्य–विजय	45–68
2.	अनाथ	69–88
3.	आर्द्रा	89–157
4.	विषाद	158–174
5.	दूर्वादल	175–218
6.	आत्मोत्सर्ग	219–257
7.	पाथेय	258–332
8.	मृण्मयी	323–392
9.	बापू	393–423
10.	उन्मुक्त	424–496

खण्ड – दो		पृष्ठ
1.	दैनिकी	13–48
2.	नोआखाली में	49–72
3.	नकुल	73–135
4.	जयहिन्द	136–144
5.	अमृत–पुत्र	145–171
6.	सुनन्दा	172–219
7.	गोपिका	220–303
8	अचला	304–359
9	फुटकर कवितायें	360–415

ख- सियारामशरण गुप्त विषयक आलोचना-साहित्य -

1. सियारामशरण गुप्त – सम्पादक – डॉ0नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस – 23 दरियागंज,
नई दिल्ली से प्रकाशित।

2. सियारामशरण गुप्त – रचना एवं चिन्तन
सम्पादक– ललित शुक्ल
साहित्य सदन, झांसी द्वारा प्रकाशित

3. सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना –
सम्पादक– डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र

4. सियारामशरण गुप्त का साहित्य : एक मूल्यांकन
सम्पादक– डॉ0 परमलाल गुप्त

5. सियारामशरण गुप्त स्मारिका शताब्दी (1994–1995)
सम्पादक– चारुशीलाशरण गुप्त

ग- सहायक ग्रन्थ -

(1) संस्कृत पुस्तकें

1. ऋग्वेद (हिन्दी अनुवाद सहित) –
चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित ।

2. यजुर्वेद (हिन्दी अनुवाद सहित) –
चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित ।

3. अथर्ववेद (हिन्दी अनुवाद सहित) –
चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित ।

4. ईशावास्योपनिषद – गीता प्रेस,गोरखपुर से प्रकाशित।

5. कठोपनिषद – *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

6. छान्दोग्योपनिषद –

7. तैत्तिरीयोपनिषद –

8. बृहदारण्यक उपनिषद – *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

9. ऐतरेय ब्राह्मण – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

10. शतपथ ब्राह्मण – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

11. विष्णु पुराण – (हिन्दी अनुवाद सहित) *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

12. अग्नि पुराण – (हिन्दी अनुवाद सहित) *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

13. नारद भक्ति सूत्र – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

14. शांडिल्य भक्ति सूत्र – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

15. श्रीमद्‌भगवत् गीता – *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

16. श्रीमद्‌भगवत् महापुराण – *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

17. बाल्मीकि रामायण – (हिन्दी अनुवाद सहित) *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

18. वेदव्यास महाभारत – (हिन्दी अनुवाद सहित, छह खण्ड) *गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित।*

19. नारदीय स्मृति – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

20. मनु स्मृति – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

21. याज्ञवल्क्य स्मृति – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

22. कौटिल्य अर्थशास्त्र – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

23. नीति शतक – *भर्तहरि।*

24. पाणिनि अष्टाध्यायी – *सम्पादक--शंकर दास शास्त्री।*

25. गीता रहस्य – *अशोक प्रकाशन ।*

26. चाणक्य प्रणीत सूत्र – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

27. रघुवंश--कालिदास – *चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से प्रकाशित।*

28. हिन्दी वक्रोक्ति जीवित – कुन्तक (सम्पादक– विश्वेश्वर)
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित।

29. संस्कृत निबंधावलिः – *डॉ0 रामजी उपाध्याय ।*

(2) हिन्दी पुस्तकें

1. अग्रवाल,डॉ0 वासुदेव शरण -- कला और संस्कृति
साहित्य भवन, इलाहाबाद से 1958 से प्रकाशित।

2. आप्टे, वामन शिवराम – संस्कृति हिन्दी कोश।

3. 'अनु', डॉ0 रविकुमार –हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना

4. अग्रवाल, शिवलाल – सरल अध्ययन हिन्दी।

5. भटनागर, डॉ0 ऊषा– वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन (उद्धृत)

6. भावुक, भारतीय संस्कृति की महिमा

7. भानावत, संजीव – आ0हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध। (उद्धृत)

8. बुद्ध प्रकाश – भारतीय धर्म एवं संस्कृति मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

9. चौपड़ा, पी0एन0(दास,पुरी) – भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास।

प्रकाशन– एस0जी0बसानी,मैक मिलन इण्डिया लि0

नई दिल्ली।

10. दर्शन,गॉधी – *सस्ता साहित्य मण्डल,एन077 कनॉट सर्कस, नई दिल्ली से प्रकाशित।*

11. डॉ0 देवराज – *संस्कृति का दार्शनिक विवेचन,मैक मिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया ,दिल्ली से प्रकाशित*

12. द्विवेदी, आ0हजारी प्रसाद – *अशोक के फूल (निबंध संग्रह) सस्ता साहित्य मण्डल एन–77 कनॉट सर्कस, नई दिल्ली से प्रकाशित ।*

13. द्विवेदी, आ0हजारी प्रसाद – *गन्थावली*

14. द्विवेदी, आ0हजारी प्रसाद – *हिन्दी साहित्य।*

15. दिनकर, रामधारी सिंह – संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल प्रकाशन, पटना से सन् 1966 से प्रकाशित।

16. दमोदरन,के0 – *भारतीय चिन्तन परम्परा।*

17. दादा धर्माधिकारी – *सर्वोदय दर्शन,सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट,वाराणसी*

से प्रकाशित।

18. दुबे, श्यामशरण – *मानव और संस्कृति।*

19. द्विवेदी ,डॉ0राजेश्वर प्रसाद – *गोस्वामी तुलसीदास (उदधृत)*

20. डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद – *लोक साहित्य और संस्कृति।*

21. गुलाबराय – *भारतीय संस्कृति की रूप रेखा, रवीन्द्र प्रकाशन,ग्वालियर से 1969 में प्रकाशित।*

22. गुलाबराय – *काव्य के रूप, अत्माराम एण्ड संस, दिल्ली से 1964 में प्रकाशित।*

23. गुलाबराय – *हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास।*

24. गुप्ता, नत्थूलाल – *प्राचीन भारतीय विधायें एवं कलायें,चेतना प्रकाशन,नागपुर*

से सन् 1978 में प्रकाशित।

25. गैरोला, वाचस्पति – वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा विद्याभवन चौक वाराणसी से प्रकाशित।

26. गैरोला, वाचस्पति – भारतीय दर्शन।

27. गैरोला, वाचस्पति – भारतीय संस्कृति और कला, उ०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ।

28. ज्ञानी, शिवदत्त – भारतीय संस्कृति

29. गुप्त,मैथिलीशरण – मैथिलीशरण गुप्त और यशोधरा, प्रकाशन केन्द्र,लखनऊ

30. गुप्त,मैथिलीशरण – राष्ट्रीय चेतना के कवि।

31. गुरूमुख,निहाल सिंह – भारत की वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास।

32. गोविन्द,डॉ०त्रिगुणायत – शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त।

33. जैन, हीरालाल – हिन्दी गौरव, विद्या प्रकाशन मन्दिर,मुम्बई।

34. जैन, डॉ० पुखराज – आधुनिक राजनीतिक विचार धारायें।

35. जयशंकर प्रसाद – कामायनी (श्रृद्धा)

36 कलन, एस०पी० – भारतीय संस्कृति के आधार।

37. कविन्द्र, रविन्द्र – साहित्य।

38. कालिका प्रसाद – बृहद हिन्दी कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन,विशालाक्षी भवन चौक, वाराणसी।

39. लूनिया,डॉ०वी०एन० – भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा से प्रकाशित।

40. मित्तल, डॉ०ए०के० – भारतीय संस्कृति का विकास।

41. मशरू,किशोर लाल – गांधी विचार दोहन, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदावाद से प्रकाशित।

42. मिश्र,डॉ० जयशंकर – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास।

43. मिश्र,पं०गगांधर – वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति

44. मिश्र,डॉ0बल्देव प्रसाद – भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान।

45. मिश्र,डॉ0बल्देव प्रसाद – भारतीय संस्कृति।

46. मिश्र,सत्यदेव – पाश्चात्य समीक्षा : सिद्धानत और वाद, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा से 1975 में प्रकाशित।

47. माचवे, प्रभाकर – विभिन्न धर्मों में ईश्वर–कल्पना, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,पटना से सन् 1974 में प्रकाशित।

48. मिश्र,सत्यदेव – पाश्चात्य समीक्षा : सिद्धानत और वाद, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा से 1975 में प्रकाशित।

49. मुनि,श्री मधुकर – जैन संस्कृति : एक विश्लेषण ।

50. मुखर्जी,रवीन्द्र नाथ – प्रारम्भिक समाज शास्त्र।

51. मुखर्जी,रवीन्द्र नाथ – भारतीय समाज व संस्कृति।

52. नलिन, जयनाथ – साहित्य का आधार दर्शन, आलोक प्रकाशन, भिवानी से 1976 में प्रकाशित।

53. नरेन्द्रदेव,आचार्य – साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति।

54. डॉ0 नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली से सन् 1980 में प्रकाशित।

55. डॉ0 नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली से प्रकाशित।

56. डॉ0 नगेन्द्र – साहित्य का समाज शास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली से सन् 1982 में प्रकाशित।

57. ओम प्रकाश – प्राचीन भारत का इतिहास, विकास पब्लिशिंक हाऊस, दिल्ली से 1975 में प्रकाशित।

58. पाण्डेय, डॉ0 राजेन्द्र – भारत का सांस्कृतिक इतिहास।

59. पाण्डेय, डॉ0 राजबली – हिन्दू संस्कार, चौखम्बा सुरभाती प्रकाशन के 37/117, गोपाल मन्दिर लाईन,वाराणसी।

60. पाठक एवं त्यागी – शिक्षा के सिद्धान्त

61. डॉ0 परमात्मा शरण — भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन (उद्धृत) भारत का सं0वि0रा0आ0।

62. रामसुख दास — गीता– साधक संजीवनी।

63. डॉ0 राधाकृष्णन — स्वतन्त्रता और संस्कृति (अनुवाद–विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी) दि अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ से सन 1955 में प्रकाशित।

64. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद — साहित्य शिक्षा और संस्कृति।

65. सिंह, डॉ0 राजकिशोर — भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त, प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड, लखनऊ से प्रकाशित।

66. सिंह, डॉ0 कन्हैया — हिन्दी सूफी काव्य में हिन्दी संस्कृति का चित्रण और निरूपण।

66. सिंह, नामवर — हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद से सन् 1961 में प्रकाशित।

67. शास्त्री,डॉ0 मंगलदेव — भारतीय संस्कृति का विकास।

68. शास्त्री,डॉ0 नरेन्द्र एवं डॉ0 हरिदत्त — भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास

69. सिद्धान्तालंकार दीनानाथ — प्राचीन भारत की नीतियाँ।

70. सक्सैना,डॉ0द्वारिका प्रसाद — साकेत में काव्य संस्कृत और दर्शन।

71. शर्मा, डॉ0 शिवकुमार — हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ।

72. शर्मा, डॉ0 रामनन्द — भारतीय काव्य शास्त्र (उद्धृत)

73. शर्मा, विनय मोहन — साहित्य : नया और पुराना।

74. शर्मा, डॉ0 मुंशीराम'सोम' — भक्ति का विकास, चौखम्बा विद्या भवन, चौक वाराणसी से प्रकाशित।

75. शर्मा, राजनाथ — कबीर।

76. शर्मा, श्रीमति आर0के0 — नैतिक शिक्षा शिक्षण।

77. शर्मा, रामविलास — परम्परा का मूल्यांकन।

78. शर्मा, आचार्य देवेन्द्र नाथ — *तुलसी साहित्य–विवेचन और मूल्यांकन*

79. शर्मा, वासुदेव 'शास्त्री' — *सूरदास (उद्धृत)*

80. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र — *हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणीय सभा, काशी से 1952 में प्रकाशित*

81. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र — *चिन्तामणि।*

82. शुक्ल, डॉ0 ललित — *सियारामशरण गुप्त रचना एवं चिन्तन।*

83. शुक्ल, डॉ0 सावित्री — *सन्त साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।*

84. स्वामी रामसुखदास — *गीता– साधक सजीवनी।*

85. शतपथी, डॉ0 अर्जुन — *राष्ट्रीय चेतना के कवि मैथिलीशरण गुप्त।*

86. डॉ0 श्यामसुन्दर दास — *हिन्दी शब्द सागर (छटा खण्ड)*

87. शिवदत्त सार्ना — *भारतीय संस्कृति।*

88. श्रुतिकान्त — *भारतीय देव भावना मध्यकालीन हिन्दी साहित्य वाणी ,प्रकाशन– नई दिल्ली से प्रकाशित।*

89. श्री राकेश — *चिन्तामणि।*

90. शान्ति कुमार — *रामायण कालीन समाज।*

91. त्रिपाठी, कमलापति — *गांधीवाद और मार्क्सवाद।*

92. त्रिपाठी, विश्वम्भर नाथ — *स्वतन्त्रता और संस्कृति अनु0।*

93. तुलसीदास — *तुलसी ग्रन्थावली, गीता प्रेस,गोरखपुर से प्रकाशित।*

93. तुलसीदास — *रामचरित मानस, गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।*

94. तिवारी,डॉ0 भोलानाथ — *आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, प्रगति प्रकाशन, आगरा से प्रकाशित*

95. तिलक, बालगंगाधर — *श्रीमद्भगवद् गीता रहस्य।*

96. टैगोर, रवीन्द्रनाथ – रवीन्द्र साहित्य भाग–24, अनुवादक धन्य कुमार जैन, रवीन्द्र साहित्य मन्दिर कोलकता।

97. उपाध्याय, डॉ0बल्देव – आर्य संस्कार के मूल–आधार।

98. उपाध्याय, डॉ0बल्देव – भारतीय दर्शन, चौखम्वा विद्याभवन चौक, वारणसी से प्रकाशित।

99. उपाध्याय, डॉ0 रामजी – भारत की संस्कृति साधना।

100. उपाध्याय, डॉ0 रामजी – भारतीय संस्कृति का उत्थान, चौखम्वा विद्याभवन चौक, वारणसी से प्रकाशित।

101. उपाध्याय, डॉ0 भगवतशरण – सांस्कृतिक भारत।

102. डॉ0 उमाकान्त – मैथिलीशरण गुप्त– कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता।

103. वाली, तारकनाथ – सांस्कृतिक परम्परा और साहित्य।

104. विद्यालंकार, डॉ0 सत्यकेतु – भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास।

105. विनोबा भावे – गीता प्रवचन।

106. वंद्योपाध्याय एवं दत्त – भारतीय दर्शन।

107. वर्मा, वृन्दावनलाल – गढकुण्डार (उद्धृत)

108. वर्मा, वृन्दावनलाल – झाँसी की रानी।

109. वर्मा, वृन्दावनलाल – कचनार।

110. डॉ0 वचनदेव कुमार – साकेत : विचार और विश्लेशण।

111. डॉ0 वी0पट्टाभिसीतारमैया – कॉग्रेस का इतिहास।

112 वर्मा, महादेवी – भारतीय संस्कृति के स्वर, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली से सन, 1984 से प्रकाशित।

113 वर्मा, डॉ0 महेन्द्र कुमार – भारतीय संस्कृति के मूल आधार।

114 वर्मा, रामचन्द्र – प्रामाणिक हिन्दी कोश।

115 वार्ष्णेय, डॉ0 लक्ष्मीसागर – हिन्दी साहित्य का इतिहास।

116 वार्ष्णेय,डॉ0 लक्ष्मीसागर – *आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका।*

117 विश्वेश्वर – *हिन्दी वक्रोक्ति जीवितं (कुन्तक)*

118 विश्वेश्वर – *काव्य प्रकाश (आचार्य मम्मट)*

119 व्यास,शान्ति कुमार – *रामायण कालीन समाज एवं पाश्चात्य।*

120 यादव, डॉ0 देवराज – *भाषा पीयूष।*

(3) अंग्रेजी पुस्तकें

1. ए0 एल0 क्रोवर – *दी नेचर ऑफ कल्चर।*

2. नेहरू जवाहरलाल – *डिस्कवरी ऑफ इण्डिया।*

3. देसाई, ए0 आर0 – *सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म।*

4. इलियट, टी0 एस0 – *नोट्स टूवर्डस द डेफिनेशन ऑफ कल्चर, फेवर एण्ड फेवर लिमिटेड, लन्दन 1948 में प्रकाशित।*

5. महात्मा – *लाईफ ऑफ मोहनदास, करम चन्द गांधी। (Vol-1)*

6. मजूमदार, पी0 सी0 – *एन0 एडवान्सड़ हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।*

7. डॉ0 पी0के0आचार्य – *ग्लोरीज ऑफ इण्डिया ऑन इण्डियन कल्चर एण्ड सिवलीजेशन।*

8. रघुवंशी, डॉ0 वी0पी0एस0 – *इण्डियन नेशनलिस्ट एण्ड थॉट।*

9. टैगोर रवीन्द्र नाथ – *द सेन्टर ऑफ इण्डियन कल्चर।*

10. सेन, सुरेन्द्र नाथ – *एट्टीन फिफ्टी सेविन।*

(घ) कोश साहित्य

1. आप्टे ,वामन शिवराम – *दि प्रैक्टिकल संस्कृत, इंगलिश डिक्सनरी, सम्पादक– पी0के0गोडे एवं सी0जी0 कर्वे , पूना से 1957–59 में प्रकाशित।*

2. जेम्स हेस्टिंग्स – सम्पादक– इनसॉइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, टी0 एण्ड टी0 क्लार्क, न्यूयार्क, 1967 में प्रकाशित।

3. डेविड, एल0सिल्स – इण्टर नेशनल इनसॉइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसिज खण्ड – 3, 1968 में प्रकाशित।

4. मोनियर, विलियम्स – ए संस्कृत इग्लिश डिक्सनरी, आक्सफोर्ड से 1956 में प्रकाशित।

5. वर्मा, डॉ0 धीरेन्द्र – हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मण्डल प्रकाशन लि0 वाराणसी से प्रकाशित।

(ड) पत्र- पत्रिकायें

1. कल्याण – गीता प्रेस , गोरखपुर

2. बेतवा–वाणी – बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय प्रकाशन, झांसी

3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका – काशी

4. साप्ताहिक हिन्दुस्तान – हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, दिल्ली।